शमशेर, नागार्जुन एवम् त्रिलोचन की काव्य-संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी०फिल० उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

शोध निर्देशक — प्रोफेसर राजेन्द्र कुमार

शोधार्थी — बद्री दत्त मिश्र

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

2001

UNIVERSITY OF ALLAHABAD
ALLAHABAD-211002

प्रो० राजेन्द्र कुमार
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

मैं प्रमाणित करता हूँ कि श्री बद्री दत्त मिश्र ने मेरे निर्देशन में '**शमशेर, नागार्जुन एवम् त्रिलोचन की काव्य-संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन**' शीर्षक डी० फिल० उपाधि के लिए शोधकार्य किया है। इन्होंने विश्वविद्यालय की नियमावली के अनुरूप अपना कार्य पूरा किया है। मूल ग्रन्थो के साथ सहायक ग्रन्थों का यथा साध्य अध्ययन कर इन्होंने मौलिक रूप से यह शोध प्रबध प्रस्तुत किया है।

दिनांक : 30-6-2001

(प्रो० राजेन्द्र कुमार)

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

अध्याय १ — संवेदना : काव्य संवेदना , अर्थ एवं व्यापकत्व

क : संवेदना : आशय एव स्वरूप — १ से ११
सवेदना का अर्थ एवं व्यापकत्व
संवेदना का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य
इंद्रिय अनुभूति और संवेदना
संवेदना और विचार
साहित्य और संवेदना

ख : रचनाशीलता के संदर्भ में संवेदना के आयाम — १२ से २४
अनुभव और प्रेरणा
कविता का वैचारिक संघर्ष
वस्तु और रूप का द्वन्द्व
आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया
समकालीनता की चुनौतियॉ
प्रतिरोध और प्रतिपक्ष

ग : संवेदना : स्थिति या प्रक्रिया — २५ से ३८
सृजन प्रक्रिया
काव्यानुभूति और रचना प्रक्रिया
रचना प्रक्रिया सम्बन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय मत
समकालीन रचनाकारों के सृजन सम्बन्धी मत

घ : अनुभव , विचार और अनुभूति — ३६ से ४४

अध्याय २ : आधुनिकताबोध, यथार्थ और संवेदना का गतिशील सम्बन्ध

क : अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और — ४५ से ५१
आधुनिक संवेदना का रूपायन
अनुभूति की विशिष्टता और रचना का द्वन्द्व
अनुभव की जटिलता
काव्यानुभूति और ईमानदारी

ख : यथार्थ की संवेदना और संवेदना का यथार्थ — ५२ से ६१
यथार्थ की संवेदना
यथार्थ और यथार्थवाद
यथार्थवाद और प्रकृतवाद
यथार्थ और अतियथार्थवाद
यथार्थ और कल्पना
यथार्थ और अनुभव
रचना की संवेदना और यथार्थ

अध्याय ३ : शमशेर , नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

क : सामाजिकता . आशय एवं स्वरूप ६२ से ६६
ख : शमशेर की सामाजिक चेतना ६७ से ७६
ग : नागार्जुन की सामाजिक चेतना ७७ से ८४
घ : त्रिलोचन की सामाजिक चेतना ८५ से ९२
ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन की सामाजिक संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन ९३ से ९८

अध्याय ४ : शमशेर , नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का लोकधर्मी परिप्रेक्ष्य

क : लोक–संस्कृति की अवधारणा ९९ से १०२
ख : शमशेर की लोक संवेदना १०३ से ११२
ग : नागार्जुन की लोक संवेदना ११३ से १२६
घ : त्रिलोचन की लोक संवेदना १२७ से १३९
ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के लोक संवेदना की तुलना १४० से १४६

अध्याय ५ : शमशेर , नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैचारिक परिप्रेक्ष्य

क : विचारधारा १४७ से १५१
ख : शमशेर की वैचारिक संवेदना १५२ से १६३
ग : नागार्जुन की वैचारिक संवेदना १६४ से १७१
घ : त्रिलोचन की वैचारिक संवेदना १७२ से १८१
ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के वैचारिक संवेदना की तुलना १८२ से १८७

अध्याय ६ : शमशेर , नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य

क : वैयक्तिकता १८८ से १९२
ख : शमशेर की वैयक्तिक संवेदना १९३ से २००
ग : नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना २०१ से २०९
घ : त्रिलोचन की वैयक्तिक संवेदना २१० से २१९
ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के वैयक्तिक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन २२० से २२३

अध्याय ७ शमशेर , नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का सौन्दर्यात्मक परिप्रेक्ष्य

क : सौन्दर्य २२४ से २२८
ख : शमशेर की सौन्दर्य दृष्टि २२९ से २३९
ग : नागार्जुन की सौन्दर्य दृष्टि २४० से २५२
घ : त्रिलोचन की सौन्दर्य दृष्टि २५३ से २६५
ङ : शमशेर,नागार्जुन और त्रिलोचन की सौन्दर्यात्मक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन २६६ से २७३

अध्याय ८ : काव्य–भाषा के संदर्भ २७४ से २८५

उपसंहार २८६ से २९३

भूमिका :

शमशेर , त्रिलोचन और नागार्जुन हिन्दी के सबसे उम्रदराज कवियों के रूप मे सक्रिय रहे। यह हिन्दी का सौभाग्य है। यह किसी भी भाषा का सौभाग्य हो सकता है। यह किसी भी समाज और किसी भी सस्कृति का सौभाग्य हो सकता है। अलबत्ता हिन्दी वाले इन तीनो की विलक्षण उपस्थिति के प्रति उदासीन ही जान पडते है। कुछ कर्मकाण्डी किस्म के लेखों–आलेखों को यदि छोड दिया जाये तो पता लगेगा कि कविता को संवेदना और रचना के शिखरों तक ले जाने वाले इन बुजुर्ग सर्जकों के साथ सतत् संवाद की कोई अनिवार्यता नही महसूस की गई है। अजीब तदर्थवाद है।

इन तीनो कवियों ने अपने समय की उत्कृष्ठ रचनाये की लेकिन इस बात का प्रमाणित करने के लिये भाष्य नही लिखे। टीकाये नही प्रस्तुत की। कुछ और करने के लिये जैसे वो निरूपाय थे । सिर्फ कविता ही लिख सकते थे ।

एक बात और इन तीनो ही कवियां ने कविता मे दार्शनिक होने से घृणा की।कविता मे सिद्धान्त नही बघारा। मुद्रायें नही अख्तियार की। सरल रहे।

कई बार कठिन दिखकर भी सरल रहे। प्रयोग करके भी प्रयोगवादी होने की विपत्ति से बचे रहे। नया करके भी नयी कविता की फार्मूलाधर्मिता के जाल मे नही फसें । समाज के साथ एक जीवन्त रिश्ते के कारण उन्हे अध्यात्मिक होने की मूर्खता का वरण नही करना पडा। अज्ञेय और नरेश मेहता इसी आध्यात्मिक मायापथ के कारण निष्प्राण होते गये हैं ।

हिन्दी कविता मे बहुत तोड–फोड हुई है। यह बात शायद अलक्षित ही रही है कि शमशेर अन्यतम मूर्तिध्वंसक रहे हैं। लेकिन इस तोडने मे इतना मर्म और संवेदन रहा है कि तोडने कि प्रक्रिया मे भी शमशेर संगीत का सृजन करते रहे हैं। सारी प्रक्रिया सूफियों की याद दिलाती है, जो इस्लाम की सुन्नी कट्टरता के विरूद्ध उदारता और सहजता का प्रस्तावित करते थे। विरोध लेकिन प्रगति और संगीत के साथ।

शमशेर में रूप के प्रति बला का खिंचाव है। इस खिंचाव के कारण ही शमशेर मे निरंतर एक 'उन्मन' मदहोशी रहती है। शमशेर की कविता बाख के तरानों की याद दिलाती है। शमशेर शायद इसीलिए कमतम शब्दों का इस्तेमाल करते हैं कि उनकी कविता को पढा तो जाए ही, उसे सुना भी जाय । किसी भी अन्य कवि में इतनी सारी अनुध्वनियां नहीं सुनाई देती , जितनी शमशेर में ।

दिलचस्प है कि शमशेर , त्रिलोचन और नागार्जुन तीनों ही फक्कड ही रहें है। न दुनिया से कुछ हासिल करने की तमन्ना और न कुछ खोने का विलाप। इसी लिए तीनों कवियों में एक संत भाव दिखाई

देता है। यहां तक कि शमशेर की बहुत निजी किस्म की प्रेम कविताओं ने भी अंदाजे बयां गर्क होने का नहीं। गालिब की तरह शमशेर भी इसी अनुभव को सिद्ध नहीं मानते । यद्यपि उसके आकर्षण को झुठाते हुये नहीं।

शमशेर ने अपनी असहमति को भी गैर–सख्त तरीके से कहा। लेकिन नागार्जुन ने अपनी असहमति को राजनीतिक विपदा की हैसियत दी। उन्होंने विरोध को शाप देने की शैली मे व्यक्त किया। संवेदना के साथ संदेश की शर्त को नागार्जुन कभी नहीं भूलते। इसी लिए उनकी कविता में चिढाने, बिराने और अंगूठा दिखाने की नाटकीयता दिखती। नागार्जुन ' एजिट प्राप्ट' (एजिटेशन प्रोपेगेंडा) के अन्यतम कवि हैं। वे कवि की सामाजिक भूमिका के प्रति सचेत कवि है।

कहा जा सकता है कि शमशेर ' सौन्दर्य और संगीत' के उद्भावक है तो नागार्जुन असाहमति के प्रवक्ता। त्रिलोचन में इन्द्रिय बोध और विरोध कभी मुखर नहीं रहा। कहा जा सकता है कि काव्यात्मक नेरेटिव का इस्तेमाल करके वे एक सरल भारतीय मनुष्य को नैरेट करते है। इसके लिए उन्होंने सानेट का अद्भुत इस्तेमाल किया है। त्रिलोचन कविता में बहुत विद्ग्ध है। वह कविता में बतियाते है। वह कविता में बतियाते हैं। बतकही करते है। एक अभाव ग्रस्त जीवन जीने के बावजूद उनकी कविता के में विगलन, विलाप और व्यर्थ व्यथा का निरसन है। दरअसल त्रिलोचन ने सानेट लिखकर यह सिद्ध किया है कि छंदों में लिखी कविता अब भी प्रासंगिक हैं और आधुनिक भाव बोध की विरोधी नही है। सच तो यह है कि नागार्जुन शमशेर और त्रिलोचन ने छंदो पर गाहे–ब–गाहे हाथ अजमाया।

त्रिलोचन न तो शमशेर की तरह चकित करते हैं न और नागार्जुन की तरह शॉक देते हैं । एक और बात कह दी जाय त्रिलोचन ने कभी सभा लूटने के अंदाज में नही लिखा हैं यह एक निरावेग अदा है। न अक्षता, न श्लथ। बहुत सामान्य । बहुत साधारण । लेकिन सादे जीवन की तरह ही निर्दोष और नैतिक और अनोखी ।

यह बात बडी दिलचस्प लगेगी इन तीनों ही कवियो ने तंदुरुस्त कवितायें नहीं लिखी। महाकाव्यात्मक होने की कोशिश उन्होंने नहीं की। प्रायः उन्होंने छोटे–छोटे आकारों वाली कवितायें लिखी। यह इस बात का भी प्रमाण है कि वे ये कवि काव्यात्मक महात्वाकांक्षाओं से आविष्ट नहीं थे। ये कवि भारतीय कविता के अन्यतम स्रोत है। वे भारतीय सौन्दर्य –चेतना, नैतिकता और असहमति के प्राण–स्रोत भी है। वे एक बेहतर सामाजिकता के आग्रह है। उन्हें जानना कविता को जानना ही नहीं है, जीवन को समझना भी होगा । यह भारतीय समाज का दुर्भाग्य है कि एक दो कौड़ी का राजनीतिज्ञ जो कुछ कहता है वह अखबार के सुर्खियों में आता है, जबकि यह बुजुर्ग मनीषा लगभग निर्वासित रही ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध हिन्दी कविता के इन्हीं अन्यतम कवियों को केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया गया है, जिनकी अद्‌भुत रचनाशीलता सिर्फ हमे विस्मित करती है। इन कवियो की रचनायें जीवन के प्राय हर आयाम को अपने मे समेटे है। इसके द्वारा वे एक सपूर्ण रचनात्मक संवाद की तैयारी करते है। अपने मूल मे ये जीवन समग्रता की कवितायें है। इन तीनो कवियों की एक साथ उपस्थिति एक नये रचनात्मक आवेग को जन्म देता है। सम्भवतः इसी लिए फणीश्वरनाथ रेणु ने कहा था–" त्रिलोचन (जी) को देखते ही मेरे मन के ब्लैक बोर्ड पर एक अ–गाणितिक,असाहित्यिक तथा अवैज्ञानिक प्रश्न अपने–आप लिख जाता है वह कौन सी चीज है, जिसे त्रिलोचनमे जोड देने पर वह शमशेर हो जाता है और घटा देने पर नागार्जुन ? (फणीश्वर नाथ रेणु–चुनी रेणु हुयी रचनायें–भाग–२) रेणु के द्वारा उठाया गया यह अ –गणितिक प्रश्न दिलचस्प है लेकिन इसके बहुत विश्लेषण में न भी जाया जाय तो भी इस बात को बखूबी रेखाकित किया जा सकता है। कि वे कवि अपनी रचनात्मक स्वायत्ता के बावजूद उस पारस्परिक लेन देन की नुमादगी करते है, जो महान समकालीनो के बीच घटित होती है। यदि देखा जाय तो तीनों ही कवि साम्यवाद में अपनी गहरी प्रतिश्रुति के बावजूद अपने स्रोतों की तलाश अलग–अलग रूपो में करते रहे। नागार्जुन ने मैथिली और संस्कृति की काव्य परम्पराओं से अपने काव्य सृजन को संयुक्त किया तो त्रिलोचन मे अवधी की धरती की अनगूंजे बजी। शमशेर में हिदुस्तानी, फारसी संस्कृति का दोआब सभव हुआ। ये तीनों कवि इस तरह अपनी मौलिकता के लिए प्रतिबद्ध थे। ये कवि अपनी ताकत के स्त्रोत, अपने जीवानुभवों से ग्रहण करते थे। जन के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओं को उन्होने अपने जीवन संघर्षों से कभी स्वायत्त नहीं नहीं होने दिया , इसीलिए साम्यवाद इन तीनों कवियों में एक बडा रचनाशील हस्तक्षेप है। वह किसी भी तरह से उन्हें सरलीकरण और सपाटता से बचाये रखता है। शमशेर की क्लासिकी रवायत, नागार्जुन की ललकार, त्रिलोचन की सहज जनपदीय प्रवहमानता में यदि रेणु को कोई एकान्विति दिखी है तो अनुचित नहीं । लेकिन इसके बावजूद उनके सघन मौलिकता और व्यक्तित्व की अद्वितीयता निरंतर अक्षत बनी रही।

यह अकारण नहीं है कि समकालीन कविता की सबसे प्रमुख धारा ने इस त्रयी को अपने सम्बोध्यके लिए सबसे अधिक प्राणवान और वैध और प्रासंगिक माना। समकालीन कविता का कोई भी समीक्षक इस बात को खारिज नहीं कर सकता कि समकालीन कविता में प्रतिश्रुति, जनोन्मुखता, जीवन–संपृप्ति, लोकराग, जीवनाख्यान, प्रतिष्ठान विरोध, प्रतिरोध के तत्व इन तीन कवियों से ही मूल और विस्तृत रूप से ग्रहण किये गये हैं। इस तरह से हिन्दी कविता की आदर्शवादी, भाववादी धारा अपने आप अप्रमाणिक और निरर्थक मान ली गयी। अज्ञेयवाद की लंतरानियां स्वयमेव वायवीय और जीवन–विरोधी और जनाकाक्षा विरोधी सिद्ध हो गयी। कहना चाहिये कि इस कविता में विरोध की बडी वृहत आधार भूमि का ही निर्माण नहीं था, बल्कि

उसके विस्तार के बडे वैचारिक और संवेदनात्मक प्रयत्न भी थे। यहां संवेदना संज्ञान से मिलती थी और भावभूमि परिवर्तन की उत्कट इच्छाओ से। यह विरोध की परपराओं की खोज और छानबीन और उसके संवेदनशील पुनर्वास के अपूर्व और अद्वितीय प्रयत्न थे। प्रतिरोध पक्ष का यदि एक जनोन्मुख आधार समकालीन कविता में तलाशा गया है तो उसके लिए इस त्रयी के प्रति कृतज्ञ होने के प्रभूत आधार है।

इन्हीं कवियों की कविताओं को सानने रखते हुये यह कोशिश की गयी है कि उनकी संवेदना के तारों को पकडा जाय । इस क्रम में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक है– संवेदनाः काव्य संवेदना, अर्थ और व्यापकत्व. जिसके अन्तर्गत चार खण्ड हैं प्रथम संवेदना आशय और स्वरूप,द्वितीय रचनाशीलता के सन्दर्भ में संवेदना के आयाम, तृतीय संवेदना स्थिति या प्रक्रिया, चतुर्थ–अनुभव विचार और अनुभूति ।

प्रथम उप शीर्षक सवेदना के आशय और स्वरूप से सम्बन्धित है जिसके अन्तर्गत संवेदना के अर्थ को स्पष्ट करते हुये इसकी व्यापकता को बताया गया है। सवेदना मूलतःआधुनिक जीवन बोध से विकसित हुआ शब्द है जिसकी व्यापकता की सामान्यतः परिधि मनोविज्ञान दर्शन शास्त्र और साहित्य शास्त्र के क्षेत्र में है। यद्यपि मनुष्य जन्म से इस प्रत्यय से आबद्ध हो जाता है तथापि अपने अनुप्रयोग में विशेषतः इन परिक्षेत्रो के लिये यह सार्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं। मनोविज्ञान में संवेदना का प्रयोग चेतना की वह अवस्था है जो किसी एक इन्द्रिय के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तार्किक विश्लेषण नहीं किया जा सकता। दर्शन शास्त्र में खासतौर पर पाश्चात्य दर्शन शास्त्र में मूलतः संवेदना को ही केन्द्र मे रखते हुये अनुभववादियों ने बुद्धिवादी सम्प्रदाय के विपरीत अपने सैद्धान्तिक आधारो का गढा । संवेदना साहित्य के मूलभूत आधारों मे है। असल में यह संवेदना ही है जो मनुष्य को रचनात्मक रूप से सम्पन्न बनाता है।

द्वितीय अध्याय रचनाशीलता के संदर्भ में संवेदना के आयाम शीर्षक से हैं। जिसे अनुभव और प्रेरणा, कविता के वैचारिक संघर्ष, वस्तु और रूप का द्वन्द,आत्म संघर्ष की प्रकिया, समकालीनता की चुनौतियों जैसे बिन्दुओं के आधार पर विश्लेषित किया गया है। रचनाशीलता का सम्बन्ध मनुष्य की कियात्मक से जुडा है जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक उन्नति से हैं। भले ही उसका साधना पक्ष वैयक्तिकता परक हो किन्तु साध्य पक्ष का सम्बन्ध तो उस सामूहिक अवचेतन से है जिसके बल पर कोई भी शब्द, सृजन का रूप, ग्रहण कर पाता है। स्पष्ट है कि रचनात्मकता का परिप्रेक्ष्य व्यापक हो और उसकी परिधि में समूह की चिन्तायें अनुस्युत हों ।

आधार पर संवेदना की मूल अवस्थिति और सृजन में उसकी सक्रिय साझेदरी को पहचानने की कोशिश की गयी ।

चतुर्थ खण्ड अनुभव विचार और अनुभूति में रवाना प्रक्रिया के अन्तर्गत इनकी मौलिक स्थिति के संदर्भ में विचार करते हुये इनकी पारस्परिकता का निर्दिष्ट किया है।

द्वितीय अध्याय का नाम **आधुनिकता बोध यथार्थ और संवेदना का गतिशील सम्बन्ध** है जिसके अन्तर्गत दो खण्ड है। प्रथम खण्ड का शीर्षक है– अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और आधुनिक संवेदना का रूपायन । इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम अनुभूति की विशष्टता और रचना के द्वन्द्व को समझने की कोशिश की गयी है। असल में अनुभूति का विषय हमारे यहां रचना प्रक्रिया के मूलभूत शर्तों के साथ जुड़कर रही है और नयी कविता आन्दोलन में तो इसकी ईमानदारी को लेकर तमाम बहसें भी हुयीं । द्वितीय अध्याय के दूसरे खण्ड का नाम यथार्थ की संवेदना और संवेदना का यथार्थ है । इस खण्ड में यथार्थ बोध और उसकी सवेदना के साथ संगति एंव यथार्थ के स्वरूप पर विवेचन करते हुये अभिव्यंजना और यथार्थ के अन्तःसम्बन्धो को बताया गया है। इसमें यथार्थवाद अतियथार्थवाद, यथार्थ और कल्पना, आत्माभिव्यंजना की शर्तें आदि बिन्दुओं के द्वारा सृजन की संवेदनात्मक स्थिति का समझने का प्रयास किया गया है। रचना का तात्पर्य है इस जीवन जगत के वास्तविकता से एक जागरूक रिश्ता कायम करना । इस रिश्ते की एक मानवीय वस्तुगत ऐतिहासिक संरचना होती है जा रचना प्रक्रिया का प्रेरित ही नहीं, संचालित भी करती है। यहीं पर कवि की अनुभूति की प्रामाणिकता भी सिद्ध होती है जो मूलतः जीवन यथार्थ के प्रति प्रतिश्रुत होता हैं। विज्ञान के आलोक में मनुष्य की बौद्धिकता अधिक विकसित हो गयी है। इसीलिये ग्रहण के स्तर पर वही रचना स्वीकार्य होगी जो रचना के स्तर पर विवेक सम्पन्न होगी। यही विवेक सम्पन्नता वस्तुतःअनुभूति की प्रामाणिकता है। जिंदगी की सच्चाइयों के प्रति लेखक की आस्था का प्रतिमान जितना ऊंचा होगा उसकी रचना के तत्वान्वेषण की दृष्टि से उतनी ही सार्थक होगी।

तृतीय अध्याय **'शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन की सामाजिक संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन** है। इसके अन्तर्गत इन कवियों के सामाजिक संवेदनाओं को विश्लेषित किया गया है। आस पास के फैले हुये अपने परिवेश और वातावरण से एक रचनाकार अपने संवेदनाओं को ग्रहीत करता है। स्पष्ट है कि वह जिस समाज मे रहता है, जिस बोली बानी और परिवेश के साथ उसका साक्षात्कार होता है उसका प्रभाव कवि की रचनात्मक भाव भूमि को निश्चिततः प्रभावित करता है। ऐसे में उसकी रचना संवेदनायें इनके द्वारा नियंत्रित होती है। शमशेर, नागार्जुन, और त्रिलोचन तीनों का रचना संसार यद्यपि स्वायत्त है तथापि समकालीन समय की चुनौतियाँ,और उनसे उपजे सामाजिक दबाव इनकी कविताओं को समवेत रूप में प्रभावित करते है।

त्रिलोचन और नागार्जुन के यहॉ, जहॉ यह सामाजिक संरचना बहुत ज्यादा यह खुले रूप मे आती हैं, वहीं शमशेर के यहॉ यह तमाम सामाजिक प्रतिबद्ध के बावजूद एक दूसरे स्पर पर जो ज्यादा सूक्ष्म रूप से प्रतिध्वनित होती है।

इन तीनों कवियों की सामाजिक संवेदनाओ को अलग–अलग प्रस्तुत करने से पहले सामाजिकता के अवधारणा को स्पष्ट किया गया हैं। सामाजिकता की यह अवधारण हमारे इतिहास को और हमारी परम्पराओं में जहॉ अनुस्युत रहती है। वहीं वर्तमान की ढेर सारी चुनौतियों, जो व्यक्ति और समूह दोनो स्तर पर होती है;भी विद्यमान रहती है।

इन दोनों उपशीर्षकों के पश्चात अध्याय तीन मे इन तीनों कवियो की सामाजिक संवेदनाओं की तुलना प्रस्तुत कर, यह बताने का प्रयास किया गया है कि इनकी अपनी विशिष्टताएं क्या है और किस स्तर तक वे एक दूसरे के पूरक हैं।

प्रबन्धक का चतुर्थ अध्याय **शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का लोक धर्मी परिप्रेक्ष्य** है। 'लोक' का तात्पर्य अग्रेजी शब्द फोक से है जो नागर मानसिकता के विपरीत ग्रामीण परिवेश और वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन लोक का तात्पर्य जन सामान्य भी इस तरह अपनी अर्थ निस्पत्तियों के चलते यह अपने आप में व्यापक अर्थस्च्छवियों वाला शब्द है। लोकात्मता मूलतः मनुष्य से सहज जीवन–चर्या, भावबोध और उनकी वास्तविक संस्कृति का वाहक है। स्वाभाविकता इसका सहज गुण है। चतुर्थ अध्याय के प्रथम खण्ड लोकात्मता में लोक शब्द की इसी व्याख्या और मनुष्य बोध से उसके गहरे सम्बन्धों को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है।

लोकात्मक की सार्वाधिक महत्वपूर्ण विशिष्टता व्यक्तित्व की सहजता से जुडा हुआ है। यह सहजता एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ, इस पृथ्वी के साथ, उसके वातावरण व पर्यावरण के साथ, उसके सहज और आत्मीय सम्बन्ध को बतलाया है । इसी परिप्रेक्ष्य में शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओ का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है जो अपने मूल में बेहद प्रीतिपरक कवितायें हैं और जिनका इस देश दुनिया और समाज के साथ सीधा तादात्म्य है। इनमें लोकात्मकता को लेकर सर्वाधिक विशिष्ट पहचान त्रिलोचन की रही है नागार्जुन की कविताएं भी इस संदर्भ में हमें बहुत विभोर करती है। सूक्ष्मता के साथ जीवनगत संदर्भों से स्वयं को जोड़ने की बलवती इच्छाओं के अधीन रहते हुये शमशेर मे लोक का एकदम अजब चेहरा दिखलाई पडता है। पत्तियों में घिरे फूलों की सुगन्ध जैसा–सूक्ष्म, महीन और बेहद तरल। इन तीनों कवियों के लोकात्मक रचाव को समझने का प्रयास प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध का पाचवा अध्याय **शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैचारिक परिप्रेक्ष्य** है। विचार का सम्बन्ध दर्शन ओर जीवन दर्शन दोनो से होता है । दर्शन मे आकर जहाॅ यह जागतिक प्रत्ययो के विश्लेषण को प्रस्तुत करता है वहीं दर्शन के स्तर पर यह स्वयं व्यक्ति की अपनी निजी प्रतिबद्धताओ, आकाक्षाओ, इच्छाओं और इन सबसे आगे बढकर एक वैचारिक प्रणाली मे विश्वास का सबब बनता है। विचारधारा व्यक्ति के अपने सोच को दिखलाता है। विचारधारा के इसी स्वरूप पर इस अध्याय के प्रथम खण्ड मे विचार करते हुये इस अध्याय के द्वितीय खण्ड मे शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन के विचार धाराओ का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इन तीनो कवियो की वैचारिक प्रतिबद्धता मार्क्सवाद के प्रति रही। इस रूप में नागार्जुन के यहाॅ जहाॅ इस विचारधारा और इसके जनवादी स्वरूप के प्रति अगाध समर्थन है और यहाॅ तक कि अक्खडपन तक जाकर इस बारे मे अपनी बात को कहते हैं , वहीं त्रिलोचन प्रतिरोध की संयत प्रणाली के अन्तर्गत मार्क्सवादी दर्शन में अपनी आस्था को व्यक्त करते हैं। शमशेर के यहा सारा झगडा इसी को लेकर है क्योंकि शमशेर ने अदभुत वैयक्तिक किस्म की रचराए जहाॅ एक ओर प्रस्तुत की वही दूसरी ओर स्वय के ठोस मार्क्सवादी होने की बार बार वह घोषणा करते हैं। शमशेर की कवितायें इसका साक्ष्य भी प्रस्तुत करती है कि उनकी प्रतिबद्धताये इस विचारधारा को लेकर बहुत स्पष्ट है । इस पूरी प्रक्रिया में लेकिन यह सिद्ध हो जाता है कि यह तीनों अपने वामपथी रूझानो मार्क्सवादी दर्शन में विश्वास जन के प्रति अपनी प्रतिबद्धताओ के द्वारा प्रतिरोध की अदम्य लालसा इन्हे प्रतिपक्ष के कवि के रूप में निर्मित करती है।

छठवा अध्याय **शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य** के अन्तर्गत इन तीनो कवियों के वैयक्तिकता, उनके अन्तर्गत उनके राग–बोध जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण, समकालीनता की चुनौतियो से टकराती उनकी दृष्टि आदि पर विचार किया गया है। प्रत्येक रचनाकार एक अपना निजित्व होता है। अपने सी दृष्टि के तहत वह जीवन और जगत के साथ अपने रिश्ते जोडता है। उसमें स्वय की पसदगी न पसदगी, रूचिया, इच्छाएं, अनिच्छाए, अवधारणा इत्यादि एक साथ संयुक्त रहते है। इन सभी के सम्मिलित प्रयासों से एक व्यक्तित्व का निर्माण होता है कविता के विश्लेषण में वैयक्तिकता का अध्ययन यहाॅ इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है कि जिससे इन तीनों कवियों के कविताओ व इनकी रचनाशीलता से परिचित हुआ जाय। वैयक्तिक स्तर पर शमशेर अत्यन्त सूक्ष्म भाव रखते है। शमशेर के यहाॅ कविताओं की अत्यन्त सुन्दर अर्थ छवियाॅ वस्तुतः उनकी इसी वैयक्तिक मनोदशा के कारण उभरी है और कवियों का कवि शमशेर यदि उन्हें कहा गया तो वास्तव में यह उनके सूक्ष्म मनोभावों और मनोदशाओं के कारण ही संभव हुआ। त्रिलोचन में वैयक्तिकता का यह भाव आत्मबोध के स्तर पर व्यक्त हुआ है लेकिन यह आत्मबोध आत्मप्रग्लभता से नहीं उपजा बल्कि अपने इस दुनिया में अपने होने की करूणा

से उपजा है जो दृष्टि की निर्मलता और समाज के लिये उनके कर्तव्यों को याद दिलाने वाला है। बहुत अक्खड शैली मे अपनी बात कहने वाले बाबा का रागात्मक बोध,जो उनकी वैयक्तिकता से ही निःसृत हुआ है, जो अद्भुत हैं। असल में जन के प्रति रागात्मक बोध ने ही उनकी वैयक्तिकता को निर्मित किया है।

सातवा अध्याय **"सौन्दर्यात्मक संवेदना के परिप्रेक्ष्य में शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की काव्य संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन"** शीर्षक से प्रस्तुत किया गया हैं । जिसमें इन तीनों कवियों की सौन्दर्य परक अवधारणाओ को स्पष्ट करते हुये जीवन और जगत के इनके दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। अपने सौन्दर्यात्मक चित्रण के द्वारा शमशेर जहॉ कविता में एक दृश्य की उपास्थना करते हैं वहीं नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना जीवन से लेकर प्रकृति तक फैली दिखाई पडती हैं। त्रिलोचन के यहॉ सौन्दर्य के बडे ही छोटे–छोटे दृश्य आते हैं जो जीवन से लेकर प्रकृति तक फैली दिखाई पडती है। त्रिलोचन के यहॉ सौन्दर्य के बडे ही छोटे–छोटे दृश्य आते है जो जीवन के प्रति उनके रागबोध और स्वयं उनकी सौन्दर्यात्मक अवधारणा के भी प्रतीक है। शमशेर ने कविता में सौन्दर्य की अवधारणा को ही बदल दिया। उनकी कविता दृष्यों का वर्णन नही स्वयं चित्रात्मक अनुभूतियों में वर्णित हो जाने वाले प्रत्यय है। उनके यहॉ शब्दों के ढेर सारे अनुगूंजें है, जिसमे जीवन के राग, समुद्र की लहरें, पहाड के चित्र और कोमल अखुओं तक की उपस्थिति है। उन्होने प्रकृति दृश्यों को जितनी सघनता से चित्रित किया उतनी ही तन्मयता से उन्होंने मानवीय सौन्दर्य को भी रचा । रचाव की कलात्मकता उनके व्यक्ति चित्रों में, खासकर स्त्री के सौन्दर्य में बहुत खुलकर लेकिन बहुत संश्लिष्ट तरीके से प्रस्तुत किया हैं। त्रिलोचन के यहॉ भी सौन्दर्य के बडे–बडे नये चित्र मिलते हैं लेकिन नागार्जुन के प्रकृति चित्रों की तरह धारासार नहीं है। त्रिलोचन के चित्र पर जीवन की गतिविधियों से जुडे हुये चित्र है। ऐसे नें मनुष्य छोटे–छोटे सुख उनके सौन्दर्याकन का कारण बनते है। नागार्जुन सौन्दर्य को भर–भर कर आंख पीने वाले हैं। सच तो यह है कि कालिदास से प्रभावित नागार्जुन ने बादलों के जितने चित्र प्रस्तुत किये है उतने शायद ही हिन्दी के किसी कवि ने प्रस्तुत किया हो। नागार्जुन के यहॉ प्रेयेसी के नहीं , पत्नी की यादें बार–बार बहुत सघनता से जीवन के हर मोड पर, सौन्दर्य के हर अंकन के साथ याद करते हैं। त्रिलोचन की कवितायें नागार्जुन के सौन्दयात्मक विधान का एक प्रकार के प्रतिपूरक हैं। जहां प्रकृति से लेकर किसान मजदूर तक उनके भाव बोध की परिधि में उपस्थित हैं।

प्रबन्धक का आठवॉ अध्याय **काव्य भाषा** से जुडा हुआ है। भाषा, असल में रचनाशीलता का वह पहला सोपान है जो अनुभूति को, भाव को मूर्तरूप प्रदान करता है। भाषा की उपस्थिति मनुष्य की उपस्थिति हैं। मनुष्य इसीलिये है क्योंकि भाषा है। वह भाषा जिसके द्वारा हम दूसरे से जुड़ते हैं, दूसरों की संवेदनाओं और अनुभूतियों में सरीख होते है और अन्ततः मनुष्य बनते है। भाषा में जब अर्थ के अद्वैतिकी स्थिति उत्पन्न

होती है तब अपने रचनाशील अवस्थिति में यह काव्य भाषा का रूप धारण करती है। स्पष्ट है वहाँ भाषा का बोध, रचनाशील, संभावनापरक और सश्लिष्ट होती है। काव्य भाषा जन भाषा नहीं हो सकती लेकिन वह जन की भाषाओ को मुखरित करने वाली भाषा जरूर होती हैं। काव्य भाषा के सदर्भो को खास तौर पर शमशेर और नागार्जुन और त्रिलोचन की भाषा के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ मे जहां शमशेर की काव्य भाषा अर्थ के अद्वैत स्थिति का परिचायक हैं, वहीं नागार्जुन की पक्षधरता, उन्हे अपनी भंगिमा के अनुरूप भाषा और शब्द तलाशने की अद्भुत ऊर्जा प्रदान करता हैं। त्रिलोचन के यहाँ तथ्य की शात चित्तता है उसी प्रकार उनकी भाषा में भी। अनायास नहीं कि वे सॉनेटो का इस्तेमाल करते हैं जिसकी मूल प्रकृति ही परिधिपरकता है। लेकिन यह शांत चित्तता कविता की ऊर्जा का स्खलन न होकर, काव्य ऊर्जा का दोहन है।

शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन समकालीन कविता के सर्वाधिक विशिष्ट कवि हैं। यह कविताएं जीवन में आस्था की कविताएं हैं। इनसे गुजरना जीवन से गुजरना है। इनके साथ रहना अपने बचपन के साथी के साथ रहना है। यद्यपि इन कवियों की कविताओ को समझने का दावा मुझ जैसा अल्पज्ञ नहीं कर सकता तथापि मैने इस विषय पर कार्य करने का दुस्साहस किया। इस कार्य मे मै अपने तमाम शुभ चिन्तकों, सुहृदो का आभारी हूँ जिनकी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष की गयी सहायता के द्वारा मै यह कार्य पूर्ण कर सका । मै अपनी शोध निर्देशक प्रो० राजेन्द्र कुमार का आभारी हूँ , जिन्होंने समय–समय पर मुझे निर्देशित किया । श्रद्धेय गुरूवर्य की अनुकम्पा मेरे ऊपर सदा बनी रही। विषय चयन से लेकर प्रस्तुतीकरण तक वे मुझे शिष्यवत् स्नेह देते रहे । मै हिन्दी–विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के गुरूजनों का भी आभारी हूँ जिनमें मैंने हिन्दी सीखी। इस दृष्टि से मै प्रो०सत्य प्रकाश मिश्र (हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रो० मालती तिवारी (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग ,इलाहाबाद विश्वविद्यालय),का विशेष आभारी हूँ। मैं अपने मित्र डा० शैलेन्द्र त्रिपाठी (प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,विश्व भारती) एवं श्री दिनेश कुमार राय (शोध छात्र, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) का भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे लगातार प्रोत्साहित कर मित्र धर्म का निर्वाह किया। डा० शुचिता त्रिपाठी (प्राध्यापक,राजनीति विभाग,साकेत महाविद्यालय,फैजाबाद) का भी आभारी हूँ जिनकी प्रेरणा से शोध–सम्बन्धी विषयेतर कठिनाईयों को दूर कर सका।

अपने पिता के स्नेहिल आशीर्वाद को लिपिबद्ध करने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ। वे मेरे जीवन के केन्द्र में है, और मै वह परिधि हूँ जिसकी दृष्टि केन्द्र पर रहती है। उनके आत्मबल ने मुझे सदा प्रेरित किया । मै अपनी माँ के प्रति श्रद्धावनत हूँ। मेरी माँ मेरी अक्षर गुरू भी रही है और उनके आँचल की छाँव तले मैने सर्वदा अपने को अजेय महसूस किया। मैं अपना शोध–प्रबन्ध अपने पिता और माँ को समर्पित कर

रहा हूँ। अपने अग्रज श्री राधाकृष्ण मिश्र एव श्री देवी प्रसाद मिश्र का प्रोत्साहन मुझे सदा मिलता रहा। इस कार्य के प्रति उनकी उत्सुकता मेरे लिये प्रेरक सिद्ध हुई। समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर देवी प्रसाद मिश्र की सर्जनात्मकता का मै कायल रहा हूँ। साहित्य और कविता का थोडा सा जो बोध मुझमे जागा, निसदेह वह उन्ही की वजह से । मेरी जीवनी–सगिनी स्मिता ने अपनी तमाम व्यस्तताओ के बावजूद भी मुझे गृहकार्य से मुक्त रखा। उनके इस सहयोग से मै अपने लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित कर सका। अपनी पुत्री अनुष्ठा एव पुत्र पुलक की बालसुलभ चंचलताओं ने मुझे सर्वदा प्रफुल्लित किया। मै अपने परिवार के अन्य सदस्यो का भी विविध कारणों से ऋणी हूँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पुस्तकालय , इ० वि० वि० साहित्य अकादमी ,दिल्ली और पुस्तकालय फिरोज गॉधी कालेज, रायबरेली के अधिकारियों और कर्मचारियों को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, जिनकी उत्तम व्यवस्था के चलते मुझे शोध सामग्री का अकाल नही झेलना पडा। इन सबके बावजूद शक्तिधर बाजपेयी , जितेन्द्र सिह तथा केदार यदि सहयोग न करते ता यह शोध ग्रन्थ इस रूप मे सामने न आ पाता। खासतौर पर शक्ति की तकनीकी कार्य कुशलता की वजह से ही यह शोध प्रबन्ध पूर्ण हो सका इसके लिये मै उनका हृदय से आभारी हूँ।

इलाहाबाद में विद्या सडकों पर भी मिलती है और मै उस समय और परिवेश का भी आभारी हूँ जिस क्षण यह विद्या मुझमे समाहित होती रही।

३० जून ,२००१

बद्री दत्त मिश्र
प्रवक्ता हिन्दी विभाग
फीरोज गाँधी कालेज,रायबरेली (उ०प्र०)

****

अध्याय १

संवेदना : काव्य-संवेदना , अर्थ एवं व्यापकत्व

क : संवेदना : आशय एव स्वरूप

संवेदना का अर्थ एवं व्यापकत्व

संवेदना का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य

इंद्रिय अनुभूति और संवेदना

संवेदना और विचार

साहित्य और संवेदना

ख : रचनाशीलता के संदर्भ में संवेदना के आयाम

अनुभव और प्रेरणा

कविता का वैचारिक संघर्ष

वस्तु और रूप का द्वन्द्व

आत्मसंघर्ष की प्रक्रिया

समकालीनता की चुनौतियाँ

प्रतिरोध और प्रतिपक्ष

ग : संवेदना : स्थिति या प्रक्रिया

सृजन प्रक्रिया

काव्यानुभूति और रचना प्रक्रिया

रचना प्रक्रिया सम्बन्धी पाश्चात्य एवं भारतीय मत

समकालीन रचनाकारों के सृजन सम्बन्धी मत

घ : अनुभव , विचार और अनुभूति

⋮

अध्याय १–खण्ड क
संवेदना : आशय और स्वरूप

'संवेदना' शब्द की व्युत्पत्ति 'विद' धातु में 'यु' प्रत्यय जोडने से 'यु' के स्थान पर 'अनु' आदेश के होने व 'इ' को गुण करने से 'वेदन' शब्द के कारण तत्पश्चात स्त्रीलिगमें 'टाप्' प्रत्यय जुडने पर वेदना शब्द बना। 'वेदना' शब्द के पूर्व सम् उपसर्ग जोड़ने से सम्वेदना शब्द बना है। 'वेदना' का सामान्य अर्थ है– कष्ट, दुख या पीडा। 'सम' उपसर्ग के प्रयोग से वेदना शब्द मे अर्थ वैशिष्ट्य उत्पन्न होकर संवेदना का अर्थ सहानुभूति हो जाता है।– १

'संवेदना' शब्द, प्रयोग और संदर्भ के अनुरूप विभिन्न अर्थों का वाचक हैं। अंग्रेजी में संवेदनाके लिए संसेंशन, सैम्पथी, सेन्सिटीविटी , इमोशन, संसेशनलिज्म, इमोटिव मीनिंग, एम्पेथी इत्यादि शब्द प्रयुक्त होते है जो प्रसंगानुसार साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक तथ्यों को प्रकट करने के लिए होते हैं। अग्रेजी के बरक्स हिन्दी में सवेदना शब्द ही है जो अपने आप में बेहद व्यापक व तमाम अर्थ व्याप्तियों के लिए प्रयुक्त होता है। वस्तुत. सवेदना शब्द का यह अर्थ व्याकत्व हीउसे बेहद महत्वपूर्ण और इसी क्रम मे बेहद सूक्ष्म भी बना देता है जहां अनेक अर्थ सम्भावनायें संशिलष्ट स्तर पर प्रयुक्त होती है।

मानव जीवन का विकास विकसित होते संवेदना का ही बढ़ाव होता है। किसी चीज को देखना, वास्तव में देख कर तुरतभूल जाना नहीं है अपितु यह मस्तिष्क को सक्रिय बनाना होता हैं ।करण यह है कि हर चीज वह चाहे भाव जगत् से सम्बद्ध हो या कि भौतिक चीजों से मनुष्य को संवेदित अवश्य करती है। संवेदना का यह ग्रहण मनुष्य को इसी लिए पग पत्र पर करना पडता है।

संवेदना शब्द आधुनिक जीवन बोध से विकसित हुआ शब्द है। ऐसा नहीं है कि मध्यकालीन या प्राचीन साहित्य में संवदेना का विकास नहीं मिलता है। परन्तु आधुनिक काल में पहली बार संवेदना को एक विशिष्ट अर्थ प्रदान करके इसको भी एक मूल्य के रूप मेंजाना गया। यह जीवन का बोध कराने वाला ऐसा शब्द है जहां तमाम अनुभव, विचार, अनुभूति, दर्शन् तर्क व जीवन को समझने की समझ हमें एक साथ देखने के मिलती है।

सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग मनोविज्ञान, दर्शन शास्त्र व साहित्य शास्त्र के अंतर्गत हुआ है। इसीलिए इस शब्द की मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक व साहित्य शास्त्र के सन्दर्भों में विभिन्न व्याख्यायें भी उपलब्ध होती हैं। मनोविज्ञान कोश के अनुसार 'संवेदना चेतना की वह अवस्था है जो किसी एक इन्द्रिय के उत्तेजित होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तात्विक विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। एक अन्य मनोविज्ञान शब्द

---

१. मंजुला पुरोहित – नयी कविता संवेदना और शिल्प– अध्याय २ पृ० १८।

होने पर उत्पन्न होती है और जिसका तात्विक विश्लेषण नही किया जा सकता है। एक अन्य मनोविज्ञान शब्द कोश के अनुसार–[1] "यह इन्द्रिय ज्ञान का वह अन्तिम तथा अपरिवर्तनीय अंश जो उत्तेजना पर आश्रित होते हुए भी इन्द्रिय सग्राहको को प्रभावित करता है, जो वास्तव में अमूर्तिकरण है। सामान्यतः शरीर ,विज्ञान व मनोभौतिकी की प्रक्रिया प्रारंभिक अनुभव के रूप में वर्णित होती है।"–[2]

इस प्रकार मनोविज्ञान शास्त्र में सवेदना का अर्थ ज्ञानेद्रिय से प्राप्य प्रभावों के रूप में जाना जा सकता है। साहित्य में संवेदना शब्द का प्रयोग सामान्यत सवेगात्मक मनः स्थितियें के लिए प्रयुक्त होता है जबकि मनोविज्ञान मे इसका अर्थ बाह्य पर्यावरण से प्राप्त होने वाली उस उत्तेजना के रूप में लिया जाता है जिसे हमारी इन्द्रियां ग्रहण करती है। इन्द्रियो द्वारा ग्रहीत उत्तेजना की वृहद मस्तिष्क व्याख्या करता है जिसके कारण उत्तेजना, प्रत्यक्षीकरण अथवा ज्ञान में बदल जाती है। मनोविज्ञान शास्त्र में, साहित्य मे व्यवहृत संवेदना के समानार्थक संवेग (इमोशन) और भावना (फीलिंग) शब्द है। मनोविज्ञान में इन शब्दों की भी व्याख्या मिलती हैं।

संवेग की परिभाषायें विभिन्न मनौवैज्ञानिको द्वारा विभिन्न प्रकार से दी जाती है। वे सब परिभाषायें इस ओर संकेत करती है कि 'सवेग' एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। जिस समय भाव की अभिव्यक्ति बाध्य एवं आतरिक शारीरिक परिवर्तनों में हो जाती है। तो उसे हम 'संवेग' कहने लगते है। संवेग की जो परिभाषा पी.टी.यंग ने दी है, वह उपयुक्त प्रतीत होती है। इनके अनुसार संवेग सम्पूर्ण व्यक्ति में तीब्र उपद्रव करने वाला हैं जिसका उद्गार मनोवैज्ञानिक होता है तथा जिसके फलस्वरूप व्यवहार चेतना अनुभूति अंतरावयव संबधी क्रियाये होती है।–[3]

जबकि भाव, भावना या फीलिंग एक प्रारम्भिक सरल मानसिक प्रक्रिया है जो प्राणी को सुख की अनुभूति कराती है। एक प्रारम्भिक सरल मानसिक प्रक्रिया होने के कारण इसका विश्लेषण सम्भव नहीं है फिर भी मोटे तौर पर हम इसे निम्नांकित आधारों पर जान सकते है–

१– 'भाव' चंचल एवं क्षणिक होते हैं। एक भाव बहुत शीघ्र समाप्त हो जाता है फिर दूसरे भाव का मुख्य अनुभव होने लगता है । सुख के बाद दुख व दुख के बाद सुख का अनुभव होने लगता हैं।

२– भाव का संबंध जीव के किसी अंग विशेष से नहीं होता है।

३– एक साथ एक से अधिक भाव अनुभव नहीं किये जा सकते है। अर्थात एक ही समय में हम सुख और दुख दोनों का अनुभव नहीं कर सकते है बल्कि यह अनुभव हमें अलग–अलग होता है।

---

१ – फिलिप्स लारेन्स हरिमन – द न्यू डिक्शनरी ऑफ साइकोलाजी–पृ० ३०३

२ – जेम्स ड्रान– डिक्शनरी ऑफ साइकोलाजी–पृ० २६४

३ – पी०टी० यंग –जनरल साइकोलाजी।

४– प्रत्येक भाव की मात्रा एक सी नहीं होती। कोई भाव बहुत प्रबल हो सकता है। कोई कम प्रबल और कोई पूर्णतः निर्बल।

५– मनुष्य भाव को सदैव अपने अंदर महसूस करता हैं। इस कारण हम इसको आत्मगत कहते है। परन्तु यह इसकी मुख्य विशेषता हो ऐसा नहीं है। भावों का अध्ययन केवल आंतरिक निरीक्षण विधि के द्वारा हो सकता है।

संवेग तथा भाव मे अंतर

कुछ मनावैज्ञानिनक भाव तथा संवेगमें अंतर नहीं करते वे दोनों को एक समान ही समझते है। परन्तु दृष्टिकोण गलत है। इन दोनों में अंतर है यद्यपि दोनों का संबंध मन के भावात्मक पक्ष से है। संवेग तथा भाव दो भिन्न मानसिक प्रक्रियायें है।

१– भाव सरल एवं प्राथमिक मानसिक प्रक्रिया है, परन्तु संवेग एक जटिल भावात्मक मानसिक प्रक्रिया है। भाव का विश्लेषण सम्भव नहीं जबकि संवेग का विश्लेषण इसमें सन्निहित विभिन्न उपक्रियाओं मे किया जा सकता है।

२– भाव में संवेग सम्मिलित नहीं होता जबकि संवेग भावयुक्त होता है।

३– भाव केवल दो प्रकार का मान्य है सुख का भाव तथा दुख भाव। परन्तु संवेग कई प्रकार का होता हैं। इसके अंतर्गत हम भय, क्रोध, प्रेम, घृणा,शोक, आश्चर्य इत्यादि को रख सकते है।

४– भाव आत्मगत (subjective) होता हैं। संवेग आत्मगत तथा वस्तुगत (subjective &objective) दोनों प्रकार का होता है। भाव का आत्मगत होने से हमारा तात्पर्य यह है कि भाव की अनुभूति हमें स्वयं अपने अंदर होती है। हम किसी दूसरे भाव का अनुभव या उसको प्रत्यक्ष रूप से देख सकने में असमर्थ रहते है। संवेग को आत्मगत तथा वस्तुगत दोनों कहा जाता है क्यों कि संवेग, जैसे क्रोध व्यक्ति अपने आप में अनुभव करता है और इसके साथ ही आंतरिक एवं बाह्य व्यवहारों में इसकी अभिव्यक्ति भी होती।

५– जब संवेग होता है तब व्यक्ति में अनेक प्रकार के आंतरिक तथा बाह्य शारीरिक परिवर्तन होते हैं परन्तु जब भाव होता है तब व्यक्ति किसी भी प्रकार के शारीरिक परिवर्तन को व्यक्त नहीं करतां और इसी लिए भाव के समय व्यक्ति साधारण अवस्था ही रहती है जबकि संवेग के समय वह अधिकतर असामान्य अवस्था धारण कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव और संवेग में अनेक अंतर है। शारीरिक परिवर्तन बाह्य एवं आंतरिक संवेग की विशेषतायें हैं जबकि भाव में ये परिवर्तन नहीं होते हैं। संवेदना का भावना और अनुभूति से अंतर स्पष्ट करते हुए गैरेट ने लिखा है कि "संवेदना में भावनाओं और अनुभूतियें के इस रूप में भिन्न है कि

ये परस्पर अधिक तीव्रता से कम तीव्रता में बदलती रहती है, जबकि भावना सुखप्रद से उदासीन होती हुयी दुखप्रद में बदलती है। सम्वेदनाओं के विपरीत अधिकांश भावनायें सम्पूर्ण शरीर तंत्र को प्रभावित करती है और केवल अपवाद रूप में ही एक इन्द्रिय तक सीमित रहती है।''– [1] सम्वेदना और ऐंद्रिय अनुभूति के अन्तर को स्पष्ट करते हुये सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स ने लिखा है कि .''सम्वेदना विश्लेष्णात्मक दृष्टिकोण से, प्रत्यक्षीकरण से, अपने विषय की आत्यतिक सरलता के कारण मिली होती है। इसका कार्य केवल तथ्य से प्रारम्भिक परिचय मात्र है।''[2]

इस प्रकार संवेदना के सम्बन्ध मे मनोविज्ञान शास्त्रवेत्ताओं के विभिन्न मतों का अनुशीलन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सम्वेदना वाह्य पर्यावरण से प्राप्त होने वाली मात्र उत्तेजना है, जिसे हमारी इन्द्रियां ग्रहण करती हैं। यह ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रया है, जो उत्तेजित होने पर मष्तिष्क और नाडीमण्डल के केन्द्र में स्नायुक धारायें भेंजती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क का प्रथम प्रत्युत्तर ही सवेदना है।

हमारी संवेदनायें शनैः विकसित होती है। यह ज्ञान के आधार पर आगे बढ़ती है। ज्ञान का आधार हमारी इन्द्रियां हैं जिसके द्वारा हम देख, समझ बूझकर, महसूस कर चीजों को अपने ज्ञान का विषय बनाते हैं। यही ज्ञान जो इन्द्रियों के माध्यम से हमें प्रत्यक्ष बोध के आधार पर होता है, संवेदना का विषय बनता है। इस सम्पूर्ण संसार की तमाम भौतिक की वस्तुएं और मनः जगत के तमाम मानसिक अनुभव हमारी संवेदनाओंके आधार भूत कारण हैं। यानी संवेदना देखे हुए और भोगे हुए वस्तु सत्य था संचित ज्ञान होता है। जो प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पूंजी होती है। जागतिक पदार्थों से मनुष्य का जुडाव लगातार रहता है, इसके उसे भिन्न अनुभव भी प्राप्त होते हैं। उसका ऐसी चीजों से सम्पर्क प्रत्यक्ष भी होता है और अप्रत्यक्ष भी। ऐसे तमाम जुड़ाव व्यक्ति को खड़बडाते भी हैं, उत्तेजित, उद्वेलित भी करते हैं। अब यह उद्वेलन कितना हैं, यह व्यक्ति विशेष के मानस पर आधृत होता है। कुछ व्यक्ति बेहद संवेदनशील होते हैं तो कुछ में संवेदन शीलता का भाव कम होता है परन्तु कोई भी व्यक्ति एकदम से निरपेक्ष नहीं रह सकता। संवेदनशीलता का अंश व्यक्ति में कयोबेनरा होता जरूर है। मात्रा का फर्क वहां हो सकता है, पुरन्तु उसकी उपस्थिति पर कोई प्रश्न नहीं खड़ा किया जा सकता।

इस प्रकार वे सारे मनोविकार जो देश और काल की सापेक्ष में उत्पन्न होता हैं और जिनमे भौतिक

---

१ – हैरी ई गैरेट – जनरल साइकोलॉजी – पृ० १७३

२ – विलियम जेम्स – द प्रिंसिपल ऑफ साइकोलॉजी – पृ० २

जगत का प्रत्यक्ष बोध अनिवार्यतः समाया रहता है संवेदना पर आधृत होते हैं। वस्तुतः यथार्थ परिवेश के सम्यक ज्ञान का सूक्ष्म मानसिक अनुभूतियों में पर्यवसान ही संवेदना है। संवेदना हमारे ज्ञान तत्व का परमाणु है।

ज्ञानतत्व के इस परमाणु का विवेचन दर्शन शास्त्र में भी मिलताा है। क्यों कि देखे हुए का विश्लेषण दर्शन की जिम्मेदारी है अतः विवेचन का आधार वह संवेदना में भी तर्काश्रित तरीके से ढूंढ़ता है। वैचारिक स्थितियां ही संघन होकर दर्शन का आधार प्राप्त करती हैं। मानवीय जीवन को प्रभावित करने वाली सभी वस्तुओं का एक मान होता है। संवेदना, जो कि हमारे जीवन के साथ बहुत गहरे स्तर पर जुड़ी है, का भी एक दार्शनिक आधार है। जो पाश्चात्य दर्शन में यह अनुभववाद के रूप में सामने आया। यह बुद्धिवादियों के तर्कों को सिद्ध करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण बिन्दु यह था कि व्यक्ति के ज्ञान का स्त्रोत बुद्धि नहीं हो सकती अपितु यह आधार सिर्फ हमारी इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव ही हो सकता है। स्पष्ट है कि हमारे अनुभव संवेदनाओं से सघनता से जुडे होते हैं और इस कारण अनुभव को आधार मानकर चलने वाला दार्शनिक मतवाद संवेदनवाद को बहुत महत्व देता ही था।

अनुभववाद मानता है कि मनुष्य के ज्ञानकोष में जो कुछ है वह सब अनुभवजन्य है। जन्म के समय मनुष्य के मस्तिष्टमें किसी प्रकार का ज्ञान विद्यमान नहीं रहता। जन्म के बाद वह अनुभव द्वारा प्राप्त और विकसित होता है। इसलिए अनुभववाद हमारे मस्तिष्क की तुलना साफ कागज या कोरी पट्टी की तरह करता है जिस पर अनुभव के पूर्व कुछ भी अंकित नहीं रहता।

पाश्चात्य दर्शन में वैसे तो अनुभववाद का विशुद्ध रूप में सर्वप्रथम विवेचन लॉक ने किया है तथापि उनसे पूर्व के कुछ प्राचीन विचारकों से हम अनुभववाद का प्रारम्भिक रूप पाते हैं । प्राचीन अनुभववादियों में प्रोटागोरस और उनके द्वारा स्थापित सोफिस्ट सम्प्रदाय था। इसके अलावा जेनों तथा उनके स्टोइक सम्प्रदाय की भी गणना मानते हैं तथा उसके अलावा अन्य किसी साधन को उसके लिए समर्थ नहीं समझते। संवेदन जन्य ज्ञान को आधारभूत मानने के कारण सोफिस्ट सम्प्रदाय को संवेदनवाद भी कहा जाता है। आधुनिक युग में बेकन तथा हॉब्स की रचनाओं में इन्द्रियानुभाव की ओर झुकाव मिलता है, किन्तु ये विचारक पूर्णरूप से अनुभववादी नहीं कहे जा सकते। खासकर बेकन ने तो कुछ ऐसे विचारों का प्रतिपादन किया है जो अनुभववाद के विरुद्ध पड़ते है, तथापति आगमन प्रणाली पर विशेष बल देने व संवेदन को ज्ञान प्रक्रिया का आधार मानने के कारण उन्हें अनुभववादी समझा जाता हैं। लेकिन अनुभववाद का पूर्ण विकसित रूप लॉक, बर्कले और ह्यूम इन तीनों अंग्रेज दार्शनिकों के विचारों में देखने को मिलता है। मिल का दर्शन भी अनुभववाद का समर्थन करता हैं।

भारतीय दर्शन में चार्वाकों ने अनुभववादी विचारधारा का समर्थन किया है। वे इन्द्रियानुभव या

प्रत्यक्षमात्र को प्रमाण मानते है। चार्वाको के अनुसार इन्द्रियों द्वारा ही विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त हो सकता हैं। अनुभववाद के विकास का वह प्रथम दौर था जब उसमे और बुद्धिवाद मे तीव्र विरोध दिखाई पडता है। आगे चलकर यह स्पष्ट हो गया कि अनुभववादी व बुद्धिवादी एक दूसरे की पूरक हैं, विरोधी नही। कांट के दर्शन मे इन दोनो प्रवृत्तियो में समझौता कराने का प्रयास किया गया है। उन्नीसवी और बीसवी शताब्दियो में भौतिकी के विकास से अनुभववाद ने बल प्राप्त किया। अर्थ क्रियावाद, यथार्थवाद, भाववाद आदि अंततः अनुभववाद पर ही निर्भर है।

लॉक ने सर्वप्रथम सहज प्रत्ययो का खण्डन किया। उनका कहना है कि मानव मन में किसी भी प्रकार का प्रत्यय अथवा ज्ञान सहज नहीं है। हमारे ज्ञान का प्रारम्भ और अंत इन्द्रियानुभव है। मानव–मस्तिष्क मे इन्द्रियजन्य संवेदनों द्वारा क्रमशः उसमें प्रत्यय या विचार आते है। इसी क्रम में वह संवेदना को परिभाषित करते हुए कहते है– संवेदना शरीर के किसी भाग मे उत्पन्न हुयी गति या संस्कार हैं जो बुद्धि मे कुछ प्रत्यक्ष उत्पन्न करता हैं संवेदना की उत्पत्ति की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है बाह्य वस्तुओं का इन्द्रियो पर आघात होता है। इन्द्रियां इस आघात की सूचना मस्तिष्क को देती है। मस्तिष्क इस सूचना से मन को प्रभावित करता है, फलस्वरूप मन में एक विज्ञान की उत्पत्ति होती है। मन में इस प्रकार विज्ञान उत्पन्न होने की प्रक्रिया को ही संवेदना कहते है।[1]

बर्कले, लाक के अनुभववाद को लेकर चलते हैं। लांक ने सहज प्रत्ययों का खण्डन किया, खण्डन की इस प्रक्रिया को आगे बढाते हुए बर्कले ने लांक द्वारा स्वीकृत अमूर्त प्रत्ययों और भौतिक द्रव्यो का भी खण्डन करते हुए अपने प्रसिद्ध मन्तव्य का प्रतिपादन किया कि "सत्ता दृश्यता है" अर्थात् अस्तित्व का अर्थ है प्रतीति का विषय होना। बर्कले का मानना है कि हमार ज्ञान अनुभव जन्य प्रत्ययों तक सीमित है। लॉक ने ज्ञान प्राप्ति के लिए तीन बातों को आवश्यक माना था – अनुभवकर्ता, विषय और प्रत्यय। बर्कले ने केवल अनुभवकर्ता तथा अनुभव द्वारा प्राप्त प्रत्ययों को ही स्वीकार किया और बताया कि हमारा ज्ञान केवल प्रत्यय ज्ञान है और सारे बाह्य पदार्थ प्रत्ययों के अलावा और कुछ नहीं है। बर्कले ने जोर देकर कहा कि प्रत्यय ही साक्षात् प्रत्यक्ष के विषय हैं। प्रत्यक्ष का विषय मन में साक्षात् उपलब्ध होता हैं, न कि किसी प्रत्यक्ष द्वारा। मन मे उसका प्रतिनिधित्व होता है।बर्कले के इस सिद्धांत को पुरोधानवाद भी कहा जाता है।

वास्तव में संवेदनवाद का यह विकास बर्कले के यहां अपनी पूरी गति से दिखायी पडता है परन्तु इसकी चरम परिणति ह्यूम के विचारों में ही मिलती है। ह्यूम संवेदना को ज्यादा जटिल तरीके से विश्लेषित करता है। वह इसके लिए संस्कार शब्द का प्रयोग करता है। ह्यूम के अनुसार हमारा ज्ञान प्रत्यक्षों से

---

१. जगदीश सहाय श्रीवास्तव–आधुनिक दर्शन का वैज्ञानिक इतिहास–पृ०५६

मिलकर बनता है। इन प्रत्यक्षो को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है : संस्कार और विज्ञान। इसी सस्कार शब्द को वह संवेदना और स्वसवेदना के लिए प्रयुक्त करता है।

संस्कारों और विज्ञानो का भेद स्पष्ट करते हुए ह्यूम कहते हैं कि जो प्रत्यक्ष तीव्र और स्पष्ट होते हैं, उन्हे संस्कार कहते हैं। इन दोनों का भेद उस तीव्रता और स्पष्टता की मात्रा में है जिसके साथ वे हमारे मानस से टकराते हैं और हमारी आत्मा में प्रवेश करते हैं। इन प्रत्यक्षों को, जो बडी शांति और तेजी के साथ आते हैं, हम संस्कार कहते हैं और इस नाम के अंतर्गत "मै अपने सभी इन्द्रिय संवेदनों, मनोवेगों और भावनाओंको समझता हूं जो आत्मा में सबसे पहले प्रवेश करती है। विज्ञानों से मेरा तात्पर्य विचार या चितन में प्रयुक्त होने वाले इनके प्रतिरूपों से है।"

साधारण तौर पर कहा जा सकता है कि संस्कार तीव्र व शक्तिशाली हैं पर विज्ञान क्षीण और शक्तिहीन। संस्कार मौलिक व बिम्बवत है। पर विज्ञान गौण और प्रतिबिम्बवत। काल की दृष्टि से संस्कार पूर्णवर्ती है और विज्ञान परवर्ती। सस्कार प्रदत्त हैं तो विज्ञान निर्मित। संवेदना हमारी अनुभूति प्रवणता को दर्शाती है, जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभावों को ग्रहण करने की क्षमता से पूरित होती है। इसका अर्थ यह भी होता है कि कोई साहित्य किन भावनाओ की प्रतीति हमें करा सकने में समर्थ होता हैं। भावनाओं को ये स्तर विविध होते है।वह आधुनिकबोध भी हो सकता है, या मानव अस्तित्व की बुनियादी विवशताायें भी। वह व्यक्ति स्वातंत्र की भावना हो सकता है या यथार्थ के तत्वों की अन्विति भी। संवेदना का धरातल चाहे जो हो, अभिव्यक्ति उसे साहित्य के माध्यम से ही मिलती है। नयी अनुभूति, नयी भाषिक अर्थवत्ता अनुभवों का नया संयोजन तथा मानव संबंधों के परिवर्तन की सूक्ष्म परख आदि से ही साहित्य की संवेदना स्पष्ट होती है। भाषा, भाव और प्रेरणा तीनों ही प्रत्येक काल मे साहित्य की सवेदना को नयी अर्थवतता प्रदान करते है।

साहित्यशास्त्र में संवेदना शब्द का मूल अर्थ ग्रहण करते हुए भी उसे एक विशिष्ट अर्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। साहित्यिक संदर्भ मे संवेदना शब्द सामान्यतः साहित्यकार की चेतनानुभूति की उस मनोदशा का द्योतक है, जो उसे सृजन की प्रेरणा और रचनाविधि की शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करता है। संवेदना शब्द के मनोविज्ञान शास्त्र एव साहित्यशास्त्र गृहीत अर्थो के अंतर को स्पष्ट करते हुए डा. नगेन्द्र ने लिखा है कि "मूलतः संवेदना का अर्थ है ज्ञानेद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान। किन्तु आज कल सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग इसके मूल अर्थ में ही किया जाता है और उस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजन के प्रति शरीरतंत्र की सर्व प्रथम सचेतन प्रतिक्रिया होती है। साहित्य में इसका प्रयोग स्नायविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए ही अधिक होता है। इस प्रकार साहित्य संदर्भ में संवेदनशीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है।

जिसके द्वारा सवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख दुख को समझकर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "सवेदना का अर्थ सुख दु.खातमक अनुभूतियां ही हैं, उसमे भी दु खानुभूति से इसका गहरा सबंध है। संवदेना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुख का कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु.ख का अनुभव करना ही संवेदन है।"[2]

डा. आनंद प्रकाश दीक्षित के अनुसार "संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह रचना की सर्व प्रथम सचेहन प्रतिक्रिया जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती हैं।"[3] डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी साहित्य के महत्व को रेखांकित करते हुए कहते है – "संसार को समझना दर्शन का धाम है। उसे बदलना रजनीति का और उसकी पुनर्रचना साहित्य का दायित्व है।"[4] साहित्य की क्रातिकारिता को स्वीकार करते हुए वे संवेदना को एक विस्तृत आधार प्रदान करते हैं जिसके तहत वह मानवीय चित्त प्रवृत्ति और युग की परस्पर सम्बद्धता को रेखाकित करते है। उनके अनुसार आज की भाषा में चित्त वृत्तियों के संश्लेष को संवेदना कहा जायेगा संवेदना में बदलाव को समझने से साहित्यिक युगो की परिकल्पना और उनके बीच के महत्वपूर्ण अतरालों को समझा जा सकता है। जो साधारण दृष्टि के लिए ओझल बने रहते है। अज्ञेय की दृष्टि में संवेदना वह यंत्र हैं जिसके सहारे जीवन–दृष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ संबंध जोडती है। वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का है और विभिन्नता का भी। क्यो कि उसके सहारे जहां जीवन–दृष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है वहं उससे अपने को अलग भी करती है। "साहित्य की सबसे बडी उपयोगिता या सार्थकता इस बात में मानी गयी है कि वह हमारे संवेदना का विस्तार करता है। जैसा कि डा. राजेन्द्र कुमार कहते है–" संवेदना विशुद्ध ऐन्द्रिय सवेदन का पर्याय नही है।हालांकि इन्द्रिय संवेदन के प्रत्यक्ष या परोक्ष संवेदन का आतयन्तिक निषेध भी उसमे नही है। ऐंन्द्रिय संवेदन बाह्य यथार्थ के ऐन्द्रिय प्रभावों को ग्रहण करते है।बस उनकी इतनी ही इयत्ता है। संवेदना इससे कुछ आगे की चीज है। ऐन्द्रिय प्रभावो का ग्रहणाशीलता के स्तर पर प्रभाव न कहना, बल्कि आंतरिक यथार्थ के अनुभव में ढल जाना और फिर किसी बृहत्तर किन्तु सूक्ष्म अंतबोध या कि भावदृष्टि से उसका संयोजित होना इस पूरी प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप जो चीज उभरती है वस्तुतः उसी को संवेदना का नाम दिया जाना चाहिये।"[5] और "साहित्यकार की ग्रहणाशीलता में ऐन्द्रिय प्रभावों

---

१. डा० नगेन्द्र–मानविकी परिभाषा कोष–साहित्य खण्ड – पृ० २३२
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास – पृ० ६६१ – ६२
३. डा. आनंद प्रकाश दीक्षित–हिन्दी साहित्य कोष – भाग १ – पृ० ८६३
४. डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य की संवेदना का विकास – आमुख
५. डा० राजेन्द्र कुमार – साहित्य में सृजन के आयाम और विज्ञानवादी दृष्टि – पृ० – १५५

को अतिक्रांति करके यथार्थ अनुभव को जब उसकी व्यापक भावदृष्टि से संयोजित और सवर्धित होने का मौका मिलताा है, तब जाकर उसकी सवेदना का पूर्ण रूपायन हो जाता है।"[1] सच यह है कि संवेदना ता जीव मात्र की मजबूरी है, सिवाय गहरी निःस्वप्न नीद की घड़ियों के, एक क्षण भी हमारे अस्तित्व का ऐसा नहीं जब हमारी इन्द्रिय मन और बुद्धि किसी न किसी संवेदना के गिरफ्त में नहीं आती। संवेदना शब्द के इसी व्यापकता व उसकी महत्ता को प्रतिपादित करते हुए नन्द किशोर आचार्य लिखते हैं।" साधारणतया संवेदना शब्द को सेन्सिविटी के माध्यम से समझने की चेष्टा की जाती है जबकि संवेदना शब्द का अर्थ सम्भवतः सेनीसीवलिटी से अधिक गहरा एवं व्यापक है सस्कृत के विद् से उत्पन्न होने के कारण इसका अर्थ अंग्रेजी शब्द सेन्सेशन या परसेप्शन तक ही सीमित नहीं रहता बल्कि नालेज एवं अन्डरस्टैडिंग भी इसी सीमा में आ जाते हैं इस प्रकार एक सीमा तक बौद्धिक चेतना भी संवेदना शब्द के अर्थ में समाहित है।"[2]

इस प्रकार सवेदना शब्द की मनोवैज्ञानिक विशारदो एव सहित्य शास्त्रियो द्वारा प्रदत्त विभिन्न व्याख्याओं के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सवेदना ज्ञानेंद्रियों का अनुभव अथवा मन की प्रतिक्रियात्मक शक्ति है। साहित्य रचना की दृष्टि से संवेदना का विशेष महत्व है। जब हमे संवेदना को अनुभूति दशा, भाव प्रवणता और बौद्धिक संबंध चेतना का पर्याय स्वीकार करते हैं तो संवेदना निश्चतः साहित्यिक संरचना का अनिवार्य तत्व उपकरण सिद्ध होती है। यों तो प्रत्येक प्रकार की साहित्यिक संरचना के लिए संवेदना का सापेक्ष महत्व है इसलिये कि काव्य रचना के लिए संवेदना का सर्वाधिक महत्व है। प्राचीन काव्याचार्यों ने काव्य के विधायक तत्वों मे भाव तत्वों को विशेष स्थान दिया हैं। आधुनिक युग की रचना प्रक्रिया में भी भाव तत्व का स्थान है यद्यपि कि उन्मेष बौद्धिकता और वैचारिकता का ज्यादा प्राप्त हुआ है।

आज की कविता मे भावतत्व और रसात्मकता का स्थान बृद्धिचेतना तथा अनुभूति ने ले लिया है। काव्य की सृजन प्रक्रिया के रचनात्मक उपकरणों में आपातिक परिवर्तन के बावजूद भी सवेदना काव्य का अनिवार्य उपकरण बनी हुई हैं। निर्माण पक्ष की दृष्टि से विचार करने पर निर्विवाद है कि कविता एक क्रिया है– एक व्यापार है। चेतन प्राणिमात्र के व्यापार और क्रिया के मूल में किसी न किसी संवेग का होना अनिवार्य है। बिना संवेग अथवा भावोद्रेक के किसी क्रिया की निष्पत्ति चेतन. प्राणी द्वारा सम्भव नहीं है। विचार की तीब्रता और गहराई में मनुष्य स्थित हो जाता है और भाव की तीब्रता मे चल। जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में चेतन प्राणी जीवन की रक्षा के निमित्त अपेक्षित वस्तु के अभावबोध अथवा अतृप्ति के कारण संवेगवश प्रवृत अथवा निवृत्त होता है। ठीक वही बात काव्य जगत के लिए भी कहीं जा सकती है। काव्य जैसी क्रिया में भी

१. डा० राजेन्द्र कुमार – साहित्य में सृजन के आयाम और विज्ञानवादी दृष्टि – पृ० – १५५
२. नन्द किशोर आचार्य – रचना का सच – पृ० – ३२

प्रवृत्त होने के लिए सवेग अथवा अनुभूति का होना आवश्यक है। फलतः यह कथन निरापद एवं निर्भान्त होगा कि कविता चाहे प्राचीन हो या नवीन वह सवेदनशील मन की प्रतिक्रिया है और सवेदना ही कविता का चिरन्तन विधायक तत्व है।

समकालीन कविता की सम्पूर्ण प्रक्रिया रचना प्रक्रिया मे संवेदना का तत्व सर्व प्रमुख रहा है। आज की कविता के प्रत्येक सर्जक और समीक्षक ने मुक्त कंठ से संवेदना के महत्व को स्वीकार किया है। सच तो यह है कि आज की कविता की श्रेष्ठता के मूल्यांकन का मापदण्ड गहन सवेदनशीलता और अनुभूति की प्रमाणिकता को ही माना जा सकता है। यद्यपि अनुभूति की प्रमाणिकता को ईमानदारी के साथ जोड़कर डा. नामवर सिंह इस बात के लिए लगातार सावधान करते हैं कि इसका उपयोग आत्मसाक्षात्कार और आत्मान्वेषण के लिए हो, न कि आत्मरति के लिए। कविता के नये प्रतिमान महत्वपूर्ण हैं क्योंकि साहित्यिक प्रतिबद्धता या जिस मानवीय मूल्य, के लिए रचनाकार प्रतिबद्ध है उसके पीछे एक पूरा समाज उसका सहयोगी है। वह जिस मूल्य, जिस जीवन दर्शन को प्रक्षेपित करना चाहता है, वह पूरे समाज का है जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है। नैतिक व अनैतिक मूल्य जिसकी परिभाषा परिवेश पर आधारित है, दोनों उसकी निगाह मे रहते हैं। वह स्वरूप मूल्य की प्रतिष्ठा करता है, उसके लिए लडाई लडता है। उसकी सारी लड़ाई व्यक्ति के स्तर से होने के बाद भी व्यक्तिगत न होकर समाजगत है। लेखक के रूप मे पूरा समाज जुड़ता है। समाज के अंतर्विरोधों का वह प्रत्यक्ष दृष्टा होता है। सच तो यह है किएक रचनाशील व्यक्तित्व अपने कर्म और दायित्व के प्रति सजग होकर अपने सृजनानुभवों में जीवन की अनेक अनिवार्य संवेदनाओं को व्यापकतर अभिधारण भूमि को अभिव्यक्ति की जीवन्तता प्रदान करने के लिए निमित्त छटपटाहट महसूस करता है। एक रचनाकार की रचनात्मक पहचान तभी बनती है जबकि उसकी अभिव्यक्ति मे निरन्तर जीवानुभवों से जुडकर अपनी कलात्मक संवेदनाओं को व्यापकतर करने का प्रयास किया जाता है। इसीलिए आज के कवि को सहृदय या भावुक नहीं अपितु संवेदनशील कहा जाता है। क्यो कि यह प्रक्रिया कवि के मनस जगत् से ही सम्बद्ध नहीं है अपितु इसका संबंध बाह्य जीवन एवं सामाजिक परिवेश से भी है। इस तरह आज के कवि कीसवदेनाशीलता के अनेक स्तर है। दूसरे शब्दों में नये कवि की संवेदनशील अनुभूतियो की संरचना में वैयक्तिक जीवन के साथ–साथ समिष्ट जीवन की प्रतिक्रियाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। लक्ष्मीकांत वर्मा के शब्दो में वर्तमान संवेदनशील अनुभूतियां आज की रचना में मात्र आंतरिक प्रस्फुटन से विकसित नहीं होती, उनका एक बाह्य स्तर भी है। यह स्तर आज के जीवन के उस सत्य से संबंध है, जिसमें समस्त मानव की अंतर्वेदना हमारी संवेदना से सम्बद्ध होकर व्यक्त होती है।....... हमारी विचाराशक्ति, धारण शक्ति, अनुभूति के स्तर पर व्यापक एवं विराट मानव की भवितव्यता के प्रति उन्मुख होती है उससे द्रवित व प्रभावित होती है। मानव व्यक्तित्व की यह सामूहिक वेदना देशकाल की सीमा में अपने अपने रूपों के माध्यम से व्यक्त होती है।

समकालीन कविता समाज तथा युगजीवन की कविता है।अतः समय की धारदार और बेबाक पहचान ही इस कविता का एक बुनियादी चरित्र हैं। " समकालीन कविता ने अपने इतिहास से टक्कर ली है। इसलिए इस कविता का सौन्दर्य भी पूर्व कविता से भिन्न है। इस जूझती हुयी कविता ने समकालीनता की जटिलताओं और अन्तर्द्वन्द्वों से टकरा कर, केवल अपने क्षेत्र को ही व्यापक नही बनाया बल्कि उसे एक अतर्राष्ट्रीय रूप भी प्रदान किया हैं। उसका यह संघर्ष केवल इतिहास का नही, वस्तुरूपों का भी संघर्ष रहा है। यह पागल प्रतीको से आगे की कविता है। पागल प्रतीको के इतर जो सहजता होती है, वह आज की कविता की एक महत्वपूर्ण विशिष्टता है। यथार्थ संश्लिष्ट है पर आज का कवि उसे सहज और सीधे तरीके से रचने का निरंतर अभ्यास कर रहा है।

शब्दों का मूलभूत सौन्दर्य मानवीय जिजीविषा को जीवन्त करने, संघर्ष को गतिशील चेतना देने की प्रक्रिया में निहित है। शब्द आहत मानव समुदाय को संकल्प, अस्तित्व एवं गरिमामय करने की सुचेष्टा से ही प्राणमय रह पाते है। हमारे भाषा और साहित्य में मानवीय पक्षधर शब्दो की ऐतिहासिक भूमिका रही है। ऐसे रचनाकारों के यहा शब्द मनुष्यता, सस्कृति और अस्मिताा के लिए तने हुए रहे है। और आज भी समकालीन कविता शब्दों का इस्तेमाल संकल्पो के साथ कर रही है और इसलिए उसकी सक्रियता के आगे प्रश्नचिन्ह नही खडा किया जा सकता।

****

अध्याय १—खण्ड—ख
रचनाशीलता के सन्दर्भ में संवेदना के आयाम :

काव्य जीवन की अनुभूतियों को मुखरित करता हैं। अपनी व्यापकता में वह समस्त मानवीय अनुभूतियो एवं विचारो का पूंजीभूति स्वरूप होता है। जीवन की सूक्ष्मतम सवेदनाओं एवं तीब्रतम अनुभूतियों का प्रतिपालन काव्य मे होता है। "मनुष्य को विकासक्रम में आये हुए अनेकविध सामाजिक, राजनैतिक एव सास्कृतिक आंदोलनों का वास्तविक इतिहास काव्य में निहित है। काव्य अपनी समस्त प्रेरक शक्तियों को ही जीवन की प्रेरणाओ से ही प्राप्त करता है। जीवन में व्यक्त विभिन्न प्रवृत्तियां काव्य की उपजीब्य है। विभिन्न सामाजिक परिवर्तनो एव वैचारिक आंदोलनों से उत्पन्न मानवीय उत्थान पतन का बिम्ब काव्य में दिखायी पडता है। इस प्रकार मानव की प्रतिभा, शांति और संवेदनशीलता की अभिव्यक्ति काव्य में ही होती हैं।"[1] काव्य, कवि को साक्षर अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण है। लेकिन इस आतर अनुभूति के प्रत्यक्षीकरण का क्या उद्देश्य है ? सृजनात्मक अनुभूति के स्वरूप व निर्माण की प्रक्रिया क्या है ? काव्य की मूल संवेदना के घटक उत्पादो मे सर्जनात्मक के साथ संवेगात्मकत ही अतिरिक्त होती है अथवा कुछ और ? सर्जनात्मक अनुभूति के काव्य तत्व व्यक्तिगत परिवेश के होते है। या समष्टिगत ? ये सारे प्रश्न रचना और रचनाकार के संबंधों और सृजनात्मक क्षणों से सम्बद्ध है।

इस सन्दर्भ मे अज्ञेय का मत है कि काव्य का उद्देश्य तीव्र एवं गहन अनुभूतियों को आनंद की एक ऐसी भूमिका पर पहुंचाता है जहां वह अपनी गहराई के कारण सामान्य हर्ष और विषाद से परे हो जाती है। उनका मत है समय की दूरी सभी अनुभवों को मीठा कर देती है उनका मत है समय की दूरी अनुभवो को मीठा कर देती है। तात्कालिक परिस्थितियां भले ही कितने मीठे और कटु हों।"[2] इसी क्रम में वे आगे कहते हैं "गहराई का एक आयाम होता है जो अनुभूति को कडवी मीठी की परिधि से परे ले जाता है " " कविता अब भी व्यक्ति सत्य का साधरणीकरण करके आनन्द की सृष्टि करना चाहती है ।"[3] यहॉ पर अज्ञेय ने व्यक्ति सत्य के साधरणीकरण की शर्त भी जोड दी हैं। साधरणीकरण होने के पश्चात व्यक्ति सत्य स्वय ही व्यापक सत्य के रूप में बदल जाता है। यही कारण है कि अज्ञेय स्वतः सुखाय लिखी जाने वाली रचना के प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हैं वे इस बात को मानने को तैयार नहीं कि कोई काव्य स्वतः सुख के प्रयोजन से लिखा जा सकता है। उनका मत है मैं स्वतः सुखाय नहीं लिखता। कोई भी कवि लेखक स्वतः सुखाय लिखता है अथवा लिख सकता है। यह स्वीकार करने में मैने सदा अपने को असमर्थ पाया है। पुनः

---

१. डा० राम जी तिवारी – स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य – पृ० – ६६
२. अज्ञेय – आत्मनेपद – पृ० १४७
३. वही पृ० १४७

वह कहते हैं–काव्य की भावानुभूतियां यथार्थ जीवन की अनुभूतियों से सर्वथा भिन्न और विशिष्ट होती है। वे सर्वदा सुखद होती है। काव्य के क्रोध, शोध, पीडा और जुगुप्सा से भी आनन्द मिलता है जबकि यथार्थ जीवन में ऐसा नहीं होता।"[1] तात्पर्य यह है कि अज्ञेय एक ओर तो स्वत. सुखाय सिद्धांत का स्पष्ट विरोध करते हैं और दूसरी ओर आनन्दानुभूति को काव्य का अन्तिम प्रयोजन मानते हैं । इसी प्रकर वे एक ओर तो कवि जीवन की वैयक्तिक अनुभूतियों के साधारणीकरण की बात करते हैं वहीं मानवीय चेतना के नूतन संस्कार जैसे व्यापक उद्देश्य का भी प्रतिपादन करते है। स्पष्ट है अज्ञेय के यहां अंतर्विरोधों के लिए पर्याप्त अवकाश हैं ये अपने अंतर्विरोधो का शिकार स्वयं ही हो जाते हैं और संवैधानिक स्तर पर अन्तिम प्रकार से कोई निर्णय नहीं दे पाते है।

डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत है कि कला सबसे पहले कला है और अंत तक कला है डा० चतुर्वेदी की इस प्रतिस्थापना से स्पष्ट है कि वे काव्य अथवा कला के किसी पूर्व निर्धारित प्रयोजन को स्वीकार नहीं करते। वे मानते हैं कि कला अथवा काव्य, स्थिति–विशेष में स्वतः स्फूर्त प्रक्रिया है। किन्तु यहा पर यह समस्या उत्पन्न होती है कि रचनाकार काव्य सृजन की वहीं से प्रेरणा ग्रहण करता है या नहीं। यदि हा, तो प्रेरक तत्व ही काव्य को प्रयोजनीय बना देंगे और यदि नहीं तो कविता रचना में प्रवृत्त होना ही कठिन हो जायेगा। यदि वह स्वांतः सुखाय लिखता है तो सुख की उस भूमि की खोज ही उसका प्रयोजन होगा। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि प्रयोजन का नितांत अभाव को रचना प्रक्रिया में पूरी एकाग्रता के साथ प्रवृत्त नहीं किया जा सकता और ऐसा न होने पर किसी उत्कृष्ट कृति की अपेक्षा अथवा कल्पना बेकार है। इस प्रकार यह प्रतिपादन अनेक अंतर्विरोधों को जन्म देता है और एक प्रकार के अनिर्णय की स्थित उत्पन्न करता हैं।

वस्तुतः कविता न मनोरंजन के लिए है, न उपदेश के लिए। वह अन्वेषण और आत्मान्वेषण की ओर प्रवृत्त और समाज के प्रति अधिक सजग होने की विशिष्ट विधि है। कविता हल्के मनोरंजन के लिए नहीं होती, उसका उद्देश्य जीवन के प्रति दायित्व का निर्वाह है। इस संदर्भ में रमेश चन्द्रशाह का मत उल्लेखनीय है– उनके अनुसार साहित्य जहां एक ओर अंतरात्मा और समग्रता की चिंता करता है। वहीं पर मनुष्य एवं मानवीय नियति के प्रति भी उत्तरदायी है इस प्रकार प्रकार मानवीय नियति के प्रति दायित्व का बोध करने वाला उद्देश्य अधिक ग्रहण शील है।

आज के काव्य में सामाजिकता का आग्रह उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। डा. केदारनाथ सिंह के शब्दों में समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी से छोटी चेतन क्रिया किसी न किसी रूप में सामाजिक हुआ

---

१. अज्ञेय–हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य–पृ० ११६

करती है। फिर कविता समाज के रूप में अधिक संवेदनशील व्यक्ति की क्रिया है अतः उसकी सामाजिकता असदिग्ध है।"[१] काव्य में सामाजिक मंगल एव सामाजिक सश्लिष्टता की मात्रा जिस अनुपात मे बढती है उसी अनुपात मे उसकी पलायनवादिता एव गलदाश्रुपूर्ण भावुकता कम होती जाती है। परिवर्तित युग काव्य के ऐसे प्रयोजन को स्वीकार करता है। जो सामान्य जनजीवन की समस्याओं का बौद्धिक समाधान करे। मुक्ति बोध के शब्दो मे आज ऐसे कवि चरित्रो की आवश्यकता है जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए सामान्य जनों के गुणों और उसके संघर्षों से प्रेरणा व प्रकाश ग्रहण करे।

काव्य का प्रयोजन अपने सामाजिक आग्रह के साथ ही बौद्धिकता के संश्लेष की मांग करता है। आज के वैज्ञानिक युग में जिस प्रकार तर्कशील बुद्धि ही जीवन के यथार्थ को उसकी सफलता में ग्रहण करती है, संभवतः उसी प्रकार कथ्य में भी । परन्तु अकेला बुद्धिवाद, जिसकी उपयोगिता कहीं से भी, किसी भी स्तर पर, कम नही है, काफी नहीं । जैसा कि डा. राजेन्द्र कुमार कहते हैं – विज्ञान मे मनुष्य की उस मानसिक शक्ति पर जो तर्क विवेचन और विश्लेषण आदि मे प्रवृत्त होकर उन्हीं के आधार पर अपने निर्णय देती है, जिस पर विश्वास किया जाता है। मनुष्य का तर्कणा शक्ति में विश्वास एक ऐसा विश्वास है।"[२] जिसके आधार पर वह प्रत्यक्षीकृत वस्तुओं की प्रकृति में नियमविहीनता और स्वेच्छाचारिता को बर्हिगत करते हुए, उनमे पारस्परिक संगति और अन्विति को टटोलता है। इस विश्वास में हृदय या भाव की अपेक्षा बुद्धि और विचार तत्व की प्रधानत रहती है। यों काव्य आदि कलाओं में भी बुद्धि को कम महत्व नहीं है लेकिन उसमे बुद्धि को ही एक मात्र सर्वाधिक विश्वसनीय तत्व नही माना जाता । कला के चार तत्व हैं, भाव तत्व, बुद्धि तत्व, कल्पना तत्व, और शैली तत्व। इन चारों के सहज समन्वय में ही सार्थकता हैं। स्पष्ट है कि कोई एक अकेला तत्व ही सार्थक काव्य सृजन की शर्तो को पूरा कर सकता।

मानव सस्कृति का संवहन साहित्य का प्रयोजन है। साहित्य ने निरन्तर मानव सस्कृति का सवहन किया है। युग विशेष की उपलब्धियों को मानव युग के लिए सुरक्षित रखा है । सांस्कृतिक गतिविधियों के संवहन के साथ आगत युग तक उसे पहुंचाना, साहित्य का एक स्वीकृत प्रयोजन रहा है। इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है । दर्पण मानने का सीधा आशय साहित्य को जीवन से सम्बद्ध करना ही है। जीवन की उपेक्षाकर साहित्य की व्याख्या करना सम्भव नहीं है और जीवन अपनी व्यक्ति निष्ठ स्थिति में समाज के परिवेश के बाहर नहीं जा सकता। साहित्य किसी भी युग के समाज के सांस्कृतिक संचरण का संवेदनमय स्फुरण है। पूरे युग जीवन को साहित्य ग्रहण कर, उसके सारगर्भित क्षणों के अनुभवों

---

१. केदारनाथ सिंह–तीसरा सप्तक–पृ० १८५

२. डा० राजेन्द्र कुमार– साहित्य में सृजन के आयाम और विज्ञानवादी दृष्टि– पृ० ७३

को व्यापक स्तर पर संवेदित करता है। साहित्य का समस्त अनुभव उसकी सारी संवेदना उसकी व्यंजना और उसकी उपलब्धि सामाजिक सन्दर्भ में ही सार्थक होती है। साहित्य की सार्थकता मूल्यों के विवेचना अथवा स्थापना में ही नहीं, वरन् उसके सृजन तथा वहन करने मे है।

वस्तुतः साहित्यकार मात्र छायाकार नही होता। छायाकार या अनुकृतिकार से कही अधिक वह रचनाकार या सृष्टा होता है। सामान्यतः यह माना जाता है कि साहित्य सृजन एक वैयक्तिक क्रिया है, स्वत सुखाय है परन्तु स्वतः सुखाय की भावना से प्रभावित रहते हुए भी वह सृजन की ओर प्रेरित होता है। उसके सृजन की पृष्ठभूमि में अर्थ यश आदि के सन्निहित रहते हुए भी इन प्रेरणाओ का मूल व्यक्ति समाज और उसका परिवेश होता है। उसकी क्रिया विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। सामाजिक सरचना की एक इकाई के रूप में लेख अपनी अंतःक्रियाये करता है। उसकी अभिव्यक्ति का लक्ष्य जहां दूसरो को सहअनुभूति करा कर रागान्वित करता है, वहीं मानव मन में प्राणिमात्र के प्रति संवेदना जगाना भी है । एक रचनाकार की क्रियायें मानवीय संबंध व्यवहार में जहॉ दूसरों से प्रभावित होती हैं वहीं दूसरों को प्रभावित भी करती हैं। असल मे होता यह है कि मनुष्य का अनुभव जो बाहर की दुनियां से जुड़ा हुआ होता है, वह हमारी रचनारत संकल्पशील वांछा और उससे प्रेरित हमारे आन्तरिक ताप मे से होकर (आवेग को या लेने की क्रिया में, एक हद तक स्वयं बदलकर) नये रास्ते के स्वभाव वाला यात्री हो जाता है। उसकी पुरानी पहचान लगभग गायब हो जाती है। जिसका विश्लेषण कर पाना न तो इतना सहज है और न ही यहां सम्भव भी है। लेकिन यह तथ्य है कि कवि के अन्दर समाया (उद्वेलित) लावा अपनी शक्ति वैभिन्नय में एक बर्फीले चाकू सा कठोर कटाव या तेजस्वित ताप लिये अपनी सामर्थ्य के गणित के तेज धारदार या लचीले तौर–तरीके से विन्यस्थ आर्धारोपर ही रचना की वाहक और वांछित शक्ति हो उठता है। वास्तव में यह 'सब कुछ ही' हमारे अन्दर समाहित आवेग की विशिष्ट अंतरंगता से उत्पन्न प्रतिफलित, गुणवत्ता ही है। यह हमारे अन्दर मनस्तत्वों की आपूर्ति की सक्रिय उपस्थिति या क्रिया–प्रतिक्रिया का अनजाना सा रूपान्तरित प्रतिफल होता है। रचना में इस अन्तर्घटित का कम महत्व नहीं है। यह सब वस्तु को अन्तर्वस्तु में बदलना या रचना होने के लिये अपने ही अन्तः साक्ष्य में फैलकर व्याप्त हो जाना है। मुक्तिबोध ने इसलिये ही इसे सांस्कृतिक प्रक्रिया कहा है।

इस प्रसंग में हमें यह याद रखना होगा कि वस्तु को अन्तर्वस्तु में बदलने की आन्तरिक प्रक्रिया में कवि की प्रतिबद्ध वांछा के अनुरूप मानस मंथित हो उठता है। उसके समस्त आवेग विधायिनी शक्तियां, परिगतियां (नकारात्मक भी) सतत उभरने और उबरने लगती है। अन्तर्वस्तु के इस अंतःशोधित और संवर्धित रचाव के परिणाम स्वरूप (अंत में) रचना की विशेष गुणवत्ता में उसे हासिल हो पाती है। मोटे तौर से रचना निहित प्रखरता, सघनता, रागात्मकता, लयोन्मुख राग या रागोन्मुख लय, विशिष्ट संवेदनीय लय, त्वरित तापित

तुरीयता, यह भी कि संतप्त धार से मौन आदि रचनोन्मुख विशिष्टताए हैं, जो वांछित तौर से सहायक या बाधक बनकर गति को प्रभावित करती हुई प्रकारान्तर से अर्न्तवस्तु की अक्षमता या क्षमता से निस्रत होने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। कह सकते हैं कि कवि के मन्तब्य को रचनारूप मेंपाने के अर्तसघर्ष का अतर्भाग ही अन्तर्वस्तु है। यानि इस स्थिति की सभी वस्तुस्थिति या अन्तर्वस्तु से उपजी, आन्तरिक चेतना की धडकन का अंग होती है, जो रचना को पुष्ट करती है।

वास्तव में वस्तु जब रचना की अन्तर्वस्तु का रूप लेने लगती है। तो उसमें अर्थ वृत्ति के साथ आवेग प्रवृत्ति भी अन्तर्मूत से उठती है। हमारा काव्य–इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह आवेग प्रवृत्ति हमेशा एक से रूप में नहीं रही है। यह अपनी अंतर्सघनता को लेकर, चतुर्दिक वेग से भरी, उत्सुक वांछा से युक्त, समय–समय पर अपने गुण धर्म के द्वारा, आयोजित प्रवृत्ति से पहचान को बदलती रही है। उदाहरण के लिये जो आवेग प्रवृत्ति किसी जमाने मे अपनी वेग उत्पफुल्लता में प्रवाह का सैलाब लेकर चलती थी वह आज इतनी बदल गई है कि अपनी दशा दिशा मे बिजली की पतली लकीर की तरह अन्दर धसकर गहराती, पर ऊपर बिना कौंधे ही निष्पन्न हो जाती थी। यह खुलती खौलती तो है पर किसी बडबोले चमत्कार से दूर ही रहती है। इसके अन्त.सृजित वेग का यह अदृश्य पारदर्शी प्रवहशील बंधन, शब्द–शब्द और उनके अर्न्तभूत अंतरालों का अपने से भरती हुयी विम्बित स्मृति साक्ष्यों की छाया तरू में से निथर निखर कर कविता के गति व पारदर्शी एकानुभूत गतिमय बंधन मे बंधी रहती है। साहित्य क्राति नही करता, वह मनुष्यों के दिमाग बदलता और उन्हे क्राति की जरूरत दे प्रति जागरूक बनाता है।[1] और अपनी बिकी हुई मेहनत, बेसहारा जिदगी की आकाक्षाये, समाजिक उलझनो मे होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति–परिस्थिति की क्रिया–प्रतिक्रिया, संवेदनायें आदि को अपने मे सम्मिलित करने वाला विचार–वेदना–मण्डल जब लोक मुक्ति की नयी क्रातिकारी विचारधारा से और भी सशक्त और संवेदनमय हो जाता है "तब जिस साहित्य का आविर्भाव होता है उसमें महान मनुष्य का सत्य होता है।"[2]

जरूरी है हम आज की कविता और समकालीन यथार्थ दोनो के संदर्भ में प्रतिबद्धता एवं उसकी प्रासंगिकता की पहचान समकालीन कविता के प्रतिमान के रूप में न करें। यह पहचान उन कलावादी रूझानों के विपरीत खडी होती है, जो लेखकीय स्वतंत्रता के नाम से आज भी प्रभुवर्गीय शिविरों में अपनी जड़ें जमायें हुए है।ये रुझानें वर्तमान सामाजिक यथार्थ में परिवर्तन की प्रक्रिया के बताय परीक्षतः यथा स्थिति को बल देती है। बेशक ये ऐसे काल्पनिक संघर्षों में साहित्य को उलझाती है जिनका व्यवस्था परिवर्तन के लिए सीधे और

---

१. आले अहमद सुरूर–क्या सहित्य विफल है ? समकालीन साहित्य जन. मार्च १९६२ पृ० ११
२. मुक्ति बोध– नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र पृ०– ७४

सही संघर्ष से कोई रिश्ता नहीं है। कारण "लेखकीय रचनाशीलता समाज से कोई दायित्विपूर्ण रिश्ता जोडने से मुकरती है। उसमें उसे राजनीतिक गंध मिलती है जो उसे समाज में खुद खेलने की छूट नही देती। दरअसल साहित्य को राजनीतिक संदर्भों से अलग रखने का प्रयत्न खुद में ही एक अराजनीतिक राजनीति है।"[1]

जीवन और समाज के प्रति दायित्व तथा उसमें हिस्सेदारी का अभाव तौर पलायन ही 'आधुनिक बुद्धिजीवी' को अजनवी और पराया बनाता है। जीवन से उखडा हुआ लेखक आत्मनिर्वासित होकर अपने ही विभिन्न मानस में चीजों का अर्थ ढूढता रह जाता है। यह उसके ज्ञान और अुनभव के स्त्रोत का कट जाना होता है। अपनी जडो से अगर उसका संबंध जुडे, तो उसका अनुभव पुष्ट हो और उसकी रचना को नई शक्ति तथा ताजगी प्राप्त हो। यह सही है कि कला को किसी एक निश्चित कटघरे में कैद नहीं किया जा सकता है और उतना ही सच यह भी है कि कला का अनन्त स्त्रोत वह जीवन ही है जो एक रचनाकार के चारो ओर स्पंदित होता रहता है। सारा ज्ञान और अनुभव तो उस आदमी में ही है जो असंख्य तादाद में उन उपेक्षित स्थानों पर बिखरा है जिससे ऐसे रचनाकार कोई रिश्ता ही नहीं रखते। यह ऊर्जा कक्षा के क्षरण का समय होता है। वह अपनी प्रासंगिकता और परिणामतः प्रभाव खो देता हैं। वहां किसी भी प्रकार की सामाजिक सास्कृतिक क्रिया ही नहीं रह जातीं। फलतः बचता है सिर्फ एक सन्नाटा। भयावह सन्नाटा। जिसमे भी वह कलाा देखता है। गो कि उस कला का कोई हृदय नही रह जाता। यह असावधानी अराजकता का सबंध है जिसके चलते वह राजनीतिक शक्तियो और सामाजिक अतर्विरोध की सही पहचान कर उसे अपना वैचारिक रिश्ता नहीं जोड पाता। कला के द्वारा क्राति संभव न हो, कला के द्वारा वास्तविकताओं को न बदला जा सके कला हथियार का विकल्प न हो सके पर इसमें संदेह नही कि यदि उसकाा सही उपयोग किया जाय तो वह इन सबकी प्रेरणा जरूर देगी क्यों कि वह अपने समय की क्रांति चेतना से स्वयं प्रेरित होती है।[2] कला का यह रचनात्मक उपयोग क्या है ? शायद यही सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। अपने समय और संसार में जीते हुए हम सर्जना में लिप्त रहते हैं ताकि अपने को और अपने समय को जान सकें। जीने और जानने का यह उद्यम आत्म अनुभव की एक अनवरत प्रक्रिया है जो प्रत्येक मनुष्य के भीतर बैठे रचनाकार के साथ होती है। दरअसल संसार में जन्म लेने वाला हर व्यक्ति किसी न किसी रूप में सृष्टि को रच रहा होता है और इस तरह समाज को जानने का प्रयत्न कर रहा होता है। मनुष्य का प्रत्येक भौतिक उद्यम उसकी श्रम चेतना से जुड़ा रहता है और उसकी सभ्यता संवेदना के विस्तार में प्रतिफलित होती आयी है। लेकिन सभ्यता के

---

१. जगदीश नारायण श्रीवास्तव—समकालीन कविता पर एक बहस

२. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी—रचना के सरोकार—पृ० ११६

भौतिक उपक्रमो ने उसे इतना भव्य रूपाकार और साथ ही ऐसी जटिल बनावट दे डाली है कि उसे समग्रता मे पकड पाना लगभग असंभव हो चला है " शायद ऐसी कोई कृति अब सभव नहीं जो समकालीन संसार की अतर्लिष्ट वास्तविकता को महाकव्यात्मक सम्पूर्णता मे अवतरित कर सके न ही कोई रूपक, मिथक या दतकथा उसके रहस्य को धारण करने में समर्थ जान पडती है। दरअसल सभ्यता ने स्वयं आाधुनिकता के लिए नये मिथक गढ लिये है। वे परस्पर इस कदर गुंथ गये हैं कि कुल मिलाकर वे खंडित अनुभवों के गुंजलक से झांकते, उलझते अर्थ की झलक मात्र दे सकतेहै। सम्पूर्णता स्वय एक गूढ मिथ बन चुकी है, अपकूटित नहीं किया जा सकता। जो खण्ड रूप है वही यथार्थ है।"[1]

लेकिन मुनष्य के आत्म ससार की स्वय पूर्णता को भंग कर यदि आधुनिक सभ्यता ने उसे खण्डित चेतना के धरातल पर उतार दिया तो उसने इससे उपजे शून्य को भरने का भरसक जतन भी किया। " इसके लिए उसने एक स्वप्न की रचना की। विकास और समृद्धि के स्वप्न की। जिसमें एकतानता की विचारानुभूति कम से कम आज की कविता की बदलती सम्वेदना की प्रस्तुत कर पाती है।[2]

एक रचनाकार का सृजन न पूर्ण काल्पनिक होता है और न पूर्ण वैयक्तिक। एक सामाजिक क्रिया के रूप में उसके विश्लेषण की अपेक्षा होती है क्योकि उसके उदगम की भूमि समाज ही है। लेखक की वैयक्तिक चेतना की पृष्ठभूमि मे सामूहिक चेतना का प्रभाव सक्रिय होता है। उसके विचार, उसकी धारणायें और उसकी अनुभूतियां सामाजिक अतः क्रियाओं का परिणाम है। सृजन क्रिया और अनुभूतियां सामूहिक प्रतिनिधानों की ही अभिव्यक्ति है। साहित्य वैयक्तिक क्रिया नहीं है। लेखक की क्रिया का विश्लेषण अनेक आधारों पर किया जाता है। जैसे सृजन के लक्ष्य और साधनों की अंतः सम्बद्धता के सन्दर्भ मे लेखक की भूमिका का विश्लेषण, रचना क्रिया की वस्तुनिष्ठता और व्यक्तिनिष्ठता की जांच, सृजन मे निहित प्रेरकों का विश्लेषण । बेवर ने सामाजिक क्रिया के अर्थपूर्ण बोध को समाज शास्त्रीय अध्ययन का केन्द्र बिन्दु माना है। इनके अनुसार वही क्रिया सामाजिक हैं जिसमें उसके करने वाले के साथ अन्य व्यक्तियो के मनोभावों और क्रियाओं का समावेश हो। वह अन्य व्यक्तियों के अतीत, और भावी व्यवहार से प्रभावित क्रिया का ही सामाजिक मानता है। लेखक की कृति सोद्देश्य होती है, अतः उसका बोध और उसकी क्रिया सामाजिक क्रिया का रूप धारण करती है। उसकी स्पष्ट पक्षधरता जन के प्रति होनी चाहिये, यहां पर 'जन' शब्द एक विशेष अर्थ प्रदान करता है जो वैज्ञानिक विकास, उद्योगवाद, प्रजातंत्र, सर्वहारा, मध्यवर्ग, समसता, स्वतंत्रता और समष्टि जैसे 'प्रत्ययों' एवं विचारकों का एक संगुफित गत्यात्मक रूप है। इन सभी तथ्यों ने न्यूनाधिक रूप से जन संस्कृति के मिथक को ऐसा आकार और स्वरूप प्रदान किया है जो विचार और कार्य के धरातल

---

१. लेख जय प्रकाश—यथार्थ की माया पल प्रतिपल—मार्च, जून २०००—पृ० ४६
२. मलय—कविता में वस्तु के अन्र्तवस्तु बनने की प्रक्रिया—वर्तमान साहित्य : कविता विशेषांक—पृ० ३५३

पर मानवीय क्रियाओं को एक अर्थवत्ता प्रदान करती है, तो दूसरी ओर मानव की सर्जनात्मक शक्तियों को एक नया आयाम प्रदान कर रही है। यह 'जन' शब्द केवल एक 'विचार' है। एक ऐसा विचार दर्शन जिसने केवल राजनीति और अर्थनीति को प्रभावित नहीं किया है पर साहित्य कल, दर्शन, धर्म, और अन्य मानवीय क्रियाओं का भी रचनात्मक एवं वैचारिक स्तर पर प्रमाणित किया हैं।[1]

रचना इसी लिए वह ही महत्वपूर्ण होती है जिसकी पक्षधरता स्पष्ट हो और जिसका दृष्टिकोण बिल्कुल साफ जिससे उसकी स्वतंत्रता प्रति फलित हो सके। लोकतंत्र, उद्योगवाद, विध्कि व्यवस्था के विकास के साथ यह स्वप्न भी उत्तरोत्तर विकसित हुआ। मनुष्य की खोई हुई सम्पूर्णताा इससे भले ही पुनरूपलब्ध न हुयी, भले ही उसका शून्य पूरी तरह न भर सका हो, किन्तु मुक्ति की आकांक्षा को अपेक्षाकृत ठोस एवं लौकिक संदर्भों में परिभाषित कर पाने की आशा उसके भीतर (जरूर) उदित हुयी। लोकोत्तर से विछन्न हो जाने का जो अभिशाप मनुष्य को आधुनिकता के हस्तक्षेप के चलते आगे चलकर भोगनेको विवश होना पड़ा, उसकी किसी हद तक क्षतिपूर्ति मानवीय मुक्ति के इस भव्य आश्वासन मे मौजूद थी कि कल्याणकारी राज्य (वेलफेयर स्टेट) अपने नागरिकों के सारे दुख दूर कर देगा। पुनर्जागरण और ज्ञानोदय का समूचा महाविमर्श मुक्ति के इस स्वप्न को सामाजिक क्रांति की देहरी तक खींच लाने का उपक्रम कहा जा सकता है। लेकिन बडी विडम्बना यह है कि स्वतत्रता का स्वप्न देखने वाली सभ्यता ने अपनी मुक्ति के उन्माद में अपने से इतर सभ्यताओं की नैसर्गिक स्वतंत्रता का अपहरण कर लिया। औद्योगिक समाज की हिंस्त्र महत्वाकांक्षायें उन्नीसवीं सदी के उग्र राष्ट्रवाद में और दूसरी ओर औपनिवेशिक विस्तारवाद में संयोजित हो गयीं, जबकि बसवीं सदी में उन्होंने विकराल साम्राज्यवाद का रूप ले लिया। संस्थाबद्ध मानवीय शोषण की ज्ञानोदय मूलक आकाक्षा वास्तविक के धरातल पर अपने मानवतावादी चरित्र में मूर्त न होकर शोषण की निर्बंध स्वतंत्रता में चरितार्थ हुयी। इसे सहज ही लक्ष्य किया जा सकता हैं कि तकनीकी विकास के सामांतर राजसत्ता के चरित्र में भी गुणात्मक परिवर्तन आये हैं। क्या आधुनिक साम्राज्यवाद के इतिहास को तोप, बारूद और जहाजरानी और इन्फारमेशन टेक्नांलांजी के तकनीकी विकास से अलग करके देखा सकता है ? आधुनिक लोकतंत्र जिस संविधान को केन्द्र में रखकर कानून का शासन स्थापित करता है क्या यह राज चलाने की तकनीकी मात्र नहीं है ? गौर किया जाना चाहिये कि तकनीकी ने राज्य सत्ता को निरंतर शांति प्रदान कर, न सिर्फ उसके भौगोलिक प्रसार के रास्ते सुझाये हैं बल्कि सूक्ष्म स्तर पर उसके ऐतिहासिक विस्तार की युक्तियां भी ईजाद की हैं। इस प्रक्रिया में राज्य सत्ता क्रमशः शक्ति सम्पन्न, क्रूर, निरंकुश और हिंसक होती गयी है। तकनीकी ने उसे इतना चतुर और सक्षम बना दिया है कि सीधे आक्रमण किये बगैर भी वह किसी राष्ट्र की संप्रभुता का

---

१. वीरेन्द्र सिंह—जन संस्कृति का मिथक साक्षात्कार—मई, जून १९९५—पृ० १३०

अपहरण कर सकती है। आज किसी भी किस्म का अधिनायकवाद वस्तुतः तकनीकी की सर्वोच्चता को सूचित करता है और सही मायनो मे वह तकनीकी का अधिनायकत्व निर्मित करता है। एक स्तर पर पहुचकर तकनीकी अर्थव्यवस्था, व्यवसाय, संस्कृति सब कुछ अपने वश कर लेती है। तकनीकी इतनी शक्ति अर्जित कर लेती है कि वह स्वयं राजसत्ता बन जाती है। वहीं वह समाज होता है जहॉ कि वह स्वयं राजसत्ता बन जाती है और यही पर वह समाज का एक ऐसा अतिकेन्द्रीकृत ढांचा गढ लेने में सफल हो जाती है । जहां मनुष्य के लिये एकांत जैसा कुछ भी नही रह जाता। यह सिर्फ मनुष्य के यथार्थबोध को नियंत्रित ही नही करता बल्कि यथार्थ से वचित भी करता है। वस्तुओं ने मानवीय संबंधों को तुच्छ बना दिया है उन्हें निरर्थक बनाते हुए स्वयं अपने सदर्भ में ये सामाजिक बंधनो से मुक्त हो गयी है। वे अपने आप मे सामाजिक मूल्य बन गयी है। इस पृष्ठ भूमि मे वस्तुये एक उपभोक्ता के ससार में अकल्पनीय भव्यता के साथ प्रकट होती है। सुख, सुरक्षा और आनद का स्वर्गीय आश्वासन देती। इसी ओर सावधान करते हुये अशोक बाजपेयी कहते हैं– " राजनीति और तकनालाजी मिलकर हर जगह बेजा कब्जा करती जा रही है। इसमे शक नहीं कि बीसवीं शताब्दी के निकट इन सबके बीच, एक रचनाकार को एक जबर्दस्त आत्म संघर्ष से गुजरना होता है। क्यों कि अब चीजे उतनी सहज और सरल नही, जितनी कि दीखती हैं। लडाई दिनो–दिन जटिल होती जा रही है। आज जब सब कुछ ऊपर से इतना सहज और साधारण क्यो मान लिया जा रहा ? यहां रघुवीर सहायं की एक टिप्पणी को याद किया जा सकता है। उन्होंने लिखा था कि अपनी हर लडाई में हम उन्हीं के उद्देश्यों की पूर्ति कर रहे हैं जिनके विरुद्ध संघर्ष है। यह बात सचमुच भयावह रूप से इस वक्त सामने है। सत्ता के तत्र ने बहुत से रचनात्मक माध्यमो पर कब्जा कर लिया है और उन्हें वह अपने तरीके से इस्तेमाल कर रहा हैं। ये माध्यम समाज को तोड रहे हैं और अन्याय के खिलाफ मौन और प्रतिरोध की जगह हताशा और पैसिविटी को बढा रहे है। संस्कृति विचार इतिहास और सवेदना सबका एक खास तरह से केन्द्रीकरण हो रहा है। राजनीति मानव सबधो तक का तय कर रही है। मनुष्यता के सामान्य ज्ञान और अपने समय के समाज को लेकर मूलगामी जिज्ञासाओ का अब कोई अर्थ नहीं है। मनुष्यता और न्याय की जटिल संवेदनाओं का विकल्प अब प्रगति उपलिब्धयो के एक आयामी तथ्य और आकड़े बनेंगे।[1] सारी मानवीय गतिविधियों को केवल सांस्कृतिक हलचलो तक सीमित कर देने की यह पेशकश सचमुच भयावह है। एक विशिष्ट तरीके से व्यापक समाज के अवेचतन को गढा और नियंत्रित किया जा रहा है। यह एक नये प्रकार का सर्व सत्तावाद है। समकालीन रचनाकार के समक्ष यह एक नये प्रकार का संकट हैं। सच तो यह है कि कविता आज एक छद्म तरीके को प्रतिपादित करने की चुनौती से गुजर रही है।

---

१. विजय कुमार कविता की संगत –पृ० १०

कविता ने चुनौती को स्वीकार किया है। "भारतीय समाज मे उन्माद और उपभोग की इन नयी वास्तविकताओं में छिपी बर्बरता के सूक्ष्म रुपों की पडताल और एक बुनियादी नैतिक ताने बाने को बचाये रखने की चिंता हमारी समकालीन कविता की मुख्य चिंता है। जिस दौर में इतिहास के नकार के स्मृतिहीन उत्सव हो रहे हैं और कला की स्वायत्ता की चतुर रचनाये चल रही हैं उसी दौर में यह कविता मनुष्य होने के मूलभूत गरिमा से भी वंचित लाखो करोडो मनुष्यों की हीनता और दुखदर्द को समझना चाहती है।"[1]

यह कविता नैतिक मूल्यों पर आधारित जीवन दृष्टि तथा मनुष्य के बुनियादी राग व ऐंद्रिकता को बचाये रखने की कोशिश में अपनी सांस्कृतिक जडों, परम्पराओं और लोक जीवन के तत्वों की ओर भी लौटना चाहती है। विविधता की दृष्टि से यह कविता अपने पूर्ववर्ती किसी भी काल की कविता से कहीं अधिक विविधतापूर्ण और अनेक आयामी है। एक बुनियादी संवदेनशीलता और मानवीय व्यवहार को बचाये रखने का सघर्ष, हर परिवार की दुनिया, स्त्री और बच्चों के प्रति चिंता, जातीय स्मृतियों की खोज, रागात्मक जीवन का अंकन आदि वे तमाम बातें हैं जिन्होंने अस्सी के दशक मे कविता के परिप्रेक्ष्य को ज्यादा व्यापक और इसलिये ज्यादा 'रेडिकल' बनाया है। उपेक्षित और कमजोर तबकों के दुख के प्रति तदर्थवाद से हटकर, वास्तविक सहानुभूति की खोज और इस सब मे अपनी वर्गीय स्थिति का आत्मबोध इस कविता का मुख्य विकास रहा है। यह कविता कमजोर तबकों के भावविह्वल चित्र न होकर मनुष्य और मनुष्य के बीच उन जीवंत रिश्तों की खोज ज्यादा है जिन्हें शोषक व्यवस्था लगातार विरूपित करती जा रही है। यह बात इस दौर में उभरे कवि राजेश, अरुण, कमल, उदय प्रकाश, असद जैदी, विष्णु नागर, मंगलेश डबराल, ज्ञानेन्द्र पति, इब्बार रब्बी, देवी प्रसाद मिश्र, लीलाधर जगूडी, आलोक धन्वा आदि की कविता में अलग–अलग तरीकों और शैलियों से प्रमाणित होती है। मनुष्य के समुच्च्य यहां अरूप और अनाम लोगों की भीड नहीं, बल्कि जीवंत, सक्रिय और संघर्ष शील मानव इकाइयों के समुदाय हैं जिनके निश्चित वर्गगत आधार भौगोलिक परिवेश, उनसे उपजे मनोभाव, अभिप्राय और उद्देश्य है।"[2] अन्यायपूर्ण समाज–व्यवस्था में विराट मानव–समुदायों को निरूपित होते देखने के बाद का रास्ता इनके यहां सिनिसिज्म या रूमानी आक्रोश की ओर नहीं जाता, बल्कि इन घिरे हुये मनुष्यों से एक बुनियादी, गतिशील, ऐंद्रिक लगाव की ओर जाता है ताकि रचना इस अमानवीय तंत्र के सामने प्रतिपक्ष की भूमिका निभा सके।

यह एक ऐसी कविता है जिसने अपनी शक्ति और ऊर्जा को अपने अंदर समेटा है इन कविताओं में आस–पास के जटिल जीवन की मानवीय जिजीविका विश्वास और मूल्यों की सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है।

---

१. विजय कुमार–कविता की संगत–पृ० ११
२. विजय कुमार–कविता की संगत पृ० ४८

उसने मानवीय मूल्यों मे बुनियादी आस्था को अपनी रचनाधर्मिता और वैचारिक को केन्द्रीय भाव माना है। सही आस्था से संश्लिष्ट उसकी पक्षधरता, न सिर्फ प्रखर तरीके से उभरी है बल्कि उसमे संवेदनात्मक सघनता भी आयी है।आज की कविता के आत्म सघर्ष और उसकी उपलब्धियों का आंकलन करते हुए कुंवर नारायण इसीलिए कहते – " बदलते हुए संदर्भ में मनुष्य के सबसे कम उद्घाटित या विलुप्त होते, जीवन स्त्रोतों की खोज और भाषा में उनका संरक्षण शायद आज भी कविता की सबसे बडी ताकत है।"[1]

समकालीन कविता मे परम्परा और आधुनिकता के द्वंद्व को समझकर ही उसकी विशिष्टाताओं को रेखांकित किया जा सकता है। आज कविता ने अपने विकास की कई मंजिलें पार कर ली हैं। आज उसे किसी संकीर्ण नारे की जरूरत नही है। आज गहन मानवीय और सामाजिक सवेदना के प्रति वह कही अधिक जागरूक है। बनावटीपन अब उसकी सीमा नही रहा। परन्तु उसकी संभावनाये उसकी रचनात्मकता की शर्त पर ही स्वीकार की जा सकती है। इस रचनात्मकता का जीवन के साथ कोई विरोध नहीं है। जीवन को कितना जाना जा सकता है और रचनात्मक बनाया जा सकता है– यह कविता के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। इन कवियो की चिंता जीवन विकास की जटिलताओं और अंतर्विरोधों को रचनात्मक शक्ल में ढालकर आलोचनात्मक विवेक उत्पन्न करना कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। आज जिंदगी के सवाल कहीं अधिक उलझे और पेचीदा हो गये है। इसलिए सश्लिष्ट यथार्थ को रचना की शक्ल देना आसान नहीं। यही कारण है कि यथार्थ को एक सामाजिक ससार में ही पहचाना जा सकता है। समकालीन रचनाकार इसीलिए अपने आधार से जुडते हैं और मनुष्य की दुनिया के भीतर घुसते है। फलतः अनेक प्रकार से आम आदमी के जीवन पर लिखकर प्रगतिशील के लिए अपने समय की संघर्षशील जातीयता की खोज महतवपूर्ण खोज की है। फलतः इस संघर्ष का क्षेत्र भी व्यापक हुआ। यहां बदलते उजडते गाव है, समस्याग्रस्त किसान है बढते शहर फैक्ट्रियां, झोपडिया और श्रमिक हैं। औद्योगिक पूंजीवाद और उसकी लूट है। अपहरण आतक और धर्म का कारोबार करने वाला वर्ग है बाढ सूखे और भूकप है। इसलिए विस्थापित और शरणार्थियों की समस्या है। यहां जीवन रोमांस नहीं बल्कि तिक्त और तीखा है। यह कैसे है इसे समकालीन रचना परिदृश्य से भलीभांति जाना जा सकता है।

कविता को लेकर बहुत हल्ला भी मचता रहा हैं। एक दिलचस्प खोज तो यह है कि शताब्दी का अंत होते–होते कहानी की तरह कविता भी मृतप्राय हो गयी। आज बहुत से लेखक समीक्षकों ने इसके अंत की घोषणा कर दी। सांस्कृतिक विकास का हाल न जानने वाले ही ऐसी बातें करते मिलेगें। जैसे आज भी ऐसे लोग मिल जायेंगे जो छायावाद से आगे की हिन्दी कविता को नहीं जानते, नहीं मानते बावजूद इसके कि

---

१. कुंवर नारायण–आज और आज से पहले–पृ० ८५

कविता लिखी जा रही है और अच्छी कविता लिखी जा रही है। इस प्रकार समकालीन कविता के समाने भीतर और बाहर दोनो तरह की चुनौतिया है। भीतर कविता रचनाकारों के छोटे खेमों कलावादी रूपवादियो से तो बाहर मूल्यहीनता विचार शून्यता और दृष्टि विपन्नता से। मामला कविता के रचाव का हो या चेतना के स्तर पर, समाज से उसकी बदलती सास्कृतिक परिस्थितियो का, जिसमे यथार्थ के धरातल पर उतर रही इन चुनौतियों की पहचान के जरिये इसके वास्तविक कारणों को चिन्हित किया जा सकता है। जैसा कि राजेश जोशी कहते है– उन्होंने रंग उठाये। और आदमी को मार डाला। उन्होंने संगीत उठाया। और आदमी को मार डाला। उन्होंने शब्द उठाये। और आदमी को मार डाला। हत्या एकदम नया नुस्खा तलाश किया उन्होंने।" स्पष्ट है इस कविता की अनेकोन्मुखी चिंता ने उसकी संरचना और पद्धति को एक परिवर्तन कामी शक्ति के रूप मे स्थापित किया। यह सामाजिक घटनाओं के अंतर अन्वेषण की प्रवृत्ति और कार्यकाष्ठा की औचित्यपूर्ण श्रखला को पहचानने मे हमारी मदद करने का जज्बा है।

यह जज्बा तभी हो सकता है, जबकि वह ज्यादा अनुभूति प्रवण और अंतरंग हो। भावप्रवणता के ये गुण इस कविता में अनायास ही है। यही कारण हैं कि ये कवितायें जिंदगी के छोटे–छोटे सुखों की भी हिस्सेदारी में पीछे नहीं है। पूल, चटक रंग, पेड़, धूप और गिलहरी के इनमे असंख्य संदर्भ है। यहां कविता का इंद्रियबोध, उसकी प्रखर रागात्मकता के साथ बिंध कर आय है। यह पारदर्शी होने के कारण सहज, लेकिन गहन अतरंगता से युक्त कविताएं है। इस सामाजिक अतरंगता में वर्ग संरचना के सूत्र कुछ इस तरह क्रियाशील हो जाते हैं कि सामाजिक संरचना की नयी नयी भूमिका उद्घाटित होने लगती है। लेकिन वर्तमान मे जीती ये कवितायें परंपरा की उपेक्षा करने वाली कवितायें नहीं है। इनके यहां अतीत में जाने का अवसर किसी रोमांटिक भावबोध के स्तरपर न होकर वास्तविकता के सघन संसार को वर्तमान के यथार्थ बोध से संयुक्त करने का प्रयास है। इस क्रम मे देवी प्रसाद मिश्र की कवितायें उल्लेखनीय है, जहा परम्परा, अतीत और इतिहास को एकदम भिन्न दृष्टिकोण और नजरिये में देखने की कोशिश की गयी है। यहां परम्परा के जीवन अंशों का उपयोग आदमी को उसकी पहचान देने के लिए हुआ है। बहुसंरचनावादी समकालीन ढांचे में अतर्विरोधों और तनावो में भी विविधता होती हैं जो स्थिर न होकर गति अगति के बीच में अनेक स्तरों पर प्रकट होती है। एक रचनाकार इन्हीं समकालीन स्तरोंसे अपने यथार्थवाद को गढ़ता है। इसके लिए सामाजिक संबंधों की पहचान के लिए, उनका उपयोग करने के लिये, उसे अपने जनजीवन को व्यक्त करने हेतु तमाम औजारों की जरूरत होती है। इसीलिए समकालीन कविता अपनें बहुस्तरीय यथार्थ, बहुस्तरीय कथ्य के द्वारा अभिव्यंजित करती है। चूंकि कला की अंतः प्रतिबद्धता और उसका मूल स्वभाव महज इशारा भर नहीं है बल्कि इससे आगे बढ़कर वह जीवन प्रक्रिया को बदलने का संघर्ष होता है। फलतः यहां रचना पुनर्नवीकरण की प्रक्रिया में अपनी विकास परपरा से कटकर नहीं रहती बल्कि वह सामाजिक क्रिया शीलता की हिस्सेदार

बनकर आगे आती है। इस रूप मे यह बडी चिंताओं की कविता है। संकट ग्रस्त समय ने जैसे–जैसे अपनी क्रूर लीलाओ का बढाया है उसी अनुपात मे कविता ने अपनी धार को भी। यह एक ऐसी कविता है जिसने समकालीन समय की कठिन और ठोस सचाइयो से टकराने और समाज बदलने की दूरगामी लडाई में शामिल, नये आदमी की वास्तविक पहचान, को उभारा है। जो बार बार कहती है इस दुनिया मे बचे हुए हैं हम सुनते हुए अधूरी आकांक्षा की पदचाप। एक बर्फ की विशाल गरम घाटी में खिलने की कामना लिये। (कुमार अबुज)

****

अध्याय १—खण्ड ग
संवेदना स्थिति या प्रक्रिया :

जीवन को, उसकी घटनाओं को पूरी शिद्दत से देखना हमारी संवेदनाओं को विकसित करने की प्रक्रिया है। यह एक स्थिति तब होती है जबकि रचनाकार इन विशिष्ट परिस्थितियों में रहता है, परन्तु प्रक्रिया वह तब होती है जबकि अनुभव का दाय उसे मिलता है। कहने का तात्पर्य यह है कि स्थिति विशेष मे आने पर रचनात्मक आधार सुदृण होते हैं और विचार प्रक्रिया जो किसी घटना विशेष से सम्बद्ध होकर हमारे सामने अनुभव की वस्तु व मानसिक सामग्री बनकर सामने आती है। वैचारिक प्रक्रिया की यह स्थिति रचनाशीलता की मनोभूमि तो प्रदान करती है परन्तु स्वयं रचना नही बन पाती। विचार के इस स्तर पर रचनाशीलता का वह कच्चा माल प्रस्तुत करती है।

रचनाकार अपने युग और समाज से केवल प्रभावित ही नही होता वरन् वह सभी तथा भोक्ता भी होता है। यूं कि उसका अनुभव व्यक्तिगत नहीं होता इसलिए समाज की परिस्थितिया उसकी रचना के लिये सिर्फ आधार तैयार करती हैं। एक चित्रकार पहले एक बिम्ब की कल्पना करता है तथा बाद में इस बिम्ब से चित्र मे उभार कर उसकी पनर्रचना करता है। उसके कलाकर्म यही सार्थकता है। यही क्रम रचनाकार के साथ भी चलता है। रचनाकार के मस्तिष्क तक ही कोई विचार सीमित रहे तो उसका कोई सामाजिक मूल्य नही होता इसलिए जरूरी होता है कि रचनाकार उस विचार को अभिव्यक्ति दे। अनुभव की यह प्रक्रिया रचना की रचना प्रक्रिया से घनिष्ट रूप स सम्बद्ध होती है। प्रक्रिया से संवेदना की पूरी प्रणाली विकसित होती है। विकसित होती है, से मतलब एक स्थिति विशेष से बढकर एक अनुभव पकता है लेकिन वह एक रचना नही बनता। संवेदना जब प्रक्रिया से स्तर पर आती है तो हम भौतिक जगत से बढकर अनुभवात्मक जगत तथा तथा रचना जगत से बढकर अनुभवात्मक जगत तथा रचना जगत तक पहुँचते हैं, परन्तु प्रक्रिया के रचनात्मक जगत का विश्लेषण करने से पूर्व, इसके अनुभवात्मक जगत का विश्लेषण अपेक्षित है।

रचना मनुष्य के अनुभवशील निरीक्षक और संवेदनशील आस्वादक की सृष्टि है। अतीत को अपनी संवेदना मे घोलकर ,वर्तमान का सीधा साक्षात्कार करता हुआ रचनाकार सृष्टि का समूचा आत्मस्वीकृत रूप तैयार करता है। उसकी आत्मस्वीकृति बिम्ब रूप मे होती है उसके अंतस मे एक चित्र बनता है। चित्र का आधार, घटनाओं पर प्रत्यक्ष रेखाओं के बजाय अमूर्त अनुभव होते हैं।यह चित्र रचना के क्षणों मे अनुभूत्यात्मक स्थितियों को सामने लाते हैं। सारा सांस्कृतिक जीवन, जो मूर्त रूप मे है, घुट-घुट कर अनुभव बनने की प्रक्रिया मे अमूर्त होता रहता है। अनुभव का लम्बा क्रम आदमी को सत्य के नजदीक लाता है। जिसका अनुभव विशाल होता है, उसका सत्य उतना ही समर्थ होता है।अनुभव की उपस्थिति किसी भी स्तर पर और

कहीं भी प्राप्त हो सकती है। यह हमारी वाह्य इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हो सकता है, यह हमें मानसिक स्तर पर विचारों द्वारा सम्प्रेषित हो सकता है। वाह्य और अन्तर का यह ज्ञान वास्तव मे, एक स्थिति है जो ज्ञान का आधार बनती है। मोटे अर्थों में तो प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना, उसका अनुभव करना और फिर उस वस्तु या परिस्थिति की अनुपस्थिति में पुनः अनुभव का दोहराव – सवेदना का निर्माण करता है । इस प्रकार संवेदना अपने स्वरूप मे बहुत सूक्ष्म होती है। संवेदना, वैचारिक स्थितियो के सश्लेष को बताता है। किन्ही स्थितियों का ज्ञान प्राप्त करना ही संवेदना नही है अपितु यह अन्तरकी प्रक्रिया है, जहा एक प्राप्त अनुभव का इस्तेमाल दूसरी जगह ज्यादा अर्थपूर्ण तरीके से हो। वहॉ प्रत्यक्ष ज्ञान का सीधा उपयोग न करते हुये भी उस प्रत्यक्ष ज्ञान से मिले अनुभव को अपने मे एक रचनाकार पचाता है। और फिर घटना विशिष्ट के संदर्भ मे पूरी ईमानदारी से अपनी संवेदना का विषय बनाता है। इसलिये सवेदना ज्ञान के स्रोत से आगे बढकर कुछ और है जहॉ ज्ञान का उपयोग सृजनात्मक स्तर पर होता है।

यह सम्पूर्ण प्रक्रिया रचनात्मकता को ज्यादा संश्लिष्ट बनाती है। उसे वह उस बिंदु तक पहुंचने में सहायता देती है जहॉ से वह हृदय के समस्त भावबोध का आकलन कर सके। जहां अपने को वह तर्कवाद से आगे बढकर रसदशा को प्राप्त कर सके। इस दशा की प्राप्ति, सृजन का अमूल्य क्षण होती है। सृजन की पूरी अर्थवत्ता यहां पर प्रकट होती है। इस प्रकार संवेदना की अवस्थिति प्रक्रिया में है, और प्रक्रिया एक वायवीय रहने वाली वस्तु नहीं है ; अपितु यह सृजनशील मानस की थाती होती हैं। इसे रचना प्रक्रिया भी कहा जा सकता है। "सृजन प्रक्रिया के मूल में लेखक होता है जबकि अधिगम प्रक्रिया की शुरुआत पाठक से होती है। एक श्रेष्ठ सत्य सम्प्रेषण और चिरजीवी रचना वह होती है जिसमें ये दोनों प्रक्रियायें एकान्वित हो जाती है। यह एकान्विति अत्यन्त सूक्ष्म रूप में सृजन् प्रक्रिया के दौर मे रचनाकार के स्तर पर ही घटित होती है।"[1]

रचना प्रक्रिया की शर्ते किसी भी रचनाकार के लिए भिन्न स्थितियो के बावजूद लगभग एक सी होती हैं। यह कार्य–व्यापार हमारी परिस्थिति, परिवेश व पर्यावरण के भिन्न होने के बावजूद मानसिक स्तर पर एक सा होता है। यह रचनात्मक द्वंद्व है, जो प्रत्येक मननशील व्यक्ति में होता है । सृजन के क्षणों के पहले की बेचैनी हर रचनाकार में होती है। यह ऐंठन तब तक चलती है जब तक सोचा गया, अनुभूत अंश विचार के रूप में न उतरे। कुम्हार की चाक पर चढने के पूर्व माटी के लोंदे सा अस्पष्ट अनुभव रचनात्मक द्वंद्व की सान पर चढकर ही धार पाता है । वैचारिक उत्तेजना, वैचारिक टकराहट से ही उत्पन्न होती है।यह ऊर्जा का क्षरण नहीं, ऊर्जा का विस्तार हैं।

---

१. शंभूगुप्त–लोकधर्मी काव्य भाषा और समकालीन कविता–निष्कर्ष १९–२०–जुलाई १९९२–पृ० ८९

लेकिन ऊर्जा के इस विस्तार में पाठक की उपस्थिति भी महत्वपूर्ण होती है। रचना–प्रक्रिया के दौरान पाठक की उपस्थिति का अर्थ अत्यंत व्यापक है। पाठक यहां अकेला नही आता अपितु उसके साथ उसका वह सारा संसार भी आता है, जिनके बीच वह जी रहा होता है। कहना न होगा कि पाठक के साथ–साथ स्वयं लेखक भी इसी संसार के बीच जी रहा होता है। "क्योंकि कोई कवि अपने चौतरफा से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इस चौतरफा की, कविता की रचना प्रक्रिया में, मेरी दृष्टि में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यही वह तत्व है जो एक कवि की जिज्ञासा होने को विवश करता है।"[1]

मानव जीवन और अनुभव अपने में जटिल संश्लिष्ट तथा गतिशील प्रक्रिया है। इस अनुभूति को खण्डित होने दिये बिना कविता उसकी पुर्नरचना करती है। और सर्जना का सूक्ष्मतम रूप यह संश्लिष्ट पुनर्रचना भाषिक संरचना या कि काव्य भाषा में सबसे अधिक सम्भव होती है–बिंब प्रक्रिया से , जो अपनी प्रकृति में अर्थ के द्वंद्व को परिचालित करती हुयी भी अर्थ और अनुभव के अद्वैतकी ओर उन्मुख है।

रचना प्रक्रिया के अंतर्गत सर्व प्रथम विवेच्य विषय हैं–काव्यानुभूति। परम्परागत भारतीय व पश्चिमी चिंतन दोनो में इस पर बहुत विचार किया गया है। पश्चिमी साहित्य शास्त्र में रचनात्मक अनुभव (क्रियेटिव एक्सपीरिंएंस) और रचनात्मक शान्ति (क्रियेटिव एनर्जी) आदि पक्षों पर बहुत पहले से और बहुत व्यापक रूप से विचार किया जाता रहा हैं।भारतीय चिंताधारा में सर्वाधिक बल ग्रहण–प्रक्रिया पर दिया गया और इसी दिशा में काव्य के प्रतिमानों को प्रस्तुत एवं प्रतिष्ठित किया गया। काव्य की लोकोन्मुख एवं आध्यात्मिक प्रकृति के अनुकूल वह था भी। पश्चिम में रचना प्रक्रिया पर सांगोपाग विवेचना स्वयं रचनाकारों द्वारा किया गया है। उदाहरण स्वरूप विलियम वर्डस्वर्थ का नाम लिया जा सकता है जिसने अपनी काव्य–सृजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को काव्य की अपनी परिभाषा में ही व्याख्यायित करता चलता है। वर्डस्वर्थ के अनुसार पहले कवि को किसी वस्तु, घटना, क्रिया आदि का इंद्रिय बोध होता है।इसके बाद वस्तु के अप्रत्यक्ष होने पर, शांति के क्षणो मे, उस भाव पर वह गहन चिंतन और मनन करता है। इसकी परिणति, मन में मूलभाव–जैसे भावों के जागरण से होती है।उसकी बाह्य अभिव्यक्ति द्वारा कविता अस्तित्व में आती हैं। उनके अनुसार–

१– काब्य रचना–प्रक्रिया के प्रथम चरण में भावों का आनायास उच्छलन अथवा उत्प्रवाह होता है।

२– दूसरे चरण में शांति के क्षणों और प्रशांत मनोदशा में उन भावों का अनुस्मरण होता है जो केवल बौद्धिक स्मरण मात्र न होकर मानसिक भावना की क्रिया होती है! जिससे प्रशांत मनोदशा से उदीप्त भाव दशा अस्तित्व में आती है।

1- शंभूगुप्त–लोकधर्मी काव्य भाषा और समकालीन कविता–निष्कर्ष १९–२०–जुलाई १९९२–पृ० ८९

३— इसी भावोद्दीप्त मनोदशा में काव्य की बाह्य अभिव्यक्ति आरम्भ होती है और भावदशा के साथ उसका विकास होता है।

४— भाव आनद से पूर्ण, आनदान्वेष्ठित होते हैं अत इस अवस्था मे कवि स्वयं आनन्दाभूति की स्थिति मे रहता है।

५— कवि की यही आनन्दानुभूति काव्याध्ययन द्वारा पाठक मे भी समानान्तर आनंद सृजन का कारण बनती है।

वर्डस्वर्थ काव्य—रचनामें प्रकृति के अनिवार्य महत्व को रेखांकित करते हुए कवि की निश्च्छलता, सच्चाई और ईमानदारी को महत्वपूर्ण तत्व मानता है। स्वयं भाव का मोती हुये बिना कोई कवि सफल काव्य का सृजन और सम्प्रेषण नहीं कर सकता। भावन की तीव्रता को भी वह अनिवार्य मानता है। कविता को सुधारने के लिए वह अधिकाधिक चिंतन, मनन परीक्षण और पुनर्परीक्षण के महत्व और उपयोगिता को स्वीकार करता है।

रचना प्रक्रिया के संदर्भ में कॉलरिज का मानना है कि अनुभूति, संवेदना और भाव का समन्वय ही कला सृजन का आधार है। कॉलरिज का मानना है कि कलाकार के मन में किन्ही अज्ञात और अव्याख्येय कारणो से भावान्दोलन होता है। वह अभिव्यक्ति मार्ग का अनुसंधान करता है। अभिव्यक्ति के माध्यम से, भेद से ही, कलाओ मे भेद की स्थितिबनती है। अर्थात् शब्द स्वर और रग आदि के माध्यम से साहित्य, संगीत और चित्रकला का जन्म होता है। इस प्रकार माध्यम का भेद कलाभेद का कारण है। पर चूंकि भाव सब में समान होता है अत वह सबको परस्पर सम्बद्ध करता है। वह अभेद की स्थिति पैदा करता है और कलात्मकता का यही आधार है। भाव के द्वारा उद्बुद्ध अंतः प्रेरणा की अवस्था, मे कलाकार अपने देशकाल से अतीत होने लगता है। निजता और व्यक्तित्व—बोध का लोप होने लगता है। और वह कल्पना द्वारा उस आनन्द दशा में विषय—वस्तु, रूप और माध्यम के समन्वय या तादात्म्य में प्रवृत्त होता है। अंतः प्रेरणा का यह सिद्धांत कला की आत्मिक अनुभूति और तज्जन्य आत्मिक—आनंद को रेखाकित करता है।

सर्जन की क्रिया प्रतिभा द्वारा संचालित है। रचना के सृजन के समय प्रतिभा आत्मबोध की स्थिति मे न होकर, सर्जनात्मक कल्पना के अधिकार मे होती है। यही कारण है कि जो अनुभव सामान्य व्यक्ति को प्रभावहीन और अनुभूति हीन छोड़ जाते है, वही प्रतिभाशाली कलाकार को अद्भुत अनुभवों से गुजर कर मरणासन्न बना देते है। कॉलरिज के अनुसार काव्य की वस्तु, कवि के व्यक्तित्व से पूर्णतः निरपेक्ष, दूरवर्ती होनी चाहिये। यह दूरत्व ही प्रतिभा की पहचान है। इस अवैयक्तिकता से ही कला में सर्जनशीलता आती है। सार्वजनीन भावों की अभिव्यक्ति के लिए माध्यम अपेक्षित है, अतः काव्य में प्रतीक योजना और व्यंजनावृत्ति यह कार्य सम्पन्न करते है। प्रतीक, समन्वय को विशेष में ढालकर अनुभव बनाते है। इसी प्रकार भावों में व्यंजना—शक्ति का प्रयोग, भाषा की कमजोरियों और अक्षमताओं को दूर करके, उसकी अनन्त और सुन्दर अर्थ

सम्पादन की क्षमताओं के बांध खोल देती है। कॉलरिज के अनुसार यह व्यंजना की ही विशेषता है कि अच्छी कलाकृति या अच्छा काव्य बार–बारदेखने और बार बार पढने पर भी आहलादित करता है। उससे हर बार नवीन सौन्दर्य, नवीन आनन्द और नवीन आकर्षण प्राप्त होता है। मैथ्यू अर्नाल्ड का मानना है कि कवि का व्यक्तित्व उसकी रचना में अभिव्यक्त होता है, और उसके व्यक्तित्व के निर्माण में कवि के जन्म, परिवेश, परिवार, मित्र–वर्ग जीवन से संबंद्ध छोटी बडी घटनायें, शिक्षा दीक्षा, सफलता विफलता अदि की अन्यतम महत्व होता है । अतः किसी भी रचना के मूल्यांकन में, उसके रचयिता के युग परिवेश और जीवनी का सम्यक परिचय आलोचक को प्राप्त होना चाहिये। तात्पर्य यह कि कवि की रचना प्रक्रिया मे उसके आस पास की वातावरण व कवि की निजी जीवनही सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। लेव तॉलस्तांय रचना और कला तथा उसकी प्रक्रिया की आख्या इन शब्दों में करते है। जो भावना किसी ने पहले अनुभव की हो, उसे स्वयं मे जगाना और स्वयं भंगिमाओं, रेखाओं, रंगों, ध्वनियों, या शब्दों में व्यंजित रूप प्रकारो द्वारा इस भावना को इस प्रकार व्यक्त करना कि दूसरे भी उसका अनुभव करें, यही कला की या सृजन की प्रक्रिया है। परन्तु ऐसी अभिव्यक्ति के कलाकृति बनने के लिए वह तीन अनिवार्य शर्तो का प्रावधान करते है–

१– इसमें ऐसी नवीनता होनी चाहिये जो विचार वस्तु को मानवता के लिए महत्वपूर्ण बना दे।

२– वह विचार तत्व इतनी स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हुआ हो, कि यह सबकी समझ मे आ सकें।

३– और रचना के लिए कलाकार का प्रेरक तत्व कोई बाहरी प्रयोजन या स्वार्थ न होकर अभिव्यक्ति की आंतरिक अनिवार्यता और प्रेरणा हो।

तॉलस्ताय मानते थे कि कला या सृजन ऐसी मानवीय क्रिया है, जिसमें एक व्यक्ति सचेतन रूप मे अन्य सकेतो द्वारा स्वानुभूत भावनाओ को अन्यों के लिए सम्प्रेषित करता है। इस प्रकार दूसरों में भी वे हो भावनायें जागृत होती है और वे भी उनका अनुभव करते है। तॉलस्ताय के अनुसार कला, मानव जीवन उसके विकास, उसकी प्रगति और उसके कल्याण से सम्बद्ध सामान्य भावनाओं के सूत्र में सबको बाध देने का सर्वोत्तम साधन है। मनुष्य और मनुष्य के बीच एकता की स्थापना का कला से अधिक सार्थक और उपयोगी साधन और दूसरा कोई नहीं हो सकता है। इस संदर्भ में २०वीं शती का उद्‌भट विचारक एलियट अपनी रचनाशीलता को उद्‌घाटित करते हुए स्वयं को अपने काव्य की कर्मशाला (वर्कशाप) और अपनी आलोचना को उसका उपजात (बाईप्रोडक्ट) कहता है। अपनी आलोचना को अपने काव्य–सृजन के प्रसंग मे अपने चिन्तन मनन की परिणति और अपने चिन्तन–मनन का प्रयास मानता हैं। इसलिए उसका सृजन और समीक्षा अन्योन्याश्रित है। अपनी आलोचना में वह 'परम्परा' को बहुत महत्व देता है। परम्परा के जीवंत विकास का ही परिणाम वह मानता है जिससे आत्मनिष्ठ (सब्जक्टिव) अंश स्वतः गौण हो जाता है, और वस्तुनिष्ठता (औबजेक्टिविटी) के महत्ता एवं प्रमुखता प्राप्त होती है। इसी क्रम में सृजन के निवैयक्तिक होने की शर्त को

एलियट ने अनिवार्य माना है, वह कवि के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को निरर्थक मानता है। कवि अपने व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करता ही नही। वह एक माध्यम मात्र है जिसमे सस्कार और अनुभूतिया विलक्षण तथा अप्रत्याशित रूप मे सयोजित होती है। वह ऐसा पात्र है जिसमें अनन्त सवेदन विचारखण्ड, बिंब आदि सचित रहते हैं और तब तक वैसे ही पडे रहते है, जब तक सर्जन का क्षण नही आता। सर्जन का क्षण आते ही वे अपना अपना स्वरूप त्याग कर और नये रूपों में संयोजित होकर अपना स्वरूप त्याग कर और नये रूपोमे सयोजित होकर कला का विग्रह धारण कर लेते है। इसलिए महत्व कवि के व्यक्तित्व का नही है। महत्व उसके भावों या वस्तु गत घटकों का भीनहीं है। महत्व कलात्मक प्रक्रिया की घटको का भी नहीं है। महत्व कलात्मक प्रक्रिया की तीव्रता का उसके दबाव का है जिसमे विभिन्न भावों का संयोजन या विलयन होता है और वे घुलमिलकर एक हो जाते है। यहा वैयक्तिक प्रज्ञा का महत्व तो ही है पर व्यक्तित्व का नही। वस्तुतः काव्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति न होकर व्यक्तित्व से मुक्ति है– व्यक्तित्व से पलायन है। इसलिए वह कहता है कि व्यक्तिगत भावों का प्रकाशन कला नहीं है, वरन् उनसे पलायन कला है। निजता त्याग और निजता का निरन्तर निषेध कवि के सृजन की प्रक्रिया है। कविता लिखने का अनुभव किसी प्रकार का दर्शन (विजन) नहीं है वरन् यह एक प्रक्रिया है जो कागज पर शब्द–संयोजन में प्राप्त होती है। भावों की महानता और तीव्रता नहीं वरन् सृजन–प्रक्रिया के इस दबाव की उत्कटता महत्वपूर्ण होती है, जिसके कारण रचना भी उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार की यह काव्य सृजन सबंधी मत अपने पूरे स्वरूप मे नव समीक्षा संबंधी आग्रह से युक्त है जिसने समकालीन रचनााशीलता को भी बहुत ज्यादा प्रभावित किया है। वस्तुतः भावनाओ को आंदोलित करने की जो शक्ति साहित्य मे है, वह किंसी अन्य माध्यम मे नही। आधुनिक युग मे बौद्धिकता के विकास के साथ–साथ, अब मानव जीवन मे परिवर्तित दृष्टिकोण का आगमन हुआ। साहित्य ने इस बात को समझा है। आज समाज देश एवं विश्व की बदलती स्थितियों ने मनुष्य को अपने अस्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग बना दिया है। विज्ञान के आलोक में उसका मानस इतना तर्कशील एव शकालु हो उठा कि परम्परा से मान्य तथ्यों को भी बिना प्रश्न चिन्ह लगाये वह नहीं रह सकता। जीवन की जटिलतायें, एक रचनाकार को आंदोलित कर, उसकी रचनादृष्टि में उदित होने लगी है। परिणामस्वरूप कृति की प्रकृति को पूर्णरूपेण समझने के लिए कवि के अन्तः पक्ष अथवा रचना प्रक्रिया के साथ साक्षात्कार, वर्तमान चिंतन के लिए अनिवार्य हो उठा।

आज लगभग सभी सर्जक एवं समीक्षक इस बात से सहमत हैं कि जीवनानुभूति एक विशेष प्रक्रिया में कलात्मक अनुभूति में परिणत होती है। अतीत को संवेदना में घोलकर, वर्तमान का सीधा साक्षात्कार करता हुआ रचनाकार सृष्टि का समूचा आत्म स्वीकृत रूप तैयार करता है। सारा सांसरिक जीवन, जो मूर्तरूप में है,

घुट–घुट कर अनुभव बनने की प्रक्रिया में अमूर्त होता रहता है। अनुभव का लम्बा क्रम आदमी को सत्य के नजदीक लाता है। जिसका अनुभव जितना विशाल होता है। उसका सत्य उतना ही समर्थ होता है।

वस्तुतः कृति का निर्माण भौतिक निर्माण से भिन्न होता है। एक रचना में सजीव विशिष्टता का अत्यधिक महत्व होता है। एक ईमानदार रचनाकार अपनी मौलिकता के आधार पर भौतिक जीवन की सम्पूर्ण अपूर्णता को, रचना प्रक्रिया मे पूर्णता व संतुष्ट प्रदान करती है। यह सजीव विशिष्टता को आचार्य भामह ने प्रतिभा, व्युप्तत्ति और अभ्यास के साथ जोड़कर देखा। वे इन तीनों के काव्य–हेतु बताते हैं यानी रचना प्रक्रिया की शर्त। आगे इन्हीं हेतुओं की तरह–तरह मीमांसा हुयी लेकिन भामह का मत खंडित न किया जा सका। आचार्य दंडी को छोडकर प्रायः सभी आचार्यों ने इन हेतुओं में सर्वप्रधान प्रतिभा को ही माना।

यद्यपि काव्य शास्त्रियों ने कवि को संदर्भ में ही प्रतिभा का इस्तेमाल किया लेकिन किसी भी विशिष्ट ज्ञान या उपलब्धि में यह हेतु रूप में विद्यमान रहती है। हम वैज्ञानिक प्रतिभा, राजनैतिक प्रतिभा, दार्शनिक प्रतिभा आदि प्रायोग बार–बार देखते ही हैं। असल में प्रतिभा अंतः शक्ति की विरल और विशिष्ट उद्‌भावना है। जहां तक कवि प्रतिभा का संबंध है गहरे संवेदन में अनुभूत करने, प्रतिमा (इमेज) रचने की क्षमता, चीजों और विचारों के अंतः गूढ सहसंबंधों, अंतर्विरोधों या जटिलताओं की पहचान और संप्रेषण की अद्‌भुत क्षमता वाली अभिव्यक्ति प्रतिभा के लक्षण है।"[1] अभिनव गुप्त ने अपूर्ण वस्तु के निर्माण में सक्षम प्रज्ञा को, और भट्‌टोत ने नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञा को प्रतिभा कहा है। दोनोही अपूर्वता, प्रज्ञा और कल्पनात्मक नवसृजन को प्रतिभा मानते है। जाहिर कि प्रतिभा को ईश्वर प्रदत्त मानते हुए भी इन आचार्यों का बल, उसके प्रज्ञात्मक स्वरूप पर है। इस तरह सचेतन ज्ञानवृत्ति को कविता के हेतु रूप मे महत्व दिया गया है।

कवि का प्रतिभावान होना ही काफी नहीं है। उसे प्रतिभा को विभिन्न उपादनों से खरा और समृद्ध करना होता है। इसीलिए भारतीय मनीषियों ने प्रतिभा के साथ व्युत्पत्ति और अभ्यास को भी काव्य हेतु माना है। ये हेतु एक प्रकार से कविता के उत्पन्न होने समृद्ध होने, और अभिवक्ति में परिवर्तित होने को व्याख्यायित करते है। प्रतिभा अतः शक्ति का स्रोत है, और रचना का स्त्रोत है – व्युत्पत्ति। जहाँ तक अनुभव संसार के पुनसृर्जन का प्रश्न है तो वहां अभ्यास अमीष्ट है । "यहां सुविधा के लिए वर्गीकरण भले कर लिया गया हो लेकिन प्रतिभा, अभ्यास और व्युत्पत्ति दोनों में निहित रहती है। कोरा ज्ञान और छंद का निर्माण, व्यंजना का अभ्यास किसी को कवि नहीं बताता है। प्रतिभा एक अग्नि है, जिसके बिना दिया, बाती और तेज प्रकाश नहीं कर सकते। परन्तु प्रतिभा की अनवरत दीप्ति के लिए शेष दो उपादानों की जरूरत बनी रहेगी।"[2]

---

१. प्रभाकर श्रोत्रिय–कविता की तीसरी आंख–पृ० ८८
२. प्रभाकर श्रोत्रिय–कविता की तीसरी आंख–पृ० ८९

प्रतिभा एक आग है, जो बिना किसी आतरिक उत्प्रेरण अथवा संघर्ष के ज्वलित नहीं होती। "प्रतिभा मे विक्षोभ पैदा करने वाला आघात प्रेरणा है। प्रेरणा कोई देववाणी नही है, वह ससार की घटनाओं प्रभावो और यथार्थ अनुभवो के संघात से उत्पन्न उत्तेजना है जो प्रतिभा को सृजन के लिए भीतर से उकसाती है। यह कोई क्षणिक इलहाम नहीं हैं वह जीवन पर्यंत अर्जित घटनाओं और संवेदना का पूंजीभूत रूप भी हो सकती है और एक पूरे कवि के परे काव्य जीवन में सचरित भी हो सकती है। इसके सैकडों प्रमाण हैं। परन्तु प्रेरणा तभी सार्थक हो पाती है जब कि वह रचना मे रूपायित हो और वह रचनामे तभी रूपायित हो पाती है जबकि काव्यानुभूति का रूप ले ले।"[1] प्रेरणा काव्यानुभूति में तब्दील होकर प्रतिभा को केवल उकसाती ही नही रचना के दौरान प्रत्येक पल कवि के साथ रहती है। जिस जगह प्रेरणा रचना का साथ छोड देती है रचना निर्जीव औपचारिकता से ज्यादा नहीं रह पाती। श्रेष्ठ कृतित्व को प्रेरणा आर–पार बीधे रहती है। कुछ रचनायें कुछ दूर चलने के बाद या कोई कविता पंक्ति दो पंक्ति चलने के बाद घिसटने लगती है इसका कारण ही यह है कि प्रेरणा ने रचना का साथ छोड दिया। बहुत कम रचनाकार होते हैं जो यह सवाल उठाते हैं कि आखिर रचना ही क्यों ? क्यो कि इस सवाल के साथ ही यह सवाल भी उठता है कि साहित्य किसके लिए ? उसका प्रयोजन क्या है ? और इससे भी कम लोग होते हैं, जो इन प्रश्नों का सही उत्तर समझते हैं। "यह सवाल हर सही रचनाकार को रचनात्मक शक्ति के वेग के कारण पूछना ही पडता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसकी रचना साहित्य को विकसित नहीं कर सकती। यह प्रश्न अपने से पूर्व की रचनाओं की प्रासंगिकता से ही सम्बद्ध नही है, बल्कि अपने युग की रचनात्मक शक्तियो की मांग से भी सम्बद्ध है।"[2] और यह बात ही प्रेरणा से सम्बद्ध है क्यो कि साहित्य की मूल प्रेरणा जन ही और इस जन के समूह से बनी समाज ही हो सकता है। क्योकि इस प्रश्न में ऐतिहासिक सामाजिक शक्तियों के दबाव के फलस्वरूप बदली हुयी सामाजिक परिस्थिति के कारण विकसित हुए नये मानव सम्बधों के सन्दर्भ में रचना के अर्थ के बदल जाने की स्वीकृति भी है। "आम राय बनानी है कि रचना तात्कालिक मनोवेग नहीं होती। उसमे आदमी की सजग मनंसा की अभिव्यक्ति होती है।"[3]

इतिहास की जनवादी व्याख्या के अनुसार आदमी अपने संस्कार गढ लेता है। वे संस्कार उसे एक नियम का बोध कराते हैं और नियमों में वस्तुवादी यथार्थ की परीक्षा का ली जाती है। रचनाकार अपने मानस में लंबे समय से चलती हुयीइस प्रक्रिया को जाने या समझबूझ न पाये परन्तु यथार्थ जीवन के सम्पर्क के

---

१. प्रभाकर श्रोत्रिय–कविता की तीसरी आंख–पृ० ६०
२. डा० सत्यप्रकाश मिश्र–मुक्ति बोध साहित्य पुनर्विचार के लिए कुछ नोट्स पक्षधर पृ० ५१
३. डा. शिव कुमार मिश्र–मार्क्सवादी साहित्य चिंतन–पृ० ३६६

रचना की बीज वस्तुओ उसके मानस में एक लंबे समय एकाग्र होती रहती है। उनमें पारस्परिक क्रिया–प्रतिक्रिया होती रहती हैं और एक विशेष उत्तेजक क्षण में वे एक निश्चित रूप में ढलकर उसकी रचना या कला मे अभिव्यक्ति होती है।"[1]

परन्तु रचना की यह प्रक्रिया अज्ञेय के लिए पूर्ण रूपेण विवेच्य नहीं है.। इस संबंध में उनका कथन है कि "रचना की प्रेरणा जिन अभ्यंतर तनावों, दबावों, दमन उन्नयन की क्रियाओं से मिलती है। वे जिन गुत्थियों के साथ अभिन्न रूप से सग्रहित होती है, उन्हें कलकार नही देख सकता। देख सकता तो वे हल हो जाती। उनमें शक्ति संचय न हो पाता। उनकी शक्ति का रहस्य और प्रतिज्ञा यही है कि वे कृतिकार के लिए रचना–प्रक्रिया पर बल देना आवश्यक हो गया है। वहां पर अपनी रचना–प्रक्रिया के बारे में कोई प्रामाणिक बात नहीं कह सकता।"[2]

अज्ञेय के अनुसार सृजन के क्षण में कवि एक ऐसी निर्व्यक्तीकरण की स्थिति में पहुच जाता है जहा सर्जनात्मक संभावनायें अनन्त हो उठती है। कवि स्वयं इन समस्त संभावनाओं के प्रति सतर्क नही रहता अर्थात कृति मे अभिव्यक्ति ऊधिकांश अवचेतन कीउपज होता है। अज्ञेय विश्लेषण में सामान्य कलाकार की रचना प्रक्रिया की बात करते है। अज्ञेय के अनुसार जहा तक बोध साथ दे सकता है, वहां तक किसी कृतिकार की रचना–प्रक्रिया का विश्लेषण कर सकना यह सर्वथा असम्भव है। इस कठिनाई का कारण बताते हुए अज्ञेय ने कहा है कि यह प्रक्रिया एक तनाव की स्थिति है जो ग्रंथियों के कारण सम्भव है और यदि बोध की किरणें उस ग्रंथि पर पहुंच जायें तो तनाव आता, सश्लिष्टता आदि सर्जना के गुण न आ पाये।

वस्तुतः जीवनानुभूति और सर्जनानुभूति में अतर होता है क्यो कि जीवन के यथार्थ, कलात्मक अभिव्यक्ति मे कुछ न कुछ अदश्य ही रूपांतरित हो जो जाते हैं– चाहे वे अनुभव से प्रसूत फैण्टेसी के हों, या ग्रंथियों से प्रेरित तनाव की स्थितिसे निष्पन्न हो अथवा किसी पूर्व कालिक घटना या अनुभव से प्राप्त विकसित रूप से प्राप्त हों। इस संदर्भ में मुक्तिबोध का कहनाहै कि "यह अनिवार्य नहीं कि काव्य की वास्तविक रचना का क्षण युगपद् रूप से हृदय के द्रवण का चित्त की रसात्मकता का भी क्षण हो। हृदय मेंसंचित प्रतिक्रियायें– अनुभव, आवेश, भय, अनुरोध, आप्तरचना शक्तियां जो हृदय में संचित है। उत्थित तरंगित और प्रवाहित होकर संवेदनात्मक उद्देश्यों की दिशा में जब उमड़ने लगती है साथ ही जीवन दृष्टि से ज्योतित होकर अंतस् के सम्मुख दृश्यगान होने लगती हैं, तब वस्तुतः हमें एस्थेटिक इमोशन प्राप्त होती है।"[3] इन पंक्तियों में जीवनुभूति

---

१. डा. शिव कुमार मिश्र–मार्क्सवादी साहित्य चिंतन–पृ० ३६६
२. अज्ञेय–हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य–पृ० १३५–३६
३. मुक्तिबोध–नयी कविता का आत्म संघर्ष–पृ० १६

से सर्जनात्मक अनुभूति का अन्तर अधिक स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। मुक्तिबोध ने सर्जनानुभूति की विशिष्टता को उद्घाटित करने के लिए ही एस्थेटिक इमोशन की संज्ञा द्वाराउसे भिन्न बताया है। इस प्रकार जीवनानुभूति व्यक्तिगत सदर्भों की होती है फलतः अतिरिक्त आवेश, कटुत और तिक्तता से संवलित होती है किन्तु सर्जनात्मक अनुभूति निवैयक्तिक और सयमित होती है।

परन्तु अज्ञेय और मुक्तिबोध की निर्वैयक्तिक्ता में अंतर है। "मुक्तिबोध यह मानते हैं कि व्यक्ति जैसे मनुष्य होता है और उसमें व्यक्ति से मनुष्य और मनुष्य से व्यक्ति बनने की सामर्थ्य बनी रहती है वैसे ही साहित्य मे भी व्यापक मानवीयता की निरतर सभ्रवना बनी रहती है। इस व्यापक मानवीयता की वास्तविकता में सदेह हो सकता है परन्तु मनुष्य की क्रेन्द्रीयता या उसकी सामूहिक संकल्प शक्ति पर संदेह तो समस्त ऐतिहासिक विकास प्रकृति के ही विपरीत है।मनुष्य में अपने से ऊपर उठने की, अपने से परे जाकर सबके लिए कहने की इच्छा या आकांक्षा होती है। वही आकंक्षा साहित्य को, मुक्ति बोध के अनुसार, साहित्यकता प्रदान करती है। वे अपनी सभी रचनाओ में व्यक्तिवादी चेतना में बदलाव की आकाक्षा रखते रहे।"[1] इसीलिए उन्होने सवाल उठाया कि रचना ही क्यों ? कला के दूसरे क्षण के विवेचन में उन्होंने निजत्व से मुक्ति का संकेत किया है। 'व्यतित्वान्तरित' होने की प्रक्रिया कला के इस दूसरे क्षण की अनिवार्यता है और बिना इसके रचना केवल प्रतिक्रिया, आवेग या कुंठा मात्र महान होगी। एक अर्थ में टी.एस. एलियट की निर्वैयक्तिकता का भी इसी अर्थ में तात्पर्य हैं। परन्तु टी.एस. एलियट की इस धारणा मे उसके सामाजिक परिवेश का वर्गीय चरित्र भी है। वह निवैयक्तिकता को व्यापक मानवीयता का पर्याय नहीं मानता है जबकि मुक्तिबोध इस निजत्व बोध को निजत्व मुक्ति के रूप में विश्व मानवता या व्यापकतर सत्ता के बोध का पर्याय मानते है। "मेरा अपना ख्याल है (बहुत से लोग इसे नहीं मानेंगे ही) प्रत्येक आत्मचेता व्यक्ति को अपनी मुक्ति की खोज होती है। और वह किसी व्यापकतर सत्ता मे विलीन होने में ही अपनी सार्थकता समझता है। किन्तु आज की दुनिया मे यह व्यापक सत्ता विश्व मानवता तथा तत्संबंधी मूर्तिमान समस्यायें और प्रश्न ही हो सकते है। अतएव प्रत्येक लेखक एक विशेष अर्थ में इसी उच्चस्तर सत्ता मे केवल विलीन ही नहीं होता वरन् वहां विलीन होकर क्रियाशील हो उठता तत्स्थानीय–तत्क्षेत्रीय सारे भूगोल इतिहास का आकलन करके। संक्षेप में मुक्ति व्यापक तथा व्यापकत्तर क्रिया शीलता का दूसरा नाम है।"[2] टी.एस. एलियट के आधार पर ही अज्ञेय भी सृजन करने वाले प्राणी और भोक्ता के बीच अंतर मानते है। वस्तुतः यह अंतर प्रकारान्तर से शोषकोंका समर्थक ऐसी पूंजीवादी व्यवस्था को अधिमान्यता प्रदान करने वाला है जहां वास्तविक जीवन में अनुभव का

---

१. डा० सत्य प्रकाश मिश्र–मुक्तिबोध साहित्य पुनर्विचार के कुछ नोट्स पक्षधर–पृ० ५३
२. मुक्तिबोध–नयी कविता का आत्म संघर्ष तथा अन्य निबंध–पृ० १७६

अभाव हो परन्तु आत्म प्रत्यक्षता रचना की शर्त हो रही हो। इसीलिए यदि इसका कोई अन्य अर्थ हो तो भी वस्तु सत्य के नकार पर आधारित यह एक सामाजिक चाल है।

मुक्तिबोध ने सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया को तीन क्षणों की क्रमबद्धता में देखा है–

१– आत्मचरितात्मक और सृजनशील ; ये संवेदनात्मक उद्देश्य हृदय में स्थित जीवन्त अनुभवों को संकलित कर, उन्हें कल्पना के सहयोग से उद्दीप्त और मूर्तिमान करते हुए, एक ओर प्रवाहित कर देते हैं। यह कला का प्रथम क्षण है या कहिये सौंदर्य प्रतीति का क्षण।[1]

२– कला का द्वितीय क्षण तब उपस्थित होता है जब लेखक मे शब्द–सवेदनायें जागृत होकर वह विषय तत्वों को व्यक्त करने लगता है।[2]

३– कला का तीसरा क्षण भाषा–भाव के बीच द्वंद्व का है। इन दोनों में प्रतिक्रिया और संघर्ष होता है। वे दोनो को बदलते है। दोनों में संशोधन होता है।[3]

कला के इन तीनों क्षणो के संक्षिप्त तरीके से मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी में उद्घृत करते हुए कहते है। कि कला का पहला क्षण जीवन की उत्कट तीव्र अनुभव क्षण है– दूसरा क्षण, अपने अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाने का, और एक ऐसी फैंटसी का रूप धारण कर लेने का क्षण होता है मानो वह फैंटेसी अपनी आंखों के सामने खडी है।.......... तीसरा क्षण है इस फैंटेसी में शब्दों के द्वंद्व होने की प्रक्रिया का अनुभव और उस प्रक्रिया की परिपूर्णवस्था की गतिमयता।[4] मुक्तिबोध अपने उक्त कथन में सृजन के विशिष्ट क्षण का विश्लेषण उपस्थित करते विकास की इसी प्रक्रिया में होकर अपने तीसरे क्षण मे अभिव्यक्ति के माध्यम से रूपाकार ग्रहण करती है। रचना के बाद अपनी रचना को तटस्थता से देखने के बाद ये क्षण अपना विज्ञान समझाते हैं। वास्तव मे अपने विज्ञान के प्रति समझदार न हो सकने के कारण कलाकार का सृजन सार्थक नहीं रहता। कलाकार की सार्थकता ऐतिहासिक अनुभवों में गूंजने, समाज से जुडने, सबको समेटने, और रचना के विस्तार में सबकी अभिव्यक्ति करने और अभिव्यक्ति के बाद आंतर की पीडा से मुक्ति पाने व मुक्ति के कारण–कार्य सम्बन्ध की उपस्थिति होने में है। क्यों कि इस समूचे क्रय को रचना और आलोचना दोनों स्तर पर हमने इतिहास के साथ पाया है। कला का इसंके अलावा कोई और मार्ग बेमानी है। "कई बार कला के व्यक्तिवादी समर्थक, सामूहिक रुझान में डूबी कला में रेजीमेन्टेशन का आरोप लगाते है। वास्तव में रेजिमेन्टेशन उस समय रचना में आता है जब रचनाकार में वस्तु जगत के तथ्य का

---

१. मुक्तिबोध–नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र–पृ० १४
२. मुक्तिबोध–नये साहित्य का सौंदर्य शास्त्र– पृ० ६५
३. मुक्तिबोध–एक साहित्य की डायरी–पृ० १६
४. मुक्तिबोध–एक साहित्यिक की डायरी–पृ० १६

आभ्यतरीकरण नहीं होता। जब तक उसकी सवेदना मे अनुभवों से घुलमिलकर समूचे उपलब्ध ज्ञान का व्यक्तित्व अपना अंग नही बना लेता।[1]

जो विचार जीवन के सभी मसलों पर समझदारी की बात करता हो, जो अपने आप में सम्पूर्ण ऐतिहासिक मनुष्यता की गाढी कमायी होता हो जो उसे रचनाकार कैसे छोड सकता है? कविता जीवन और समाज की खास व्यवस्था की परिकल्पना है। उस परिकल्पना से जुडा हुआ उद्देश्य, उसकी प्रतिबद्धता है। इसलिए आज की कविताओं की अतर्धारा मे एक तीखा संघर्ष है, मनुष्य की शक्ति के पक्ष में, मनुष्य विरोधी शक्तियो के खिलाफ संघर्ष । दरअसल आज की कविता एक तरफ विचार धारा से जुड़कर यह प्रमाणित करने में लगी है कि शोषक व्यवस्था के दलदल मे फंसी जनता को उबारने में आज उसकी भी एक भूमिका है। दूसरी तरफ सपाटबयानी और कलात्मकता के अतिरिक्त बोझ दोनों से बचकर यह कविता रचना शीलता की अपनी चुनौती स्वीकार करती है। मुक्तिबोध भी यथार्थ जीवन के परे अच्छी कविता की कल्पना नहीं करते। उनके अनुसार ''कवि केवल रचना प्रक्रिया में पडकर ही कवि नहीं होता वरन् उसे वास्तविक जीवन में अपनी आत्मसमृद्धि को भी प्राप्त करना पडता है और मनुष्यता के प्रधान लक्ष्यों से एकाकार होने की क्षमता को विकसित करते रहना पडता है।''[2] सार्वजनिकता से विच्छिन्न होकर, वैयक्तिक राग द्वेष की संकीर्णता में सकुचित होकर कला लक्ष्य नष्ट हो जाती है। क्योकि कला सम्पूर्ण मानवता से अपना उपजीव्य ग्रहण करउसके विकास और परिष्कार की स्थितिया उत्पन्न करती है। वस्तुतः सर्जनात्मक अनुभूति की निर्वेयक्तिा की इस भाव भूमि पर अवतरित होना, व्यापकता की सम्भावना को शामिल करता है।

निर्वैयक्तिकता की इसी अनिवार्य स्थिति को स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध अन्यत्र कहते हैं कि ''विश्व संघर्ष की पार्श्व भूमि मे व्यक्ति स्थिति को रखकर अंतर वाह्य वास्तविकताओसे प्रेरित जो लक्ष्य चित्र सर्विभूति होते हैं वे भव्य प्रेरणाओं को उत्सर्जित करते है।''[3]

इन वक्तव्ययों के आलोक में इतना स्पष्ट है कि कविता निरा आत्म निवेदन नहीं है। वह केवल किसी व्यक्ति विशेष अथवा सर्जक की वैयक्तिक प्रतिक्रिया मात्र नहीं है बल्कि यह एक प्रकारकी अव्यक्तीकरण की स्थिति है। इसी स्थिति में कवि अपने सीमित व्यक्तित्व को ब्यापक व्यक्तित्त्व के साथ जोड़ता है। अज्ञेय ने इसका रास्ता परम्परा के प्रति समर्पित होने में बताया है। जबकि डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी ने अहं की मुक्ति में। । वास्तव मे अहं से मुक्ति का भी अभिप्राय वयं की स्वीकारोक्ति ही है। सार्वजनिकता में परम्परा अनिवार्य रूप

---

१. डा. कमला प्रसाद–दरअसल–पृ० ३८
२. मुक्तिबोध–नयी कविता का आत्म संघर्ष–पृ० २८
३. मुक्तिबोध–नयी कविता का आत्म संघर्ष–पृ० २५

से विद्यमान रहती है। जब व्यक्ति समाजिक परिवेश में अपना आत्म विस्तार करके, अपने समष्टिकृत रूप मे समाज की अविच्छिन्न कडी बनता है, तब वह परम्परा के साथ जुड जाता है क्योंकि "परम्परा समाज के बीच उस अंतः सलिला धारा की भांति विद्यमान रहती है जो अविराम गति से सामाजिक संस्कृति को सिचित करते हुए, उसे जीवन शांति प्रदान करती रहती है।"[1] यह बहुत बडी बेमानी होगी जिसमे कहा जाता है कि साहित्य के विषय में दुनिया के अन्य प्रसंगों को दूर रखकर बात की जानी चाहिये। परन्तु इस तरह की विचार धारा कलावादियों की जीवन को कविता से बहिष्कृत करने की एक सोची समझी साजिश है। जीवन का कविता से गहरा लगाव है, अब यह बहस का मुद्दा नहीं है और इसलिए इस तरह की तमाम कोशिशे अपने स्वरूप में मनुष्य विरोधी है।

व्यक्तित्व विलयन अथवा निर्वेयक्तिकरण की जिस दिशा पर इतना बल दिया जा रहा है उसका सूक्ष्म परीक्षण नितात आवश्यक है। ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि निवैयक्किता के अतिवादी स्वरूप को स्वीकार करने वाले उसे अपना अनुभवाधृत कथन भले मान लें, किन्तु इसे आत्यंतिक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह प्रक्रिया अतिवादी रूप में न तो सर्जना की ओर से स्वीकार की जा सकती है, और न ग्रहण पक्ष की ओर से । क्यों कि विश्व की अब तक ऐसी कोई भी ऐसी कृति नहीं है जिसमें कर्ता का व्यक्तित्व न झांकता हो।[2] कवि व्यक्तित्व ही वह भेदक तत्व है जिससे विभिन्न लोगों के कृतियों की पहचान की जाती है। अनेक बार एक ही विषय पर एक कविता विभिन्न कवियों द्वारा लिखी जातीहैं किन्तु उनका प्रभाव भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न रूपों मे पडता है। यह अंतर कवि के व्यक्तित्व से ही आता है। इस संबंध में कहा जा सकता है कि यह व्यक्तित्व वस्तु या विषयगत नहीं शैली होता है। अतः सर्जनात्मक अनुभूति के निवैयक्तिक होने का अभिप्राय यथावत एवं अक्षत हैं। यह प्रसंग भी रचना प्रक्रिया का ही है, जिसमें अनुभूति स्वतंत्र न होकर रचना की प्रक्रिया में रहती है। जैसा कि डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं सृजन द्वैत से अद्वैत की प्रक्रिया में से होता है जहां अनुभूति उत्तरोत्तर संश्लिष्टता होती जाती है। प्लेटो ने जिसे नैतिकता के उत्साहातिरेक में कला की यथार्थ से तिहरी दूरी कहा, वह वस्तुतः यथार्थ की तिहरी संश्लिष्ट परत हैं। अनुभव के बंटते जाने में रचना असंभव होती है।[3] एक दृष्टि से देखने पर यह बात समझ में आ जाती है कि सृजन के क्षणों में व्यक्तिगत का विलयन सम्भव है। मुक्तिबोध यह कहते हैं कि सर्जनात्मक अनुभूति के अनुरूप फैटेंसी का निर्माण होता है और तीसरे क्षण में फैटेंसी अपने अनुरूप अभिव्यक्त

---

१. डा. राम जी तिवारी स्वातत्रयोत्तर-हिन्दी समीक्षा के काव्य मूल्य-पृ० ६७-६८
२. डा. राम जी तिवारी स्वातंत्रयोत्तर-हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य-पृ० ६६
३. डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी-आलोचना जु.सि.६७-पृ०-८६

उपकरणों द्वारा स्वतः व्यंजित हो जाती है। इस सम्भावना को ध्यान मे रखते हुए देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि व्यजना की इस प्रक्रिया मे शैली के सभी अभिव्यजक उपकरण तो उसमे समाहित हो ही जाते है, ओर ऐसी दशा मे व्यक्तित्व का सर्जनात्मक अनुभूति में समाहित होना असम्भव नही है।[1] डा. रघुवंश का भी मानना है कि अनुभूति वही सर्जनात्मक है जो कलात्मक माध्यम के साथ उभरे। उनके अनुसार यदि अनुभूति में सृजन की क्षमता होती हैं तो वह सहज ही कलात्मक माध्यमो को खोज लेगी अथवा बिना कलात्मक माध्यमों के अभिव्यक्त हो ही नहीं हो सकती।

स्पष्ट है एक कवि सृष्टिकर्ता है तो अनुकर्ता भी; वह सृजन भी करता है, आत्माभिव्यक्ति भी, पर साथ ही उसमें अनुकरण का तत्व भी विद्यमान रहता है क्यों कि जो वस्तुयें पहले से विद्यमान हैं उनके सादृश्य पर वह नयी सृष्टि करता है। इस रूप में वह सृजन प्रक्रिया का वाहक है; जिसमें अनुभव को अनुभूति में बदलने और अनुभूति का कविता बनने की लंबी प्रक्रिया की वह दृष्टा होता है।

---

१. डा० राम जी तिवारी – स्वातंत्रयोत्तर–हिन्दी समीक्षा में काव्य मूल्य–पृ० ६६

****

अध्याय १ खण्ड घ
अनुभव, विचार और अनुभूति :

साहित्य संवेदनशील रचनाकार की जीवन और जगत के प्रति रागात्मक और वैचारिक प्रतिक्रिया का परिणाम है। अपने समाज और प्रकृति से लेखक अनुभव संचित करता हैं उस अनुभव को वह सजग और सचेत होकर कलात्मक रूपात्मक अनुभूति मे बदलता है और अंत में उस "अनुभूति और अभिव्यक्ति की इस सम्पूर्ण प्रक्रिया मे जीवन का बोध और रागात्मक संबधो की खोज तथा पहचान प्रकट होती है। अनुभव की व्याप्ति इन्द्रियानुभव से लेकर चिंतन मनन तक है।"[1] मनुष्य विचारशील प्रणाी है, इसी कारण वह अधिक संवेदनशील और अनुभूतिशील है। उसमें व्यापकता और गहराई होती है। अनुभूति के तीन सोपान है।

१– संवेदन

२– अनुभव

३– भावना

भावना मे संसर्ग, स्मृति, अनुभव और विचार का संयोग होता है। रचनाकार सचेतन अनुभूति तथा शेष का संयोग होता है। रचनाकार सचेतन अनुभूति तथा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक एवं वैचारिक संबध के बोध को ही रचना के आधार भूत तत्व के रूप में ग्रहण करता है। लेखक की अनुभूति के विस्तार का अर्थ है–आत्म चेतना का लोक जीवन और लोक चेतना के साथ द्वंद्व। उसके समाहार से ही उसकी 'मानवीय चेतना' अधिक गहरी होती है। कला सृजन में रचनाकार का मूल चित्त जो संस्कार और नवीन अनुभवों का सम्पुंज है और निर्माण चित्त जो संस्कार और अनुभवों को कलात्मक स्वरूप प्रदान करता है, दोनों की सक्रियता व्यक्त होती है। एक रचनाकार के मानस में संस्कार और अनुभव का द्वंद्व और तनाव सदा वर्तमान रहता है और जो लेखक इस तनाव की प्रक्रिया उसके स्वरूप और कारण को पूर्णतः समझता है, वहीं आत्म संघर्ष के माध्यम से"[2] समाज की संघर्षशील चेतना की व्यजना में सक्षम होता है। जो कवि अपनी चेतना के रागांश और बोधांश में संतुलन कायम नहीं रख सकते। वे ही भावुकता के शिकार होते है। भावुकता में भाव प्रतिगामी होते है, अनुभूति अवैज्ञानिक होती है और उनमें यथार्थ बोध का अभाव होता हैं। काव्य रचना में विरोध बौद्धिकता और भावुकता में होता है बौद्धिकता और रागात्मक अनुभूति में परस्पर विरोध नहीं होता। कविता में ज्ञानात्मक संवेदना और संवेदनात्मक ज्ञान का संयोग ही उसे शक्ति और गति प्रदान करता है। भावुकता की अधिकता के परिणाम स्वरूप कविता में अनुभूति की अभिव्यक्ति न होकर अनुभूति का वर्णन होने

---

१. मैनेजर पांडे–शब्द और कर्म–पृ० ४८

२. वही

लगता है। मूलतः कला मानवीय सवेदना की क्रिया है वह व्यक्ति चेतना की संवेदनशीलता की देन है और मानव की मानवीयता को जागृत और परिष्कृत करने की क्रिया का परिणाम है। व्यक्ति चेतना अपनी सामाजिक क्रियाशीलता अस्तित्व के अनुरूप बनती है।चेतना मानव के चेतन अस्तित्व और उसके क्रियाशील व्यक्तिव के अतिरिक्त कुछ भी नही है। इसलिये लेखक सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व की चेतना के संघर्षशील विकास की गति और दिशा को पहचानने का प्रयत्न करता है। लेखक समाज में केवल दर्शक ही नहीं सहभोक्ता भी है इसलिए दर्शक का ज्ञान और भोक्ता की सवेदना के संयोग से ही कवि की चेतना निर्मित होती है।कविता की आत्मपरक वस्तुनिष्ठता मे ही निर्वैयक्तिकता होती है। कला मानव में जीने की कामना है। और जीवन की समस्या केवल 'व्यक्ति' की समस्या नहीं है बल्कि वह मानव की क्रिया है। व्यापक मानवीय रचनाशीलता की भी व्याख्या होनी चाहिये। मानव की रचनाशीलता उसकी सामाजिक क्रिया शीलता में व्यक्त होती है। इसलिए कवि कीरचनाशीलता का सबंध मानव की सामाजिक क्रिया शीलता से है। कविता रचना ही नही, सम्प्रेषण भी है, इसलिए उसके विश्लेषण की परिधि मे सम्पूर्ण मानव व्यक्तित्व या मानव का सामाजिक व्यक्तित्व भी है। अगर लेखक समाज की सघर्षशील चेतना का सवाहक है तो मानव मुक्ति का अर्थ है समाज मे मानवीय ससार और मानवीय संबंधों की वापसी और स्थापना। यही कारण है कि मानव मुक्ति का प्रश्न वैयक्तिक नहीं, सामाजिक है।

मानवीय अनुभूति और समसामयिक सामाजिक यथार्थ के सवेदनशील बोध से सम्युक्त रचना ही सार्थक होती है। साहित्य में यथार्थवाद सामाजिक जीवन की सतत विकासशीलता मे विश्वास और जनचेतना के अनुभवपूर्ण अभिव्यक्ति के विकसित होता है। समाज के यथार्थ के प्रति लेखक की प्रायः चार मनः स्थितियां दिखाई देती है। एक मन.स्थिति वह है जिसमें कलाकार इस जगत को अवास्तविक मानकर किसी सुखद दुनिया की कल्पना करता है और उस काल्पनिक दुनिया मे रहने का प्रयत्न करता है। दूसरी मनःस्थिति का कलाकार इस जगत् को सामान्यतः गम्भीरता से नहीं ग्रहण करता है, बल्कि वह उसके सतही रूप और छिछलेपन पर व्यंग्य करता है हंसता है। तीसरी मनःस्थिति का कलाकार समाज की विकृतियों और विडम्बनाओं की दुखद अनुभूति के व्याकुल होता है। और इसके भीतर की खोई हुई सच्चाई और अच्छाई की खोज का प्रयत्न करता है। एक चौथी मनःस्थिति ऐसी भी होती है जिसमें कलाकार यथार्थ के स्वरूप का सम्यक बोध प्राप्त कर समाज की वास्तविकता को पहचानकर उसे तोडकर एकनवीन मानवीय समाज की रचना की क्रांतिकारी प्रेरणा देता है। लेखक के स निर्माणोन्मुख ध्वंस मे सामाजिक जीवन की विकास शीलता में आस्था निहित होती है। जीवन और यथार्थ के प्रति सुधारवादी, समझौतावादी और क्रांतिशीलता ये तीनों दृष्टिकोण सम्भव है। समाज के यथार्थ से ऊबने उसमें डूबने , उे सहने, उससे समझौता करने और उसे तोडकर नवीन सृजन की प्रेरणा देने की विभिन्न वैचारिक तथा भावात्मक जीवन दृष्टियों के अनुरूप ही किसी

रचनाकार की रचना का स्वरूप निर्मित होता है। जाहिर है कि निराशावादी, समझौतावादी या सुधारवादी लेखक जनता की संघर्षशीलता को कुठित और दिग्भ्रमित करते है। प्रत्येक युग की संवेदनशीलता और यथार्थ बोध के स्वरूप में भी परिवर्तन होता है। मानवीय यथार्थ के अंतर्गत केवल मानव का सामाजिक भौतिक अस्तित्व ही नहीं है बल्कि उसके रागात्मक और वैचारिक सम्बंध भी है। काव्यालोचन में किसी एक कविता में व्यक्त यथार्थ के रूप उसकी बोध प्रक्रिया कवि की चेतना और यथार्थ से उसके संबंध के स्वरूप की खोज अनिवार्य है। कला की सामाजिकता या प्रयोजन शीलता का आग्रह नहीं है बल्कि वह कलाा के आधारभूत तत्व जीवनानुभव बोध प्रक्रिया रचना प्रक्रिया और अभिव्यक्ति के साधनों के स्वरूप में निहित है। कोई लेखक यह कहकर अपने अन्तर्मन से ही संवाद करने लगे तो उसकी रचना असामाजिक होने के कारण निश्चय ही अर्थहीन होगी।[1]

एक रचनाकार तो अपनी संवेदना के धरातल पर ही स्पंदन महसूस कर सकता है और स्पंदनशीलता की अभिव्यक्ति ही उसकी रचना के कलात्मकमूल्य को निर्धारित करती है। व्यक्ति की वे प्रतिक्रियाएं जो उसे किसी अन्य व्यक्तियों से जोड़ती है अथवा संघर्ष का रूप ले लेती हैं। अनिवार्यतः इस प्रकार की स्पंदनशीलता को विकृति का सूचक मान ली जाती है। इसके अलावा इस प्रकार के चिन्तको द्वारा यह सवाल भी नहीं उठाया जाता कि रचनाकार की स्पंदन शीलता अथवा अनुभव क्षमता कैसे निर्मित होती हैं। आम तौर पर यही मान लिया जाता है कि यह प्रकृति की ऐसी देन है जो कुछ व्यक्तियों में मुखर रूप में विद्यमान रहती है और केवल ऐसे व्यक्ति ही कलाकृतियों की रचना कर सकते हैं। यह समझने की कोशिश भी नहीं की जाती है कि विभिन्न व्यक्तियों की सवेदनाओं और अनुभव क्षमताओ का रूप भिन्न भिन्न कैसे हो जाता है और वे अपनी अभिव्यक्ति के लिये अलग–अलग माध्मय क्यों चुनते है। विभिन्न रचनाकारों की काव्यानुभूति की बुनावट को प्रकृति की उस रहस्यमय लीला का अंग मान लिया जिसे हम चकित मुदित होकर देखते रह जाते है, और समझ नहीं सकते। यदि कुछ अनुभववादी चिन्तक यह स्वीकार भी कर ले कि सामाजिक परिवर्तनों के साथ काव्यानुभूति की बुनावट में भी कुछ फेर बदल हो जाता है तो भी वे यह जानने का प्रयास नहीं करते कि सामाजिक परिवर्तनो की वास्तविक प्रक्रिया क्या है और कावनुभूति की बुनावट उनपरिवर्तनों के साथ–साथ कैसे बदलती है। इन चिन्तकों का आग्रह है कि इन सवालों को उठाते ही एक साहित्यिक चिंतन के क्षेत्र में बाहर कदम रख देते है। रचना के कलात्मक और ज्ञानात्मक मूल्यों को एक दूसरे से अलग अलग करने देखने के अधिकांश प्रयास के मूल में इस प्रकार की रहस्यवादिता अवश्य छिपी रहती है।

---

१. ओम प्रकाश ग्रेवाल–साहित्य और विचार धारा

इन चितकों की राय मे किसी रचना का कलात्मक मूल्य इस बात से निर्धारित नहीं होता कि वहां क्या कुछ कहा जा रहा है अथवा आस–पास के जीवन के बारे में हमे कितने तथ्यों से अवगत कराया जा रहा है, बल्कि हमें यह देखना होता है कि वहा रचनाकार ने अपनी संवेदना पर बाहरी जीवन के पडने वाले आघातो को कितनी प्रामाणिकता के साथ शब्दबद्ध किया है। कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ रचना हम उसे कहेंगे, जहा रचनाकार अपने भोगे हुये यथार्थ को, बिना किसी व्यवधान के पाठक तक सम्प्रेषित कर देता है। यदि रचनाकार सायास अर्जित जानकारी अथवा आंकडो का सहारा लेने लगता है तो इसका सीधा मतलब इन चिंतको की नजरो में यही होगा कि या तो उसके पास किसी जीवंत अनुभव का आधार ही नही है या फिर उसे अपनी अनुभव की सच्चाई में विश्वास नही है। इस मत के अनुसार वास्तव मे एक शुद्ध साहित्यिक रचना में कोरी जानकारी की मात्रा शून्य के बराबर होनी चाहिये और उसकी कलात्मकता उस अनुभव की गहराई और जीवन्तता के अनुसार आंकी जानी चाहिए जिसमे रचनाकार हमें शब्दों के माध्मय से भागीदार बनाना चाहता है।

व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं की काट–छाट करके उन्हे व्यक्ति निष्ठ एवं निष्क्रिय सपन्दनों मे परिवर्तित कर डालने के अलावा अनुभव की इस परिकल्पना के अंतर्गत हमारी सभी प्रतिक्रियाओ मे बौद्धिक शक्तियों का जो योगदान होता है उसकी भी अवहेलना की जाती है। समाज में जीने वाले किसी भी प्रौढ व्यक्ति के अनुभव में उसकी बुद्धि और विश्लेषण शक्ति अनिवार्य रूप मे विद्यमान रहती है और उसकी भावनाओ को उभारने अथवा उन्हे दिशा प्रदान करने में उसकी बौद्धिक शक्ति की निर्णायक भूमिका होती है। हमारा अनुभव केवल शुद्ध ऐन्द्रिक भावों और आस पास के संसार की सामाजिक जीवन को निर्धारित करने वाली मुख्य शक्त्रियों की कम ज्यादा प्रखर पहचान हमेशा विद्यमान रहती है और इस पहचान के आधार पर हमारी भावनाओं का स्वरूप और उनकी दिशा बहुत हद तक तय होती है। भावनाओं और बुद्धि को एक दूसरे से अलग करके हम भावनाओं को केवल उस स्थूल और यांत्रिक रूप में ही देख पाते हैं जो समाज के प्रभुता सम्पन्न तत्वों द्वारा संस्कारों के रूप में हम पर थोप दी जाती है, और जिन्हें हम निष्चेष्ट रूप से आत्मसात कर लेते हैं या फिर उन्हें ऐसी मूलभूत जैविक प्रवृत्तियों के रूप में देखने लगते है जो किंचित सतही फेर बदल के बावजूद अपनें स्वरूप में आदिम काल से मानव स्वभाव की कच्वी सामग्री बनी चली आ रही है। ऐतिहासिक विकास ने मानव अनुभव में जो आयाम जोडे है, उन्हें इस प्रकार के चिंतन में लगभग पूरी तरह नकार दिया जाता है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति को अपनी भूमिका के फलस्वरूप उसके व्यक्तिव का कैसे निर्माण होता है इसे भी समझ पाने की सम्भावना तब नहीं बची रहती जब तक कोई भी व्यक्ति अपने विकास के प्रत्येक चरण में बुद्धि और भावना दोनों के माध्मय से अपने आस–पास के जीवन के साथ उलझता रहता है और इस प्रकार अपनी क्रियाओं द्वारा ऐसी समझ उत्पन्न करता है जो उसके तब तक के अनुभव के

सारतत्व को लक्षित करती है। इसी समझ के आधार पर उसका व्यक्तित्व आगे विकास पाता है और इसी सनझ के माध्यम से वह अपने नये पुराने अनुभवो को एक दूसरे से जोडता चलता हैं। 'ज्ञान' के हमारा तात्पर्य वास्तव में इसी 'समझ' अथवा 'पहचान' से होना चाहिये जो व्यक्ति को अपने समूचे अनुभवों के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस समझ में बुद्धि और भावनाएं दोनों ही अभिन्न रूप से विद्यमान रहती है। एक व्यक्ति के अंतर जगत और वाह्य जगत में जितनी तीव्रता और व्यापकता होगी उतनी ही प्रौढता उसकी समझ में दृष्टिगोचर होगी। जब हम रचना के ज्ञानात्मक मूल्य को उसके अन्दर पायी जाने वाली दृष्टि रचनाकार की व्यक्ति और समाज के बारे में इस प्रकार की समझ के रूप में देखने लगते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका कलात्मक मूल्य उसके ज्ञानात्मक मूल्य के भिन्न नहीं हो सकता।

ज्यों–ज्यों किसी समाज मे वर्ग संघर्श तीव्र होता है वहां जनवादी कवियों के दृष्टिकोण का सुस्पष्ट होना और उनकी भावनाओं का प्रखर होना एक ही प्रक्रिया के विभिन्न पक्ष है। यदि किसीरचनाकार में भी बिखराव अथवा शिथिलता होगीऔर यदि भावनाओं के स्तर पर वह चोट महसूस नहीं करता अथवा केवल सतही हलचल महसूस करता है तो इसका मतलब है कि उसकी चिंतन पद्धति में भी कुछ समझौतावादी भ्रान्तियां अथवा विकृतियां विद्यमान है। ऐसे समय में यह विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है कि रचना में पायी जाने वाली 'समझ' की कमजोरी से उसका कलात्मक मूल्य एकदम घट जायेगा। विचारशीलता यहीं अपनी भूमिका अदा करती है।

प्रत्येक साहित्यकार एक वर्ग विशेष के दृष्टिकोण को अपनाकर ही तत्कालीन जीवन में परिस्थितियों को समझने का प्रयास करता है। अच्छा साहित्यकार कभी वर्ग गत पक्षपातों से ऊपर नहीं उठ पाता, बल्कि अपने समय के सबसे अधिक प्रगतिशील वर्ग का पक्षधर होता है। वह सामाजिक जीवन की गतिविधियों से कट कर नही बल्कि उनमें पूरी गम्भीरता एवं सक्रियता के साथ शामिल होकर ही कुछ उच्च्य नैतिक आदर्शों की स्थापना करता है। प्रगतिशील वर्गों के पक्षधर के रूप में तत्कालीन परिस्थितियों से साक्षात्कार करके ही वह इन आदर्शो का निर्माण करता है। उनकी रचना से अनुबद्ध होने वाले ये आदर्श तत्कालीन परिस्थितियों की केवल उपज की ओर ही नहीं इंगित करते हैं बल्कि एक समूह का अंग बन जाने से साहित्यकार के अनुभव की विशिष्टता को रूपायित भी करते हैं। इससे मूर्तता नष्ट नहीं होती बल्कि उसके इस प्रकार के निर्णय से तो वह और भी पुष्ट होती है बशर्ते कि उसने अपने आपको प्रगतिशील वर्ग के सामूहिक संघर्षों के साथ जोड़ा हो। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और समूह गत आग्रहो के विरोध की बात उठा कर हम अक्सर मानवीय स्वतंत्रता की आवश्यक शर्तो से ध्यान हटा देते है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का सवाल वास्तव में शोषक उत्पीड़क वर्ग के अधिनायकत्व को समाप्त करने के सवाल के रूप जुड़ा हुआ है। शोषण रहितसमाज की स्थापना के लिये किये जाने वाले सामूहिक संघर्ष में शामिल होना लेखक की स्वतंत्रता की आवश्यक शर्त है।

किसी भी अनुभव को समझाने अथवा प्रेषित करने के लिए एक निश्चित चिंतन पद्धति की विशेषताएं अथवा दृष्टिकोण को अपनाना पडता है। जडता और यान्त्रिकता सभी चितन पद्धतियो की नहीं केवल गैर द्वंद्वात्मक और भाववादी बुर्जुवा चितन पद्धतियो की विशेषताएं है। एक सुस्थिर दृष्टिकोण और चिंतन पद्धति के आधार पर जो निष्कर्ष और मान्यताएं उभर कर आती है उन्हे कुछ समय के बाद एकदम निरर्थक मानना अनुचित होगा। किसी भी समय पर वस्तुस्थिति को सम्पूर्णता में समझाने के प्रयास पूर्ण संचित शक्तियों और निष्कर्षो का महत्वपूर्ण योगदान होता है, यद्यपि परिस्थितियों के बदले हुए स्वरूप को पहचानने के लिए हमें अपनी बौद्धिक क्षमता और संवेदना से निरन्तर काम लेते रहना पडेगा एक वर्ग से संबध रखने वाले लोगो की सामूहिक समझ अकेले व्यक्ति की समझ से अधिक प्रखर और व्यापक होगी। इस 'समझ' के ज्ञानात्मक और संवेदनात्मक पक्षों को ध्यान में रखते हुए हम इसे मुक्तिबोध के शब्दो में 'सवेदनात्मक ज्ञान' भी कह सकते है।

****

अध्याय २

आधुनिकताबोध, यथार्थ और संवेदना का गतिशील सम्बन्ध

क : अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और

आधुनिक संवेदना का रूपायन

अनुभूति की विशिष्टता और रचना का द्वन्द्व

अनुभव की जटिलता

काव्यानुभूति और ईमानदारी

ख : यथार्थ की संवेदना और संवेदना का यथार्थ

यथार्थ की संवेदना

यथार्थ और यथार्थवाद

यथार्थवाद और प्रकृतवाद

यथार्थ और अतियथार्थवाद

यथार्थ और कल्पना

यथार्थ और अनुभव

रचना की संवेदना और यथार्थ

अध्याय २— खण्ड क
अनुभूति और विचार का सम्बन्ध और आधुनिक सम्वेदना का रूपायन :

कविता जीवन के बहुविध आयामो से गुजरते हुए, अनुभूत सत्यों की कलात्मक अभिव्यक्ति है । स्थूल यथार्थ को सौंदर्य देती, और कलारूप को प्रस्थापित करती कविता प्रत्येक जीवनानुभव को लचीला और व्यापक बनाने की कोशिश करती है । वह एक क्रूर तर्कशैली की जगह एक समानान्तर आत्मीय तर्कशक्ति आविष्कृत करती है जो प्रायः अमूर्त होती हुयी भी हद दर्जे तक विश्वसनीयता और प्रमाणिकता हासिल करती है । कविता जीवनानुभवो की व्यापक साझेदारी है । जीवन तो सब जीते हैं पर सबको उसका बोध नहीं होता। एक रचनाकार उस जीवन को भोक्ता और साक्षी दोनो होता है । वह रचता भी है और जीता भी है । रचनाकार जिंदगी से सीधे टकराता है तथा अपने मन और वस्तुजगत् के सम्पर्क से प्राप्त अनुभवो को रचना का रूप देता है । अपनी रचना का कथ्य वह जीवन यथार्थ से ग्रहण करता है किन्तु समूचा जीवन–यथार्थ उसका कथ्य नहीं होता ।"रचनाकार इतिहास बोध और सांस्कृतिक परम्परा के आधार पर निर्मित अंर्तदृष्टि से विकास की सही दिशा में होते परिवर्तन, गत्यात्मक यथार्थ से एक हिस्से का चयन करता है।"[1]

अपने परिवेश से गहरी सम्बद्धता और उसमें हो रहे परिवर्तनों का सतत पर्यावलोकन कवि को अनुभव समृद्ध बनाता है और उसकी अनुभूति को तीव्र । समाज और प्रकृति से लेखक जो अनुभव संचित करता है उस अनुभव को वह राजग और सचेत होकर कलात्मक रूपात्मक अनुभूति में बदलता है और अंत में उस अनुभूति को वह भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है । अनुभूति और अभिव्यक्ति की इस प्रक्रिया में जीवन का बोध और रागात्मक सम्बन्धों की खोज तथा पहचान प्रकट होती है । अनुभव की प्राप्ति इंद्रियानुभव से लेकर चिन्तन मनन तक है । एक रचनाकार सचेतन अनुभूति तथा शेष सृष्टि के साथ रागात्मक एवं वैचारिक सम्बन्ध के बोध को ही रचना के आधारभूत तत्व के रूप में गृहण करता है । एक रचनाकार के मानस में संस्कार और अनुभव का द्वन्द्व तथा तनाव सदा वर्तमान रहता है और जो लेखक इस तनाव की प्रक्रिया, उसके स्वरूप और कारण को पूर्णत. समझता है, वही आत्मसंघर्ष के माध्यम से समाज की संघर्षशील चेतना की व्यंजना में सक्षम होता है । असल में लेखक का रचना दायित्व और उसका सामाजिक दायित्व दोनों एक दूसरे में घुले मिले होते है । वह अपनी रचना के प्रति जितना प्रतिबद्ध होता है उतना ही अपने चारों ओर की जिन्दगी के प्रति भी । अन्दर और बाहर के दोनो ही संसार उसके भीतर एक हो जाते है । अन्दर की

---

१. नन्द किशोर आचार्य–रचना के सरोकार

अपेक्षा यदि लेखक को एक प्रकार के सस्ते प्रचार की ओर ले जाती है तो बाहर की अपेक्षा उसे एक प्रकार के कलावाद की ओर ।' यह छद्म है । लेखक छद्म नहीं होता । वह दृश्य जगत् के बीच चीजो को देखते हुए उनके आपसी सम्बन्धों की छानबीन करते हुए, उनकी तुलनात्मक पहचान करते हुए विकसित हुआ करता है । अपने समय की वास्तविकताओं का भोक्ता और साक्षी होने के कारण लेखक की रचना अपने समय का महत्वपूर्ण साक्ष्य होती है जो रचना अपने समय के लिए सच नहीं होती वह किसी समय के लिए सच नहीं होती । लेखक का रचना दायित्व और सामाजिक दायित्व दोनों एक दूसरे में घुले मिले होते है । निर्यात–विवेक ही लेखक की ईमानदारी है । समकालीन वास्तविकताओं के प्रति जागरूक ईमानदारी ही लेखक का दायित्व है और यही जन संघर्ष में उसकी सक्रिय भूमिका भी । यही उसकी ईमानदारी की पूर्णता है जो रचना और रचनाकार की दूरी समाप्त करती है । यही उसका अनुभूतिपरक होना होता है ।

आज का जीवन जटिल हो गया है ; स्पष्ट है हमारा अनुभव संसार भी जटिल होगा ही । आज के अनुभव की जटिलता परिवेश की जटिलता है । आज का व्यक्ति जिस परिवेश में जी रहा है उसमें उसकी मानसिकता पर उसका सर्वाधिक प्रभाव है । परिवेश का स्वरूप आज बाहर ही नही आंतरिक भी हो गया है । हमारा अनुभव है कि हम किसी विशिष्ट स्थिति में भी अपने चेतना–स्तर पर विभिन्न प्रकार के अनुबोधों से आक्रान्त रहते है । किसी एक समस्या पर सोचते हुए विभिन्न प्रकार की मनोदशाओं से गुजरते है । हमारे वस्तु तथा व्यक्ति के सम्बन्ध आज इतने जटिल हैं कि उनकी एकांगी अभिव्यक्ति सभव नही है । वस्तुतः जानने की बहुआयामी धारणा के चलते अनुभव की तीव्रता को उसकी सम्पूर्ण चेतना से महसूस किया जाता है । रचनाकार की कल्पना एव दृष्टि के सन्निवेश मे जो उत्कटता और अभिव्यक्ति के लिए छटपटाहट है, वही कलानुभव होता है । प्रत्यक्ष अनुभव जब भावों और मन·स्थितियों के रूप मे परिवर्तित होकर कल्पना के संयोग से पुन. तिग्म अनुभव में परिवर्तित होता है तभी वह मूल्यवान होता है। जैसा कि महीप सिंह कहते हैं "किसी सार्थक रचना के लिए प्रामाणिक अनुभव की ही नही, बल्कि रचनागत विषय में दृष्टि और कल्पा की गहराई के साथ उतरने की भी जरूरत पडती है ।"[1]

— इसमें संदेह का कोई कारण नहीं है कि रचना में कल्पना और दृष्टि का योग महत्वपूर्ण है । साहित्य में अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान है । उसका प्रामाणिक होना भी आवश्यक है अन्यथा वह निरर्थक होगी । किन्तु इसकी प्रामाणिकता क्या हो, यह एक बड़ा प्रश्न है । अज्ञेय का कहना है : "मेरा आग्रह रहा है कि लेखक अपना अनुभूत ही लिखे ।"[2] नये रागात्मक सम्बन्धों से उत्पन्न मानवीय अनुभूति ही आज के कविता का प्रमुख तत्व है । मुक्तिबोध कविता में भाव के महत्व को स्वीकार करते हुए भावों की सामाजिकता की

---

१. डा० महीप सिंह–हिन्दी कहानी : दो दशक की यात्रा–पृ० १६

२. अज्ञेय–शरणार्थी भूमिका–पृ० २

ओर भी संकेत करते है । उनके अनुसार "भाव मानव प्रसंगो के बीच पैदा होते है और जिस प्रकार मानव प्रसंग उलझे हुए होते है उसी प्रकार भावों में भी जटिलता होती है।"[1] लक्ष्मीकांत वर्मा ने नयी कविता के मूल्यांकन के प्रतिमानो की प्रस्तावना करते हुए 'अनुभूतियों के प्रति ईमानदारी और भावनाओं में मानवीय वेदना' जैसे मानदण्डों की चर्चा की है ।[2]

विजय देव नारायण साही जीवन में भोगी गयी सभी अनुभूतियो को काव्य के विषय के रूप में स्वीकार नहीं करते । वे केवल विशिष्ट अनुभूतियों को ही काव्य विषय के रूप मे स्वीकार करते हैं । तीसरे सप्तक के वक्तव्य के अंतर्गत अपने पच्चीस शीलों का विवेचन करते हुए चौदहवें शील के अंतर्गत वे कहते है – "जो मैने भोगा है वह सब मेरी कविता का विषय नहीं है । कविता का विषय वह होता है जो अब तक को भोगने की प्रणाली में नही बैठ सकता है । हर कलाकृति ठोस, विशिष्ट अनुभूति से उपजती है और उसका उद्देश्य अनुभूति की सामान्य चोटियों को नये सिरे से परिभाषित करना होता है । परिभाषा विशिष्ट और सामान्य में सामंजस्य का नाम है, बिना सामंजस्य के भोगने में समर्थ होना असम्भव है।"[3] साही के अनुसार काव्य विषय विशिष्ट अनुभूतियों के द्वारा ही उपलब्ध होते है । कवि अधिक संवेदनशील होने के कारण विशिष्ट एव तीव्र अनुभूतियों के द्वारा आन्दोलित हो उठता है । यहां पर उसके जीवन की पारम्परिक प्रणाली में – जो उसने भोगा है – एक प्रकार का अंतर और व्यतिक्रम उपस्थित हो जाता है । परम्परा से पोषित उसका विश्वास आंदोलित हो उठता है । अपनी नयी दृष्टि से उत्पन्न अनुभूति के आधार पर वह प्रत्येक पुरानी मान्यता को नये परिवेश के परिप्रेक्ष्य में देखने लगता है और नयी दृष्टि के अनुसार पुरानी मान्यता का परिमार्जन करता है क्योंकि "वह विशिष्ट अनुभूति बदल नहीं पाता है । तक तक बेचैन रहता है, जब तक परिभाषा को बदल नहीं देता ।"[4] अनुभूति की विशिष्टता को महत्व देते हुए साही विषय की यथार्थपरकता के सिद्धान्त का समान रूप से समर्थन करते है । वास्तविक अनुभूति के अभाव में शब्दाम्बर और कृत्रिम अनुभूति वाली कविता के सृजन को वे पाप मानते है । उनके द्वारा प्रतिपादित अनुभूति की विशिष्टता भी उसकी सार्थकता और मानवीय अनुभूतियों की तीव्रता में है । उनकी स्पष्ट घोषणा है कि "सार्थकता बराबर तप नहीं, शब्दाडम्बर बराबर पाप ।"[5] कविता में अनुभूति को काव्य तत्व के रूप में विशेष प्रतिष्ठा मिलती है किन्तु यह पूर्ववर्ती काव्यानुभूति से अपनी बनावट और बुनावट में भिन्न है और इसकी भिन्नता का आधार है संवेदना का बौद्धिक आधार। यह बौद्धकता कविता की अतिभावुकता तथा आवेश को नियंत्रित करती है । इसीलिए कुँवर नारायण

---

१. मुक्तिबोध–नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध पृ० ७५
२. लक्ष्मीकांत वर्मा–नयी कविता के प्रतिमान–पृ० ६६
३. विजय देव नारायण साही – तीसरा सप्तक पृ० ४६३
४. वही
५. वही

आधार। यह बौद्धकता कविता की अतिभावुकता तथा आवेश को नियत्रित करती है । इसीलिए कुँवर नारायण कविता को यथार्थ के प्रति एक प्रौढ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति मानते है।[1]

आधुनिक कविता की अनुभूति बौद्धिक सवेदनाओं की ही उपज है अतः उसमे उलझाव और तनाव है तथा इसमे अनेक स्तर है फलतः कविता के अनुभूति का क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक है । नेमिचंद्र जैन के शब्दों मे 'अनुभूति की विविधता तथा विस्तार और उसकी स्वीकृति ही आज की हिन्दी कविता की विशेषता और उसका नयापन है ।"[2]

कविता में कथ्य की यह विविधता और व्यापकता अपनी विलक्षण अनन्यता से विस्मित और विमोहित करती है । यह कहना की समस्त नयी कविता भावात्मक सौंदर्य से विभूषित है, मिथ्या होगा । साथ ही यह कहना भी असगत एवं भ्रातिपूर्ण होगा कि बौद्धिक संकुलता से युक्त नयी कविता में अनुभूति सौदर्य का अभाव है । छायावादी कल्पना विलास के स्थान पर नये कवियों ने यथार्थ का सीधा साक्षात्कार किया है । विगत के गौरवगान और अनागत के मोहक स्वप्नों मे न डूबकर नये कवि वर्तमान से रूबरू हुए है और उन्होने उसकी विभीषिका को पूरी सच्चाई के साथ अभिव्यक्त किया है । केवल कोमल, भव्य, उदात्त और रमणीय में ही सौंदर्य को न देखकर जीवन के सम्पूर्ण रूप की प्रमाणिक अनुभूति और बेबाक अभिव्यक्ति आधुनिक कविता की सौंदर्य चेतना को नये आयाम देती है । अनुभूति एवं कथ्य की यह अभूतपूर्व नूतनता 'नयेपन' के प्रति अतिरिक्त मोह के कारण नहीं प्रत्युत, परिवर्तित परिस्थितियें और आधुनिक बोध की अनिवार्य परिणति है । आज का कवि अनुभव की प्रामाणिकता के प्रति विशेष रूप से सचेत है । उन्होने इसे काव्य रचना के लिए प्राथमिक अनिवार्यता स्वीकारा है । 'अनुभूति की सच्चाई नयी कविता की अग्रिम विशेषता है । वह अनुभूति, क्षण की हो या स्थान की, सामान्य व्यक्ति की हो या पुरुष विशेष की, आस्था की हो या अनास्था की, अपनी सच्चाई मे यह कवि के लिए नहीं, जीवन के लिए भी अमूल्य है।[3] नये कवि की मान्यता है कि जीवन का सत्य, व्यक्ति की छाप से युक्त होकर ही काव्य का सत्य हो सकता है।"[4] और कवि का सत्य वही होता है जो उसमे अनुभूति जगा सके ।"[5] नयी कविता में यथार्थ अनुभवों के प्रति कवि की अटूट निष्ठा है । उसने युगीन चेतना को उसके अनावृत्त रूप में व्यक्त किया है । यदि जीवन और विसंगतियों से भरपूर है तो वह उसे कल्पना या शब्दाडम्बर का आवरण न बनकर उसकी निर्वाज अभिव्यक्ति करता है।

---

१. कुँवर नारायण–तीसरा सप्तक – पृ० १४६
२. नेमिचंद्र जैन–बदलते परिप्रेक्ष्य–पृ० १०८
३. अवध नारायण त्रिपाठी – नयी कविता में वैयक्तिक चेतना–पृ० १४१
४. अज्ञेय–तीसरा सप्तक–भूमिका –पृ० १६
५. जगदीश गुप्त–आलोचना–पृ० ८६

यद्यपि इसमें भी संदेह का कोई कारण नहीं है कि रचना में कल्पना–दृष्टि का योग महत्वपूर्ण है तथापि साहित्य में अनुभूति का महत्वपूर्ण स्थान है । इस संदर्भ मे पाश्चात्य चिंतकों के अपने अभिमत हें। प्रामाणिकता के संबंध में रिचर्डस् मानते हैं कि यह आवश्यक नहीं कि कवि की अनुभूति यथार्थ योग के पश्चात ही प्रामाणिक होती है। वे मानते हैं कि कवि अपनी कल्पना के माध्यम से जिन स्थितियों से साक्षात्कार करता है वे भी प्रामाणिक ही होती है। यहां पर रिचर्डस यथार्थ के आत्म तत्व को साहित्यकार के लिये अधिक महत्वपूर्ण मानता है। एफ.आर. लीविस के अनुसार 'ईमानदारी' से यह अभिप्राय है कि कवि अपनी वास्तविक अनुभूति की मानवीय समझदारी के साथ, अनुकूल भाषा मे चित्रण करे। उसमें भावातिरेक न हो क्योंकि भावातिरेक की स्थिति में रचनाकार वास्तविकता से दूर हो जाता है और उसकी ईमानदारी कम हो जाती है। यानी कविता में सम्प्रेषण के स्तर पर 'ईमानदारी' का अपना खास महत्व है और यह कि कविता का खास गुण भी है। अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ अनुभूति की ईमानदारी की चर्चा भी कविता मे काफी चली । रघुवीर सहाय ने अनुभूति के संदर्भ में ईमानदारी की चर्चा करते हुए उसे एक व्यापक गुण के रूप मे स्वीकार किया है। उनके अनुसार 'ईमानदारी का मतलब यही है कि वस्तुओं का वास्तविकता और उनके अतर्विरोधों को समझाकर उसकी व्यंजना को आत्मसार करने का एक अनवरत प्रयत्न किया जाय।'[1] वे ईमानदारी को बौद्धिक स्तर का पर्याय मानते हैं। उनके अनुसार "ईमानदारी वास्तव में एक मौलिक गुण है और उस स्तर का पर्याय है जिस पर आकर हमारा तर्क पूर्वाग्रह और व्यक्तिगत रुचि से ऊपर उठ जाता है और जिस के आधार पर हमें वस्तुओं की वास्तविकता का सही अनुभव होता है। वह उस चेतना के पहले की चीज है जो ज्ञान को क्षेत्रों में विभाजित करती है। जैसे ज्ञान समस्त एक है वैसे ही ईमानदारी भी समस्त एक हैं। क्यों कि वह केवल लेनदेन की एक निधि नहीं है, एक मनोवृत्ति है या दृष्टिकोण हैं।"[2] इसमें ईमानदारी को चेतना के स्तर पर अविभाजित रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसे बुद्धि और हृदय में विभाजित करके ईमानदारी को समझने का प्रयत्न किया गया है साथ ही ईमानदारी का सम्बघ वास्तविकता से भी जोड़ा है। रघुवीर सहाय "ईमानदारी के लिए बौद्धिक जागरूकता को भी अनिवार्य मानते है। उनके अनुसार जहां तक लेखक का संबंध है। ईमानदारी का मतलब यही है कि वह उस बौद्धिक विफलता को लेकर जिए और उसे अस्वीकार न करे। जो ज्ञान उसे दे जाता है और जो उसकी अनुभूति को सुधार जाती है।"[3] रघुवीर सहाय के इस विवेचन से स्पष्ट है कि ईमानदारी स्वयं सिद्ध नहीं है, उसके लिए प्रयत्न जरूरी है। इस प्रकार अनुभूति की ईमानदारी में

---

१. रघुवीर सहाय–लिखने का कारण–पृ० ५५
२. वही पृ० ५२
३. वही पृ० ५४

वास्तविकता के बोध पर भी बल दिया गया है। लेकिन रघुवीर सहाय ने ईमानदारी की व्याख्या में प्रामाणिकता का जिक्र कहीं नहीं किया है। डा. नामवर सिह के शब्दो मे "ईमानदारी समझदारी का दूसरा नाम है" रघुवीर सहाय की 'ईमानदारी' और 'ईमानदारी के बाद' की टिप्पणियों में अनुभूति पर पूरा बल है, उसमें 'प्रमाणित अनुभूति' और 'अनुभूति की प्रामाणिकता जैसे बडे पारिभाषिक शब्दो के बीच इन्हे प्रमाणो मे ढूंढ भले ही लिये जाय किन्तु तथ्य यही है कि इन शब्दो का निर्माण बाद में हुआ जब नयी कविता का शास्त्र बना।' जिसका पहला दुर्भाग्यपूर्ण प्रयास लक्ष्मीकांत वर्मा का ग्रंथ नयी कविता के प्रतिमान है।[1]

नामवर सिंह आगे कहते हैं कि "अनुभूति की ईमानदारी मूल्यों की मर्यादा को निखारती है। किसी भी रचना के लिए अनुभूति की गहराई और ईमानदारी अपेक्षित है, न कि आवरण की पूरी मर्यादा और उसकी संकीर्णता। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनुभूति की गहराई के साथ–साथ अनुभूति की व्यापकता भी आवश्यक होती है और अनुभूति की गहराई अनुभूति की व्यापकता पर ही निर्भर करती है। इस संबंध में डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि अनुभूति की गहराई हर हालत मे अनुभूति की व्यापकता से निर्धारित होती है। व्यापकता का तिरस्कार करके जो लेखक गहराई लाने का दम भरता है दरअसल वह संकीर्णता के अंधरूप से पडता है । उसकी अनुभूति का अर्थ संकुचित होता है और गहराई उथली होती है।"[2] उनके अनुसार यह व्यापक मानवीयता की व्यापक भूमि, व्यापक परिवेश का बोध और अर्न्तवायविक सामाजिक संबंधों के उद्घाटन पर निर्भर है। अनुभूति की जटिलता और तनाव के प्रश्नों को नामवर सिंह उठाते हुए कहते हैं कि अनुभूति की जटिलता का कारण आंतरिक वृत्तियो का वैविध्य नहीं है, वरन् परिवेशगत द्वंद्व का बोध है। इसी से अभिव्यक्ति में तनाव आता है। उन्हीं के अनुसार घटक कथन के बीच द्वंद्वात्मक संबंध है जिसे विरोधपूर्ण एकता की सज्ञा दी जा सकती है। जाहिर है इस विरोध पूर्ण एकता की भूमि पर कविता की स्थिति कहीं भी हो सकती है। किन्तु अंततः यह स्थिति ही मूल्यांकन का आधार बनती है। कविता में भाषा के स्तर पर इस विरोध पूर्ण एकता का तनाव चरम दिशा में जिस सीमा तक व्यक्त होता है उस सीमा तक कविता मूल्यवान होती है।"[3]

काव्यानुभूति के सन्दर्भ में अनुभूति की ईमानदारी ही पर्याप्त है पर उसकी सच्चाई भी जरूरी है। अनुभूति की यह सच्चाई वास्तविकता के बोध से निर्मित होती है। केवल अनुभूति की आत्मनिष्ठता से नहीं। अनुभूति की ईमानदारी सिर्फ आत्मनिष्ठा तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसमें यथार्थ–बोध भी शामिल है। जैसा कि मुक्तिबोध ने लिखा है "व्यक्तिगत ईमानदारी का नारा देने वाले लोग, असल में भाव या विचार के

---

१. डा० नामवर सिंह–कविता के नये प्रतिमान–पृ० २००
२. डा० नामवर सिंह–इतिहास और आलोचना–पृ० १६
३. डा० नामवर सिंह–कविता के नये प्रतिमान–पृष्ठ ११६

सिर्फ आत्मगत पक्ष के चित्रण को ही महत्व देकर उसे 'भावसत्य' या 'आत्मसत्य' की उपाधि देते है। किन्तु भाव व विचार का एक आब्जेक्टिव पहलू अर्थात् वस्तुपरक पक्ष होता है। आजकल लेखन कार्य मे आत्मपरक के पक्ष को महत्व देकर वस्तुपरक पक्ष की उपेक्षा की जाती है। चित्रण करते समय आत्म परक पक्ष को प्रधानता दी जाती है वस्तु परक पक्ष को नहीं।"[1] इस प्रकार मुक्तिबोध अनुभूति की ईमानदारी की चर्चा करते समय इस आत्मपक्षीय दृष्टि को नाकाफी मानते हुए उसे वस्तुपक्ष से भी जोडते है। जो कविता के लिये, बेहतर कविता के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

१– मुक्तिबोध–एक साहित्य की डायरी–पृ० १३३

****

अध्याय २—खण्ड ख
यथार्थ की संवेदना और संवेदना का यथार्थ :

जब हम यथार्थ की संवेदना कहते हैं तो यह एक 'वास्तव' को उद्घाटित करने मे, हमारे अनुभूतियों को प्रकाशित करने के ढग से जुडा होता है। जब हम यथार्थ से संवेदित होते हैं तो वह हममें उसी रूप मे खुलता है, जिसकी रचनात्मक परिणति वाद को सृजन के क्षणों मे होती है। वस्तु सत्य के प्रति, ब्यक्ति की दृष्टि का फेलाव उसे जानने के लिये होता है। वस्तु–सत्य को ठीक–ठाक जानना और उसे पूर्णता से समझना हमारी अपनी यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक होता है। किसी चीज के बारे मे उसे समझने के क्रम में जैसे–जैसे हम उस वस्तु या परिस्थिति के समीप पहुँचते हैं वैसे–वैसे ही हम उसे ज्यादा जानने का दावा भी कर सकते हैं। यह करना हमारी अपनी मानसिक क्षमता व विश्लेषित करने की योग्यता पर निर्भर करता है कि हम उस विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति को किस प्रकार से देखते हैं।

जब हम चीजों को यथातथ्य वर्णित करते हैं तो वह हमारी यथार्थ दृष्टि का परिचायक होता है। किसी एक घटना को देखना तत्पश्चात उसे अपनी रचना का विषय बनाना हमारी यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक तो है परन्तु यथार्थ वास्तव मे वहीं नही है, क्योंकि चीजो को यथातथ्य उभारना अभिधात्मक होना होता है। यह अभिधात्मकता वस्तु या परिस्थिति को देखने की शर्त तो पूरी करता है परन्तु रचनात्मकता का आधार यहीं नही बनता । यह सिर्फ दृष्टि देता है , शुद्ध रचनात्मक अवदान नही बनता , रचना की पृष्ठभूमि अवश्य प्रदान करता है। यहॉ रचनाकार उस देखे हुये पर पुनः विचार करता है । ऐसी परिस्थिति मे वह प्रत्यय को उसके सच के साथ वर्णित करने की स्थिति में जैसे जैसे आता है, उसका यथार्थ परिज्ञान ज्यादा विकसित होता है और इस प्रकार वह यथार्थ की सवेदना को निर्मित करता है।

यथार्थवाद का वास्तविक सम्बन्ध फ्रेंच यथार्थवादी स्कूल से है। इसका प्रथम प्रयोग सन् १८३५ ई० मे आदर्शवादी विचारधारा में विश्वास करने वालों के विरूद्ध, एक चिन्तन प्रक्रिया के रूप मे हुआ। बाद मे सन् १८५६ ई० में एक पत्रिका 'रियलिज्म' की स्थापना के साथ इसका प्रयोग साहित्य मे होने लगा। १८८५ में ही फ्लावेयर का प्रसिद्ध उपन्यास "मैडम ब्रावरी" प्रकाशित हुआ। इस प्रकार यथार्थवाद का एक आन्दोलन के रूप में सही विकास हमें १८५० ई० के बाद से दिखाई देता है। जिसमें यह आंदोलन विविध धार्मिक , राजनीतिक, वैज्ञानिक समाजशास्त्रीय एवं अर्थशास्त्रीय कारणों से एक पूर्ण आंदोलन के रूप में जनता के सम्मुख आया।

जीवन की सच्ची अनूभूति यथार्थ है, पर उसका कलात्मक अभिव्यक्ति करण यथार्थवाद है। दोनों में भेदक रेखा खींचना कठिन है। यथार्थवाद विविध मानव अनुभवों के पूर्ण एवं सत्य चित्रण पर बल देता है।

चूंकि यथार्थवाद का प्रयोग आदर्शवादी और 'रोमांटिसिज्म' (स्वच्छन्दतावाद) के विरोधी अर्थों में किया जाता है , अतः जो साहित्यकार मानव जीवन एव समाज का सम्पूर्ण वास्तविक चित्र उपस्थित करता है और अपने साहित्य का आधार काल्पनिक संसार से न लेकर वास्तविक संसार से लेता है, उसे ही हम यथार्थवादी लेखक कह सकते है। यथार्थवादी कलाकार असम्भाव्य और अद्भुत को प्रकृति-विरुद्ध मानकर अपनी रचनाओं में उन्हें कोई स्थान नहीं देता। इस तरह जहां यथार्थवाद एक दृष्टि से आदर्शवाद को भी अस्वीकार करता है।

आर०एल० स्टीवेन्सन के अनुसार 'यथार्थवाद' का प्रश्न साहित्य में मुख्यतः सत्य से अल्पाश भी संबंध नहीं रखता है, बल्कि उसका संबंध केवल रचना की कलात्मक शैली मात्र से है। " जब कि कजामियां के अनुसार" यथार्थवाद साहित्य में एक शैली नहीं बल्कि एक विचारधारा है।[1] "फ्लावेयर वस्तुगत दृष्टिकोण और जीवन को सामान्य पक्षों के महत्वपूर्ण उद्घाटन को यथार्थवाद की विशिष्टता मानता है।"[2] यथार्थवाद के संबंध में प्रेमचन्द का मत है कि यथार्थवाद चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। जो इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चत्रिता का परिणाम बुरा होता हैं या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र अपनी कमजोरियों और खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन लीला समाप्त करते है। और चूकि संसार में सदैव नेकी का फल बद नहीं होता, बल्कि इसके विपरीत हुआ करता है, नेक आदमी धक्के खाते हैं, यातनायें सहते हैं, मुसीबते झेलते हैं, अपमानित होते है उनकों नीकी का फल उल्टा मिलता है। प्रकृति का नियन विचित्र है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं "कला क्षेत्र में यथार्थवाद ऐसी एक मानसिक प्रवृत्ति है जो निरन्तर अवस्था के अनुरूप परिवर्तित और रूपायित होती रहती है।"[3] श्री नन्द दुलारे बाजपेयी के मत से " यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक सत्ता का समर्थक है। वह समिष्टि क अपेक्षा व्यष्टि की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत से है।"[4]

यथार्थवाद साहित्य की एक विशिष्ट ,चिन्तन पद्धति है जिसके अनुसार कलाकार को अपनी कृति में जीवन को ,यथार्थवादी रूप का अंकन करना चाहिए। यह दृष्टिकोण वस्तुतः आर्दशवाद का विरोधी माना जाता है पर वस्तुतः जो आदर्श उतना ही यथार्थ है जितनी की कोई भी यथार्थवादी परिस्थिति । जीवन में अदर्शवाद की कल्पना दुष्कर है। किन्तु अपनें परिभाषिक अर्थ में यथार्थवाद जीवन की समग्र परिस्थितियों के प्राते ईमानदारी का दावा करते हुए भी प्रायः सदैव मनुष्य की हीनताओं तथा कुरूपताओं का चित्रण करता है। यथार्थवादी कलालाकार जीवन के सुन्दर अंश को छोड़कर असुन्दर अंश का अंकन करना चाहता है। यह एक

---

१. कजामियां—अ हिस्ट्री आफ इंग्लिश लिटरेचर
२. फ्लावेयर—डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर—पृ० ३३५
३. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—विचार और वितर्क—पृ० ६५
४. नन्द दुलारे बाजपेयी—आधुनिक साहित्य—पृ० ४२०।

प्रकार से उसका पूर्वाग्रह है।[1] डा० मैनेजर पाण्डेय की दृष्टि में "यथार्थ का अर्थ अनुभव के सम्पूर्ण यथार्थ से है। केवल वस्तु जगत ही नहीं बल्कि मानव के अनुभूति जगत और चितन जगत का भी समावेश है।" इसी बात का मद्देनजर रखते हुए मुरली मनोहर प्रसाद सिह कहते है देखने की बात यह है कि यहां यथार्थ हमारी चेतना से स्वतंत्र अपनी सत्ता नहीं रखता। यथार्थ के अनुभव और चिंतन के भौतिक अस्तित्व की अवधारणा पर सार्त्र, गोल्डमान और ग्राम्शी ने बार–बार कितना तीखा प्रहार किया है। गोल्डमन ने तो इस तथाकथित यांत्रिक रुझान की उत्पत्ति लेनिन की रचना भौतिकवाद और अनुभव सिद्ध आलोचना में देखी है। गोल्डमान की दलील है कि वस्तुपरक विश्व की यह मार्क्सवादी लेनिनवादी अवधारणा विषय विषयी सबंध की द्वद्वात्मक प्रकृति की अवहेलना करती है और मनुष्य के विश्वबोध के क्रांतिकारी प्रभाव को अस्वीकार करती है। इस सम्पूर्ण विवाद में ग्राम्शी का वक्तब्य संशोधनवादियों की गुत्थी को सामने ले जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि तत्वमीमांसा परक भौतिकवाद में 'वस्तुपरक' का अर्थ है ऐसी वस्तुपरकता जो मनुष्य से स्वतंत्र होकर भी रह सकती है। पर अगर कोई यह वक्तव्य दे कि मनुष्य के अस्तित्व का लोप हो जाने पर भी, यथार्थ की अस्तित्व रहेगा तो समझाना चाहिये कि ऐसा वक्तव्य देने वाला व्यक्ति या तो अलैकिक ढंग से अपनी बात कह रहा है या किसी न किसी किस्म के रहस्यवाद में फंस रहा है। "हम यथार्थ को मनुष्य के साथ उसके सबंध में ही जानते है और चूंकि मनुष्य ऐतिहासिक रूप से बदल रहा है, अत. ज्ञान और यथार्थ की बढत रहे है और इसी तरह वस्तुपरिकता में।"[2]

हिन्दी काव्य विकास के विश्लेषण से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि हिन्दी कविता की जातीय चेतना लोकमगल की चेतना है। परिस्थितियों के प्रभाव और व्यक्तियो के स्वभाव के अनुसार कभी–कभी इस मूल चेतना में विक्षेप होता रहता है और कविता की गति सीधी रेखा से थोडा इधर या उधर यथार्थवाद को न समझने के कारण ही उत्पन्न हुयी है। यथार्थवाद वास्तव में वस्तुओ के यथा तथ्य चित्रण पर नहीं, अपितु सत्यानुभूति से प्रेरित चित्रण पर बल देता है।

दर्शनशास्त्र में यथार्थवाद से अभिप्राय एक यथार्थवादी दृष्टिकोण से है, जो मध्ययुगीन यथार्थवादियों के दृष्टिकोण से निकट साम्य रखता है। जबकि आधुनिक यथार्थवाद वास्तव मे इस स्थिति से प्रारम्भ होता है कि व्यक्ति स्वयं व्यक्तिगत अनुभवों से सत्य का आविष्कार नहीं कर सकता बल्कि पहले सृष्टि का सत्य है और व्यक्ति के सामने अनुभव ही उसे उसका सत्य विवरण देते रहते है।

यहां यथार्थवादी और प्रकृतवादी कलाकारों की दृष्टि भेद का सकेत प्रासगिक होगा। यथार्थवादी के लिए जीवन का यथार्थ महत्वपूर्ण हैं उसमें पात्र और स्थिति के गुण–अवगुण अपने यथावत् रूप में चित्रित होते

---

१. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य कोश–पृ० ५१०।
२. प्रिजन नोट बुक–पृ० ४४६

हैं; इसके विपरीत प्रकृतवादी इस धारणा से संचालित होता है कि मनुष्य अन्य पशुओं से किसी भी रूप मे भिन्न नहीं है। जोला ने निर्भीकता पूर्वक स्वीकर किया है कि प्रत्येक साहित्यकार का यह कर्तव्य हे कि वह जीवन के विश्वसनीय यथार्थवाद चित्रों को चित्रित करे चाहे वे कितने ही बुरे एवं भ्रष्ट हों। फ्लाबयर पहला व्यक्ति था जिसने साहित्यकारों से मांग की कि वे दैनिक जीवन के छोटे छोटे एवं नगण्य चित्रों को अपनी कला द्वारा साहित्य के उच्च स्तर पर चित्रित करें।

ऐतिहासिक दृष्टि से 'प्रकृतवाद' यथार्थवाद के बाद का आंदोलन है। जोला के लेखों में इसकी सर्वोत्तम व्याख्या उपलब्ध होती है। जोला, हापमैन, ड्रेजियर और फैरेल आदि प्रकृतवादियों का विवादास्पद दृष्टिकोण निराशावादी, भौतिकवादी और नियतवादी था। ये प्रकृति और समाज की ऐसी बाह्य ओर आतरिक शक्तियों पर विशेषरूप से दृष्टिपात करते थे जो मानव स्वतंत्रता के लिए बाधक और उसके विवेक एवं नैतिक उत्तदायित्व की संकीर्णता को अवरुद्ध करने वाली थी। "ये मानव एवं पशुओं की प्रवृत्ति में साम्य देखते थे। अतएव इस विचार धारा के लेखक प्रमुख रूप से व्यवहारवादी एवं प्रकृतिवादी स्वरूप के आधार पर प्राकृतिक विवेचन को विशेष महत्व देते थे। इस विवेचन का प्रमुख अंश यौन विकृति से संबंद्ध था।"[1] इस धारणा के अनुरूप प्रकृतवादियों का आग्रह प्रायः मनुष्य की हीन गर्हित पाशविक और नीच प्रवृत्तियो और व्यवहारों के चित्रण का ही रहता है।

यथार्थवाद का ही आधार ग्रहण करते हुए अतियथार्थवाद का विकास किया गया। प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप आयी हुयी अव्यवस्था, अराजकता, नकारात्मक प्रवृत्तियों को जन्म दिया। रूढे के बंधनों को तोडने के लिए शुरू किये गये इस नकारात्मक आंदोलन को कला के क्षेत्र में दादावाद कहा गया। इसकी स्थापना विभिन्न देशों से निर्वासित युवाओं ने स्विट्जरलैण्ड में की और इसके नेता थे अलसांस निवासी हान्स आर्य। इसी दादावाद ने फ्रांस मे अति यथार्थवाद को जन्म दिया। सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग आपालिनैर ने किया था पर इसको एक निश्चित अर्थ देने तथा इसकी सम्यक व्याख्या करने का श्रेय आंद्रे बेतों ने किया है जिन्होंने १६२४ ई० को एक घोषणा पत्र के द्वारा इसका स्वरूप निर्धारण किया।

अतियथार्थवाद की एक दार्शनिक पृष्ठभूमि भी है। इस स्तर पर वर्कसां, हीगेल और मार्क्स का उल्लेख कर सकते है।बर्गसां के रचनात्मक विकास, फ्रायड के अचेतन मन ,हीगेल के द्वंद्वात्मक प्रणाली और मार्क्स के इतिहास की व्याख्या इस के सिद्धांतों और तत्वों में परिष्कृतिरूप से मिलते है।

अतियथार्थवादी लेखक मनुष्य के अवचेतन मन पर विशेष जोर देता है। केवल काव्य में ही नहीं , बल्कि चित्रकला में भी इस मत का प्रकाशन अतियथार्थवाद के नाम से हो रहा है। समलोचकों ने अवचेतन

---

१. डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर ।

मन की विलास लीला को ही अतियथार्थवाद या सुर्ररियलिज्म के नाम से अभिहित किया है। यह सिद्धांत आधुनिक नैतिकता को पूरी तरह खोखला मानता है। उसका विचार है कि मनुष्य पशु के समान आचरण करता है और बहुत सी पशु सुलभ सुविधाओ के प्रति ईर्ष्यालु अनुभव करता है। स्पष्ट है कि यह सिद्धांत इस बात में विश्वास जाता है कि संसार मे बहुत सी वस्तुये और चीजें ऐसी है जिनकी यथार्थ रूप में व्याख्या होनी ही चाहिये।

यद्यपि यथार्थवाद का आधार लेकर व उसके वास्तविकता को बताने की प्रतिज्ञा लेकर यथार्थवाद को ही काफी खींचा गया; परन्तु निश्चित रूप से सारे आंदोलन चाहे वे साहित्यगत हो या कि कलागत अपनी उपलब्धियों में बहुत आगे तक नहीं जा सके। यथार्थ की अपनी पहचान बनी रही और है। क्योंकि वास्तविकता को निष्कपट तरीके से अभिव्यक्ति करना ही यथार्थवाद का उद्‌देश्य था। कला के निर्माण के लिए यथार्थवाद ही सर्वोत्तम शैली है जिसके द्वारा समसायिक वास्तविक परिस्थिति का यथार्थ–चित्रण किया जाता है। जो कुछ है वह सत्य है, जो कुछ हम देखते हैं या सुनते हैं, जिसका अनुभव या अनुमान करते हैं, जिसकी कल्पना करते है, जिसे बुद्धि से जानते हैं अथवा जिसका हमे आभास मिलता है वह सच है इसलिए सत्य है। यथार्थवादी लेखक इस बात की आशा करता है कि वह प्राप्त सत्यो का पूर्ण कलागत ईमनदारी से अपनी कृतियों में उपयोग करेगा।

यथार्थवाद एक ऐसे मार्ग के अनुगमन पर बल देता है जो विकसनशील सृजन प्रक्रिया से संबंधित हैं। इस विकसनशील सृजन–प्रक्रिया के मार्ग में जो भी शक्तियां अवरोध उपस्थित करती है, यथार्थवाद उन्हें तिरस्कृत कर, उनके प्रति अनास्था का भाव प्रकट करता है।

यथार्थवाद कल्पना का पूर्ण तिरस्कार नहीं करता, पर कल्पना से उसका संबंध वही तक रहता है, जहा तक उसकी अनिवार्यता रहती है। साहित्य का सत्य कल्पना को बिल्कुल नहीं छोड़ देता। वह यथार्थ के आधार पर जितना दृढ होता है, उतनी ही गहराइयों तक पहुंचता हैं। प्रत्येक युग मे वास्तविकता को ढूंढना ही सच्चा यथार्थवाद है। इसीलिए यथार्थवाद समाज की प्रमुख एवं ज्वलंत समस्याओं को अपने चित्रण के लिए चुनता है। मानवीय घुटन और पीडायें प्रेम की और घृणा की दिशा तथा उद्‌देश्य निर्धारित करती है। इसी आधारभूमि पर यथार्थवाद और मानवतावाद का संबंध स्थापित होता है। यथार्थवाद न तो इतिहास की वस्तुपरिगणन प्रणाली में विश्वास करता है और न ही वह कैमरे के समान है जो हूबहू चित्र उपस्थित करें अपितु यथार्थवाद का एक मात्र लक्ष्य वस्तुजगत की स्थितियों को सामने रखते हुए सुन्दर से सुन्दरतम् स्थितियों की ओर समाज को उन्मुख कराना है। समाज की सच्चाईयों से रूबरू कराते हुए वास्तविकता के निकट ले जाने के कारण ही यथार्थवाद एक मूल्य के रूप में हमारे सामने आता है। दिखते हुए को देखना और न दिखते हुए को समझना हमारी यथार्थ संवेदनाओं का मूल उत्स है। उसमे अच्छाइयां, बुराइयां, सभी

कुछ विद्यमान है और इन्हीं सबसे समाज का भी निर्माण होता है। यह सब हमें एक साथ संवेदित करती है, हममें एक बोध का निर्माण करती हैं– जो दृष्टि देता है समझने की, और शक्ति देता है सृजन की।

संवेदना हमारे प्रातिभा–ज्ञान पर आधृत होती है, वस्तुतः इसका मुख्य स्रोत अनुभव ही है। प्राप्त अनुभव जो वास्तव में विगत ज्ञान ही होता है, उसी के आधार पर हमारी संवेदानाओं का निर्माण होता है। स्पष्ट है कि अनुभव का फलक विस्तृत होता है, और उसका आधार व्यापक तौर पर राजनीति, समाज, इतिहास, संस्कृति, विज्ञान, धर्म, परिवेश– इस सबका स्वरूप वह हो सकता है और होता भी है। ज्ञान का यह फैलाव मनुष्य की सृजनशील और रचनात्मक प्रवृत्ति का द्योतक होता हैं। कुछ प्राप्त करने की जिजीविषा का परिचायक होता है। ज्ञान का प्रत्यक्ष बोध कराने वाले ये सारे बिन्दु हमारी यथार्थ से प्राप्त संवेदनाओं के कारण बनते है।

परिदृश्य का व्यापक आकलन और उसके अनुरूप ही अपनी दृष्टि का विकास ही वह तत्व है जिसके आधार पर एक व्यक्ति भविष्य को निर्धारित करता हैं। ज्ञान का यह फैलाव, एक साथ अतीत वर्तमान और भविष्य तीनों को संयोजित करता है। यह सच भी है कि प्रगति का व्यापक आधार हमें तभी प्राप्त हो सकता है जबकि तीनों की अविच्छिन्नता स्थिर हो। यह मनुष्य में जहां परम्परा बोध, वर्तमान बोध और भविष्य बोध के सूत्र प्रदान करता हैं, वहीं एक पुष्ट , सार्थक विज्ञानवादी दृष्टि का भी विकास करता है। हमारी संवेदनायें इन्हीं आधारों पर विकसित होती है, जहाँ परम्परा का दाय होता है, वर्तमान की चिन्ता होती है और भविष्य को समझने की अकुलाहट रहती है। संवेदनायें हमें इस स्तर पर आधुनिक बनाती है और एक नव्यतर दृष्टि हमें प्रदान करती है। एक बोध जो जागृत अवस्था का द्योतक है हमें कराती हैं। अपने पूरे विनिर्माण में वे जब हमें आधुनिकता का बोध देती है तो यह परम्परा का या कि वर्तमान की निषेध नहीं होता अपितु जो कुछ जैसा है, उसे महसूसने की शक्ति प्रदान करती है।

यह निर्विवाद है कि हम अपने आस पास फैले संसार से आंख नहीं मूंद सकते है। उसके प्रति एक भाव हमारे मन में अनिवार्यतः रहता है और यही हमें उससे जोड़ता है। जुड़ने का तात्पर्य यह नहीं कि हम उसके पक्षधर हों ही। हम उसके प्रति प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण भी रख सकते है और उसमें रुचि भी ले सकते है। कहना यही है कि युग बोध और संवेदना की मैत्री होती रहती है। एक तो वह व्यक्ति है जो सब कुछ देखकर भी देखे हुए को अनुभव नहीं करता है। अतः उसमें अनुभूतियां नहीं जगती है। दूसरा वह है जो सब कुछ देखता है, देखे हुए के प्रति अपनी रुचि प्रदर्शित करता हुआ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, वही कलाकार होता है और इसी की अनुभूतियां संवेदना का वृत्त बनाती है। इस वृत्त का विस्तार जितना अधिक होता है, कलाकार उतना ही बड़ा और प्रतिभाशाली सिद्ध होता है। यह विस्तार युग विशेष में प्रचलित बोध या

धारणा–अवधारणाओं के प्रति चैतन्य दृष्टि रखने से सम्भव होता है। एक वाक्य मे अगर कहा जाय तो युग चेतना ही सवेदना को गहरायी और विस्तार प्रदान करती है।

युग चेतना के बिंदु, युग विषेश की जमीन से ही विकसित होते है। युग चेतना का मुख्य अर्थ है मनुष्य के सामूहिक व्यवहार में परम्परागत प्राप्त मूल्यों से भिन्न मूल्यों की प्रतिष्ठा । किसी काल विशेष का मनुष्य सामान्य रूप से इस परिवर्तन को अनुभव तो करता है, पर उसे स्पष्ट रूप से पहचानकर अभिव्यक्त नही कर पाता है। वह युग विशेष में अधिकांश लोगो के मन में प्रच्छन्न रूप से चलते रहने वाले जीवन–लक्ष्यो का बोध–मात्र है। जो लोग इतिहास के जानकार होते हैं और सामाजिक व्यवहारों के परिवर्तनों की कार्यकारण परम्परा को समझने की दृष्टि रखते हैं, वे उनके मूल रूप और कारण का अनुसधान करते है। पर जो अधिक संवेदनशील होते हैं, वे प्रत्येक युग की समस्या को अतर्बोध द्वारा ग्रहण करते हैं । ये लोग ही कलाकार की श्रेणी मे आते हैं। कलाकारों की सवेदना आम आदमी की तुलना में अधिक सक्रिय, अधिक ग्रहणशील और अधिक विस्तृत होती है। इसी कारण जो कुछ भी रचनाकारों की सवेदना में आता है, उसे वे इस ढंग से कहते है कि वह पाठकीय संवेदना बन जाता है। लेखकीय संवेदना का पाठकीय सवेदना बन जाना न केवल बहुत बड़ी बात है, अपितु यह रचनाकार की उल्लेखनीय विशेषता भी है। युग बोध को दो स्तरो पर ग्रहण किया जा सकता है– बौद्धिक धरातल पर और सवेदना के धरातल पर। रचनाकार का युगबोध उसकी संवेदना का स्तर बनकर तब आता हैं ,जब युग बोध संवेदना के आधार पर ग्रहण किया जाय। ऐसे समय में उसके प्रभाव, वास्तविकता और आकषर्ण का गुण कई गुना बढ जाता हैं। ठीक भी है कि एक रचनाकार किसी यथार्थ को न केवल देखता है बल्कि भोगता और जीता भी है। वह यथार्थ का हिस्सा बन जाता है और ऐसा होने पर ही उसकी अभिव्यक्त्रि संवेदनात्मक हो पाती है।

जब हम किसी लेखक की संवेदना को समझने का प्रयास करते हैं तो निश्चय ही उसके परिवेश और उसकी कृति का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। परिवेश का ज्ञान इसलिए अपेक्षित है क्यों कि उससे हम यह निष्कर्ष पा सकते हैं कि रचनाकार का सृजन सन्दर्भ और किन धरातलों से जुडा है। रही कृति की बात तो उसका बोध इसलिए अनिवार्य होता है कि हम उसके रचनाकार की युगीन संवेदना के रूप को समझ सकते है।

जीवन की स्थिति कोई बेजान चीज नहीं होती; वह वास्तव में जीवंत परिवेश है जिसका सबसे महत्वपूर्ण घटक है–मनुष्य । वे मनुष्य जो सामाजिक संगति में पारस्परिक लगावों के बीच रहते हैं। इसलिए एक सच्चा सृजनकर्ता अपनी रचना के केन्द्र में मनुष्य को ही रखता है। वह उस परिवेश और वातावरण को भी सामने लाता है, जिससे मनुष्य की अस्मिता का ज्ञान हो और वह सुरक्षित रहें। रचना–कर्म इस रूप में मनुष्य और मनुष्यता को बचाने का एक संकल्प भी है। सच तो यह है कि अपने चारों ओर, जो और जैसा ,

उपलब्ध होता है, मनुष्य उसी के सूक्ष्म और स्थूल की रचना करता है। व्यक्तित्व के संदर्भ में इसे सस्कार कहा जाता है और बाह्य जीवन के परिप्रेक्ष्य मे इसे परिवेश कहते है। किसी भी रचनाकार की मानसिकता और वैचारिकता पर अपने संस्कारों, परम्पराओ और विशिष्टताओं का प्रभाव पडता ही है। जब भी इस आधारभूत भूमि को, सत्य को अस्वीकारा जाता है ,तभी सृजनात्मक की तेजस्विता नष्ट हो जाती है। वस्तुतः इन सारी चीजो की सृजनात्मक समुच्चयता का ही तो नाम सर्जक व्यक्तित्व है। इन प्रभावों और परिवेश के बिना सृजनात्मक व्यक्तित्व सम्भव ही नहीं।

रचना के आर्विभाव में रचनाकार के आत्मव्यंजना की आकुलता प्रतिष्ठित है। 'कविर्यमनीषीपत्मि: स्वयंभू, ईशापस्योपनिषद्' की उक्ति इसलिए सार्थक है क्यो कि काव्य के जन्म के मूल में यही भाव है। परन्तु यह आत्मभिव्यंजना, यह अकुलता ,अनुभूति के संस्पर्श से ही सम्भव है । अनुभव जब भीतर ही भीतर घुल मिलकर, रच पचकर ब्यापक स्तर पर भाव–बोध को पैदा कर सकने की क्षमता पा लेता है, तब उसे अनुभूति के रूप में जाना जा सकता है। साधारण रूप मे इसे इस तरह कहा जा सकता है कि सामान्य आदमी में अनुभव की प्रगाढ़ता होती है , और रचनाकार में अनुभूति की। इसीलिए अनुभव से अनुभूति गहरी चीज है, कम से कम कृतिकार के लिए अनुभव तो घटित होता है, पर अनुभूति ,संवेदना और कल्पना के सहारे उस सत्य को आत्मसात कर लेती है जो वास्तव में कृतिकार के साथ घटित नही हुआ है।

कवि जीवन के जिस यथार्थ को अपनी सहानुभूति के माध्यम से साक्षात्कार करता है, वह अपनी रचना में उसी का कलात्मक रूपान्तरण करता है। रचना का अर्थ ही है – वास्तविकता का रचनात्मक रूपान्तरण। इसी यथार्थ का सम्प्रेषण कवि का मुख्य लक्ष्य होता है। जीवनगत यथार्थ के काव्यात्मक रूपान्तर के पश्चात् स्वय कवि उससे पृथक हो जाता है। संप्रेषण के माध्यम से, कवि अपनी अनुभूति को संवेद्य बनाता है। इसी प्रक्रिया के माध्यम से रचनाकार, समाज के साथ अपने को एकात्मक करता है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए कवि में व्यापक सहानुभूति अपेक्षित है क्यो कि मानवीय संबंधों को साहित्य, व्यापक सहानुभूतियों के आधार पर ही ग्रहण करने में समर्थ हो सकता है।

प्रत्येक उत्कृष्ट रचना सर्वदा सापेक्ष ही होती हैं रचनाकार और समाज के बीच एक अन्तरावलम्ब सदैव विद्यमान रहता है। कवि अपनी व्यष्टिगत अनुभूति का काव्यात्मक रूपान्तर करके समाज अथवा ग्राहक को संप्रेषित करता हैं। अनुभूति एवं रचनात्मक स्तर पर रचना एक व्यक्तिगत साधना एवं प्रयास है, किन्तु अभिव्यक्ति के पश्चात वह समष्टिगत हो जाती है। यह कवि का कविता के माध्यम से आत्म–प्रसार है। इस आत्म प्रसार का मूल्यांकन ग्रहण पक्ष से होता है ।"किसी भी रचना के एक छोर पर होता है–रचनाकार का अनुभव संसार और उसकी अभिव्यक्ति की बेचैनी और दूसरे छोर पर होता है वह सामाजिक संसार जिसमें पाठक व दर्शक , श्रोता या अनुभावक अपने जीवन–अनुभवों और वास्तविक अनुभूतियों के अर्थ और उसकी

पाठक व दर्शक , श्रोता या अनुभावक अपने जीवन–अनुभवो और वास्तविक अनुभूतियों के अर्थ और उसकी सरचना को, उस रचना के प्रिज्म मे से देखना समझना चाहता है ।''[1]

सृजन का जो बुनियादी कर्म है, वह है यथार्थ का रूप व रिश्ते जो उसमे प्रतिबिम्बत होते है। रचना का मतलब ही है इस जीवन जगत के वास्तविकता से एक जागरूक रिश्ता कायम करना। इस रिश्ते के एक मानवीय, वस्तुगत, और ऐतिहासिक संरचना होती है, जो रचना प्रक्रिया को प्रेरित ही नहीं संचालित भी करती है। यहीं पर कवि की अनुभूति की सही तरीके से प्रमाणिकता सिद्ध होती है। अनुभूति की प्रामाणिकता का सम्बन्ध कवि की रचनात्मक ईमानदारी से होता है। ईमानदारी का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति की स्वानुभूति किस सीमा तक जीवन यथार्थ से संयुक्त है। परिवर्तित परिवेश एव वैज्ञानिक स्थापनाओ ने मानव–मस्तिष्क को अपेक्षाकृत अधिक वर्धनशील और विवेकयुक्त बना दिया है। चतुर्दिक व्याप्त विसंगतियों और कटुताओं के वातावरण में व्यक्ति की स्वचेतनता अधिक प्रखर हो गयी है। फलतः आज का व्यक्ति यथार्थ को भूलकर भावातिरेक की स्थिति में नहीं पहुंच पाता। ऐसी स्थिति मे कोई कवि यदि अपनी भावाकुलता की अतिरंजित अभिव्यंजना करता है तो उसमे युगीन सन्दर्भ मे जीने वाले व्यक्ति की भावमयी अभिव्यंजना में तर्कशील मस्तिष्क को सतुष्ट करने की क्षमता स्वाभाविक रूप मे नहीं होगी। लेकिन कविता में वैज्ञानिकता भी वहीं तक वांछनीय है जहां तक वह भावात्मकता के लिए बाधक न बने। इस भावात्मकता मे रचनात्मकता भी सम्मिलित है। यह भावात्मकता, भाववाद नहीं है।

विज्ञान के आलोक में मनुष्य की बौद्धिकता अधिक विकसित हो गयी है, इसलिए ग्रहण के स्तर पर वही रचना स्वीकार होगी, जो रचना के स्तर पर विवेक सम्पन्न होगी। यही विवेक सम्पन्नता वस्तुतः अनुभूति की प्रमाणिकता है। प्रमाणिकता की इसी शर्त पर रचनाकार युग– जीवन से सम्बद्ध होता है। उसका आत्म संघर्ष समग्र मानवता का संघर्ष होता है। इसीलिए प्रामाणिक अनुभूति का काव्यात्मक सप्रेषण ही काव्य की उत्कृष्टता के प्रमाण है।

आज का सर्जक अपनी अनुभूति में समस्त सन्दर्भों को बोध के स्तर पर स्वीकार करता हैं। इन्हीं संदर्भों के बीच उसके रचनात्मक अनुभव की प्रमाणिकता प्रतिष्ठित होती है। रचना की प्रामणिकता वास्तव में रचनात्मक ईमानदारी से प्रकट होती है। कवि वही तक ईमानदार हो सकता है, जहां तक उसकी काव्यात्मक चेतना खण्डित नहीं होती। वह जीवन जगत को उत्तरदायित्व के साथ ही कविता के प्रति भी उत्तरदायी होता है।

---

१. नंद किशोर आचार्य–रचना के सरोकार–पृ० ६२

कविता का जीवन से क्या रिश्ता है ? "कविता जीवन को समझने में हमारी मुश्किलें बढ़ाती है या आसान करती है? हमें संतुष्ट करती हे या बेचैन ? यह सवाल अब कविता के बारे में जरूर ही पूछा जाना चाहिए । एक अपेक्षाकृत लम्बे समय में कविता को रखकर देखे तो कई बार यही लगेगा कि हमारी मुश्किलें बढाकर ही वह हमारे लिए अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। मुश्किलें बढाकर ही वह हमारे लिए अपनी सार्थकता सिद्ध करती है सरलता या सहजता का कविता में इस्तेमाल भी हमेशा मुश्किलें कम नहीं करता। सही विचारधारा या दृष्टि भी रचनाकर्म की कठिनाइयां हमेशा कम नहीं करतीं। अक्सर (खासकर कठिन समय में) वह रचनाकार पर यह जिम्मेदारी भी डालती है कि वह अपनी रचनात्मक क्षमता बढाकर समय की जटिलताओं को देख सके।" सच तो यह है कि कविता का रचना संसार यथार्थ को देखने की बानगी है। वह हमें हमारे "वास्तव" से परिचित कराती है। बस "महत्वपूर्ण यह होता है कि जिन्दगी की सच्चाइयों के प्रति लेखक की आस्था का प्रतिमान कितना ऊंचा और उत्कृष्ट होता है। उसकी रचना और अन्वेषण,जो उसके अनुभव में से जन्म ले रहा है, जिन्दगी की वास्तविकता से भी अधिक किस तरीके से उद्‌घाटन कर रहा है। दुनिया को बदलने की प्रेरणा इस छिपे हुये सत्य के उद्‌घाटन से आती है। एक ऐसा सत्य जो दिखता हुआ भी लोगों को बाज वक्त दिखायी नहीं देता। और लगभग हमेशा ही होता है कि सच्चाइयां भी माकूल तरीके से अपनी सारी सिम्तों में जानी पहचानी नहीं जाती लेकिन अच्छा लेखक वहीं से अपनी रचना करता है तो एक ऐसे क्रांतिकारी सत्य को उद्‌घाटित करता है जो देश और समय की सीमा को पार कर हर दिल अजीज होता हैं।"

****

अध्याय ३

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

क : सामाजिकता : आशय एव स्वरूप

ख : शमशेर की सामाजिक चेतना

ग : नागार्जुन की सामाजिक चेतना

घ : त्रिलोचन की सामाजिक चेतना

ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन की सामाजिक सवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय ३—खण्ड क
सामाजिकता : आशय एवं स्वरूप

समाज व्यक्ति के समूह से निर्मित, विशिष्ट उद्देश्यों से बनाई गयी संस्था है। व्यक्ति समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस सस्था का विशिष्ट उद्देश्यों से बनाई गयी संस्था है। व्यक्ति समूह के द्वारा निर्मित और विकसित इस संस्था का विशिष्ट उद्देश्य व्यक्ति–समाज की रक्षा, उन्नयन और हित है। यह उद्देश्य व्यक्ति परक न होकर आवश्यक रूप से सार्वजनिक होता है। समाज का उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने बीच रहने वाले व्यक्तियों के मध्य पारसपरिक सहयोग का भाव विकसित करे ताकि उनमे एकता, शांति और सौहार्द स्थापित हो सके। समाज में रहने वाले व्यक्तियों से आशा और अपेक्षा की जाती है कि वे सार्वजनिक उद्देश्यो की पूर्ति के लिए शांति पूर्वक मिलकर कार्य करे शताब्दियो एव पूर्व समाज के निर्माण के पीछे इसी प्रकार की भावना कार्यरत थी। तब से अब तक समाज की अवधारणा में अत्याधिक परिवर्तन आ चुका है। आज विश्व में विशिष्ट समाज, समुदाय या राष्ट्र मात्र की 'समाज' की संज्ञा से अभिहित नहीं होता, बल्कि वर्तमान परिस्थितियों में सम्पूर्ण विश्व ही एक समाज का रूप धारण करता जा रहा है।

वैसे एक व्यापक शब्द है। परिवार से लेकर विश्व व्यापी मानव–समूह तक को 'समाज' के विधि रूपों में ग्रहीत किया जाता हैं लेकिन 'समाज' शब्द का वस्तुपरक आशय ऐसे अधिसंख्य व्यक्तियों के समूह से होता है, जिनके उद्देश्य स्पष्ट और स्थायी होते है। समाज के बीच समुदायों का निर्माण होता है।

समाज के भीतर भी अनेक विभिन्नताएं और विशेषताए परिलक्षित होती है। समाज में व्यक्तियों के विविध कर्मो और विधि स्वार्थों के साथ–साथ उनके समाज तथा परस्पर विरोधी दोनो प्रकार के हित भी व्यवहारिक होते रहते है। जब तक इनमे सतुलन की स्थिति बनी रहती है तब तक समाज प्रगति की दिशा में प्रशस्त रहता है। लेकिन व्यक्तियो के परस्पर हितों में अधिक असतुलन और असंगति आने पर समाज में संघर्ष, शोषण, पीडा, न्याय पक्षधररता और संकीर्णता, वर्गीयता का भाव व्याप्त हो जाता है और परिणाम स्वरूप पूरे समाज मे अव्यवस्था फैल जाती है। ऐसी स्थिति में सामाजिक चेतना के माध्मय से ही समाजिक प्रदूषणों को दूर किया जा सकता हैं। सामाजिक चेतना से रूढि, निष्प्राण, परम्परा , अशिक्षा, अभाव,अन्याय, शोषण आदि के दुष्प्राभावों से मुक्ति मिलती है और सामाजिक व्यक्तित्व के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होता हैं। सामाजिक व्यक्तित्व का अर्थ है शक्तिशाली, बौद्धिक और नैतिक व्यक्ति का निर्माण।

"सामाजिक चेतना के माध्यम से समाज में व्याप्त प्रतिकूल परिस्थितियों के समाहार का ही प्रत्यन्त नहीं होता, बल्कि वह नए ज्ञान से पोषित किसी नयी विचारधारा की वाहक होती हैं जब नयी विचार धारा

व्यवहारिक होकर समाज की प्रगति में सहयोग देती है तो यह नयी प्रगति ही सामाजिक चेतना कहलाती है।"[1]

व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों को भी यही सामाजिक चेतना रूपायित करती है। सामाजिक चेतना का भी एक विशिष्ट चरित्र होता है जो आवश्यक रूप से व्यक्ति की जीवंत बना रखती है और चरित्र वह व्यवहार अथवा क्रिया है, जिसके माध्यम से सामायिक जीवन में व्याप्त असंख्य वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है। इसी से व्यक्ति और समाज की एकात्मकता प्रमाणित होती है और यही जीवनादर्शों और जीवन, जीवन मूल्यों का अर्जन और नियमन करती है। समाज मे व्यवहृत नैतिकता, दर्शन, साहित्य, विधि विधान एक प्रकार से संस्कृति के विभिन्न रूप और तब माने जाते हैं लेकिन इन सबका उद्‌गम व्यक्ति चेतना ही है जिसे उदार अर्थों में समाजिक चेतना का नाम दिया जा सकता है । व्यक्ति समाज आज जिस स्तर तक उठ सका है, उसके पीछे 'सत्य समन्वित' सामाजिक चेतना का विशिष्ट योग है जो सामाजिक को संगठित करके व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सार्वजनिक हितों का समर्थन और पोषण करती है।

साामान्य रूप से समाज विभिन्न वर्गों में विभाजित होता है और इस विभाजन के कारण उसकी कोई एक निश्चित विचार धारा नहीं बन पाती है। समाज में उसी वर्ग की विचारधार में सदैव विपरीत होती है लेकिन समाज में उसी वर्ग की विचारधारा का वर्चस्त होता है जो आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से सम्पन्न रहता हैं । इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रत्येक विचारधारा का एक वर्ग स्वरूप होता हैं। यहां यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या वर्ग स्वरूपा विचारधारा 'सत्य' को प्रतिबिम्बित कर सकती है ? क्या वह वर्ग के अनुकूल तथ्यों और यथार्थ को विकृत करके प्रस्तुत नहीं करेगी ? इस प्रश्न के उत्तर में मार्क्सवाद बतलाता है कि हमें विचारधारा को ठोस और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिये जिससे यह निश्चित हो सके कि किस वर्ग का प्रगतिशील अथवा प्रतिगामी वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। कोई भी वर्ग तब तक सामाजिक विकास में प्रगतिशील भूमिका अदा करता है, जब तक उस वर्ग के हित वस्तुगत यथार्थ के साथ मेल खाते हैं तब तक उसकी विचारधारा में आवश्यक रूप से, सत्य का समावेश होता है। किन्तु ज्यों ही उस वर्ग की प्रगतिशील भूमिका समाप्त हो जाती है त्यों ही उसकी विचार धारा में भी सत्य का लोप हो जाता है और वह 'सत्य' को अपने को हितों के अनुरूप तोड़ मरोड कर पेश करने लगता हैं ।"साहित्य की सामाजिक दृष्टि समाज से साहित्य के विभिन्न प्रकार के संबंधों की खोज करती है। लेकिन साहित्य कोई स्थित वस्तु नहीं है। वह परिवर्तनशील और विकासशील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परम्परा के भीतर चलती है और वह समाज की प्रक्रिया से प्रभावित होती है। इस प्रक्रिया में साहित्यिक कृतियों की रचना और बोध सारा क्रिया व्यापार घटित होता है। साहित्य और समज के बीच के सम्बन्ध दो परस्पर सम्बद्ध विकास

---

१. देवेश ठाकुर–साहित्य की सामाजिक भूमिका–पृ० १२

शील प्रक्रियाओं का आपसी सम्बन्ध है। इसलिए एक साहित्यक कृति का समाज से संबंध भी बदलत रहता है। समाज से साहित्य के बदलते सम्बन्ध की पहचान के लिए सामाजिक दृष्टि काफी नहीं है, ऐतिहासिक दृष्टि भी जरूरी है। तभी समाज और साहित्य की परम्परा और उस परम्परा के भीतर की विभिन्न कृतियो के समकालिक और विकासशील सम्बन्ध की समग्रता का बोध हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि के अभाव मे साहित्य की सामाजिकतादृष्टि समकालिक संबंध तक सीमित हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में वह या तो अनुभववाद का शिकार होती हैं या संरचनावाद का। इन खतरों से बचने के लिये सामाजिक दृष्टि और ऐतिहासिक दृष्टि में एकता आवश्यक है।"[1]

क्योंकि तभी हम परिवर्तित हो रही सामाजिक संवेदना को रचना मे अधिग्रहीत कर सकते है। चूंकि साहित्य के परिवर्तन का आधार सामाधिक परिवर्तन होता है दूसरे शब्दो में सामाजिक परिवर्तन साहित्य को प्रभावित और परिवर्तित करता हैं । लेकिन यहां यह भी ध्यान रखता होगा कि स्वयं साहित्य भी सामाजिक परिवर्तन की भूमिका में हस्तक्षेप करता है, कभी–कभी, यह हस्तक्षेप बहुत अप्रत्यक्ष होता है तो कभी प्रत्यक्षतः। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष के ही सकेतों द्वारा वह समाज के यथार्थ को अभियंत्रित कर परिवर्तनका संकेत करता हुआ उन अवसरो को प्रदान करता है जिससे सामाजिक प्रक्रिया को रूपान्तरित किया जा सके। परिवर्तन के लिए एक प्रकार की तीव्र सकल्पात्मक प्रक्रिया की अपेक्षा होती हैं जो बदलते परिवेश की राजनीतिक सामाजिक सास्कृतिक और धार्मिक धारकों को प्रभावित करती हैं । इतिहास गवाह है कि श्रेष्ठ उद्देश्य परक जुझारू साहित्य ने समाज को संवेदित और आंदोलित किया। साहित्य में एक प्रकार की रसानुभूति या यों कहें आनन्दानुभूति का तत्व आवश्यक रूप से अनुस्यूत रहत है लेकिन साथ ही जब यह व्यक्ति पीडा, समाज पीड़ा और सामाजिक यथार्थ के ज्वलंत मुद्दो को छूता है तो यह व्यक्ति मन को विभोर नहीं, आंदोलित कर देता है। व्यक्तित्व परिवर्तन और समाज परिवर्तन की इन्ही वैचारिकता के चलते, समाज परिवर्तन के लिए आवश्यक ओज और सकल्प शीलता का वह नियामक बनता है। इस तरह यह न केवल प्रेरित करता है, कर सकता है बल्कि इसे अजाम तक पहुँचाने का कार्य भी करता है। यहीं पर साहित्य की व्यवहारिक भूमिका बनती हैं। वस्तुतः साहित्य इस अर्थ में सामाजिक परिस्थितियों और वस्तु स्थितियों का मुखापेक्षी नहीं ,बल्कि इससे आगे बढकर सामाजिक विनिमयों में हिस्सेदार बनकर भी सामने आता है , और यहीं उसकी सर्वाधिक रचनात्मक भूमिका भी होती है।

समाज में मूल्यों व आदर्शो के बीच संघर्ष चलता रहता हैं साहित्यकार इन मूल्यों व आदर्शों से प्रभावित होकर अपने रचनाकार्य में संलग्न होता है, तो उसकी रचनाओं में उन मूल्यों आर्दर्शों और प्रवृत्तियों

१– डा० मैनेजर पाण्डे–साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका–पृ०–६५

का उदय होने लगता **है जो** तत्कालीन समाज के बीच विशिष्ट और महत्वपूर्ण माने जाते हैं । सामाजिक परिस्थितियों के समानान्तर साहित्य में ही यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती हैं।

इस प्रकार **समाज और** साहित्य मे परिवर्तन के कारक, परस्पर सम्बद्ध हैं। किसी प्राचीन समाज में जब–जब नए **समाज के तत्वों** का विकास होता है। तब–तब उन नए तत्वों से प्रेरित साहित्य में भी परिवर्तन के तत्व परिलक्षित होने **लगते** हैं। साहित्य में परिवर्तन के अनेक **कारण हो** सकते हैं जब कोई पुराना, रूढिग्रस्त समाज अपनी **अस्वस्थ** परम्पराओं के लिए चरमावस्था पर पहुंच जाता है और जब वहां सामाजिको के लिए उन **सब को वहन करना** असम्भव हो जाता है तब प्रतिक्रिया स्वरूप नये विचार एक आदोलन का रूप ग्रहण कर लेते **हैं**।

परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे–धीरे अपना स्वरूप ग्रहण करने लगती है **और** नए आदर्श समाज के बीच स्वीकृत होने लगते **है। इन मूल्यों** के प्रति साहित्यकार आकर्षित होता **है**। और उसकी रचना धार्मिकता में ये मूल्य उभरने उतरने **लगते है**। इस प्रकार सामाजिक मूल्यों के साथ–साथ साहित्यिक मूल्यों में भी परिवर्तन होने लगते है। अपनी **संवेदना** को विस्तार देने के कारण ही लखक के साहित्य कोई स्थित वस्तु नही हैं यह परिवर्तन शील **है और विकास** शील होता है। परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया साहित्य की परंपरा के भीतर चलती है और **समाज की विकास** प्रक्रिया से प्रभावित होती है । इस प्रक्रिया में साहित्यिक कृतियो की रचना और बोध का सारा **क्रिया व्यापार** चलता है साहित्य और समाज के बीच सबध दो परस्पर सम्बद्ध विकासशील प्रक्रियाओं का आपसी **सम्बन्ध है** , इसलिए एक साहित्यिक कृति का समाज से सबंध भी बदलता चलता है।

गोल्डमन के अनुसार सत्य यह है कि कोई साहित्यिक कृति **सामूहिक** संरचना की होती है। क्यो कि व्यक्ति के माध्यम से **समूह या** समाज अपनी इच्छा आकक्षा आदि को व्यक्त करता है। जबकि ब्यक्ति विशेष की चेतना का अध्ययन **कठिन** है पर कृतियों में उन व्यक्तियों की चेतना और अधिक विश्व दृष्टि स्पष्टता से व्यक्त होती है। **अतः व्यक्त** (लेखक) समझता तो यह है कि वह मात्र आत्माभियक्ति कर रह है परन्तु वह सामूहिक स्थितियों **और सामाजिक** चेतना या मानसिकताा को व्यक्त करता **है**। "यांत्रिक भौतिकवादी और पाजिटीविट्स, **प्राकृतिक विज्ञानों** की वस्तुगत पद्धति का यथादत लागू करने **वाले** लेखकीय सृष्टि को सचेत सृष्टि मानते है। **जबकि साहित्य** और कला में चेतना और अवचेतना **दोनों** स्थितियों रहती है। अतः यही ठीक है कि कलाकृति में **ज्ञात या अज्ञात** रूप से व्यक्त जो मनोलोक है, वह व्यक्ति गत सा लगने **पर** भी, वह किसी तरह **सामूहिक मनोलोक** को व्यक्त करता हैं।"[1] लुसिएं **गोल्डमन** क्षणिक रचनाओं को महत्व न देकर **बड़े लेखकों के लेखन में प्रवृत्तियों** और संरनाओं को सामुदायिक प्रवृत्तियों **और** संरचनाओं से संयुक्त करके

---

१. (सं०)डा० **दया शंकर शुक्ल**–साहित्यानुशीलन : विभिन्न दृष्टियां–पृ० ११५

विश्लेषण करता है । "इस पद्धति से देखने पर अज्ञेय की व्यक्तिगत सी लगने वाली वाणी, भावनायें , अनुचित और विश्वबोध वस्तुत इस देश के यथा स्थिति शील वर्ग का है , जबकि मुक्ति बोध का अर्तद्वन्द्वात्मक साहित्य वैयक्तिक ऊहापोहपरक सा लगने पर भी मध्यवर्गीय अंर्तचेतना के असंतोष, जन सहानुभूति और जन क्रांति का ब्यंजक होने से संबंधित है।"[1]

शब्दों के अर्थों को वस्तुगत सामाजिक संदर्भो से विलग करके भाषा–विज्ञान की यांत्रिकी विधियों अथवा कोरे साहित्यिक संदर्भों के आधार पर नही ग्रहण किया जायेगा। एक रचनाकार द्वारा शब्दो को नये अर्थ दिये जाने की सभावना को स्वीकार करते हुए भाषा के साथ अराजकतावादी खिलवाड की विफलता को भी पहचाना जायेगा। भाषा एक समूचे समाज की सामूहिक सांस्कृतिक उपलब्धि होती है और साहित्य कृति में भी उसका यही स्वरूप कायम रहता है। "ऐसा नही होता कि साहित्यकार शब्दो के सामान्य अर्थो को विनष्ट करके एक नयी भावों का सृजन कर डालता हो। साहित्यकार की भौतिकता के बारे में इस प्रकार की कल्पना कोरे व्यक्तिवादी अहंकार को ही लक्षित करती है। प्रत्येक साहित्य कृति में पाठक तक पहुंचने वाली आवाज के-लहजे की विशिष्टता को भी कृति मे प्रतिष्ठित होने वाले वस्तुगत सामाजिक संदर्भो के आधार पर ही पहचानने की कोशिश की जायेगी।"[2]

साहित्यिक मूल्यों को समाज के प्राथमिक स्ट्रक्चर मे सक्रिय रूप से विद्यमान विभिन्न वर्गों के हितो के साथ उनके अनिवार्य और नियामक सबध को ध्यान में रखते हुए ही समझने की कोशिश की जा सकती है, तथा सांस्कृतिक चेतना में आने वाले परिवर्तनों को वर्ग–संघर्ष की ठोस वास्तविकता से अलग करके नहीं देखा जा सकता। वस्तुत. यह ठोस मुद्दे हैं जिनके आधार पर साहित्य और समाज के अंतः संबंधों पर प्रकाश डाला जा सकता है।

---

१. (सं०) डा० दयाशंकर शुक्ल–साहित्यानुशीलन : विभिन्न दृष्टियां पृ० ११५
२. ओमप्रकाश ग्रेवाल–साहित्य और विचारधारा–पृ० १२०–१२१

****

अध्याय ३—खण्ड ख
शमशेर की सामाजिक चेतना :

शमशेर हमारे समय के सर्वाधिक विशिष्ट कवि है। शमशेर उन ऐसे कवियों में हैं जिनके पास जितनी सूक्ष्म दृष्टि हैं, उतने संवेदनशील कान भी हैं । शमशेर की कविता अपनी मूक व शांत प्रकृति के बावजूद गहरे अर्थों मे एक संघर्षरत आधुनिक मानस की कविता है । "अपने को गला तपाकर, अपने को न्योछावर कर, शमशेर ने इस साधना से जो सत्य निकाला, वहीं उनकी कविता बनी।"[1] कविता उनके जीवन का सत्य है। ऐसा सत्य जिसके अलावां कुछ भी सार नहीं बचता। जीवन का कण—कण , एक—एक शब्द जैसे उस महातप से निकले हुए है। जिसमें उनका समूचा जीवन होम हो गया है। अपने दुःखों, अपनी वेदनाओं और जमाने भर की संवेदनाओ के साथ। इसीलिए शमशेर की कविताएं अपने स्थापत्य में— अपनी सजावट में नहीं, वरन् खुरदुरे निर्माण से प्रभावित करती है। "जहां हल्की सुगबुगाहट भरी खींझ" भी मिलेगी और जीवन के अत्यन्त मार्मिक क्षणों के चित्र भी । और यहीं शमशेर अपने बहुत नजदीक के कवि लगते हैं— बेहद सामाजिक और चौकन्ने। उनकी कविता का खुरदुरा निर्माण समाज के खुरदुरे यथार्थ को देखकर ही निर्मित हुआ है—समाज के साथ गहरे जुडने का संकेत करता हुआ। महत्वपूर्ण यह है कि शमशेर ने अपने अनुभवों को पूरे संयम, धैर्य और सावधानी के साथ अपने काव्य में रूपान्तरित किया है, जो किसी सफल काव्य की अनिवार्य शर्त होती है। उनकी अनुभूतियां तीव्र हैं, लेकिन ये उत्तेजना में नहीं लिखो गयीं है बल्कि इन्हे अनुभव की पूरी ऑच दी गयी है; जिसके कारण वह भावावेश की कविता न होकर गहरे सवेदनों की भाषा बनी है। *"जीवन की तुलना में प्राणों का संयमन सहजतम एक अद्भुत व्यापार सरलता का हमारी ही तरह कैसा दुरुहतम स्पष्टतम पिकोसोई कला"*[2]

अपने परिवेश की विसंगतियों, हादसों, शोषण तथा त्रासदी को शमशेर हौले से एक वृहत्तर बोध मे रूपायित करते हैं, तब जाकर वह कविता में तब्दील होती है। अपने इसी काव्य संयम के कारण जहां कविता महज नारा या बयानबाजी बनने से बचती है, वहीं विरोध का स्वर, एक ऊष्ण अंतर्धारा के रूप में कविता का प्रमुख स्वर बन जाता है। *"टूटेंगे अरि—दल के पहाड़ के पहाड़ जब जन—बल का सागर दहाड़ कर उठेगा, जीवन की कमान"*[3]

---

१. ज्योतिष जोशी—शमशेर की कविता का यथार्थ लोक—पल प्रतिपल अंक २५—२६ जुलाई—दिस० १९९३—पृ० २८
२. प्रतिनिधि कविताए—पृ० ३२
३. प्रतिनिधि कविताए—पृ० ३२

शमशेर की कविता के साथ हमें यह सीखने को मिलता है कि प्रगतिशील मूल्यों के लेकर लिखी गयी कविता पर केवल नारो, जुलूसो और मशालों की छाप होना अनिवार्य नहीं है। मानवमुक्ति को इतर तरीकों से भी, एक मुखर और प्रभावी स्वर दिया जा सकता हैं। इस संदर्भ में शमशेर की कविता, अपेक्षाकृत स्वतंत्र और मुक्ति कविता है। शमशेर की कविता में मनुष्य के पारस्परिक संबंधों के आधार पर, उसे मनुष्य से जोडकर देखा जाता है। डा. राजेन्द्र कुमार का यह कहना नितात सत्य है कि "जो लोग प्रगतिवाद को साहित्य में विद्रोह का सीधा रास्ता बनाने का दम भरने वाली उत्तेजना के रूप में पहचानते हैं उन्हे शमशेर के प्रगतिवाद से निराशा हो सकती है। शमशेर के काव्य की प्रकृति उत्तेजना की हैं ही नहीं यहां तो बस गहरी पिपासा है, मानवीय प्रेम की।"[1]

उनकी अति प्रतिष्ठित रचना' 'अमन का राग' की निम्नाकित पंक्तियां क्या इसे ताकीद नहीं करती–

युद्ध के नक्शों को कैंची से काटकर कोरियायी बच्चों ने

झिलमिली फूल पत्तो की रोशन फानूसे बनाती है

और हथियारो का स्टील और लोहा हजारों

देशों को एक दूसरे से मिलाने वाली रेलो के जाल में बिछ गया है।

शमशेर की कविता में आतंक , थकान और जडता नहीं। अपनी कविता मे वे डर और भय को वस्तुगत रूप में देखने में सक्षम हुए है। वे जान चुके थे कि डर में रचनात्मकता के स्रोत हैं। भय भयभीत को कुछ नहीं देता है पर जो उससे निबाह सकते हैं, उन्हे कई चीजें दिखा सकता है। वह रचनात्मकता का उत्प्रेरक है। शमशेर आस्था के कवि हैं, उसे वह साथ–साथ प्रकट भी करते है। पर शोर मचाकर नहीं। चुपके से उसे कविता में ढाल देते हैं और फिर मानों उसका असर देखते हैं। वह जगाने का काम करते हैं, करना चाहते है, पर उसको लेकर वह स्वप्नजीवी नहीं है। कभी –कभी उनकी कविताओ मे एक खास किस्म का रहस्यबोध दिखायी देता है। लेकिन वे न तो ईश्वरवादी है, और न वहाँ किसी परम की खोज ही है। यह है प्रकृति के मूल किन्ही तत्वों तक पहुचने की ललक, जिसमें मनुष्य और समाज भी शामिल है। उनकी कविता में सत्ता, सभ्यता और उसमे जीवित रहने वाले जन की स्थिति का गहरा विश्लेषण है जो हमारी पूर्ववर्ती सभ्यता के संदर्भ में हमारी समझ को बढ़ता है।

जैसा कहा गया है कि शमशेर की कविताओं में उच्छ्वसित किस्म का आशावाद नहीं है। अपनी कविता में इसीलिए बहुत ज्यादा उत्साहित भी नहीं दिखते। लेकिन उनमें एक उम्मीद है। उनकी कविता में बराबर एक खुशबू ,एक गंध सी आती रहती है; जो उस तरफ से आती है जहां हमारी आज की दुनियां की

---

१. राजेन्द्र कुमार–कल के लिये–पृ० ४८

सुन्दरता और क्रूरता दोनों ही मौजूद है। इस क्रूरता को खत्म करने का नुस्खा शमशेर के यहां नहीं है; और सुन्दरता से कोई कवि भला कैसे बच पायेगा ? शमशेर की सवेदना का रूप मूलतः चूंकि चाक्षुष है, इसलिए वे चित्रों में ही चीजों को समझते और पाते है। ये चित्र भारतीय जिन्दगी के है। वह उनकी कविता में रचा बसा है, जिसकी संगति आधुनिक मन से है। उसमे भावुकता है लेकिन सजग मानसिकता के साथ।–"*इन आंखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आंखे सेंक रहे हैं।*"[1]

उनकी कविता समकालीन भारतीय परिवेश को उसकी विविधताओं और विरोधाभासों में देखना और परखना चाहती है। इसके लिए शमशेर के यहां कविता की खास बनावट है, लेकिन उनके अधिकांश चित्रों के साथ यह नही महसूस होता है कि वे बहुत कोशिश करके बनाये गये है। वे यूं ही बन जाते है।

शमशेर अपने होने की असलियत को एक वास्तविक दुनिया के बीचो बीच खडे होकर जानते थे। वे अपने अनुभव में यह भी जानते थे कविता अगर पूरी कार्यवाही नहीं है तो भी वह महत्वपूर्ण है। इसीलिये वह कहते हैं–"*मैं सुनूंगा तेरी आवाज पैरती बर्फ की सतहों में तीर सी।*" कुछ आलोचक शमशेर की सामाजिकता और प्रतिबद्धता और उनके द्वंद्व को उनकी कविता से जोडकर एक अमूर्त तर्क तक पहुच जाते है। शमशेर की कविताओं में प्रगतिवादी लहजा तो है परन्तु नागार्जुन त्रिलोचन की तरह सर्वहारा के जीवन से गहरी सम्पृक्ति नहीं है। इसका कारण शमशेर की आत्मपरकता, मनौवैज्ञानिक यथार्थवाद और वर्ग चेतना में परस्पर द्वन्द्व का होना है। उनका द्विधाग्रस्त विभक्त मन कभी प्रगतिवादी धरातल का संस्पर्श करता है, कभी आत्मपरकता का।"[2] जबकि स्वय शमशेर का कहना है " मैं आईडियोलाजी से हमेशा सोशल रहा। " कविताओं में सोशल कांशसनेस का प्रश्न उठाये जाने पर वे कहते है कि " आई नो आई दैट माई वीकनेस, मैं मानता हू। पर जब कविता की बात आती है। आई एम हेल्पलेस" (एक साक्षात्कार में) शमशेर अपनी सीमा का हवाला देते समय, वे भीतर ही भीतर अपनी सीमा को तोडते भी चलते है। यही गालिब का परस्पर विरोधी द्वंद्व है। "शमशेर के लिए यह द्वंद्व भाववादी उहापोह नहीं बल्कि वैज्ञानिक अनुभव यात्रा का प्रयत्न है।"[3] शमशेर ने लिखा भी है–" मैं बेसिकली कवि ही अधिक हूं। और मेरी कविता की दुनिया मुझे लगातार घेरे रहती है और अपने अंदर रमाये रहती है। एकान्तप्रियता, तटस्थता, राजनीतिक हंगामों से धीरे–धीरे एक ऊब सी मेरे अंदर बढ़ती गयी है। उम्र के साथ कई बातें आती है। बहुत सी सीमायें कार्यक्षमता आदि की, तथापि मानव कल्याण के लिए मार्क्सवाद का पथ ही एकमेव पथ हैं, यह निश्चित मानता हूं । (उपर्युक्त) कवि का यह निजी वक्तव्य

---

१. ये आंखें–अग्न का राग–पृ० ६७
२. डा. बालकृष्ण राव गोविन्द रजनीश –नयी कविता, परिवेश प्रवृत्ति और अभिव्यक्ति – पृ० ५५
३. विष्णु चंद्र शर्मा – समसामयिक कविता का कर्णधार–पहल १३–पृ० २१६

उसके सामाजिक और प्रतिबद्धता को क्या रेखांकित नहीं करता।"उनकी कविता आदमी को आदमी की हैसियत से जोडे रखने मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अपने समय के यथार्थ का सामना करते ही यह महसूस करना आरम्भ कर देते हैं कि आदमी धीरे–धीरे कुछ और होता जा रहा हैं । एक कवि की हैसियत से ही वह जानते हैं कि शुभकामना सदेश की सरल भाषा या तहस–नहस हो जाने की शाब्दिक चीख असलियत को जाहिर नहीं करती। असलियत उनके घर मे है, और उनके पड़ोस मे, पडोस में। याने उनके समूचे परिवेश मे। यह परिवेश दैनिक जीवन के विवरणों मे विलीन हो जाने वाली चीज नही है। विवरणों से परे जाकर, यथार्थ को देखने–दिखाने के लिए एक तीव्र कल्पना शक्ति की जरूरत थी। शमशेर द्वारा इस तरह चीजों को गौर से देखा गया। इससे उनकी करूणा, विडम्बना में रूपान्तरित होने लगी। यहॉ एक रेखाकित करने योग्य तथ्य है कि शमशेर की इस विडम्बना में वह वाचलता नही है जो नागार्जुन के यहा है। वह व्यंग्य के कवि तो हैं नहीं, बल्कि ऐसे कवि है। जो मनुष्य की नियति के प्रश्न को सामाजिक स्थिति के संदर्भ में ही देखते हैं । सामाजिक स्थिति पर सोचते हुए वह जानते हैं कि उनकी भोली भावुकता को यथार्थ से टकराना ही होगा। इसलिए उन्होने विडम्बना की ऐसी भाषा विकसित की है जिसमें उनकी करुणा अन्तर्निहित है– 'ओ मेरे घर तूने युद्ध ही मझे दिया प्रेम, ही मुझे दिया क्रूरतम कटुतम और क्या दिया।' उनकी कविता की एक विशेषता यह है कि वह हमारे बहुत करीब की चीजों को हमारे मन में जिलाये रखने वाली कविता है। जिन चीजों की उनकी साधारणता के कारण हम उपेक्षा करते हैं वहीं जब कविता में हमारे पास आती हैं तो सिर्फ इतना ही नहीं कि हम उन्हे देखते है बल्कि इस देखने की प्रक्रिया में हम जैसे अपनी मनुष्यता की भाषा वापस पाते है। साधारण के प्रति हमारे मन में सम्मान जगाने वाली यह कविता तब स्वभावतः असधारण लगती है।

शमशेर की कविता की सबसे बडी खूबी है उनकी आतरिक सच्चाई। अप्ने भाव और भाषा दोनों में। यह निजता जिस हद तक कवि की निर्मित है, उससे अधिक वह उनकी संवेदना और उनके अनुभव लोक के बीच एक गहरे और सीधे सबंध के दबाव का परिणाम हैं। इसीलिए शमशेर की कविता के गुणों को समझने के लिए उनकी कविता से गुजरना बहुत जरूरी है। वह कहते भी है मेरी कविताओ में प्रत्येक पंक्ति अपने आप में छंद हैं, वह स्वतंत्र भले न हो किन्तु आत्म निर्भर जरूर है, सपाटे में उससे नहीं गुजारा जा सकता।[1]

वह सिर्फ जुमलों के कवि नहीं है, बल्कि अपनी हर कविता में " इस घटना से उस घटना तक" की तरह, शुरू के शब्द से आखिर के शब्द तक, कविता की अनिवार्यता के तहत जाते हैं। उनकी कविता किसी केन्द्रीय भाव को तरह–तरह से कहने या चमकीला बनाने की आलंकारिता से नहीं बनी है। उसमें उनकी समूची सुदीर्घ भाव–यात्रा का इतिहास है, जो कविता पढ़ते समय दुबारा हमारे मन में घटती है। उनकी

---

१. विजय बहादुर सिंह–कविता और संवेदना–पृ० ४०

कविता के अंदरूनी घटना के सृजनात्मक ताप को समझने के क्रम में उनकी पंक्तियों द्वारा साधा गया दृश्य, दृश्य मात्र न होकर, वह संवेदना की तरह एकदम से हमारे भीतर आ जाता है– नल को अच्छा बनने, अच्छा करने के लिए कहता हुआ। कवि ने अपने रचना संसार में तमाम चीजो को शामिल किया है। यहां तक कि कवि की संवेदना निर्जीव वस्तुओं को भी स्पर्श कर, उनमें जीवन की सम्भावना टटोलती है।, जो इस परिदृश्य में दुर्लभ होती जा रही है। कवि का यह प्रयास केवल विषय वैशिष्टय का ही नहीं है बल्कि संवेदना की उस धारा का भी बोध कराता है जिसके कारण किसी ठोस सी दिखने वाली चीज को भी भेदा जा सकता है।

शमशेर की संवेदना में पीड़ा की भूमिका गहरी है। उनकी पीडा प्रेम जनित भी है और सामाजिक जटिलताओं और विसंगतियों से भी उपजी है। इसी लिए डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते है– " वे कला के संघर्ष और समाज के संघर्ष को एक साथ रखकर देखते हैं। यह आत्मपरकता और वस्तुपरकता साथ–साथ उनकी कविता में दिखायी पडती है।"[1]

शमशेर की दर्दपरक कविताओं में जिन्दगी का निजी कोना भी जगह पाये हुए है। अतृप्तियां, स्मृतियां, भीतर के हिस्से तक को चटखा देने वाला दर्द, यह सब कुछ शमशेर की कविताओं में मौजूद है। पूरी ईमानदारी से इस आत्म वेदना को शब्दों के हवाले किया गया है। लेकिन दर्द की इन स्थितियों के समझने के लिए हमें शमशेर के अकेलेपन को समझना होगा। उनकी कवितारूपी घर की उस संरचना को समझना होगा जहा शमशेर अकेले, निपट अकेले कर रहे हैं। वहां उनके पास कोई नहीं है। नैतिकरूप से भी, रचना संदर्भों के स्तर पर भी। विद्वता ऐसी कि सबको हिलाकर रख दे लेकिन जिंदगी भर व्यवस्थित तरीके से रोटी का इंतजाम नहीं किया। लोग थे, लेकिन भीड़ में वह अकेले थे। इस निपट अकेलेपन में सिर्फ कविता ने उनका साथ दिया।" सच पूछिये तो कविता ही शमशेर का घर था, और यह घर उन्होंने स्वयं बनाया था। अपने लिए । बडे जतन से। ' बे–दरों–दीवार का घर' । "गालिब की तरह"[2]

उनकी कविता का एक बिंब है। कोहनियों से तिकोना पहाड धकेलता हुआ आदमी। वे नितांत अकेलेपन में अपने भौतिक अकेलेपन को जीने का उपक्रम करते हुए कोहनियों से ढेलते आदमी के रूप में नजर आते हैं यद्यपि उस भौतिक अकेलेपन के साथ–साथ उनका रचनात्मक अकेलापन भी था जो निरंता सक्रिय रहा। जिनका अकेलपन भौतिक स्तर पर ही होता हैं वह उन्हें अंदर तक कुतर डालता है। शमशेर जैसे लोगों का अकेलापन रचनात्मक होता है और वह भौतिक अकेलेपन को भी संस्कारित कर देता हैं।"[3]

---

१. डा० विश्वनाथ प्रसाद तिवारी–समकालीन हिन्दी कविता–पृ० ३०
२. डा० नामवर सिंह–वह आखिरी मुलाकात–जनसत्ता, २३ मई १९९३
३. गिरिराज किशोर–जनसत्ता, २३ मई १९९३

जैसा कि रघुवीर सहाय कहते है।" शमशेर ने व्यक्ति की अपूर्णता की बेचैनी और पूर्ण होने की बेचैनी को एक व्यक्ति मे समो दिया है। इससे अधिक गहरी, गाढी, अधेरी शाति ओर नही हो सकती । साधारण लोग इसी को प्रेम की पीडा कहते है। परन्तु यह एक नया इसान पैदा होने की पीडा है जिसे असाधारण रूप से ताकतवर कवि ही झेल सकता है।"[1]

तभी वह कह सके– 'मैं कई बार मिट चुका हूंगा तभी तो, वर्ना इस जिंदगी की इतनी धूम'। यह 'नया इसान' कैसे पैदा होता है इसको समझने के लिए आवश्यक है कि उनके लिविंग प्रिसिपल को पहचाना जाये। उनके लिविंग प्रिसिपल की पहचान उनके मार्क्सवादी नजरिये को समझे बिना संभव नहीं। दूसरा सप्तक के अपने वक्तव्य में उन्होने अपने शुरूआती दौर के बारे मे लिखा है "सन् ३८–३६....... से सन् ४२ तक मेरा रुझान ज्यादातर क्या बिल्कुल अपनी ही दुनिया के अदर खिंचते चले जाने की तरफ रहा।" रंजना अरगडे से बातचीत में उन्होंने इस दौर की अपनीकविताओ के बारे मे कहा– ३७–३८–३६ उस समय की मेरी कविताये (अधिकांश) बडी होती थीं। मेरे जीवन में कुछ उल्लास नहीं रह गया था।" उल्लास न रह पाने का कारण था जीवन में भयानक अकेलापन। उनके भाई डा. तेजबहादुर चौधरी ने उन पर लिखे अपने संस्मरण में छुटपन में मा के गुजर जाने, फिर पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद उनमें पुत्रों के प्रति आ गयी फिर पिता द्वारा दूसरा विवाह कर लेने के बाद उनमें पुत्रो के प्रति आ गयी उपेक्षा और घर से अलग हास्टल की जिदगी की चर्चा की है। अपनों के स्नेह के अभाव के साथ–साथ बाकी अभाव भी थे। इस जीवन की चर्चा करते हुए रंजना अरगडे को शमशेर ने" मैं अपने संसार बताया मे रहा। मेरी अपनी जिंदगी बन गयी। यह जिदगी कला की थी, साहित्य की। असल में यह एकाकीपन शमशेर के लिए उतनी ही ठोस हकीकत थी, जितना उनके लिए मौत । एक दूसरे ढंग से कहा जा सकता है कि मौत उनकी जिंदगी का नक्शा बना रही थी। शमशेर के भाव जगत के सदस्य वे लोग थे जो अब इस जिदगी मे नहीं रह गये थे। जैसे अधकार मे आखों के कारगर न रह जाने पर शेष इन्द्रियों का बोध अत्यंत तीक्ष्ण हो उठता है, वैसे ही अकेलेपन ने प्रकृति पृथ्वी और समाज से खुद को जोडने वाले तंतुओं के प्रति शमशेर की संवेदनशीलता को अत्यंत तीव्र कर दिया था। उनकी रचनाओं के विवाद भरे स्वर की विशिष्टता को पहचानना उनके इस जीवन तथ्य को समझे बिना संभव नहीं । कारण यह है कि उनके सम्पूर्ण काव्य में जिस गहन वेदना की अंर्तधारा प्रवहमान है, वह उनकी वास्तविक जीवन परिस्थिति से उत्पन्न है ।"[2]

---

१. रघुवीर सहाय– सर्वेश्वर व मलयज द्वारा संपादित पुस्तक, शमशेर से उद्धृत

२. अपूर्वानन्द–शमशेर बहादुर सिंह और हिन्दी आलोचना–साक्षात्कार–जनवरी ६८–पृ० ७२ ।

शमशेर चाहते तो जीवन भर अकेलेपन के गीत गाते रह सकते थे। लेकिन जो कला की सच्चाई उन्हे बाधती थी, वह अकेलेपन मे गर्क होने की जगह सम्पूर्ण प्रकृति और समाज से जुडने का आह्वान करती थी। जैसा कि उन्होने लिखा है, वे अस्तित्ववाद के सम्पर्क में भी आये और सुर्रियलिज्म ने भी उन्हें प्रभावित किया, पर जल्दी ही वे इसके असर से निकल आये। अपने आपको टूटते हुए मध्यवर्ग का एक सदस्य मानकर अपने बारे में 'उदिता' की भूमिका में उन्होंने लिखा'– "एक तिनके का सहारा सिर्फ सोशलिज्म ही आडे आया। " यह एक आकर्षण और उत्तेजक विचार था, जो पूरे व्यक्तित्व पर गहरा असर डालने की ताकत रखता था। इसीलिए शमशेर के लिए यह एक व्यक्तिगत और रचनात्मक अनिवार्यता बनकर सामने आया। "मलयज ने अपने निबंध बात बोलेगी, पर कब"? में उन्हे उद्धृत किया है, " "मार्क्सवाद मेरी रूहानी जरूरत थी, सच्ची जरूरत, उसने मुझे मार्बिड और रूग्ण मनः स्थिति से, जिसमें कि मुझे डर था कि पडा रहकर मै बिल्कुल डूब ही जाउंगा ,सपाट हो जाउंगा, मुझे उबारा । " शमशेर ने कहा वह (मार्क्सवाद) मेरी एक रूहानी जरूरत की पूर्ति करता था। तय है कि शमशेर ने विचार के स्तर पर समाजवाद, मार्क्सवाद को अपनाते हैं। इसी को आधार बनाकर वे कविता के क्षेत्र में आते है। इस रूप मे वह सच्चे जीवन–धर्मी रचनाकार है। *"मुझको मिलते हैं अदीब और कलाकार बहुत लेकिन इन्सान के दर्शन है मुहाल"* कहने वाले शमशेर न सिर्फ इसके द्वारा अपनी काव्य दृष्टि का परिचय देते हैं बल्कि इससे उनकी रचना में मनुष्य की केन्द्रीयता का पता भी मिलता है। " शमशेर को जो लोग कलावादी सौन्दर्यवादी मानकर उनके काव्य में कथ्य को अनदेखा कर शिल्प–सौष्ठव पर ही रीझतें रहे हैं, वे खासतौर से उनकी संवेदनाशीलता और मनुष्य को ही सर्वोपरि मानने वाली अत्याधुनिक कला दृष्टि की अवज्ञा करते है। मनुष्य केन्द्रित कला या कविता पलायनवादी, अस्पष्टतावादी नहीं हो सकती और न राजनीतिक नारे और प्रचार के स्तर पर कलाहीनता का आश्रम ही ले सकती है। ऐसे में, शमशेर की प्रयोगशीलता को, जो लोग उनके काव्य में शिल्प पक्ष से ही जोडकर देखते है, उनका मूल्यांकन एकपक्षीय और एकांगी ही माना जाना चाहिए।[1]

असल में शमशेर शुरू में ही यह समझ सके थे–*जन का विश्वास ही हिमालय है* (दूसरा सप्तक पृ० ६८) 'दूसरा सप्तक' के अपने 'वक्तव्य शमशेर लिखते है। –" हम आज ही अगर अपने दिल और नजर का दायरा तंग न करते तो देखेंगे कि हम सबकी मिली–जुली जिंदगी में काव्य के रूपों का खजाना हर जगह बेहिसाब बिखरा चला गया है। सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल–छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं।"[2]

---

१. रेवती रमण–समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य

२. दूसरा सप्तक पृ० ८०

जो बहुत सामाजिक होगा, अपने आस–पास की जिदगी में दिलचस्पी लेगा, वही इस खजाने से चीजो के चुन सकता हैं । शमशेर इसी अर्थ मे हमारी जातीय बोध और समकालीन यथार्थ के कवि है क्यों कि वह इन तमाम बिखरे हुए, लेकिन महत्वपूर्ण विषयों को अपनी कविता की केन्द्रीय विषयवस्तु बनाते रहे। यथार्थ से प्रतिश्रुत होकर वह समकालीन सामाजिकता को अपने कविता मे स्थान देते हैं । वह जीवन में विश्वास करने वाले कवि हैं। उनका बोध उनकी अवधारणा को तय करती–

"कविता तो किरणों की धार में वेगवती सविता है
जहां से कि राग, उत्तप्त हो ....
अंततः निस्तब्ध होते है।
रह–रह जहां से कि दिव्य रंग
रक्त ऊर्जा उभरती।"

लेकिन समकालीन क्रूर समय ने मानवीय राग की इस धारा को कहीं दबा दिया है।

"आज की चीख–पुकार में
एक बहुत कोमल तान
खो गयी है"
उसे पाना है।

यह कोमल तान क्या है ? यह यही क्रूर समय की अमानवीय आपा–धापी है ।जहां मनुष्य, मनुष्य नहीं रहा , जहा जीवन मे आत्मा के प्राणों की सोंधी गंध नही रही, आज हम इस समय मे रहते हुए उस डरावनी व्यथा को बखूबी महसूस कर रहे है। यह मनुष्यत्व के लगातार छीजते जाने की परिणति है। कुछ ऐसा है जो बहुत सुन्दर और शुभ हैं, जो जीवन की जटिलतर होती जा रही सरचना में खो रहा है। इसकी पुनर्रचना भी अंततः जीवन ही में संभव है। बनती हुई कविता खुद मनुष्यत्व की पुनर्रचना नहीं, बल्कि इस दिशा में प्रवृत्त चेष्टा की गवाही है । कविता स्वय समाज को बदल नहीं देती लेकिन बदलाव की बेचैनी को शब्द और अर्थ जरूर देती है।" शमशेर की कविता रागात्मक समृद्धि, विनम्र भाव, प्रयोग परक और सेंस आफ एडवेंचर से संस्कारित कविता है। मनुष्यत्व की छीजन की व्यथा को दर्ज करते रहने तक उसका सरोकार सीमित नहीं है। ऐंद्रिक जादू और प्रफुल्लता को व्यंजित करने वाले बिम्बों की रचना करते हुए, वे इसका सकारात्मक प्रतिवाद करते हैं। इस जादुई प्रफुल्लता में ही लगातार बहती टीस की रेखा है, जो शमशेर की कविता में सृजनात्मक नैतिक अवसाद का आयाम उत्पन्न कर देती है। व्यथा के बीच सौंदर्य की प्रतिष्ठा ही कला की नैतिकता है, ठीक इसी अर्थ में वह–शमशेर के अपने शब्दों में–कला का सबसे बड़ा संघर्ष बन जाती

है' मनुष्य की आत्मा के प्रेम का कॅवल आकाश जितना विशाल हो जाता हैं; और केवल उसी में वह अपने सौंदर्य का अर्थ पाती हैं ।"[1]

'दूसरा सप्तक' में संकलित शमशेर की इक्कीसवी कविता प्रेम और परिवर्तन की मिली जुली संरचना को बडे शक्तिशाली आवेग से सामने लाती है–

चुका भी हूं मैं नहीं

कहां किया है मैने प्रेम अभी

अब करूंगा प्रेम

पिघल उठेंगे युगों के भूधर

उफन उठेंगे सात सागर

किन्तु मै हूं मौन आज

कहां सजे मैने साज अभी।

सरल से भी गूढ गूढतर तत्व निकलेंगे

अमित विषमय जब मथेगा प्रेमसागर हृदय।

निकटतम सबकी। अपार शौर्य की । तुम

तब बनोगी एक गहन मायामय । प्राप्त सुख

तुम बनोगी तब/ प्राप्त जय[2]

इस कविता मे मानवीय प्रेम को व्यापक सामाजिक क्रांति से सम्बद्ध कर दिया गया है। यह उत्सर्ग को आत्मसात् करने वाला प्रेम है। युगों के भूधर, सात सागर प्रतीक बन कर आये है। यथा स्थितिवाद के विरूद्ध, व्यापकता, विराटता को प्रतिरूपित करने वाले इन उपादानों से अलग प्रेम का जो आलम्बन है, उन सब में यह अपार प्रेमानुभूति और क्रांति–प्रक्रिया अभिन्न हो गये हैं। वस्तुतः शमशेर के काव्य विवेक मे अपने समय और बाद के दौर के लिए जो रचनात्मक व्याकुलता है, यथार्थ को काव्य सत्य में रूपान्तरित करते हुए उनमें यथार्थ के पार जाने का जो साहस है, वह कुल मिलाकर नयी रचनाशीलता की जड़ों को पोषण देता है। असल में यह मानवीयता के केन्द्रीयत्व का काव्य है।

रागात्मक समृद्धि, नैतिक सरोकर, जीवंतता और अपने माध्यम के प्रति सर्जक की दृष्टि व दक्षता के

---

१. पुरुषोत्तम अग्रवाल–हंस, जनवरी १९८७–पृ० ४६

२. दूसरा सप्तक – पृ० १०४

समावेशन से वह आत्मा के सौंदर्य की खोज करने वाले बटोही हैं। जहां एकदम निजी से लेकर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति तक की वास्तविक घटनाओ के मूर्त संदर्भ विद्यमान है।

संवाद को सभव बनाने वाले शमशेर की सृजनात्मक महत्वाकांक्षा शब्द और अर्थ, विचार और ध्वनि, की समग्र गतिशीलता को, कविता मे सभव कर पाने की रही है। उनका सारा रचनाकर्म कविता की निरंतरता को बनाये रखने और बचाये रखने का था। सरलीकरण और नकार के इस युग में वे यह भी बताते हैं कि मनुष्य का सकट और कविता का रिश्ता कहां बनता है। इस रूप में शमशेर, कवि के पूरे जीवन के चित्र को, सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों को उजागर करने वाले कवि हैं। अपने समाज और राजनीति और संस्कृति के बीच जो द्वंद्व है, उसमें एक कवि अपराजित निवास की आकाक्षा रखता हुआ एक तीर की तरह समय के हृदय में चुभा हुअ है। इसीलिए एक कवि की काल से होड है, जो न सिर्फ उसके लिए बल्कि हमारे लिए भी अभिम्रान का विषय है। शमशेर की कवितायें उनकी लिपि की स्मृति में हैं, जो गाहे बगाहे हमें चौंका कर उठा देती हैं।

****

अध्याय ३–खण्ड ग

नागार्जुन की सामाजिक चेतना :

नागार्जुन ने अपने समय के यथार्थ और उसमे उत्पन्न हलाहल पर खास दृष्टि से अपना रचनात्मक दायित्व पूरा किया हैं। यही कारण है कि वह न सिर्फ अपने काव्य–कर्म के प्रति सचेष्ट रहे बल्कि पूर्ण समर्पित भी रहे। प्रायः सामान्य रूप से जहां अन्य शब्दकर्मियों की दृष्टि नहीं जा पाती है– उस 'मामूली' को भी वह विशिष्ट बनाते है। काव्य बोध का एक विस्तारधायी गठन उनके पास है। इसीलिए वे शब्द–कर्म के संसार मे दुर्लभ सृजनधर्मिता के दृष्टांत के रूप मे विकल्पहीन हैं। केदारनाथ सिंह ने नागार्जुन पर लिखे अपने लेख का शीर्षक ही रखा है: ''नागार्जुन : खतरनाक ढंग से कवि होने का साहस''।[1]

यह कहते हुए केदारनाथ सिंह कवि के यहॉ आयी हुई उस तात्कालिकता पर ऊंगली रखते है जिसको आकार देने में कवि बडा जोखिम उठाता है। जहां यह खतरे तक का स्पर्श करने लगता है। जोखिम का यह संदर्भ समाज और राजनीति सापेक्ष ही नहीं, कविता सापेक्ष भी है। कविता की कलात्मकता को लेकर चिताओं के आकार का संवर्द्धन करता हैं, लेकिन बावजूद इसके नागार्जुन ने तात्कालिकता से अपने को कदापि विलग नहीं किया वरन् उसकी चुनौती स्वीकार कर के ही उन्होंने साहस और ईमानदारी का सबूत दिया है। केदानाथ सिंह उसे स्वीकार करते हुए लिखते है– एक तथ्य, जिसकी ओर सहसा ध्यान नहीं जाता है, यह है कि तात्कालिक विषय पर कविता लिखना। एक खतरनाक विषय पर कविता लिखना एक खतरनाक काम है।[2] यह खतरा केवल सामाजिक, राजनीतिक स्तर पर नहीं होता, बल्कि स्वयं कविता के स्तर पर भी होता है। ''यह खतरा यहां हमेशा मौजूद रहता है कि कविता रह ही न जाय। पर नागार्जुन एक रचनाकार की दूहरी जिम्मेदारी के साथ इस खतरे का सामना करते है और इस दृष्टि से देखें तो उनमें खतरनाक ढंग से कवि होने का अद्‌भुत साहस है। पर उससे भी बड़ी बात यह है कि उनकी तात्कालिक विषयों पर लिखी हुयी कवितायें उनकी कविता संबंधी एक विशेष अवधारणा की ओर संकेत करती हैं। हम जानते हैं कि उनके यहां गंभीर कही जाने वाली कविताओं की संख्या कम नहीं है। उनके पूरे काव्य को सामने रखकर देखें तो दिखायी पड़ेगा कि उनकी प्रतिभा एक साथ अनुमव के दो ध्रुवान्तों पर काम करती है– एक तरफ प्रेम, वात्सल्य, करुणा और सौंदर्य जैसे गम्भीर समझे जने वाले विषय हैं और दूसरी तरफ एकदम सद्यः दृष्टि

---

१. केदारनाथ सिंह–मेरे समय के शब्द–पृ० ५५
२. केदारनाथ सिंह–मेरे समय के शब्द–पृ० ५५

आसान और तात्कालिक विषय। नागार्जुन का रचना लोक इन दोनों से मिलकर बनता है।"[1] असल में जिसे केदारनाथ सिंह 'अनुभव के दो ध्रुवान्त ' कहते हैं इन्ही के बीच नागार्जुन का भरा पुरा समाज, पूरा संसार फैला है। जो उनकी समाज–सापेक्षता का ठोस उदाहरण है। यह असदिग्ध है कि अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा नागार्जुन ने कविता को विस्तृत फलक प्रदान किया हैं। उनमें सृजन की विविधता है, यहां तक कि वे कविता को वर्जित प्रदेश तक भी लेकर गये हैं " इसीलिए जब मैं यह कह रहा हू कि नागार्जुन की कविता में किसी भी और कवि की तुलना मे बाहर की दुनिया की विविधता है तो मतलब यह है कि अगर केवल समाज के संदर्भ में थोडी देर रुककर देखे तो हिन्दी मे अकेले कवि हैं नागार्जुन जिन्होंने आदिवासियों पर सार्थक कवितायें लिखी है।[2]

इसमें दो राय नहीं हो सकती कि एक कवि और एक जीवन भरे इसान के रूप में सबसे अधिक लुभाता है बाबा का मामूलीपन। यानी मामूली लोगो और मामूली चीजो के प्रति उनकी गैर मामूली दिलचस्पी। "सच तो यह है कि मामूली चीजों और मामूली लोगो के प्रति यह गहरी प्रतिबद्धता हो नागार्जुन को इतना बडा और गैर मामूली कवि बनाती है कि आज उनकी कवितायें नहीं है बल्कि एक जीवत इतिहास हैं। वे एक जरूरी साक्ष्य और दस्तावेज हैं, जिसमे पूरी शताब्दी की धडकने सुनी जा सकती है। तथा एक पूरी शताब्दी की सामाजिक राजनैतिक हलचलों और उतार–चढाव हैं, जो देखा समझा और महसूस किया जा सकता हैं।"[3]

जीवन के सारे रागों का समावेश उनमे है, जो मन को बांधते–रमाते हैं और विक्षुब्ध परेशान भी करते हैं। जिसे मुकम्मिल सर्जना कहा जा सके ऐसी है नागार्जुन की सर्जना। " घाट–घाट का पानी पीते हुए अपने देश और धरती के बहुत बड प्रसार से नागार्जुन ने जिदगी और मनुष्य की इस सम्पूर्णता को अर्जित किया और समेटा हैं । खुद की जिन मूलवर्ती संवेदनाओ के लिए मनुष्य इस धरती पर आया है, वे अपनी पूरी व्यापकता, गहराई और सघनता में नागार्जुन की सर्जना में विद्यमान है। जितना उन्होंने धरती के सौन्दर्य को अपनी गंवाई आखो से देखा और अपनी सर्जना में रूपायित किया है, उतना ही उसके सुख– दु.ख, प्रेम–दाह और ताप–त्रास के चित्र अपनी रचना में उकेरे हैं। साधारण और असाधारण दोनों ही उनकी सौंदर्य चेतना में घुले मिले है। जहां तक धरती के दुखदाह और ताप त्रास का प्रश्न है, उसका संबंध इस धरती में रहने वालों से है। उस कोटि–कोटि जनगण से, साधाारण जनों से है मनुष्य को उसकी सम्पूर्णता में प्रस्तुत करते हुये भी जिसकी पक्षधरता उनके मूलवर्ती रचनात्मक संकल्प के रूप में जीवनभर उनके साथ रही है। साधारण जन के

१. केदानाथ सिंह–मेरे समय के शब्द पृ० ५६–५८
२. मैनेजर पाण्डेय– सापेक्ष का नागार्जुन अंक पृ० १६६
३. प्रकाश मनु–अजकल जनवरी ६६ पेज १२

सुख–दुःख, हर्ष विषाद, आशा आकांक्षाओं और उसके स्वप्नो तथा संघर्षों के साथ उनका यह एकात्म, उनकी यह पक्षधरता किताबी अथवा कोई संयोग भर नहीं है। स्वत. साधारण जन का ही एक अंश होने के नाते उसके अपने जीवन के हर्ष विषाद को उन्होने स्वयं पिया मांगा है।"[1] इसीलिए इस धरती को वह बहुत चाहते हैं इसके एक–एक कण से उन्हे प्यार है। वह बर्दाश्त नहीं कर सकते कि कोई भी इसका बेजा इस्तेमाल करे–

धरती धरती है–
पन्हाई हुयी गाय नहीं
कि चट से दुह लो कटिया भर दूध
धरती–धरती हैं
चावल या गेहूं का ढेर नहीं
कि कुर्क करा के उठा ले जाओ
निछावर हमइस पर
तुम्हारी नहीं, हमारी है धरती।"[2]

असल में यह हर उस आतताई के खिलाफ रचना कर्म है जो इस मुलायम धरती को अपने स्वार्थ और लिप्सा के लिए बडे आरामगाह और किलों के लिए हडपने की कोशिश करतं है। वह इसके एक–एक कण को अपने से जोडते है। जुडाव का यह जज्बा ही उन्हें मनुष्यता के प्रति प्रतिश्रुत करता है। काव्य प्रेरणा के जनजीवन से उद्‌भुद्ध होने पर जन जीवन की स्थितियां और उसके सुख दुख सब कुछ, काव्यानुभूति के विषय बनते हैं। तब जो कविता फूटती है उसमे उसका स्वन्त.सुखाय कदापि नहीं होता है। विडम्बना यह है कि ऐसी कविताओं को भी कुछ लोग बहुधा टिप्पणी या वक्तव्य करार देते हैं। ऐसे लोग शायद भूल जाते हैं कि राजनीति और साहित्य मात्र अभिव्यक्ति में ही भिन्न हैं अन्यथा दोनों का उत्स एक ही हैं – समसायिक यथार्थ ! माने जनता का यथार्थ माने जनता के जीवन का लक्ष्य और संघर्ष । इसमें कोई शक नहीं कि कविता को वक्तव्य बनाना, कविता की शर्तों का अतिक्रमण करना है। ऐसी कविता स्थायी भाव की नहीं होती। किन्तु जिस समाज में सलीके से जीना मुहाल हो, जहां दमन और उत्पीड़न, शोषण और कमीशन, जाति और धर्म और दंगा और दहन जीवनाचार बन गया हो, जहां सब कुछ ऊपर ही ऊपर पी जाने का रिवाज बन गया हो, वहां जीने की न्यूनतम जरूरतों की जद्दोजहद का स्थायीभाव बनना स्वाभाविक है। ऐसे समाज के

---

१. शिव कुमार मिश्र, परिषद, पत्रिका अप्रैल ६८ से मार्च ६६ वर्ष ३८ अंक– १–४ पृ० ८४
२. नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें–२ पृ० ८०–८१

कवि से क्लासिक अथवा क्लासिक भाव के काव्य की मांग करना उसे समाज विमुख, अप्रासंगिक और कामनीय बनाना है। नागार्जुन इसी जमीन से सशक्त प्रतिरोध के कवि सिद्ध होते है। ऐसे कवि जिसकी कविता अपनी प्रतिबद्धताओ, विश्वासों और मान्यताओ के लिए कभी वक्तव्य बनती है तो कभी नारा। मगर किसी भी सूरत मे व्यर्थ बकवास नहीं बनती। नागार्जुन की राजनीतिक कविताओ की इसी अर्थ में महत्ता है। इन कविताओ की सार्थकता देश के राजनीतिक जीवन में आजादी के बाद से अब तक जो कुछ भी घटा है उसका पूरा का पूरा आकलन प्रस्तुत करने में हैं यानी यदि कविता वास्तव में समकालीन जीवन में कोई प्रत्यक्ष भूमिका अदा करती है तो नागार्जुन की कविताओं ने यह कार्य पूरी मुस्तैदी से किया है। नागार्जुन ने खुद ही कहा है– " प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का"।[1] रोज–रोज, नाना प्रकार की समस्याओं से जूझती सर्व साधारण की तबाह जिंदगी को और फटेहाल बनाने की जब कभी और जिस किसी ने भी कोशिश की तब कवि ने बेधडक कविता को हथियार बनाया और हमलावर का जमकर प्रतिकार किया है। सच तो यह कि आजाद भारत में उनसे ज्यादा हिम्मती और विद्रोही कोई और हुआ ही नहीं। इस माने में वह कबीर की परम्परा के रचनाकार हैं। जहां सिर्फ हमे उनकी सरलता, फक्कडपन, साफगोई, साहस और अद्वितीय जिजीविषा के दर्शन होते है। वह कभी भी किनारे पर बैठकर तूफान के ठहर जाने का इतजार करने वालों में नही है। जो सही है, न्यायपूर्ण और नैतिक है उसकी पक्ष धरता करने वालो में है। जन के लिए, न्याय के लिए यदि उन्हें कुछ विचलन भी करना पडे तो पीछे नहीं रहे बाबा। वह वामपथी विचार धारा के निकट थे पर सपूर्ण क्रांति के भी समर्थक थे। आपात्काल में जेल गये और सपूर्ण क्रांति के मोहभंग होने पर उसके खिलाफ भी कविता लिखी। काग्रेस को कोसा तो वामपंथियों की भी खबर ली। उन्हें जो सही लगा वह लिखा इसलिए कि वो सामाजिक प्रतिपक्षता का मतलब अच्छी तरह समझते हैं। उन्होंने जनसत्ता को दिये गये साक्षात्कार में कहा भी "हम अपने विवेक को बहुत बडा स्थान देते है। कोई मुगालता नहीं कि हम गलती नहीं करेगे। लेकिन सही समय पर हमको अपने अंदर की आवाज जो कहती है, उसका बडा महत्व है।"[2] वह सही अर्थों में जनकवि हैं और वही उनका शगल था। यह तय है जो कवि जनता की तकलीफ को नहीं समझता वह बडा कवि नही हो सकता। नागार्जुन इस लिए भी बड़े कवि हैं कि वह बार–बार जनता के दुख और तकलीफों से रोये हैं, और यह तडप और हलचल उनकी कविताओं में साफ–साफ नजर आती है। इस युगीन वेदना की बेजोड़ अभिव्यक्ति नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' जैसी कविता में है। सिर्फ आठ पंक्तियों की यह कालजयी कविता खुद में एक महाकाव्य का दर्द लिये है। इसमें डबडबाई आंख से रची गई अकाल

---

१. शिव कुमार मिश्र–नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें सं० – पृ० २५

२. संदर्भ ग्रहण पंकज विष्ट जनवरी ६६ पृ० ८

की यांत्रणा की तस्वीर तो है ही, साथ ही साथ घर में दाने आने का मतलब क्या है, आंगन में धुंआ उठना या पाखों का खुजलाना किस कदर सुन्दर हो सकता है, इसे नागार्जुन की आंख से ही देखा और जाना जा सकता है–

कई दिनों तक चूल्हा रोया चक्की रही उदास,
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उसके पास
कई दिनो तक लगी मीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त।
दानें आये घर के अंदर कई दिनों के बाद
धुआ उठा आंगन के ऊपर कई दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आंखें कई दिनों के बाद
कौंए ने खुजलाई पांखें कई दिनों के बाद।

स्मरण नहीं होता कि अकाल पर और उससे उपजी भूख पर इतनी मामूली चीजों का वृतांत देकर लिखी गयी इतनी मुकम्मल कविता कहीं और है, जो एक आम आदमी की घरेलू जिंदगी का पूरा चित्र आंख में रचा बसा देती है। यह सहज कविता है। लेकिन यह सरल कविता नहीं है। सहज वही होता है जिसकी अंतर्वस्तु जटिल होती है। यह कविता जटिल अंर्तवस्तु वाली है क्यों कि शब्दों में मनुष्य न हो किन्तु काव्यार्थ के वह केन्द्र मे है। मनुष्य की तरह शब्दों में 'भूख' का भी नाम नहीं लेकिन सारी यातना 'भूख' की है। ऐसी यातना है कि, जिसमें मनुष्य के साथ पशु, पक्षी, जड़, चेतन सब एक साथ, एक तान, एक लय में ग्रस्त है। अकाल केवल शब्द नहीं, भूख केवल यातना नहीं, वह साक्षात मांगा जाता हुआ परिदृश्य–फेनोमना है; अनुभव है ! कविता मे यही अनुभव, अनुभूति बनकर असीम हो गया है। तद्भव शब्दों मे, चिर परिचित हेतु में, और आठ–दस पक्तियो में एक ऐसी कविता जैसी इस विषय पर है–शायद ही किसी अन्य भाषा में लिख गयी है। यह है सहजता की जटिलता।[1]

"भारतीय वाचिक कविता की परंपरा को नया जीवन देने वाले नागार्जुन की कविता में आने वाला यथार्थ जीवन में हर दिन और हर क्षण घटने वाला यथार्थ है पर उनकी यह काव्य दृष्टि मूलतः ऐतिहासिकता के गहरे बोध से जुडी हैं। मजेदार बात यह है कि साहित्य मर्मज्ञों, के लिए वह अपनी कविताओं के जरिये चुनौती भले देते हों लेकिन खुद साहित्य में नहीं जीते। कविता लिखते समय उनके सामने बड़े–बड़े कलावंत उतना नहीं रहते जितना साधारण लोग रहते है।"[2]

---

१. अजय तिवारी– नागार्जुन की कविता पृ० १४१
२. अजय तिवारी– नागार्जुन की कविता पृ० १४१–१४२

इस लिए वे अनुभूतियों ओर अनुभवों के लिए इन लोगों के बीच, इनका हिस्सा बनकर रहते हैं और कविता लिखते समय अपनी अभियंजना को इन लोगो की उपस्थिति, जरूरत और समझ के स्तर के अनुरूप ढाल कर, प्रस्तुत करते हैं। "नागार्जुन पूरे जीवन के कवि है। वह राजनीतिक व्यग्यकार भी हैं, प्रकृति के चितेरे भी है। उनकी प्रकृति मे आदमी अलग नही है। आदमी से प्रकृति अलग नहीं है। वह प्राचीन में कभी जाते है, तो नये से नये तक भी चले जाते है। वह प्राचीन का नये से, नये का प्राचीन से, रखरखाव कराते हैं। वह टकराव भी करते हैं और उसमें नयी गतिशील समाजवादी भी दृष्टि लाते भी हैं। वह छंदशील हैं, छदहीन हैं; जैसे बाबा अपने ज्ञान से आतकित नहीं करते, वैसी उनकी कविता भी नही है । उसमें जीवन, ज्ञान को उंगली पकडाकर चल रहा है। ज्ञान जीवन पर छा नही गया। इसलिए कविता का, कम से कम सस्कार रखने वाला आदमी भी उनकी कविता के निकट आ सकता है।"[1]

इसीलिए वह कह सके–

> इसी मे भाव इसी में निर्वाण
>
> इसी में तन मन इसी में प्राण
>
> यही जड जंगम सचेतन अचेतन जन्तु
>
> यहीं हां ना किन्तु और परन्तु
>
> यही है सुख दुख का अवबोध
>
> यही हर्ष विषार चिता क्रोध
>
> यही है संभावना अनुमान
>
> यहीं स्मृति विस्मृति सभी का स्थान
>
> छोडकर इसको कहा निरन्तर
>
> छोडकर इसको कहां उद्धार
>
> स्वजन, परिजन, इष्टमित्र पडोसियों की याद।"[2]

लोक छोडकर न जाने का यही जज्बा, और "अपने ही खेत में"[3] जमे रहने की संतई मानसिकताा नागार्जुन को बहुत विशिष्ट बनाती है। 'अपने ही खेत में' का विश्लेषण करते हुए लीलाधर जगूड़ी लिखते है'– कवि का अपना मोर्चा या अपना खेत क्या हो सकता है ? यह मोर्चा या खेत कविता के अलावा और क्या हो

---

१. विष्णु नगर सारंगा दिसं. ८७ पृ० २५

२. नामवर सिंह – प्रतिनिधि कवितायें: पृ० २१

३. नागार्जुन अपने खेत में – लीलाधर जगूड़ी – पल प्रतिपल – ४६, अक्टू० दिसं० – १९६८, पृ० ४

सकता हैं? नागार्जुन में ही उत्तर ढूंढा जा सकता है– अपने खेत में हल चला रहा हूं। इन दिनों बुआई चल रही है । इर्द–गिर्द की घटनायें ही मेरे लिये बीज जुटाती हैं– घटनाओं के बीज गांव, शहर और चारो दिशाओ से आ रहे हैं – कवि बाजारू बीजो की निर्मम छटाई की बात करता है और इसी कविता मे एक अद्भुत घोषणा है जो आधुनिक चिंतन पर एक प्रश्न चिन्ह तो लगाती ही है खेती और किसानी की तकनीक का भी अर्थ बदल देती हैं– 'मकबूल फिदा हुसैन की चौंकाऊ या बाजारू टेकनीक हमारी खेती को चौपट कर देगी।' यहां कवि की सरस्वती और उसकी रचनाधर्मिता एक ऐसे कार्य के खेत (कार्य–क्षेत्र) में बदल जाती है जहां कवि का इशारा किसी ऐसी घटना की ओर है, जिसमें स्त्रियों की सहज आवाजाही या उपस्थित के निषेध के बीज बोये जा रहे हैं या उसके बोये जाने की समावना बनती जा रही है।"[1] इसी तरह 'शनीचर भगवान्' में कवि एक ऐसे व्यक्ति से मुखातिब है, जो तरुणाई मे वामपंथी पार्टी के मेम्बर रह चुके हैं और जिनकी सास अपने दामाद को कम्युनिस्ट पार्टी का टिकट दिलवाने के लिए वैष्णो देवी हो आयी है, और जो सज्जन स्वयं इधर शनीचर भगवान की तेल वाली परात में सौ अठन्नियां चढा चुके हैं यानि शनीचर महाराज के पास अब पचास रुपये हो गए है। नागार्जुन कविता के अंत में संकेत करते हैं कि शनीचर तुम्हारे सर पर नहीं दिल मे आ विराजे हैं और 'शनीचर का पुजारी' आप जैसे 'भगत' को ढूंढ निकालेगा।

यह यथार्थ की निपट द्वंद्वत्मकता है जिसे कवि बहुत सचेत भाव से पकड़ता है। बाजारू संस्कृति मे कुछ भी सुरक्षित नहीं रहता। नागार्जुन की अंतर्दृष्टि इस बात को समझ रही है इसलिए यह कवि जितना सकट में आता खुद को महसूस करता है, उसकी जिजीविषा उतनी ही सघनता और तीव्रता से सुगबुगाने लगती है और वह नये सिरे एक बार फिर सक्रिय हो उठता है। यह कभी न चुकने वाली जिजीविषा और जीवन्तता दरअसल विवेक पूर्ण वैचारिकता और नैतिक संघर्षशीलता से उपजी है। इसी प्रकार दूसरी कविता में भी इस काव्य नायक की वर्गीय स्थिति और स्वयं नागार्जुन की वर्ग–दृष्टि को पहचान का द्योतक है। यह न केवल समूचे समाज, परिदृश्य ,हर आदमी, स्थिति परिस्थिति को देखने को दृष्टि है, बल्कि यथार्थ का आकलन भी हैं। यह इसी बाजारू संस्कृति के बिके हुए सुविधा परस्त लोगों का आख्यान है, जहां वह हर तरीके अपनाकर स्वयं को सुरक्षित कर लेना चाहता है । चाहे इसके लिए उसे किसी भी मन्दिर–मस्जिद दुआ–ताबीज की परिक्रमा ही क्यों न करनी पडे।

यहां भ्रष्ट होकर सुरक्षित होने और सफल रहने का अर्थ सिर्फ़ इतना सा नहीं है जितना इसका शब्दार्थ है बल्कि इसकी व्यंजना बहुत दूर तक जाती है। जहां तक यह जाती है वह एक ऐसी स्थिति है जहां मनुष्य, मनुष्य होकर, भी मनुष्य नहीं रह जाता। यहां सुविधाग्रस्त मनुष्य मौकापरस्त हो जाता है। ऐसे लोगों से

---

१. नागार्जुन अपने खेत में –लीलाधर जगूड़ी पल प्रतिपल ४६ अक्टूबर दिसं. १९९८ पृ० ४

आप किसी नैतिक संघर्ष की उम्मीद नहीं कर सकते। अत भ्रष्टाचारजन्य सुरक्षा का अर्थ हुआ – मनुष्यता के प्रति शत्रुता। अपनी इसी व्यापक दूरगामी ध्वनियो–प्रतिध्वनियो के साथ नागार्जुन अपनी सामाजिक सतृप्ति और दृष्टि की वस्तुपरकता का संकेत देते हैं, जो कवि की रचना प्रक्रिया एवं प्रविधि को एक भिन्न रूप प्रदान करता है।

असल में नागार्जुन के कविता की मुख्य विशेषता इस भारतीय कविता की वर्णनात्मक करूणााशीलता है, जो उसे मनुष्य के गहरे और आत्मीय जीवन के सघर्षों से एक बार फिर जोड देती हैं। असंतोष, विद्रोह और क्रांति के अवबोध से युक्त और संवेदनशीलता के गहरे ताप से संयुक्त, उनकी कविता मनुष्य को उसके भीतरी संघर्ष यात्रा के लिए प्रेरित करती है। नागार्जुन के यहा जो रचनात्मक तनाव का गुस्सा है, उसे आम आदमी के दर्दीले हालात की कहानी की भाषा मे पुनर्रचित करने की कोशिश को उनके कविता संसार में आसानी से लक्षित किया जा सकता हैं। दर्द या शोषण की विडम्बना का सम्पूर्ण दृश्यालोक वहां है । इस रूप मे वह सार्थक सृजन ससार की कविता है, जो आदमी को उसके मूल जातीय सदर्भ और संघर्ष में पहचानती है । केवल पहचान के कारण नहीं, मार्मिक पहचान के कारण नागार्जुन की कविता बहुत गहरी हैं। यह संघर्ष को इतिहास और मानवीय विवेक की जडो में ले जाते हुए, उसे नये सिरे से पहचान देती है।

****

अध्याय ३ खण्ड घ
त्रिलोचन की सामाजिक चेतना

त्रिलोचन हमारे जातीय–बोध के कवि है। उन्होंने वह लिखा, जिसे उन्होंने महसूस किया। समय की नब्ज को पकडे, वह हमारी समकालीन जीवन स्थितियों के ऐसे रचनाकार हैं, जिन्होने जीवन को बहुत नजदीक से जाकर छुआ है। उनकी कविताएं एक संवेदनशील और आस्थावान इंसान की भावनाओं और चाहतो की निष्कपट अभिव्यक्ति हैं। जड पदार्थों में भी आत्मा की सिहरन और जटिल समय की पहचान करने वाली, इसकी चुनौती को स्वीकारने तथा मनुष्य और प्रकृति को किसी भी कीमत पर बचाये रखने की आकांक्षा से प्रेरित ये कवितायें इस भयावह समय में भी स्वार्थान्ध सभ्यता और कुटिल मानव विरोधी प्रवृत्तियो से जूझने का संकल्प लेकर नये मनुष्य की संवेदना से प्रतिश्रुत होकर लिखी गयी प्रतीत होती है।

ये विश्व पूंजीवाद की चुनौतियों को स्वीकार करने वाली कवितायें है। इनमें साहस और स्वाभिमान, साम्य, सद्भाव की आकांक्षा के साथ विन्यस्त है। गहज जीवनशक्ति, रूपाशक्ति और रागात्मक ऐश्वर्य के कवि के रूप में त्रिलोचन की पहचान उनकी तमाम कविताओं मे तत्परता से की जा सकती है।

त्रिलोचन के यहां कविता के गहन निहितार्थ हैं। कवि जानता है किसी भी मनुष्य के कहे जाने वाले समाज मे कविता की उपस्थिति मनुष्यता की भी उपस्थिति है। यही चीज आज दुर्लभ होती जा रही है। ऐसा लगता है कि नियोजित तरीके से कविता का संसार सीमित किया जा रहा है– तब, कवि, पाठको को उनकी उपस्थिति से कविता का फलक उसकी हिस्सेदारी बढाकर बनाता है और इन सब मे कविता की अनिवार्य उपस्थिति दर्ज करता है। वस्तुतः इस युद्धरत समय में और इस प्रौद्योगिकी के युग में, जहां कविता केवल छापाखाने की दुनियां तक और दृश्य, श्रृव्य माध्यम शब्दों के विकल्प के रूप में आ गयी हो और जहां सच को सच कहने की परम्परा खत्म होती जा रही हो, वहां कविता ही सबसे बुरे दिनों में भी हमें आदमी बनाये रखती है।

कविता की रचनात्मकता को बचाये रखने में इस तथ्य को निष्क्रिय आभार के रूप में नही वरन् इस संघर्ष के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसको मिलाकर त्रिलोचन की कविता का सौंदर्य निर्मित होता है। त्रिलोचन की कविता का यह संघर्ष छिपा हुआ नहीं है, पर यह कविता के भीतरी संघर्ष की तरह ही है। इस संघर्ष को पहचानने के लिए उनकी कविता के मनुष्य को पहचानना भी आवश्यक है और त्रिलोचन का यह मनुष्य वह है, जो अपने दोनों हाथों से खट रहा है। यह खेतिहर है, मजूदर है, और सम्पूर्ण जीवन है।

"त्रिलोचन ने बहुत सहज भाषा में सादगी के साथ लोक भूमि पर छोटे–छोटे गीत लिखे हैं जिनमें भावुकता का उफान कतई नहीं है बल्कि ठोस संवेदनाओं की छोटी–छोटी दीप्तियां दीखती हैं। इन गीतों में

मानव और प्रकृति सौंदर्य के प्रति गहरा लगाव लक्षित होता हैं। कवि का सौंदर्य बोध परिवार तथा लोक की स्वस्थ भूमि पर छोटे–छोटे विम्ब रचता है। इन छोटे–छोटे गीतो में बिम्बो से, जीवन मूल्यो की ऊष्मा फूटती हैं, ये गीत या त्रिलोचन की अन्य कविताये यदि प्रगतिशील हैं तो इसी अर्थ मे कि उनमे कवि का सौदर्य बोध है, जो सबको साथ देखना चाहता हैं; जो खुली हुयी जीवन दायिनी प्रकृति या मनुष्य की छवि से बनता है और उसे अभिव्यक्ति देता है। कवि इन अनुभूतियो के स्वरूप को एक मानवीय दृष्टि से रचता है, जो हमारी मनुष्यता की प्रतीति को सघन करती है।[1]यह त्रिलोचन का रचना ससार है – सामाजिकता के प्रखर उन्मेष वाली उनकी कविताये पृथ्वी पर रहने वाले अन्तिम मनुष्य के सुख के लिए संघर्षरत हैं। हवा में फूलों की खुशबू की तरह फैली, सब कुछ अंगीकृत करने के लिए व्याकुल। कवि की अपनी अनुभूतिया बहुत संयम के साथ प्रकट होती है। उसमें चीख पुकार या अट्टहास का आलोडन नहीं है। न वह चीज है, जिसे आप अतृप्त वासना कर सकते हैं। इन सब दोषों से मुक्त, विचारो और भावनाओं से आलोकित इस तरह का काव्य मिलना कठिन होता है। साथ ही कवि की प्रगतिशीलता अट्टहासपूर्ण आंतरिक क्षतिपूर्ति के रूप में नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन– संधर्ष से मंज घिसकर तैयार हुयी है। इसीलिए कवि कह उठा– *"मुझमें जीवन की लय जागी। मैं धरती का हू अनुरागी।"* उनकी सारी कविताओं में कवि का गहरा आत्म विश्वास और सामाजिक लक्ष्य के प्रति ईमानदारी प्रकट होती है। यह मात्र ईमानदारी ही नही प्रत्युत उसका जीवन दर्शन है।

और ....."कवि में नैतिक सचाई बहुत प्रबल होने के कारण ही वह सामाजिक लक्ष्य के प्रति उन्मुख है। बहुत काफी लोगों का ख्याल है कि नैतिक सच्चाई से अनुप्रेरित कविता में काव्य कम होता है और थोरा उपदेश अधिक। परन्तु इस विचार में कोई सार नहीं है। कवि ने डायडेन्टिक काव्य के कई अपने उदाहरण रखे है। जो शुद्ध काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट चीजे है। इसी नैतिक भावना के कारण ही कवि अधिक मानवीय हो गया है। यह मानवीय गुण ही उसके समाजवादी ध्येय और तद्गत काव्य के उद्गम का मूल कारण है।"[2]

आशय की ज्यादा गहराई और व्याप्ति के लिए त्रिलोचन की कविताएं एक फैलाव लेती हैं। यहां उनकी कोशिश न मालूम से तथ्य या चरित्र को बडा मूल्यवान या व्यापक बनाने की होती है। यह प्रतिबद्ध जीवन आस्था की कविताएं है। यह उनके नैतिक आस्था के अर्थवान व्यवस्था का संयोजन है। ये कविताएं एक साथ मिलकर इस देश की आत्मा और भूगोल के हर हिस्से में उतरती है। उनमे हरदम एक टोही की सी सावधानी और संकल्प है। स्पष्ट है त्रिलोचन " धरती से दिगन्त तक" नहीं बल्कि " धरती" के "दिगन्त" के

---

१. राम दरश मिश्र– धरती के कवि त्रिलोचन– सापेक्ष– त्रिलोचन अंक – पृ० १४५
२. गजानन माधव मुक्तिबोध हंस –जुलाई १९४६

रचनाकार है। मानव सौन्दर्य बोध के विकास वनस्पतियो और प्राणियों को योगदान त्रिलोचन के लिए महत्वपूर्ण है। "मानव का सारा सौन्दर्य बोध जब विकास करता हैं, तब इनका अपना क्या योगदान रहता हैं,–

आंखें ही इसे देख सकती हैं,

मैं उसी समग्रता को देखने का आदी हूं।[1]

यह समग्रता और प्रवृत्ति का जीवित स्पन्दन कविताओं को नया अर्थ ही नहीं देता बल्कि ये कविताओ "हृदय की मुक्तावस्था" की शक्ति भी बनती है। इन कविताओं में बच्चो की सी निश्छलता है, जो चित्त को विस्तार प्रदान करती है। कविताओं के बिम्ब, प्रतिभा के माध्यम से अनुभूति की प्रतिमा तक पहुचते हैं जैसे–

हवा डोली

घास बोली

आज मैंने गांठ खोली

फूल, तुम खिल

कर झरोगे, [2]

बादलों ने हलकी अंगड़ाई ली,

एक ओर चमक जरा बढ गयी,

हवा नये अंखुओं से यूं ही बतियाती है,

उनका नये अंखुओं से यूं ही – बतियाती है,

उनका सिर हिलता है,

फूल खिलखिलाते हैं।[3]

"इन कविताओं में कलात्मक संयम शब्दों से वर्णों के नाद सौंदर्य तक फैला है, जिसके कारण कविता मुक्ति और वक्तब्य दोनों ही होने से बच जाती है। यह अनुशासन लोक गीतात्मक धुनों पर आधारित "उल्लास" की गति और ऊर्जा के विस्फोट से सम्बद्ध पृथ्वी, आकाश, फिर न हारा, सरसों का फूल आदि कविताओं में है। उनकी दृष्टि केवल आलम्बन पर ही नहीं है, बल्कि वह उससे भी परे सामाजिक सत्य को भी हल्का सा उघारती चलती है। त्रिलोचन क्षण प्रतिक्षण विकसित काल को मुट्ठी में बांध सकने की सामर्थ्य रखते है।"[4]

---

१. त्रिलोचन – ताप के तापे हुए दिन
२. ताप के ताप हुए दिन –पृ० २४
३. ताप के ताप हुए दिन –झपास, पृ० ३७
४. डा. सत्यप्रकाश मिश्र– त्रिलोचन की देशी कवितायें पहल – १५ अक्टूबर १९९० पृ० १२५

उनकी सहस्त्र दल कविता और "हम साथी" जैसी कविताओं का दृष्टिबद्ध सौंदर्य, वस्तुतः अनुभव के स्तर पर "कलाबद्धता" का ही प्रभाव है, क्यों कि कविता में काल स्थिर लगता हे। परन्तु कुछ कविताओं में समय को रोककर कधों पर हाथ रख कर वे निर्मिमेष भाव से देखतं है और फिर मुस्कराते हुए, बतिया कर हाथोंसे एकाएक छोड देते है। जैसे "सहस्त्र दल कमल"।

इस कविता मे शब्द और अर्थ का साथ कर, देश को क्रमश- काल के साथ ही साथ फैला दिया है जिसके कारण कविता का शब्दार्थ भर जाता हैं और पूरी संरचना से नया अर्थ झलकने लगता है, जो द्वंद्वात्मक अर्थ संहति के कारण होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया ही नहीं, परिणाम का भी संकेत है। जो निराला की "बादल राग" कविता की भाति ही कार्य करती है।" पूरी कविता को उद्धत करने का लोभ संवरण करना कठिन है।[1]

जब तक यह पृथ्वी रसवंती है,

और

जब तक सूर्य की प्रदक्षिणा में लग्न हैं,

तब तक आकाश में,

उमडते रहेंगे बादल मण्डल बांध कर

जीवन ही जीवन

बरसा करेगा देशों में, दिशाओ में

दौड़गा प्रवाह..................

मनुष्य की असहाय्रता, निरन्तर बटते चले जाने का भाव, पैरों के पास कीचड के होने का बोध और विवशता की अभिव्यक्ति भी उनके यहॉ है क्योंकि लाभ केन्द्रित व्यवस्था के बढते हुए शिकंजे की तीव्रता से वह परिचित हैं। –

जैसे हो, चलना तो है,

भले कुछ न हो संभर,

वही थल नहीं है, जो है

एक ओर खाई है,

एक और कुंआ।"

---

१. डा. सत्यप्रकाश मिश्र– त्रिलोचन की देशी कवितायें पहल – १५ अक्टूबर १६६० पृ० १२५

इस व्यवहारिक दुनिया मे जहाँ सब कुछ व्यवसायिक व्यवहारिकता के चतुर नियमों का घनघोर प्रभाव मूल्यों के छीजने का मुख्य कारण बनता हो वहाँ कविता के विचारवान पाठक कम ही होगे इसीलिये अपनी कविता संग्रह ताप के ताएं हुए दिन मे त्रिलोचन ने अपनी छोटी सी भूमिका मे पाठक और कवि के मध्य के संबंध के अभाव पर अपनी पीडा इन शब्दों में व्यक्त में व्यक्त की है–"कविता मेरी है और उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी से मैं बरी नही। पर जिम्मेदारी की मंजूरी का कोई खास मानी नहीं। यह मानी उस हालत में खास मतलब रखता जब जागरूक पाठक और कवि के मध्य सीधा सम्बन्ध होता । यों इसका सीधा सबंध अभी हिन्दी में दिखाई नहीं देता, शायद आगे कभी हो।"[1]

उपर्युक्त कथन आज की कविता पर त्रिलोचन की एक बेहद तल्ख टिप्पणी– जैसा है और साथ ही स्वयं त्रिलोचन की कविता की प्रकृति को समझने की एक कुजी भी है । हिन्दी में पाठक और कवि के बीच सीधे सम्बन्ध का विघटन छायावादी कविता के साथ शुरू हुआ था। आज की कविता तक आते–आते यह स्थिति अपनी अन्तिम परिणति तक पहुंच गयी है, जहां कवि और पाठक के बीच सारे जीवंत सूत्र पूरी तरह टूट गये है। त्रिलोचन के कथन में जो बेचैनी है, उसको इसी ऐतिहासिक संदर्भ में रखकर देखा जाना चाहिए। एक आधुनिक कवि के रूप में त्रिलोचन अपनी इस विलक्षण ऐतिहासिक स्थिति और उससे पैदा होने वाली विडंबना को जानते है। इसलिए यदि एक ओर वेअपनी कविता को सबका " अपना ही घर" मानते हैं तो दूसरी ओर उन्हें यह पीडा भरी जानकारी भी है कि–

महल खड़ा करने की इच्छा है शब्दों का

जिसमें सब रह सकें, रम सके, लेकिन सांचा

ईट बनान का मिला नहीं । "

"मैं यहां "सांचा" शब्द को रेखांकित करना चाहूंगा, क्यों कि "सांचा" यहां उस बडी वास्तविकता की ओर इशारा कर रहा हैं, जो शब्दों के बाहर है। उस बडे सांचे से कविता के इस "काम चलाऊ" सांचे का सीधा सम्बन्ध है। कवि के भीतर यह तीखा एहसास है कि शब्दों का ऐसा महल बनाने के लिए, जिसमें सब रह सकें और रम सकें, मानवीय संबंधों का सारा ढांचा बदलना होगा।"[2]

त्रिलोचन की कविता इसी बुनियादी चिंता से पैदा होने वाली कविता है। इसीलिए उनके भीतर यह कचोट और एक दवा हुआ विश्वास है कि अभी हिन्दी में पाठक और कवि के मध्य जो संबंध दिखायी नहीं देता , "शायद आगे कभी हो"। वह जानते हैं कि कविता के वैचारिक संघर्षों मे जब तक पाठक की व्यापक

---

१. त्रिलोचन–भूमिका–ताप के ताएं हुए दिन
२. केदारनाथ सिह–मेरे समय के शब्द पृष्ठ–८०

हिस्सेदारी नही होगी तब तक कविता अपना बुनियादी कार्य नही कर सकेगी। इसीलिये वह व्यापक जनता की आकांक्षाओ के साथ गठजोड के हिमायती हैं।

इन कविताओं की जडे बहुत दूर तक फैली हुई है। साहित्यिक स्तर पर इन कविताओं के पीछे एक भरा–पूरा अतीत है। जिससे इनका गहरा और निजी संबंध है। इस सबंध का सबसे सीधा प्रमाण इन कविताओं की भाषा में मिलता है। त्रिलोचन ने अपने समय की प्रचलित साहित्यिक हिन्दी से अलग और अग्रेजी वाक्य विन्यास तथा मुहावरो के प्रभावो से बिल्कुल अछूती, एक ऐसी काव्य – भाषा विकसित की है जो पूरी तरह हिन्दी है। यह एक ऐसी हिन्दी है जिसके शब्दों में लगभग एक हजार वर्षों के सघर्षो की गूंजें हैं।[1]

और त्रिलोचन अपनी कविता मे उन गूंजों का भरपूर इस्तेमाल करते है–

समग सुगबुगाई

नहीं तो कहीं से

धुन आई क्या आई

चादर फिर फैलाई

फिर–फिर ताहि आई

त्रिलोचन की इस "चादर" के ताने–बाने कितनी दूर तक फैले हुए है। एक और यदि उसके सूत कबीर की "झीनी चदरिया" से मिले हुए है तो दूसरी ओर चादर को फिर फैलाने और फिर–फिर तहिआने को यह क्रिया अपनी तहों में तुलसी की उस वंदना को भी लपेटे हुए है–

प्रासत की गयी बीति निशा सब

कबहूं न नाथ नींद भरि सोये

शब्द की ऐसी गूंजें कवि के सघर्ष और पीडा को पूरे विश्वास से जोडती है।

त्रिलोचन की कविता इन्सानी रिश्तो और जीवन मूल्यों की ऐसी गहरी नदी है जो लगातार अपने समय, समाज, अपने परिवेश रूपी तहों से हौले–हौले बात–चीत करती हुयी आगे बढ़ती है। मानवीय गरिमा और संबंधों की ऊष्मा लिये त्रिलोचन कविता को जीवन के साथ गहरे से जोडते हैं। वह जीवन के प्रसंगों में, से बल्कि जीवन के प्रवाह से कविता के उपयुक्त प्रसंगों को चुनते हैं। वांछित अर्थ की निष्पत्ति प्रदान करता हुआ त्रिलोचन का काव्य, मानवीय सम्बन्धों की आत्मीयता का काव्य है। त्रिलोचन कविता लिखते हैं, इसलिये कि ठोस किन्तु द्वंद्वात्मक और गतिशील यथार्थ जीवन को गहराई के साथ प्रेम करते है। तभी तो त्रिलोचन की कवितायें विघटन के इस दौर में भी आदमी से आदमी को जोड़ती है, आदमी से आदमी की कथाव्यथा

---

१. केदारनाथ सिंह–मेरे समय के–पृ० ४०

कहती है, सहानुभूति दिलाती हैं, आदमी की अभिव्यक्ति को आदमी के लिये, उसकी भाषा में आदमी को आदमी बनाने के लिए कारगर सिद्ध होती है जो विस्मृति के गर्त मे फेक दिया गया है। वे नहीं चमचमाती कवितायें हैं, जो जीवनोन्मुखी उल्लास और गतिमानता के गुणों से युक्त हमारी मानवीय स्मृतियों को सुरक्षित रखने वाली कवितायें हैं। धरती के त्रिलोचन इसीलिए कह सकें –

" सुनता हूं मैं जीवन का स्वर
गाता हूं मैं जीवन का स्वर"[1]

विश्व के हृदय तक का यह प्रसार त्रिलोचन की मानवीयता का ही प्रसार है। कवि मनुष्यता का मान रखने के लिये जीता है क्यों कि वह जीवन से प्यार करता है–

"औरों का दुखदर्द वह नहीं सह पाता है
यथा शक्ति जितना बनता है कर जाता है"[2]

या– *" मैने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता*
हूं जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी
जूझ रहे हैं, जो फेके टुकडों पर राजी
कभी नहीं हो सकते हैं, मैं उन्हें मानता
हूं। आगामी मुनष्यताओं का निर्माता।"

इस धरती और उसके बडे तबके साथ प्यार करने का यह अद्‌भुत जज्बा त्रिलोचन की कविताओं का वह रंग है जिनसे वह अपने मनुष्य होने की नैतिक शर्त को पूरा करते है।

त्रिलोचन जीवन–संघर्ष और जीवन–सौंदर्य के अप्रतिम कवि हैं। उनकी कविता में चित्रित संघर्ष और सौंदर्य केवल उनका नहीं, बल्कि इस हिन्दी भाषी जाति का संघर्ष और सौंदर्य है, जिसे देखने और पहचानने की क्षमता हिन्दी के कविता के आधुनिकतावादी माहौल में लगातार खोती गयी है। त्रिलोचन ने न केवल इसे देखा और पहचाना है, बल्कि उससे वैसा आंतरिक लगाव स्थापित किया है, जैसा कि कविता में तुलसीदास और निराला तथा गद्य में प्रेमचंद–जैसे कथाकारों में ही देखने को मिलता है।'[3] त्रिलोचन की विशेषता यह है कि वे कविताओं को ऐतिहासिकता से सम्पन्न बनाते है। ऐतिहासिकता, अनुभव और संवेदना दोनों को प्रमाणिक एवं गतिशील बनाती है। सामाजिक यथार्थ के आधार पर ही ऐसा सम्भव है। यथार्थ एक गतिशील

---

१. त्रिलोचन – धरती–पृ० ११
२. त्रिलोचन – ताप के ताये हुए दिन –पृ० ४७
३. नंद किशोर नवल–'तापके ताये हुए दिन' संग्रह के फ्लैप पर

सच्चाई है और उसकी गतिशीलता अतीत से चलकर वर्तमान मे होते हुए भविष्य की ओर जाती है। यह सगय–सापेक्षता ही कवि की अनुभूतियां को ऐतिहासिकता प्रदान करती है। ध्यान रखने की बात यह भी है कि ऐतिहासिकता, अनुभूतियों की संवेदनाओ को न केवल प्रामाणिकता बल्कि व्यापकता भी देती है। इन्ही विशेषताओ से वे इस अवस्था को पाकर दीर्घायु होती है। इन्ही विशेषताओं से युक्त कृतियां ही क्लासिक का दर्जा पाती हैं। त्रिलोचन की कवितायें इन्हीं संदर्भों मे क्लासिक हैं, क्योंकि उनमे मनुष्य और उस नैतिक सभ्यता को अक्षुण्य बनाये रखने की ललक है।

" तेरे रोग द्वोष में ले लूं, आ तू, आ तो,

झिझक न मेरी छाती सभाल सकती है।"[1]

त्रिलोचन की कविता का संवेदना संसार उतना ही विस्तृत है जितना उनका अनुभव संसार। वे अपने अनुभव, अपने रहने वाले संसार से लेते हैं ; दरअसल जिसे हम कवि और कविता की आंतरिक विशेषताओं कहते हैं वे त्रिलोचन और उनकी कविता में पर्याप्त मिलेंगी। बिना किसी बडबोलेपन के कोई राजनीतिक दर्शन न बघारते हुए और कभी–कभी तो आज की राजनीति जैसे स्वीकृत काव्य विषय को भी कविता में न लाते हुए अच्छी कविता हो सकती है, इसका उदाहरण त्रिलोचन की कई कवितायें पेश करती है।–

" बडे–बडे शब्दों में , बडी–बडी बातों को

गहने की आदत और में है, पर मेरा

ढर्रा अलग गया है,

ढाको के पातो को

थाली की मर्यादा देकर

पहना घोरा तोड दिया ।

यह कवि की सवेदनशील आत्मीयता ही है जिसके कारण यह संभव हुआ कि त्रिलोचन की कवितायें अपने समय की चालू कविताओं, जन जन के लिए घडियाली आसू बहाने वाली कविताओं और वादों को शब्दों में सप्रयास फिट करने वाली कविताओं से अलग दीखती हैं। ये न केवल प्रकृति से, बल्कि स्त्रियो , दोस्तों या अपने देखे गये परिचितों से और श्रमशील किसानों से संवाद स्थापित करती हैं। इनके द्वारा कवि अपनी मनश्चेतना के द्वारा सभी प्राणियों से इतने गहरे जुडता है कि जड पदार्थ भी प्राणमय हो जाते हैं । चीजों के प्रति, लोक के प्रति एक गहरी संपृक्ति इस कवि में है। मनुष्य से प्रेम करना उनका बुनियादी संस्कार है जो उनके लिये धर्म सरीखा बन जाता है।

---

१. त्रिलोचन–फूल नाम है एक पृ०–२०

अध्याय ३—खण्ड ड०

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की सामाजिक संवेदनाओं का तुलनात्मक अध्ययन :

नागार्जुन की कविता में जनवादी संवेदना का एक बिल्कुल भिन्न पहलू सामने आता है । त्रिलोचन जहां अपनी रचनाओं में एक मेहनतकश व्यक्ति की धैर्यपूर्ण एवं सुरक्षात्मक सहन शक्ति को लक्षित करते हैं वहां नागार्जुन इस तबके के लोगों के उन्मुक्त उत्साहों और निर्बाध आवेशों को, तथा निरन्तर घटित होने वाली राजनीतिक घटनाओं की ओर, उनकी सजग सामूहिक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करती हैं। राजनीतिक सामाजिक फलक पर जो कुछ भी घटित होता है, चाहे वह किसी व्यक्ति विशेष का प्रधानमंत्री बनना हो या किसी विदेशी राजनीतिक नेता की भारत यात्रा, आम चुनाव में हों या जय प्रकाश नारायण द्वारा चलाया जाने वाला 'सम्पूर्ण क्रांति' के लिए अभियान, कोई जल्सा जुलूस हो या हरिजनों पर की जाने वाली अमानवीय हिंसा की घटना, इससे मेहनतकश लोगों के अंदर जो सनसनी फैलती है और इसकी ओर स्वतः स्फूर्त रूप में उनकी जो सामूहिक प्रतिक्रिया उभर कर सामने आती है, उसे नागार्जुन पूरी तन्मयता और सजगता के साथ व्यक्त करते हैं। जिस प्रकार साधारण जनसमुदाय पग–पग पर चकित, मुदित अथवा स्तंभित होता रहता है और जिस प्रकार गुस्से में आकर वह किसी को भी आडे हाथो लेने लगता है, जल्द ही उत्तेजित और फिर जल्दी ही शांत हो जाता है, उसी प्रकार नागार्जुन का कवि भी इन सामूहिक प्रतिक्रियाओं को एक ऐसी काव्य भाषा में व्यक्त करता है, जो मूलतः जनभाषा के जनमुहावरे पर आधारित है। चिंतन में नागार्जुन स्पष्ट रूप से वामपंथी है और उन्हें पूर्ण विश्वास है कि देश मे खुशहारी तभी आ सकेगी जब किसान मजदूर एक जुट होकर इजारेदार, पूंजीपतियों और भूस्वामियों के शोषक उत्पीडक गठबंधन को तोड़ देंगे। किन्तु अपनी कविता में नागार्जुन ऐसे निष्कर्षों पर तार्किक विश्लेषण के आधार पर नहीं पहुंचते। भावात्मक रूप से वे मेहनतकश लोगों के साथ पूरी तरह जुड़े हुये हैं, और उनके दिल की धड़कन को तुरन्त महसूस करते हैं। उनका यही रुझान बड़े स्वाभाविक ढंग से समुदाय के हितों की पुष्टि करता दिखाई देता है। इसके लिये उन्हें कोई सचेष्ट प्रयास नहीं करना पडता। लोगों की भाषा में, उनकी अपनी ही बात को अनायास ही कहते जाना नागार्जुन जैसे जनकवि के लिए बड़ी मामूली बात है। परन्तु साधारण मेहनतकश लोगों की सामूहिक प्रतिक्रियाओं में कई बार कुछ भ्रान्तियां और अंतर्विरोध बने रहते हैं तथा घटनाओं के चूक के साथ साथ उनकी प्रतिक्रियाएं भी काफी कुछ बदलती रहती हैं अतः नागार्जुन की रचनाओं में भी हम ऐसे बदलाव बहुत बार पाते है। नागार्जुन की समय–समय पर बदलती रहने वाली स्थापनाओं का लेकर कुछ पाठक काफी विचलित भी हो जाते हैं और उनकी कविता के जनवादी चरित्र को ठीक से पहचानने में दिक्कत महसूस करते है।

किन्तु नागार्जुन की सभी प्रतिक्रियाओं में यह बात एकदम स्पष्ट बनी रहती है कि वे अपनी स्थापनाओं को निजी अवसरवादिता के कारण नहीं, बल्कि बहुजन समुदाय के साथ अपने भावात्मक लगाव के कारण बदलते रहते है। वैसे सार रूप में उनकी प्रतिक्रियाएं कहीं अधिक गलत होती भी नहीं, और उनकी पक्षधरता पर उनके दिशाभ्रमों से कोई विशेष आंच नहीं आती। मेहनतकश जनता की सामूहिक भाव–मुद्राओं का ऐसा स्पंदनशील वाहक, हिन्दी कविता में कोई दूसरा कवि मुश्किल से ही मिलेगा। नागार्जुन को हम जनमानस की बदलती हुई दशाओं और प्रतिक्रियाओं का बैरोमीटर कह सकते हैं।

हिन्दी क्षेत्र में जनवादी आंदोलनों ने ज्यों –ज्यों जोर पकड़ा है त्यो–त्यों नागार्जुन की रचनाओं का जनवादी तेवर भी निखरता चला गया है। वैसे आजादी के बाद के तीस सालों की समूची राजनीति के जनविरोधी स्वरूप को नागार्जुन लगभग आरंभ से ही प्रखरता के साथ महसूस करते रहे हैं और उस राजनीतिक छद्म को उजागर करने के लिए वे तीखे व्यंग्य का सहारा लेते रहे हैं । उधर जब से बुर्जआ राजनीति के तहत तानाशाही आतंक जोर पकड़ने लगा, नागार्जुन अपनी रचनाओं में बड़े कारगर ढंग से इसका विरोध करने लगे । शोषक शासक वर्गों की ओर से बहुसंख्यक जनता पर होने वाले प्रहारों को नागार्जुन विशेष रूप से रेखांकित करते रहे हैं । सही जनतांत्रिक मूल्यों और हमारी परम्परागत संस्कृति के स्वस्थ पहलुओं को नागार्जुन के पास ऐसी गहरी पकड़ है, कि उनकी मदद से वे आज के समाज में जो कुछ भी छद्म है उसे बड़े प्रभावशाली तरीके से उतारने के साथ–साथ वे अपनी कविता में अनेक बिंबों मिथकों और आख्यायिकाओं को बड़े कारगर ढंग से प्रयोग में लाते हैं, जो जनमानस की सहज उपज होते है और जन–स्मृति में अंकुठ पक्ष धरता भी सिद्ध करती है।

त्रिलोचन की सामाजिकता के बारे में जो पहली बात दिमाग में आती है वह है उनकी समाज के प्रति घनघोर पक्षधरता । प्रतिपक्ष उनके लिए विचार–संज्ञा ही नहीं है, एक समर्थ, संगठित काव्यात्मक रूपाविधि भी है । अभ्यस्त मार्ग को छोड़कर सोचने और रचने का एक कारगर उपाय है। त्रिलोचन के यहां यह अपने तरीके से आता है। त्रिलोचन के काव्यात्मक यथार्थवाद की प्रेरणा और दिशा एक अनिवार्य प्रतिपक्ष है। प्रतिपक्ष– जो प्रतीक्षा का पर्याय है, नकार का नही। काव्यात्मक यथार्थवाद त्रिलोचन की कविताओं में एक रचनात्मक दृष्टि और काव्यात्मक संगठन के हिस्से के रूप में सामने आता है। वह उनके कविता का हिस्सा बनता है। उसे खपाता भर नहीं बल्कि उसे एक जीवित काव्यात्मक परिप्रेक्ष्य भी देता है । अनुभव की अद्वितीयता और शब्दों की गरिमा के बहुप्रचारित दावों के सामान्तर त्रिलोचन ने व्यवहारवादी रूझान से कवि–वर्ग की नयी संभावनाओं को जोड़ कर देखा और दिनचर्या में शरीक साधारण चीजों को अचानक कविता की भाषा में उपलब्ध कर नये काव्यात्मक साक्ष्य रचने की कोशिश की। पर त्रिलोचन की कविता को

समग्रता से जानने के लिए दिनचर्या के यथार्थ को, ऐतिहासिक जिंदगी के तनाव में देखना चाहिए। इस काव्य संसार मे हर समय कुछ नया घटित होता रहता है।

त्रिलोचन की कविता उदाहरण है कि उन्होने जीवन की पाठशाला से ही काव्यदीक्षा ग्रहण की है। इसी रास्ते चलकर वे कविता को जाग्रत मन और जीवित समाज की अभिव्यक्ति का रूप दे सके है। प्रगति का अर्थ उनके लिए जीवन में ही निहित है। जीवन के बाहर प्रगति के दावे निरर्थक है– अवास्तविक–

" जीवन में ही प्रगति भरी है अलग नही है।

जो बाहर है वस्तु तत्व से दूर कहीं है।"

शास्त्रवाद के विरुद्ध त्रिलोचन जैसे अपने को सचेत करते है– *" साधरणीकरण कथनी की बात नहीं है, करनी में आये तो आये।"* इसी सावधानी के चलते त्रिलोचन जनता को स्वार्थी जनों से बचाने की सलाह देते है– *" जाओ पेड रूख से अपना दुख गा आओ।"* साथ ही जनता को सड़ी व्यवस्था के विरुद्ध ललकारते है– नेतृत्व आकांक्षा से नहीं–उन्हीं में से एक होकर संघर्ष बढ़ाने और तेज करने के लिए–

" बीज क्रांति के बोता हूं मैं, अक्षर दाने

है, घर, बाहर जन समाज को नये सिरे से

रच देने की रुचि देता हूं।"

मुख्य बात यह है कि त्रिलोचन सामाजिक परिवर्तन के पक्ष में है–

" मुझको दुनिया

नापसंद है जो रहने के लिए मिली है।

मेरे संतोषी की सारी नींव हिली है।"

असल में असंतुष्ट होकर ही इस दुनिया को बेहतर बनाया जा सकता हैं । क्यों कि सतुष्टि का कोई कारण यह दुनिया दे नहीं पा रही इसी लिए वह परिवर्तन चाहते है। परिवर्तन नये जीवन का आधार है बल्कि अपने आप में नया जीवन ही है। इसीलिए त्रिलोचन के जीवनधर्मी काव्य विवेक में ही परिवर्तन और प्रगति की सार्थकता छिपी है। इसीलिए उनकी अस्वीकृत और असहमति के गहन निहितार्थ है। इस रूप में त्रिलोचन की कवितायें हमारे समय के मानवीय संघर्ष की शोषण तथा अन्याय के प्रतिरोध की कवितायें है। साथ ही वे गहरे अर्थ में मानवीय लगाव की कवितायें है। उनकी प्रतिरोधात्मक इस रूप में ज्यादा महत्वपूर्ण इस लिए है क्यों कि कविता को वह यथास्थिति को तोड़ने या उसे विचलित करने का जरूरी साधन समझते है। कविता से समाज बदले या न बदले, उसे थोड़ा बहुत बदलने की इच्छा से वह असंपृक्त नहीं है, लेकिन वह निषेधकारी कवि नहीं है बल्कि जीवन की स्वीकृति के कवि हैं। वे जीवन को उसकी तमाम बदरंग वास्तविकताओं जटिल अर्न्तविरोधों, कठोर चुनौतियों के साथ स्वीकार करते हैं। स्पष्टतः वह सभ्यता के उजाले और अंधेरे दोनों का

संकट जानते है और यह भी जानते है कि इस उत्तरोत्तर गहराते संकट काल में कविता क्या कर सकती है। इतिहास ओर वर्तमान के प्रश्न त्रिलोचन की कविता में मडराते रहते है। इसी कारण वह कह सके–" *कब स्वतंत्र होगी यह जनता टूटी हारी'* । वह जानते हैं कि वास्तविक स्वतत्रता अभी तक प्राप्त नहीं हुई है। वह जानते हैं कि एक लम्बा रास्ता तय करके ही इसे पूरा किया जा सकता है। इसी कारण उनका आहवान आगे बढकर बिना विश्रांति के लक्ष्य पाने की ओर है–

"सूनापन हो
या निर्जन
पथ पुकारता है,
गत स्वनः हो,
पथिक
चरण ध्वनि से
दो उत्तर
पथ पर
चलते रहा है निरन्तर

वह निराश नहीं हैं क्यों कि –

"अंधकार में देख रहा हूं
जीवन की बनती रेखाये
आये बाधायें सब आयें
पर न मिटेगी किसी काल में
ये बनने वाली रेखायें।'

ठेठ भारतीय कविता के वर्णन गुण से युक्त, अपनी जातीय काव्य परम्परा को पहचानने–समझने की कोशिश में लगी, त्रिलोचन की कविता अपने समय की सामाजिक चिन्ताओं पर केन्द्रित वह बोध-प्रदान करती हैं, जो सही अर्थों में मुक्ति के प्रयत्नों को रास्ता दिखाती है।

शमशेर की कविता की पंक्तियों को थोड़ा रुककर, ठहरकर पढ़ना होता है। उसे बहुत रफ्तार से नहीं पढ़ा जा सकता। कविता में आये हुए वाक्यों का यह विराम, सिर्फ वाक्य को विराम नहीं देता हैं। वह आपको ठहरने के लिए विवश करता हैं । आप नहीं ठहर सकेंगे, तो आपके हाथ से कुछ या बहुत कुछ फिसल जायेगा। कुछ ऐसा छूट जायेगा कि, आप कविता के मर्म को नही पकड़ सकते। शमशेर विचार को, तथ्य में, बिम्ब में, डिज़ाल्व कर देते है। विचार उनके यहां एक वकतव्य की तरह नहीं आता बल्कि कविता में

अन्तरलीन हो जाता है। इसलिए उनकी कविता अतिरिक्त सतर्कता की मांग भी करती है। शिल्प और अतर्वस्तु को ऐसे महीन अनुपातिक रिश्तो के सतुलन के कारण, उनके यहां आये हुए प्रत्येक शब्द, पूरे स्पेस के साथ सामने आता है। यह शब्द के पूरे पूरे व्यक्तित्व का प्रकटीकरण है।

शमशेर में अनुभव से ज्यादा आवजर्वेशन महत्वपूर्ण हैं । वे चीजों को उनके पूरे परिप्रेक्ष्य में रखकर, नये अर्थों को अन्वेषित करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि बदलती हुयी दुनिया, उसकी हिंसा और अमानवीयता को उसने दरकिनार कर दिया है। उनकी कविता इस विकट अमानवीय परिस्थिति के बीच एक साधारण मनुष्य के जीवन के जटिलतम होते जाने को ज्यादा महत्वपूर्ण तरीके से समझने का प्रयास करती है। क्यों कि वह वास्तविकता के विभिन्न संस्कारों में एक साथ धसते हुए उसे एक साथ आपरेट करने की कोशिश करती है। इसीलिए उनकी कविता थोडी जटिल और उलझी हुई सी लगती है। इसीलिए शमशेर की भाषा में वैसी गति की तीव्रता नहीं जो हमारे सोचने को निरस्त कर देती है। यह सोचने समझने और विश्लेषित करने की गति का पद्य हैं, वह समाज मे बदलते दृश्य का अनुगमन नहीं करता है। वह उसे समझने की कोशिश करता है। चीजों और संबधो की माया को बचाने की कोशिश।

शमशेर की कविता श्वेत श्याम में बंटी नहीं है। जड और नीरस हो रहे जीवन मे वहां उससे बाहर निकलने की इच्छायें वहां है। जीवन के ठूंठ के फिर से हरियाने की इच्छा और उम्मीद बची है। समझौतों के बीच खत्म होते विद्रोह का, विद्रोही रोमान का एक रेशा शेष है। पुराना स्वाद और लीक तोडने की इच्छा अभी शेष है।

शमशेर के यहां शब्द सक्रिय हैं। शब्दों की यह सक्रियता सिर्फ भाषा का मामला इसलिए नहीं है कि वे सिर्फ कुछ भाषिक निर्मितियां हैं, बल्कि उनमें अनुभूति का अक्स उभरता है। उनके यहां शब्दो की क्रियायें बची हैं, उन क्रियाओं के कारण बचे हैं, उन कारणों में विश्वास बचा है और शब्द तथाकथित उत्तर–आधुनिक समय मे, हम देखते सुनते हैं । शब्दों को सक्रिय रखने की इस कोशिश में स्मृति , यथार्थ और कल्पना मिलकर कविता का एक विशाल फलक बनाते है।

शमशेर किसी तरह की काव्यरुढि का शिकार नहीं है। यहां तक कि खुद अपनी भी काव्यरुढ़ि शमशेर नहीं बनने देते । उनके यहां सामाजिक यथार्थ का आंदोलनात्मक आघात मुखर है; तथा सामान्तर रूप से सौन्दर्य को, मानवीय प्रेम को निजी अंतरगता में शुद्ध कविता के कलेवर में अभिव्यक्ति देने की विकलता भी साथ–साथ लक्षित की जा सकती हैं।

शमशेर एक साथ ही अंतर्मुखी और बहिर्मुखी रहे हैं व 'समाज सत्य के मर्म को, अपने में और अपने को उसमे पाना चाहते है। यह आत्मपरकता और वस्तुपरकता साफ–साफ उनकी कविता में दिखायी पड़ती है। एक ओर वे प्रणय के कोमल चित्र प्रस्तुत करते है, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय किसान मजदूरों के जीवन चित्र।

एक ओर उनमे सौंदर्यवादी, रूपवादी रुझान है तो दूसरी ओर उन पर मार्क्सवादी प्रगतिवादी प्रभाव। "एक ओर उनमे प्रेमाकुलता, निराशा और अवसाद है तो दूसरी ओर मामूली आदमी के प्रति सहानुभूति। एक ओर यदि मधुरता है तो दूसरी ओर विद्रोहात्मकता। एक ओर व्यक्तिनिष्ठता है तो दूसरी ओर सामाजिक दायित्व की भावना। ये दोनो विरोधी प्रवृत्तियो शमशेर के काव्य में साथ–साथ दिखायी पडती है।"[1] बावजूद इसके शमशेर के काव्य की व्यक्तित्व सम्पन्नता असदिग्ध है। १६४१ में शमशेर ने एक गजल लिखी–

नवाए–असगरो इकबाल पर फिदा था दिल

नया था दर्द मेरा शाइराना मस्ताना

सुना है मैंने निराला है सरमदी आहंग

कलाये पंत अजब राहिबाना मस्ताना

सुने है दर्द–भरे गीत मैंने बच्चन के

सुना है मैंने सुमन का तराना मस्ताना

सुनी है मैने तडपती हुयी नरेन्द्र की नज्म

विसालों हिज्र का रंगी फसाना मस्ताना।"

इसी के साथ १९६६ मे लिखी 'उदिता' की भूमिका में (सीधे अपने पाठक से) कवि ने पाउण्ड , एलियट, कमिंग्ज, सिरवेल, ऑडेन, जैसे पाश्चात्य आधुनिकतावादियों और चितकों का नाम लिया था। फिर किताब से उपर्युक्त भूमिका से ही यह भी पता चलता है कि शमशेर साहब अव्वल तो शार्गिद निराला के है। वह (उनकी कविता) असल में निराला और पंत के ही टेक्नीक का जरा खास ढंग से ' निखरा' और आगे बढाया हुआ रूप है। हां और कुछ अग्रेजी में भी खोशाचीसी हो गयी है। वस्तुगत और रूपगत प्रयोग दोनों जो कि हर अच्छी रचना में अन्योन्याश्रित रूप से ही सफल होते हैं, के यथा सम्भव निर्दोष शिल्प के उच्चतम स्तर पर आज भी मेरा उतना ही कठोरता से आग्रह हैं ।"[2] शमशेर का काव्य इस शताब्दी में हिन्दी कवियों को देखते हुए, इस मामले में विशिष्ट ही नहीं, अद्वितीय भी ठहरता है कि उसमें मध्यवर्गीय सौंदर्यभिरुचि और समाजवादी यथार्थवाद का गहरा द्वन्द्व और तनाव लगातार महसूस किया गया है। शमशेर स्वे बसे रहते है। उनका लहजा अक्सर एक ऐसे फक्कड़ गायक़.़क़ा–सा होता है जो सभी निजी जिम्मेदरियों से मुक्त होता है, और जनमानस को उद्वेलित करने वाली जहां कहीं कोई घटना हो जाती है, उसे सीधे–सीधे ग्रहण करने के लिए पहुंच जाता है।

स्पष्ट है कि सामाजिकता के आग्रह तीनो के यहां है जरूर पर उनकी ध्वनियों के आग्रह जुदा जुदा है।

---

१. समकालीन हिन्दी कविता– विश्वनाथ प्रसाद तिवारी पृ० ३०
२. उदिता पृष्ठ ३ पृ० ३८

****

अध्याय ४

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का लोकधर्मी परिप्रेक्ष्य

क : लोक–संस्कृति की अवधारणा

ख : शमशेर की लोक संवेदना

ग : नागार्जुन की लोक संवेदना

घ : त्रिलोचन की लोक संवेदना

ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के लोक संवेदना की तुलना

अध्याय ४—खण्ड क
लोक—संस्कृति की अवधारणा :

'संस्कृति' शब्द का मूल अर्थ साफ करना या परिष्कृत करना है। नृविज्ञान के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है, जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है। इस अर्थ मे संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय भी कहा जाता है । संस्कृति मानवीय आन्तरिकता का विकास है। इस प्रकार संस्कृति का विकास अत. एवं बाह्य दोनों स्तर पर होता हैं । अतः संस्कृति किसी जाति समुदाय, समाज और राष्ट्र की आत्मा होती है। इस प्रकार मनुष्य के क्रिया कलाप, सांस्कृतिक चेतना के मूल बिन्दु हैं वस्तुतः सृष्टि चक्र में मनुष्य ही सांस्कृतिक ऐतिहासिक प्रक्रियाओं का मूल आधार है।

हर्ष काबिट्स के अनुसार " संस्कृति मनुष्य का सीखा हुआ व्यवहार है, अर्थात वे चीजें जो मनुष्य के पास हैं वे चीजें जो वे करते हैं, और वह सब जो सोचते हैं, संस्कृति हैं । संस्कृति की सार्थकता इसमें है कि वह पदार्थ को मानवीय व्यक्तित्व के गुणों से सम्पन्न करती हैं इसलिए इसकी पहचान मानवीय है। मानवीय जीवन मूल्यों एवं क्रिया कलापों के फलस्वरूप इसकी चेतना रोमांटिक है। डा.वासुदेव शरण अग्रवाल का कथन है" संस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है । हमारे जीवन का ढंग हमारी संस्कृति है। संस्कृति हवा में नही रहती है, उसका मूर्तमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपों का समुदाय ही संस्कृति है। डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है। इसी संदर्भ में पुनः डा. द्विवेदी का कथन है, "मनुष्य की श्रेष्ठ समाधनाएं सस्कृति है। " सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव सस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है, संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का। सभ्यता की दृष्टि वर्तमान की सुविधा—असुविधाओं पर रहती है। संस्कृति भविष्य या अतीत के आदर्श पर, सभ्यता नजदीक की दृष्टि रखती है, संस्कृति दूरी की ओर, सभ्यता के निकट कानून मनुष्य से बडी चीज है, लेकिन संस्कृति की दृष्टि में मनुष्य कानून से परे है। सभ्यता वाह्य होने के कारण चंचल है, संस्कृति आन्तरिक होने के कारण स्थायी। "असत्य में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते है। इसलिए, जिस समाज में हम पैदा हुये हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है। आर्थिक व्यवस्था, राजनैतिक संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य बोध को तीव्रतर करने की योजना ये सभ्यता के चार स्तम्भ है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है। इस प्रकार संस्कृति मानव व्यक्तित्व के वे रूप है, जिन्हें मूल्यों के अधिष्ठान कहते है। इनमें मानव—जीवन प्रणाली के चेतन—अचेतन रूप की अभिव्यक्ति होती

है। इसमें अचेतन अभिव्यजना की बहुलता रहती है। वैयक्तिक अचेतन के साथ सामूहिक अचेतन के रूप में सस्कृति, लोक चेतना, लोक–परिवेश एव लोक सस्कृति से अपने को जोडती है।

किसी भी युग का साहित्यकार अपनी चेतना का विस्तार लोक–साहित्य की सहातया से करता है। लोक –साहित्य मे जन–चेतना व लोक–मानस की स्वाभाविकता की प्रधानता रहती है। इस तरह लोक साहित्य लोक मानस की अभिव्यंजना है। लोक साहित्य के द्वारा साहित्यिक अभिव्यंजना शिष्ट साहित्य में मिथकीय अभिव्यजना का रूप लेती है। लोक–साहित्य मनोवैज्ञानिक एवं मानवीय होता है। संरचना में इसकी भाषा सहज, स्वाभाविक, आकर्षणमयी एवं मनोहारी होती है। इसलिए लोक–साहित्य की चेतना रोमैंटिक होती हैं । लोक–साहित्य का संबंध सीधे लोक–भाव से जुडा हुआ है। भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्वपूर्ण भाव लोक–साहित्य पर आधारित है। लोक –साहित्य की आधारशिला लोक–मानस है। इसलिए लोक–संस्कृति में लोक–चेतना की अभिव्यंजना होती हैं । लोक–संस्कृति का अभिप्राय जीवन की संस्कृति से है।

लोक–साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है। इसमे मानव जीवन की व्याख्या मिलती हैं। इसलिए इसका संबंध मानवीय अनुभूतियों से अधिक है। मानवीय अनुभूतियों से इसका गहरा संबध होने के कारण इसकी मूल चेतना रोमाटिक है। लोक–साहित्य का प्राचीन गुण स्वाभाविकता, स्वच्छंदता एवं सहजता साहित्य में साहित्य मे सहज एवं स्वाभाविक अभिव्यजना के लिए प्राकृतिक भावधारा की ओर ले जाने की आवश्यकता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है– " इस प्रकार परिवर्तन को ही अनुभूति की सच्ची नैसर्गिक स्वच्छंदता (ट्रु रोमाटिक) कहना चाहिये, क्यो कि यह मूल प्राकृतिक आधार पर होता है। वस्तुत. लोक–साहित्य ऐसी अनुभूति के ज्यादा निकट है, जो सहज है, प्राकृतिक एव्रं अकृत्रिम है। ऐसा होने से लोक–साहित्य शिष्ट साहित्य को जीवन देता है, गति देता है।

संस्कृत की 'लोकदर्शने' धातु से काव्य प्रत्यक्ष काटने पर 'लोक' शब्द बनता है। लोक शब्द की व्युत्पत्ति कई तरह से की जाती है। "लोकनेत जनः अस्मिन इति लोकः"– इस व्युत्पत्ति के आधार पर लोक शब्द के मूल अर्थ में यद्यपि विवाद है फिर भी प्रयोगतः इसका प्रथम अर्थ 'स्थान' मिलता है। इस अर्थ में यह ऋग्वेद में प्रयुक्त हुआ । जैसे स्थान दो के लिए ' दहिलोकम्' बाद में तीन लोक, चौदह लोक आदि अर्थ मिलते है।"[१] लोकसंस्कृति का ऋग्वेद में 'जन' अथवा 'साधरण जनता' के लिए व्यवहृत किया गया है। लोक शब्द ऋग्वेद के अलावा अथर्ववेद ब्राम्हण ग्रंथ, वृहदारण्यक , गीता आदि सभी में प्राप्य है। खासकर भगवत गीता में 'लोक' तथा लोकसंग्रह शब्दों का व्यवहार अनेक स्थानों पर मिलता है। यहां लोकसंग्रह का तात्पर्य साधारण जनता का आचरण व्यवहार तथा आदर्श है।

---

१. श्री भोलानाथ तिवारी–लोकायन और लोक संस्कृति–सम्मेलन पत्रिका

साहित्य में लोक जीवन के आदि संरक्षकों के नाम कदाचित दुर्लभ है उसका मूल कारण है यह है कि यह केवल लेखनी पर ही आश्रित नहीं रहा बल्कि इसको ऐसे ही महान गायक मिलते रहे हैं जिन्हें 'समष्टि' की चिंता रही हैं। वास्तव में यह अनुभवजन्य है कि लोक जीवन का तल स्पर्शी परिचय मात्र गति अथवा पुस्तक से ही नहीं प्राप्त होता, इसके लिए अकथ उद्योग की आवश्यकता होती है। लोक जीवन की प्रतिष्ठा काव्य और लोक तत्व से है। इनके संतुलन से ही लोक जीवन गंगा प्रवाहित रहती हैं । भारतीय शास्त्र का मूल स्वर लोक जीवन से संबधित है। "जहां एक ओर 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य की चेतना के अहंकार से मुक्त शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे लोकतत्व कहलाते हैं।"[1] वस्तुतः लोक में आने वाला साधारण जन ग्राम्य या जनपदीय अर्थ से ही नहीं है, बल्कि इसके अलावा जंगल पहाड़, आदि के मध्य बसे हुये उस समाज से भी है जो किसी न किसी रूप में अपने जीवन के इर्द गिर्द छाये तमाम दिखावों, प्रथाओं रीतिरिवाजों के प्रति आस्थावान रहकर अपने लोकाचारों को जीवन देता रहा है , भले ही वह नागरिकों शिक्षितों, की दृष्टि में अनपढ और अर्धसभ्य माना जाता है। यह वर्ग अपनी मौलिक परम्परा के माध्यम से अपनी चिरसंचित ज्ञान राशि को सुरक्षित रख सका है, और उसके उपयोग मे अपनी पैतृक सम्पत्ति जैसी आस्था सिद्ध कर सका है। हमारे सर्वांगीण सभ्यता को पहचान हमारे जीवन की बहुरंगी गतिविधियो में ही अंकित है। जिन कार्यकलापों में हमारे देश की जनता की आत्मा मुखरित होती हो जिनमें हमाराजीवन धर्म, कला, विश्वास, रीति रिवाज एवं हमारे संस्कारो को वाणी मिलती है। उसे गंवारू एवं असंस्कृत कह कर कभी भी टाला नहीं जा सकता।

इस तरह लोक शब्द से तात्पर्य ऐसे विषयों से लगाया गया है जिनमें अनेक भावरत्न अपने रूप में अतर्निहित रहते है जिनका प्रकाशन साहित्य की अनेक विधाओं, गीत, वार्ता, कथा, सगीतादि से होता है। इनका विषय मानव की आदिम परम्परायें हैं, मानव की दृढ़ आस्थाएं और आदर्श हैं।

जनता का साहित्य ही लोकभिव्यक्ति है। यह इतिहास में सम्यक ज्ञान, उसकी टूटी श्रृंखलाओं की सुसम्बद्धता मनुष्य की शुद्ध मानवीय संस्कृति की अप्रतिहत धाराका स्वरूप और उसके विकास की पूर्णता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है " भारतीय जनता का सामान्य स्वरूप पहचानने के लिये पुराने परिचित ग्राम गीतों की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है केवल पण्डितों द्वारा प्रवर्तित काव्य परम्परा का अनुशीलन ही नहीं है।[2] और भी जब–जब शिक्षण का काव्य पण्डितों द्वारा बंधकर निश्चेष्ट और संकुचित होगा, तब–तब उसे सजीव चेतना प्रसार देश की सामान्य जनता के बीच स्वच्छंद बहती हुयी प्राकृतिक भाव धारा से जीवन तत्व ग्रहण करने से ही प्राप्त होगा। (वही) क्यों कि यह एक अनिवार्य तथ्य है कि लोकतत्व के महत्व से साहित्य

१. हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल पृ० ६८५–८६
२. रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास नागरी प्रचारिणी सभा काशी नवां संस्करण पृ० ६००

के लिये यह एक अपरिहार्य तत्व है। इन दोनों का तादात्म्य सबध है यदि लोक साहित्य को मानक मन की सूक्ष्मतम अनुभूतियो का इंद्रधनुषी प्रतिबिंब कहे तो उसमें लोक तत्व को उसकी सूक्ष्मतम अंतरंग आभा का मूल माना जाना चाहिये।

****

अध्याय ४—खण्ड ख
शमशेर की लोकसंवेदना :

शमशेर बहुत सामाजिक हैं, क्योंकि शमशेर के पास दृष्टि की तलाश और बांध का धारातल है और यही बात उनकी कविताओं में व्यक्त अनुभव लोक को मूर्त और सार्थक बनाती हैं। कवि की चिंतायें ज्यादा बड़ी हैं और उनकी जडें दूर तक फैली हैं। मनुष्य के ही अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लगाता बीसवीं सदी का यह आखिरी दशक सिर्फ कविता ही नहीं, बल्कि " तमाम रचनात्मक आग्रहों, यहा तक कि मनुष्य की सहज जीवनी—शक्ति की सांसों को भी रूद्ध करता हुआ सा दिख रहा है। तीव्र औद्योगिकी करण और महानगरीय जीवन के फैलाव का जो दुःख आजादी के बाद की भारतीय पीढियों ने झेला, उसी का अगला विस्तार उपभोक्तावादी संस्कृति है। निरंतर कम्प्यूटरों की फ्लापी का हिस्सा बनती सूचनायें और वातानुकूलित कमरो के प्रदूषणों से लेकर सामाजिक प्रदूषणों की गंध ढोती संवेदनायें, और इन सबको देखता, बेचैन होता और इस भीड़ का हिस्सा होने से बचने की कोशिश करता बचा हुआ विवेक। इसी बचे खुचे विवेक की ही सार्थक परिणतियां, इस बहुत बुरे वक्त लिखी जा रही कवितायें है, जो अपने लोक और मानस की विरासत को संभालने की पुरजोर कोशिश कर रही हैं और इस रूप मे मानवीय आस्थाओ के लिए जीने का संबल और ईंधन जुटा रही हैं । शमशेर की कवितायें जीवन के इसी गहरे लगाव से लिखी जाने वाली कवितायें हैं, जो बहुत मानवीय होने के साथ—साथ बहुत आलोचनात्मक भी हैं।

शायद इसका उलटा भी उतना ही सही है। दरअसल यही इस कविता की कठिनाई और सफलता दोनों है। कठिनाई इस अर्थ मे कि इसके चलते कविता अपना सारा रहस्य एक साथ खोलने को बेताब नहीं दीखती, और सफलता यह कि यह कविता कुछेक अपवादों को छोडकर जीवन से गहरा आलोचनात्मक लगाव दिखाती है। गो कि, वह कहीं भावुक रूप में भी सामने आता है। वास्तव में शमशेर की कवितायें इस कदर हमारे जीवन के बारे में है कि उसका कोई बहुत आसान और सरल और चित्र नहीं देतीं। एक गहरा आवेग इन्हें नियंत्रित करता है, जो जीवन की वैज्ञानिक और सर्जनात्मक समझ का परिणाम है। इसीलिए इन कविताओं में 'कला की ऊँचाई' जितनी है, उतनी ही जीवन के धरातलों का इस्तेमाल भी है। कवि कम और जरूरी शब्दों का प्रयोग करते हुए भी, न ज्यादा कह जाने के भय से पीड़ित हैं, न कम कहने की चतुरता से आतंकित । कवि को अगर किसी चीज की सबसे ज्यादा परवाह है, तो वह है विषय और दृष्टि से गहरे आन्तरिक तादात्मय की। यहां समाज और जीवन तो है, लेकिन लोकात्मता का वह सीधा उन्मेष नहीं जिसे स्थानीयता की संज्ञा दी जा सके। लेकिन लोक, की समाज की, चिन्ता वहां बराबर है। वह लोक की पहचान

सामाजिक विनिमयो में ही देखते है। लोक सत्ता की यह चिता, शमशेर की लोकात्मक अभिव्यक्तियो का आधार बनती हैं।

यही कारण है कि सदैव ही अपने आस–पास जिन्दगी में दिलचस्पी लेते हुए कला को उन्होंने समाज और जिन्दगी से अलग नही किया। वह कहते हैं–" कला का सघर्ष समाज के संघर्षो से एकदम कोई अलग चीज नही हो सकती और इतिहास आज इन संघर्षो का साथ दे रहा है। सभी देशों के बेशक यहां भी, दरअसल आज की कला का असली भेद और गुण उन लोक–कलाकारो के पास है, जो जन–आंदोलनो में हिस्सा ले रहे है। टूटते हुए मध्यवर्ग के मुझ जैसे कवि उस भेद को जहां वह है, वहीं से पा सकते हैं, वे उसको पाने की कोशिश मे लगे हुए हैं।"[1] स्पष्ट है कि शमशेर कला और समाज के संघर्ष को एक ही संघर्ष मानते है। साथ ही कला के असली भेद और गुण को लोक–कलाकारो के पास स्वीकार करते है। कवि लोक जीवन के विस्तृत क्षेत्र में गहरी पैठ रखता है। वह मजदूरो और किसानों के स्वर को भलीभांति पहचानकर रुढिवादिता को खंडित करता है । कवि सडे और पुराने अर्थहीन गीतो की जगह नूतन भावों को प्रस्तुत करना चाहता है। यथा–

काट बूर्जवा भावों की गुमठी को–

गाओ अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी

कवि है उसमे अपना हृदय मिलाओ।

हमारे बोध की एकायामी होती दुनियां में, कवि साधारण व्यक्तियों और साधारण चीजों की भीतरी अर्थवत्ता के उभारना चाहता है। उनके यहां एक बेहद नजदीक की दुनिया की आत्मीय उपस्थिति है। इस दुनियां मे घर हैं, कुछ लोग हैं, मित्र हैं, छोटी–छोटी इच्छाये हैं, बहुत कुछ सुन्दर, मानवीय और जीवन की ऊष्मा से भरी हुई । ऐसा कुछ जिसे इस विघटन और बेहद क्रूरता से भरे दौर में बचाया और सहेजा जाना चाहिए। सहज–जीवन की यह दुनियां कई कारणों से बहुत महत्वपूर्ण हो उठी है। यहां जीवन की निश्छलता है, प्रेम का सलोनापन है, कुछ बतकही है और स्वयं इस रूप में स्वयं को यहां की खांटी संस्कृति से जुडने की ललक–

निंदिया सतावे मोहें संझहीं से सजनी

संजहीं से सजनी।

प्रेम बतकही

तनक हू न भावे

---

१. दूसरा सप्तक पृ० ८४–८५

संजहीं से सजनी

निदिया सतावे मोहें

छलिया रैन

कजरा ढरकावै

संजहीं से सजनी

निदिया सतावें [1]

इसमे एक औसत भारतीय मन का सस्कारबोध ढूढा जा सकता है,। हमारे जातीयबोध के सारे रूप आज भी इसी आम आदमी के आम जीवन के फ्रेमवर्क के भीतर ही बनते है। औसत आदमी के जीवन मे जो संघर्ष है, जो प्रतिकूलता है वह बडे फलक पर दूसरी चीजो और वर्गों के साथ किस प्रकार का अंतर्सबंध बना रही है, किस तरह वह एक वर्ग के अनुभवों के रूप में व्यक्त हो रही है, इसकी खोज शमशेर की कविता में उनकी सामाजिक समझ का ढांचा गढ़ती हैं । दिलचस्प बात यह है कि कला में इस राजनीतिक सामाजिक चेतना को महज 'समझ' के एकेडेमिक रूप से उपलब्ध नहीं किया जा सकता। यह चेतना एक गहरे नैतिक बोध से चालित होती है। यह अनेक स्तरों पर अपने को प्रकट करना चाहती है। शमशेर की कविता इसीलिए अनेक प्रवृत्तियों का कुछ कठिन युग्म बनाती है। वहा धैर्य भी है, और बेचैनी भी। तर्क है और तीव्र आवेगात्मकता भी। कभी कभी यह आवेग उच्छवास बनता है, पर यह अराजकता की ओर नहीं जाता । उनकी कविता उस लोक से अपने शब्द और अर्थ पाने की कोशिश करती हैं जो लोक स्वयं प्रकृति से अभिन्न है। इसने अपने जीवन व्यवहार में ही उस प्रकृति की तमाम क्रियाओं, अंतः क्रियाओं के लिए शब्द और पद रचे हैं। जीवन की बोली से लिए गये पद और शब्द का बहुत सतुलित उपयोग उनकी कविता में है। इस तरह वह असंप्रेषणीय तो हो ही नही सकती । हां, वह हमारी कविता की भाषा को थोड़ा और विस्तृत, समर्थ और सघन जरूर बनाती है।

शमशेर के यहां जीवन–स्थितियां अपनी न्यूनतम वर्णनात्मकता और विवरणो में आती है। वे शब्द बहुल कवि नहीं है उनके यहां कविता बहती है– *एक स्वच्छ निर्मल कविता यहां बह रही हैं* [2] उनके यहां मानवीय लगाव और गहरी संलग्नता की रूमानियत, ऐन्द्रियकता, उद्घोषित– व्यक्तिनिष्ठता का फैलाव बेहद सघन है। स्पष्ट है, यह उनके अनुभवों से ही जुड़कर आता हैं । शमशेर एक ऐसे कवि हैं जिनके यहां लोक संवेदना, जातीय स्मृतियों के साथ उसकी सम्पूर्ण ऐन्द्रिकता में घुलकर अपने वस्तुजगत का निर्माण करती है। वह लोक

---

१. शमशेर – कुछ और कवितायें पृ० ८१

२. शमशेर–इतने पास अपने–पृ० ५५

की आंखों को देखती है। उससे अभिभूत होती है। उन्हें वह सिरजना चाहती है। बेखटके देखते हुए उन्हें वह ओझल नही होने देना चाहती।

इन आंखों से हम सब अपनी उम्मीदों की आखे सेंक रहे हैं
ये आंखें हमारे दिल में रौशन और हमारी पूजा का फूल है
ये आंखे हमारे कानून का सही चमकता हुआ मतलब
ये आखे हमारे इतिहास की वाणी
और हमारी कला का सच्चा सपना हैं
ये आंखें हमारा अपना नूर और पवित्रता है
इनको देख पाना ही अपने–आपको देख पाना है, समझ पाना है।

(अमन का राग)

उनकी कविता पढने पर सम्पूर्ण प्रभाव के रूप में हमारे मन पर जो चीज अंकित होती है वह है उनका अपनी जमीन और परिवेश की नानाविध जानकारियो और क्रिया–कलापों से गहन लगाव। चीजों को अपने ढंग से पहचानने की बेचैनी महज कला की दुनियां का प्रश्न नहीं, बल्कि वह इस उलझे हुए समय में अपने मनुष्य होने की एक प्रामाणिकता भी है। शमशेर की कवितायें हमारी जडों को पकडती हैं। हमारे सामूहिक संवदेना और जातीय स्मृतियों की लय के साथ एकाकार होती हैं, जिसमें हमारे समस्त जीवन–क्रिया–व्यापार, हर्ष–विषाद, चेतन विषाद, चेतन–उपचेतन के असख्य पहलू एक दूसरे से गुंथे होते हैं। भौतिक जीवन में इन चीजों की शिनाख्त करने की यह रचनात्मक पहल है। उस ताने बाने को खोलना विशुद्ध जीवन रोमांस है। इस ताने बाने को खोलते, शमशेर जीवन से रोमांस करते हैं। संसार के औसत वस्तुबोध से भिडते हुए वह कविता के केन्द्रीय भाव में इसे खोजते, जानते पहचानते, परखने का रचनात्मक कार्य करते हैं। "भावशीलता का एक रूप वह होता है जहां रचनाकार स्वयं तो ओट में हो जाता है पर इस" भावशीतलता की आंच में मामूली दिखते सैकड़ों कार्य व्यापारो, घटनाओं, प्रसंगों, हरकतों, को अंकन करता चलता है। शमशेर की रचनाधर्मिता का यह केन्द्रीय मुहावरा है। जो उनकी लोक संवेदना का निर्माणकर्ता है।

शमशेर बहादुर सिंह की कविता में वस्तुयें अनुभूति में जैसे नहाकर तरोताजा रूप में आती है । उनका अक्स कवि के ऐन्द्रिजालिक अनुभव–संवेदन में अपनी सात्विक अंतः दीप्ति के साथ भरता है, और उनके चित्रण में कवि की स्वनिर्भर वस्तुगत विषय निष्ठता किन्हीं औपचारिक आग्रहों को सक्रिय या प्रभावी होने का मौका नही देती। परिणामतः वस्तु जगत के बारे में पाठक इस विस्मयजनक अनुभव से गुजरता है कि चीजों का भी अपना एक स्वतंत्र चरित्र होती है और यह कि वह मानवीय होता हैं । शमशेर की कविता का सरोकार वस्तुओं की सत्ता से ही नहीं, आगे और गहरे उनकी अस्मिता से हैं । वस्तुओं की सत्ता से

लेकर अस्मिता तक की यह यात्रा उनके चरित्र की खोज और उद्घाटन की प्रक्रिया से पूरी होती है। वास्तव में कवि ने चीजो को उनके असली रूपो मे देखा और पहचाना है, तभी उनके चरित्र का अंत. प्रसार दर्शाना संभव हो सका है। जहां छोटी से छोटी चीज अपनी सतही क्षुद्रता को विसर्जित कर, एक अजब गरिमा से दमक उठती है। कवि दृष्टि इस उपभोक्ता सस्कृति की व्यवसायिक चकाचौंध से चीजों के सतही उपयोग वलयों के तांत्रिक सम्मोहन को नाकाम करती हुयी उनका भेदन व अतिक्रमण करती है। तथा चीजों के चरित्र को उरेहती हुयी, उनकी व्यवसायातीत सत्ता की शुद्धता को खोज निकालती है। " हमारे इस कुंठित और सिनिक किस्म के दौर में वे चीजों के अंधेरे के बजाय उनके उजाले को पकडते थे और उसे अधेरे की काट के रूप में सामने रखते थे । मनुष्य और प्रकृति की सम्पूर्णता सौंदर्य और अच्छाई में इतना विश्वास करने वाला कवि आधुनिक हिन्दी में कोई और नहीं हुआ जो कह सके कि लौट आ ओ फूल की पंखडी। फिर फूल पर लग जा।"[1]

सघन ऐन्द्रिकता शमशेर के यहां है। ऐसा सभी कहते हैं बावजूद इसके कि शमशेर मात्र ऐन्द्रिक अनुभव की कविता ही नहीं लिखते बल्कि वह जीवन की ऐसी कविता है जिसमें ऐन्द्रिकता मानवीय लालसाओ और जीवन की सारी विडम्बनाओं को प्रकट करने का माध्यम होती है। उनके यहां शब्दों के बहुत हल्के और मध्यम स्वरो की फुसफुसाहट मौजूद है; लेकिन ध्यान रखना होगा कि सबसे अधिक महीन आवाजों को नहीं सुन पाने की असमर्थता या कमजोरी या अनसुना कर जाने की प्रवृत्ति एक दिन एक सबसे विस्फोटक आवाज को भी, एक चीख को भी अनसुना कर देगी। शमशेर मद्धम आवाज को सुनते ही नहीं, दर्ज भी करते हैं। शब्द इस रूप में उनके यहां अहसास है। यह ऐन्द्रियता भी उनके यहां इसी प्रकार की है। शायद मनुष्य को जानने, समझने, पढने, प्यार करने, उसके अहसासों तक पहुंचने, उसे अपने तक लाने और खुद को महाविस्तार देने और प्रसार का वह मानो माध्यम हैं। जीवन्तता और जगत के प्रति जैसे यह कवि के द्वारा पारित धन्यवाद प्रस्ताव है। ऐन्द्रियानुभव और इंद्रियबोध के सहारे मनुष्य को अपने भीतर उतारने का एक बहाना है। इसीलिए उनकी कविता रूप–स्पर्श से लेकर मनुष्य के अस्तित्व के तमाम प्रमाणों को अपनी कविता में जीवित रखती है। हर रोज कुछ और भोंथरे होते जाते समय में शमशेर की कविता चीजों की दुनिया, उसकी ऐन्द्रिय मौजूदगी, उनका धड़कना, अहसास कराने वाली कविता भी है। शमशेर का न होना, या कम से कम होना इस अनेक तरह के होने के विराट विपुल अनुभवों मे अपना सत्यापन पाता है। शमशेर के यहां चीजें दिखती है, बोलती हैं, चुप रहती हैं, घेरती हैं, शायद ही किसी और हिन्दी कवि में दूसरे कला माध्यम इतने घुले मिले हों। उनकी कविता को मिटे काव्य संस्कार से पूरी तरह पकड़ पाना मुश्किल है।

१ प्रयाग शुक्ल–पल प्रतिपल, संयुक्तांक २३–२ जनवरी जून १९९३

वह इतनी बार चित्रलिखित है उनमें इतनी बार स्पेस का विभाजन संतुलन है, आकारों का खेल है,गूजों अनुगूजो का सम्पुजन है कि शमशेरियत की सघनता, इसका सश्लेष और भी दु.साध्य हो जाते है।[1]

" खुश हूं कि अकेला हूं

कोई पास नहीं है..............

बुजुज एक सुराही के

बुजुज एक चटाई के

बुजुज एक जरा से आकाश के

जो मेरा पडोसी है मेरी छत पर

मुक्तिबोध को शमशेर की दुनिया की पवित्रता में दाखिल होते डर लगता था । यह पवित्रता यह निष्कलुषता शमशेर में सहज भाव से पूरी जिंदगी बनी रही। मिलावट समझौते, खरीद फरोख्त घुसपैठ की समकालीन दुनिया शमशेर के लिए अनजान नहीं थी। नफरत, दैर असैर षडयंत्र के माहौल से वे नावाकिफ नहीं थे। पर उन्होंने सुन्दरता और प्रेम का अपना काव्य संसार इस सबके बरक्स बनाया, एक प्रतिसंसार की तरह। उनकी कविता अब भी बची रह गयी संभावना , उसके अजेय इन्नोंसेस की कविता है।"[2]

आज जबकि जीवन की सफलता का एक मात्र मापदण्ड आदमी की अपनी तरक्की है, एकमात्र लक्ष्य पूंजी है और आत्मा का लगातार सरे बाजार बेचना ही रह गया है, जहां ऊपर–ऊपर से देखने पर जीवन पूनों की चांद सा प्रकाशित दिखता है और मानवीय पक्ष गाढे काले अंधेरे से घिरा है, जहा तथाकथित सफलता मनुष्य और पशु में जो भेद नहीं करती, वहां शमशेर की सादगी पर सिर्फ मोहित हुआ जा सकता है। शमशेर सिर्फ एक सुराही, एक चटाई के सहारे आकाश के साथ अकेले और खुश हो सकते थे, घरों मुहल्लों और दिलो दिमागों को चीजों के अटालों से भरने वाली मानसिकता के चलते यह सादगी हास्यास्पद लग सकती है। "शमशेर को यों भी अपने कुछ भी न होने का बहुत गहरा और मार्मिक अहसास था । ....यह प्रतिसमय है।[3] यह सिर्फ अकेलापन का अहसास भर नहीं है यह मानवीय दुनिया में एक भले व्यक्ति के अकेले रहने का अहसास है।

शमशेर की कविता में इसीलिए एक बेचैनी है। मनुष्यता के लक्षण जिस तरह एक–एक करके कम होते जा रहे हैं– वहां उनकी मनुष्यता के जीवन संदर्भ बहुत स्पष्ट और मूर्त हैं । वे ईमान, अभय, बुद्धि और हृदय के रचनाकार हैं और उनका ईमान और अभय मनुष्य–जीवन में आकार पाता है। वह केवल उपदेशकों

---

१. अशोक बाजपेयी–कविता का गल्प–पृ० ६६
२. अशोक बाजपेयी–कविता का गल्प–पृ० ६६
३. अशोक बाजपेयी–कविता का गल्प–पृ० ६६

और नीतिज्ञों का अभय और ईमान नहीं है जो सबका होकर भी किसी का नहीं होता। और इस तरह "शमशेर कविता के माध्यम से अपने को एक बेहतर स्वतंत्र अकेला इंसान बनाते हैं।"[1] कहना न होगा कि यही उनकी कविता का लोकपक्ष है, जो बहुत सश्लिष्ट तरीके से उभरता है। जिसे वे जन की ऊष्मा, उसकी प्रेरणा के स्त्रोत सक्रिय वेदना की छटपटाहट, महत सम्भावनाओं की उज्जवल रेखा आदि ने जाने कितने तरीकों से पहचानते है। ऐसे प्रसंगो का महत्व इस बात में भी है कि जब जब ऐसे स्थल आते हैं तब-तब वे संरचनात्मक दृष्टि से भी उतने ही सहज हो जाते हैं तथा यहा उनके दुर्बोधता की अनेक उलझनें समाप्त हो जाती हैं। शमशेर की कविता में व्यक्तित्व के विभिन्न स्तरो को जोडने वाली जन-ऊष्मा का बखान अनेक रूपों में हुआ है, जिसमें उनकी कविता को भी पूरा अर्थ विस्तार प्राप्त होता है।

लगता है शमशेर के विश्लेषण की ही यह प्रक्रिया है कि वे पहले एक अंश की पवित्रता या सुरुचि को अपने मन मे स्पष्ट होते हुए महसूस करते हैं, उसके बाद ही उन्हें अंधेरे में चमकती हुयी जुगुनओं की दूसरी आभा भी सोचने को विवश कर देती है "...... और अचानक उनके मन में एक विस्मयकारी सत्य 'गीता' के एक विराट पुरूष की तरह उभरने लगता है। आंखे उस विराट के राग-रूप और व्यक्तित्व का खुद में अभाव महसूस करते हैं। शायद निजी उपलब्धि में शमशेर की आत्मीय खोज एक विराट सत्य का साक्षात्कार ही है।"[2] उसी के माध्यम से वह आज के समाज और मनुष्य के सामने फैले हुए अधेरे की उलझनों को स्पष्ट करते हैं। इस काम को परिणत तक पहुचाने में वे दुरुह हो सकते है। वे जन-कलारूप अपनाने के स्थान पर उन्हीं परिष्कृत कलारूपों का सहारा लेते हैं, जिन्हें कि कविता के संस्कार वाला मध्यवर्गीय पाठक मान्यता देता हैं। इसके बाजवूद लोक हृदय की धडकनो का उनका ऊंचा स्वर वहां है।

शमशेर भीतर की अपनी रचना-स्थिति से वाकिफ हैं। वे देशकाल से बंधे जीवन की अमरता के लिए, संदर्भों से कटी-छटी नाम-रूप रहित शाश्वतता को स्थापित करने वाले नहीं है। इसलिए वे जिन लोगो के साथ अपनी पटरी बिछाते हैं ,वे इसी देश और काल से लड़ते, संघर्ष करते, प्यार करते और क्रोध करने वाले प्राणी है।

वे केवल प्रकाश फैलाने और प्यार करने की-दिखावटी एवं ऊपरी – ऊपरी बातें ही नहीं करते वरन् उन वर्गों के प्रति घृणा भी पैदा करते हैं जो अपने निकम्में षडयंत्रकारी जीवन को मूल्यवान बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। "बल्कि यह माना जा सकता है कि वे अपने में सबके होने का अर्थ तलाशते हैं और एक बेहतर समाज-व्यवस्था की बात करते हैं। अपने एकालाप में भी शमशेर का यह सरोकार हमेशा

---

१. रघुवीर सहांय-टूटी हुई बिखरी हुई, एक प्रतिक्रिया:, मलयज और सर्वेश्वर द्वारा संपादित पुस्तक 'शमशेर' में
२. विष्णु चन्द्र शर्मा-अभिन्न, विराट् सत्य का साक्षात्कार-पृ० १४३

और एक बेहतर समाज–व्यवस्था की बात करते हैं। अपने एकालाप मे भी शमशेर का यह सरोकार हमेशा बेचैन करता है और बुलद हौंसले से साहस देता है।"[1]

काल तुझसे होड है मेरी, अपराजित तू

तुझमें अपराजित मैं वास करूं।

इसी लिए तेरे हृदय मे समा रहा हूं।"

इसका मतलब यह नही कि शमशेर समय की विकटता तक आकर अपनी रचना–यात्रा समाप्त कर देते है।उनके रचनाकार की विशेषता यह है कि उन आधुनिकतावादी रचनाकारो से आगे निकल जाते हैं, जिन्हें इस ससार में चारों ओर सडाध उठती दिखाई देती हैं। चूंकि शमशेर को जीवन के लोकपक्ष की कर्मण्यशीलता तथा लगाव के ठिकानो का सारा अता–पता मालूम है, इसलिए वे हमारे समाज की वर्ग–संरचना को सम्पूर्ण रूप में चित्रित करते हैं। जिस वर्ग समाज से उनकी नहीं बनती है, उसकी सरचना एवं स्थिति की वास्तविकता का विस्तार से उद्घाटन करते हुए भी उन लोगो से अपनी सम्बद्धता व्यक्त करते हैं और बराबरी के सिद्धांत पर सारी दुनिया को समझने की शक्ति रखते है। शमशेर ने पूरे हिन्दूस्तान के बीच अपनी चेहरे की पहचान की हैं। कहना न होगा कि शमशेर ऐसी शक्तियों के पक्षधर नही है जो अमानवीय जीवन जीते हुए सामाजिक महत्व प्राप्त कर रहे है।

जीवन में जो कुछ सुंदर है, मधुर है उसे देखकर शमशेर का कवि उत्फुल्ल होता है।" सौंदर्य के प्रति गहरी ललक कोमल और मधुर के प्रति गहरी आसक्ति के बीच ही वह समाज से जुडा है । शमशेर मे शिल्प के अमूर्तन के सभी तत्व विद्यमान हैं फिर भी उनकी प्रतिबद्धता उसे अमूर्त होने से बचाती है।"[2]

वस्तुत. व्यापक जनजीवन से तादात्म्य स्थापित करके ही सच्चे रचनाकार सौन्दर्य की लोकात्मक सृष्टि कर सकते है। यह काम आसान नही है। अपने ही सीमित अनुभवों से जीवन के प्रति दृष्टिकोण बना लेने के जो खतरे होते है, वे हिन्दी की अनेक समकालीन कविताओं में स्पष्ट दिखाई देते हैं । अपने वर्गीय अनुभवों से न केवल सौन्दर्यसृष्टि संकुचित होती जाती है, बल्कि वह व्यापकत्व की अनुभूति के लक्ष्य से हट भी जाती है। इसीलिए बडे रचनाकारों ने. हमेशा अपने अनुभव–संसार का अतिक्रमण किया है। इस सन्दर्भ में कवि के हृदय को सिन्धु कहा गया है। हृदय का सिन्धुत्व एक रचनाकार का वैशिष्ट्य है, जिसे दूसरे शब्दों में लोक हृदय की पहचान के रूप में जाना गया। प्रसिद्ध आलोचक डा. शिव कुमार मिश्र अपनी तमाम अहसहमतियों के बाजवूद शायद इसी कारण से यह कहने से स्वयं को नहीं रोक पाये कि " शमशेर में मनुष्य, समाज, राष्ट्र

---

१. ज्योतिष जोशी–शमशेर की कविता का यथार्थ पल प्रतिपल संयुक्तांक २५–२६ जुलाई दिसम्बर १९९६–पृ० ३
२. रमाकान्त श्रीवास्तव पारदर्शी धूप के परे–सापेक्ष–पृ० ३३०

और उनके भविष्य को लेकर गहरी चिता का भाव है, वे तमाम मानव विरोधी शक्तियों के आजीवन खिलाफ रहे। वे सेक्यूलर मांइन्डेड ह्यूमन थे, सामान्य जन के बारे में उसके सुख दुख के बारे मे, निर्धन जनता के बारे में मध्यवर्ग की आर्थिक बदहाली के बारे मे उन्हें चिंतायें थीं। "(एक साक्षात्कार में)

कविता की चरित्र–परम्परा में शमशेर की अपनी गंध है। उनका व्यक्तित्व इस परम्परा को नयी आभा देता है। यद्यपि शमशेर ने "कुछ और कविताएं" की भूमिका में यह लिखा है कि " मेरे कवि ने किसी फार्म, शैली या विषय का सीमा बंधन स्वीकार नहीं किया। फैशन किन विषयों पर लिखने का है, कौन सी शैली चल रही है, किस "वाद" का युग आ गया है मैने कभी इसकी परवाह नहीं की।"[1]

"यात्राओं के बीच गुजरते बनते जीवन, जीवनानुभवों से वे अपनी धरती के भूगोल को रूप देते हैं, जीवन के संधान में लीन दिखाई पडते हैं। जीवन के सच्चे सौन्दर्य ने उनकी कविता को भी कितना सहज और सुन्दर बना दिया है।"[2]

दिखी मालव–गीत की वह सुधर गोरी
बाजरे का खेत, शुभ्र मचान, धुनषाकार गोपा
गोफने में भरे मालव गीत, गा
सुग्गे उडाती।"

शमशेर की संवेदनशीलता और कला धरातल पर कविता की अग्रगामिता का आरेखन एक विस्मयकारी अनुभव है। उससे कविता– समय का पथ प्रशस्त हुआ है, इसलिए वे प्रगतिशीलों में अग्रमण्य रहे। उनकी कविता हमारे वर्तमान की वास्तविकता का एक विराट पृष्ठ है। सामाजिक व्यक्ति का अन्तर्मन कहीं–कहीं आवश्यकता से अधिक विश्रृंखलित होने की वजह से अर्थ की सम्बद्ध–सूत्रता का क्षरण भी हुआ है। देखने की बात यह है कि उस समय तक शमशेर अपने अनुभव संसार में रचना के जिन प्रदेशों तक नहीं पहुंच पाये थे, उन तक नागार्जुन केदार और त्रिलोचन अपने–अपने तरीकों से बना रहे थे। जहां शमशेर अस्मिता की पहचान और बुनियादी क्रियाशील वर्ग से उसकी विलय–प्रक्रिया के प्रश्नों में संलग्न थे और इस रूप में वे मध्यवर्ग की मानसिकता तथा उसकी सामाजिक आवश्यकता के निरूपण तक सीमित थे, वहां नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन समय की अभिव्यक्ति को क्रियाशीलता का रूप दे रहे थे।

पिछले २५–३० वर्षों की यात्रा में अब यह तय हो चुका है कि आज की कविता का मुख्य परिदृश्य प्रगतिशील कला–सन्दर्भों से सम्बद्ध–सूत्रता का है। अज्ञेय–परम्परा की चमत्कृति तथा जीवन विसंगति से उत्पन्न निर्जीव शब्द–कला को वह और अधिक ढोने के लिए तैयार नहीं। उसने यह अच्छी तरह देख लिया

---

१. शमशेर : कुछ कवितायें– भूमिका
२. जीवन सिंह–कविता की लोक प्रकृति–पृ० ५५

है कि जीवन्त होने और रहने की शर्ते क्या है। वह अपनी पिछली भूलों से भी सीख ले रहा है। कविता को एक और गठरी की तरह बाधते और दूसरी ओर उसे खोल कर फैला देने की कोशिश काल प्रवाह में स्पष्ट दिखाई देती है। दरअसल बात यह नही है कि " कविता जीवन से जुडे"। आज का मुख्य प्रश्न है कि वह " किस जीवन से जुडे"। यह सवाल इसलिए पैदा होता, क्यो कि सम्पूर्ण जीवन इकसार नहीं है। वह विविध सोपानीय है। इसलिए मात्र जीवन से जुडने की बात से वास्तविकता तक नही पहुंचा जा सकता। आज तक हुई मनुष्य यात्रा के अनेक पडाव हैं, जिसमे उसके संस्कार कुछ इस तरह बना दिये गये हैं कि वह परम्परागत रूढियों के रूप मे प्राप्त सांस्कारिक आग्रहो की प्रबलता, निबद्धता और सही एव वैज्ञानिक समझ की दुर्बलता के कारण प्रगति के अर्थ की वास्तविकता तक नही पहुंच पाता। शमशेर की शक्ति यही है कि उन्होने व्यवस्था से उत्पन्न जडता और उसके कारणो की पहचान अत्यन्त विस्तार एवं गहराई मे जाकर की है और उसका मूलस्वर सामाजिक रहा है। और यह शक्ति सामान्यीकृत सूत्रों मे व्यक्त न होकर जीवन–दृश्यों की तलस्पर्शी वैचारिकता में प्रकट हुई है।

शमशेर की भाति अन्य कोई नही ठहरता है। मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि भी अलग किस्म के हैं। नागार्जुन समय की अभिव्यक्ति क्रियाशीलता को रूप दे रहे थे। मुक्तिबोध उसके एक दूसरे पहल की आपूर्ति में संलग्न थे। इसलिए प्रगतिशील कविता के उस दौर का पूरा चित्र तभी बनता है जब हम शमशेर की कविता के साथ नागार्जुन,केदार और त्रिलोचन और मुक्तिबोध की काव्य प्रवत्तियों की रेखाएं भी खींचते हैं। इन कवियो की यह सामान्य विशेषता है कि ये रचना का सम्पूर्ण विधान वैचारिकता के साथ जीवन दृश्यों की क्रियाशीलता में करते हैं।

****

अध्याय ४–खण्ड ग
नागार्जुन की लोकसंवेदना :

नागार्जुन की कवितायें समकालीन यथार्थ के ऐसे सर्वसुलभ सामान्य स्वरूप का [illegible] आगे आती हैं जिससे हमारी रोजमर्रे की देखा देखी व पहचान हैं, और इसलिए जिसके बारे में [illegible] [illegible] की हम जहमत नही उटाते। जो अति परिचय के कारण प्रायः हमारी अवज्ञा या उदासीनता का [illegible] बन जाता है किन्तु वास्तव में जिसके बावत हम कुछ खास नही जानने होते और सब कुछ जानते होने [illegible] भ्रम का शिकार होते हैं । ऐसे यथार्थ को नागार्जुन हमारे सामने रखते हैं। यह यथार्थ ' हुआ कुछ इस [illegible] के बयान मे उदाहरण या दृष्टांत की तरह प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं [illegible] ये कवितायें तटस्थतावाद की पूर्ति करती है, बल्कि इनमें घटनाओं और विवरणो को लेकर गहरी [illegible] और मनुष्य के लिए गहरी सदिच्छायें विद्यमान हैं। सताप को अपना माध्यम चुनने के कारण इन्हें [illegible] [illegible] की या केन्द्रीय दिशा की सीख जरूर नही दिखती, लेकिन यूं ही बातचीत करते हुए ये बहुत [illegible] से आपकी आत्मीय हो जायेंगी । कहा जा सकता है कि नागार्जुन की कविता साधारण की असाधारण [illegible] संवेदनात्मक अभिव्यक्ति हैं। ऐसी कविता आम आदमी की जिन्दगी को, जिदगी की शर्तों को तथा [illegible] को सुन्दर, सरल और सहज बनाती है। ऐसी कविता ही लोक की कविता बनती है। यह जिंदगी [illegible] [illegible] सघर्ष मे हिस्सेदारी से निर्मित कविता है, जिसमें मनुष्य की तमाम सबलता, दुर्बलता, अंतर्विरोध [illegible] [illegible] संबंधों को साधा गया है। नागार्जुन की कविता इसी अर्थ और सदर्भ में स्थायीभाव और स्थायी महत्त्व [illegible] कविता है।

नागार्जुन की कविताओ मे लोक का रग अपनी पूरी चित्रमयता के साथ आया हैं [illegible] कवितायें गाव घर देश और देशज की भाव भूमि में पगी है और इस कारण सहजता इनका स्वाभाविक [illegible] धर्म हैं । इस सरलता और सादगी को नागार्जुन ने बडी मशक्कत से पाया और कमाया है। जितना साद [illegible] सहज उनकी कविता का रूप है उतनी ही गहरी और संश्लिष्ट उसकी व्यंजनायें है। बडी कठोर साधना का सुफल बनकर उनकीकविता में यह सामग्री आयी है।[1] " नागार्जुन बड़ी प्रशस्त और समृद्ध मुनष्यता के [illegible] हैं। दूसरों को ही नहीं, स्वतः अपने को भी बराबर अपने गहरे निरीक्षण, आत्मालोचन का पात्र [illegible] [illegible] हैं। उनकी जन–संयुक्त सोच उनकी मनुष्यता को निरंतर विकसित करती रही है उन्हें वह निरवन [illegible] देती रही हैजो मनुष्यता का एक बहुत ऊंचा सोपान है।[2]

---

१. शिव कुमार मिश्र–परिषद पत्रिका–अप्रैल ६८ से मार्च ६६ अंक ४ नागार्जुन बहुआयमी पृ० ६३

२. शिव कुमार मिश्र–परिषद पत्रिका–अप्रैल ६८ से मार्च ६६ अक ४ नागार्जुन बहुआयमी पेज ६४

प्रतिबद्ध हूं आबद्ध हूं, सम्बद्ध हू। कविता मे अपनी प्रतिबद्धता को उन्होनें इस प्रकार व्यवस्थित किया है–

प्रतिबद्ध हूं

जी हा प्रतिबद्ध हूं

संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ

प्रतिबद्धता की गुहार गुहार करने वाला सिर्फ जन का ही कवि हो सकता है, उसके लिए लिख सकता है। मालदार चारा खाने वाले, जुर्राबें पहनने वाले, काला चश्मा चढानें वाले–उनके लिखे को, उनकी पक्षधरता, को कहा पढ समझ सकते है–

जी हां लिख रहा हूं

बहुत कुछ! बहोत,–बहोत।

ढेर–ढेर –सा लिख रहा हूं!

मगर आप उसे पढ नहीं

पाओगे.......देख नहीं सकोगे

उसे आप!

इसी लिए ऐसे संभ्रांत, लेकिन विभ्रांत लोगों के लिए, पलायनवादी मध्यवर्ग को ललकार कर पूछते हैं–

पूरी कीचड में है ट्राम

खाती है दचके में दचका

सहता है बदन से बदन

पसीने से लथपथ

सच सच बतलाओं

घिन तो नहीं आती है ?

जी तो नहीं कढ़ता है ?

नागार्जुन की कविताओं का ताना बाना 'देसी' है, सम्पूर्ण रूप से देसी। कई बार कबीर की तरह अनगढ। जब आधुनिकता के नाम पर रचना के शहरीकरण के खतरे हों, तब नागार्जुन के रचना संसार का देसी परिवेश, चलन से आदमी की पहिचान बताता है। सामान्यजन यहाँ वक्तव्य के माध्यम से नहीं संवेदना के स्तर पर उपस्थित है। जैसा उन्होंने अपने आंचलिक उपन्यासों में किया है– लगभग ग्राफिक चित्र।

उनकी रचना – कर्म में द्वैत नहीं है, इसलिए उनकी रचनायें मुखौटा लगाकर नहीं आती। उनकी

प्रमाणिकता हमें आश्वस्त करती हैं और अपनी अभिव्यक्ति में वे विश्वसनीय हैं। लोक उनके यहां प्रामाणिक है यही कारण है कि लोक जीवन की संपृक्ति ने नागार्जुन की कविताओ मे लोक उत्पादनों का प्रवेश है। सामान्य जन से अपने कथ्य की सामग्री प्राप्त करना, और इस प्रकार अपनी प्रतिबद्धता को व्यापक संदर्भों से जोड़ना है। नागार्जुन की प्रतिबद्धता प्रगतिवादी विचारधारा से है और वे सामान्यत. इसी के परिप्रेक्ष्य में अन्य मानवीय सरोकारों, अभिप्रायों का निर्धारण करते है। वे प्रकृति, प्रेम , जीवन मूल्य तथा भिन्न ज्ञान क्षेत्रों के आशयों और अभिप्रायों को इसी दृष्टि से अपनी रचनात्मकता मे स्थान देते हैं। नागार्जुन के जनवादी और प्रगतिशील आयाम की यही समावेशी दृष्टि है। उनकी राजनैतिक कविताओं को यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो साफ नजर आयेगा कि वे व्यवस्था या तंत्र का विरोध (अन्तर्विरोध भी) मात्र विरोध के लिए नहीं करते है, वरन जन – चेतना विरोधी सत्ता या व्यवस्था का खुलकर विरोध करते है। कवि की यह पक्षधरता अडिग है, और है हत्यारी सत्ता के प्रति विक्षोभ और क्रोध–

कहां न जनता क्षुब्ध –क्रुद्ध है

कहां न जनता दांत पीसती हत्यारों पर

इस पवित्र पावक को

बापू मैं प्रज्वलित रखूंगा

ठंडा पानी सींच न पाएगी।

इस पर सरकार ! [१]

जन सामान्य और जन – चेतना का वाहक 'जनकवि' होता है और इसी से, नागार्जुन जनकवि को विशेष महत्व देते हैं, जिसका एक गहरा संबंध देश की 'माटी' से होता है। तभी तो कवि जन कवि के दायित्व को उस प्रकार प्रस्तुत करता है–

यही मृतिका जनकवि में प्राण भरेगी

देखो जनकवि भाग न जाओ

तुम्हे कसम है इस माटी की । [२]

नागार्जुन की रचनाओं में 'जनकवि' की यह पक्षधरता कहीं पर भी धूमिल नहीं होती है , और यह पक्षधरता एक ऐसे संबंध को उजागर करती है, जो रचनाकार (बुद्धिजीवी) और तंत्र (राजतंत्र,प्रजातंत्र, सामंतवाद) के रिश्ते को भी व्यक्त करती है। मैनहीम ने इसका जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है, उसे यहां देना

---

१. युगधारा–पृ० ६३
२. ऐसे भी हम क्या......–पृ० २१

चाहूंगा क्योंकि इससे रचनाकार की भूमिका का एक ऐतिहासिक सदर्भ स्पष्ट होता हैं। सामान्यतः राजतंत्र एव सामतवाद म बुद्धिजीवी की स्थिति ऊर्ध्वगामी (वर्टिकल) होती है और उसका अभिजातीकरण होने से 'जनमानस' से सीधे संबधित न होकर, एक उच्च दशा मे ऊर्ध्वगामी स्थिति में रहता है इसके अपवाद भी हो सकते हैं। लेकिन प्रजातंत्र से संबंधित या प्रभावित रचनाकार इसी ऊर्ध्वगामी दशा में रहते हैं । इसके विपरीत जनतंत्र या प्रजातंत्र मे रचनाकार की स्थिति ऊर्ध्वगामी न होकर सामान्यत सामातर होती है, इसी प्रजातंत्र मे रचनाकार और जानमानस का सामान्तर सबंध रहता है– दोनो एक दूसरे को प्रभावित ही नही करते है, वरन् एक दूसरे से प्रेरणा भी लेते है। दूसरे शब्दों मे यहां पर कवि और जन का क्रिया प्रतिक्रियात्मक सबंध होता है, वह जन के पक्ष में खडा होता है क्यों कि वह अक्सर उसी वर्ग आता हैं । जन और ' इलीट' का यह संबंध प्रतातत्र में अपना विशेष महत्व रखता है क्यों कि लीबिस, टी.एस इलियट आदि विचारकों का मत है कि 'इलीट' जन शक्ति से ही प्रेरणा लेता है। दूसरी ओर जहां पर भी 'इलीट' समूह या 'जन' से कट जाता है, वहा जनवादी चेतना का स्वस्थ विकास संभव नहीं है। यहां पर मशीन या यत्र ने भी अपना योगदान दिया। यही कारण है कि जनवादी संस्कृति के विकास में समूह, इलीट, व्यक्ति और कामगर (श्रमिक) सबका एक सामूहिक योगदान है। इसी से , जनवादी दृष्टि या दर्शन 'जन' की आकाक्षाओं का दर्शन है और रचनाकार इस अर्थ में जन संस्कृति के विचार से लगातार टकरा रहा है। असल में, इस जन संस्कृति में व्यक्ति की अस्मिता को सुरक्षित रखना भी लाजिमी है,लेकिन अस्मिता के नाम पर व्यक्ति की अहमन्यता और आतंक को स्थान देना, मेरे विचार से जन–संस्कृति की भावना के प्रतिकूल है।

यहा पर 'इलीट' और जन–सस्कृति के संबंध में जो बात कही गयी है, इसके द्वारा हम नागार्जुन के जन काव्य को अधिक गहराई से समझ सकते हैं। "नागार्जुन एक ऐसे 'इलीट' हैं जो 'जन' की आकांक्षाओं को संघर्षों को वाणी ही नहीं देते है, वरन अपनी यायावरी प्रवृत्ति और साधारणता के कारण वे 'जन' से तादात्मय स्थापित कर स्वयं 'जनमय' हो जाते है। यहां तुलसी ' सियारामय सब जग जानी' की बात करते हैं, वहीं नागार्जुन " जनमय सब जग जानी" के सत्य को उद्घाटित करते है। दोनों में 'तादात्यीकरण ' का स्वरूप प्राप्त होता है, लेकिन उनकी प्रकृति एवं क्षेत्र में अंतर है, तुलसी का तादात्म्य राम से है जबकि नागार्जुन का तादाम्य 'जन' से है, तुलसी में भक्ति का रागात्मक रूप है जबकि नागार्जुन में विक्षोभ और प्रतिहिंसा की क्रियात्मकता है।"[1]

इस विचार–दर्शन में अनुभव की तीव्र स्थितियां है और यथार्थ के प्रति एक गहरी समझ। इसी समझ का एक पक्ष है राजनीति, अन्य पक्ष है। मिथक, प्रकृति, प्रेम, काल, इतिहास और जनवादी या मार्क्सवादी

---

१. वीरेन्द्र सिंह यायावर कवि नागार्जुन–पृ० ३४

सरोकार, ये सभी पक्ष नागार्जुन काव्य सारी संरचना को एक परिदृश्य देते हैं। जहां यहां पर मैं उनके राजनेतिक बोध को ही ले रहा हूं और इस सरोकार के भिन्न रुपो का सकेत ऊपर किया जा चुका है, फिर समाज और राजनीति के अन्य पक्षो या सरोकारों को लेना इसलिए जरूरी है कि इनके द्वारा हम नागार्जुन की सृजन चेतना के उस क्रियात्मक रूप को हृदयंगम कर सकेगे जो उनके विचार और कर्म की संघर्ष मूलक चेतना को स्पष्ट करते है।[1]

नागार्जुन की संघर्ष चेतना 'जन' की पक्षघर है और इस पक्षधरता में वे किसी प्रकार का भी समझोता नहीं करते है यही कारण है कि उनकी काव्य चेतना एक स्पष्ट 'स्टैण्ड' लेती है। नागार्जुन के इस ' स्टैण्ड' में दो तत्व प्रमुख हैं एक प्रेम और दूसर क्रोध ! उनका स्वयं का यह कथन है (दूरदर्शन द्वारा प्रस्तुत एक साक्षात्कार से) कि "मैं उसे कवि ही नहीं मानता हूं जो 'क्रोध' न कर सके और 'प्रेम' न कर सके"।

यह क्रोध का मनोभाव विरोध क्रांति और प्रतिहिंसा को जन्म देता है जो शोषण, अनाचार और भूख के प्रतिपक्ष में होता है जनमानस को खडा करता है। साहित्य का एक महत्वपूर्ण कार्य इसी चेतना कोगति देना है, एक ऐसी जमीन तैयार करना है जो जन आकांक्षाओं की पूर्ति कर सके। यह कार्य साहित्य तथा विचार–दर्शनों ने किया है जो एक ऐतिहासिक सत्य है, यह बात दूसरी है कि यह सफल हुई है, तो कही असफल इसका यह अर्थ नहीं कि रचनाकार ऐसा न करें क्यों कि विचारक और रचनाकार लम्बे समय से विपरीत स्थितियों के बावजूद, जन संस्कृति के सरोकारो को किसी न किसी रूप में अंजाम देते रहे हैं । संघर्षशील चेतना की यह मांग है कि वह आगे की ओर देखती है और वर्तमान के प्रति पूरा सजग होती है। यह सजगता और क्रोध (प्रतिहिंसा) ही नागार्जुन की राजनैतिक कविताओं को ऐसी भास्वरता प्रदान करती है। इस रूप में आधुनिक हिन्दी काव्य परम्परा की अपनी निजी पहचान है और इस पहचान को नया अर्थ नागार्जुन ने दिया है । इससे पूर्व कबीर और निराला ने यही कार्य किया था जिसे नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध केदारनाथ सिंह, राजेश जोशी आदि कवियों ने आगे ही नहीं बढाया है, बल्कि संघर्ष चेतना को एक गति और दिशा भी दी है। नागार्जुन में प्रतिहिंसा और प्रतिशोध का एक लक्ष्य है, वह मात्र प्रतिहिंसा के लिए नहीं है जो मूल्यहीन होती हैं । उन की कविता मूल्यहीन हिसा की तरफदारी नही करती बल्कि आगे बढ़कर हमारे लिये अराजकता, अनाचार के विरूद्ध एक अस्त्र मुहैया कराती है। इसी से कवि क्षमा के उस रूप को नकारता है, जो निष्क्रियता, निर्बलता को प्रश्रय देती रहे और प्रतिशोध की अग्नि को ठंडा करता रहे। ऐसी **'बुद्धि' और 'मन' के प्रति कवि का तीव्र विक्षोभ है :–**

नहीं ले पाए प्रतिशोध

---

१. वीरेन्द्र सिंह–यायावर कवि नागार्जुन–पृ० ३६

क्षगा ही क्षगा करता चला जाए

ऐसी भी बुद्धि क्या ?

ऐसा भी मन क्या[1]

इसी प्रकार कवि का विक्षोभ उस 'देश के प्रति है, जहां आदमी का पेट नही भरता है। ऐसा देश नरक तुल्य है :–

जहां न भरता पेट

देश वह कैसा भी हो, महानरक है[2]

यही विक्षोभ हमे क्राति की उस दृष्टि में प्राप्त होता है, जो क्राति को 'बैठे–ठाले' दिवास्वप्न अथवा योगी –ज्योतिषी के 'चमत्कार' के समान वायाबीय धारणा मानते है- जबकी दूसरी ओर कवि क्रांति को एक ' अग्निधर्मा – संकल्प' ओर 'कठोर अनुशासन' का रूप मानता है जिसका अभाव भारतीय समाज ही नहीं ,वरन तीसरी दुनिया के सभी देशों में न्यूनाधिक रूप में दृष्टव्य है। यह क्राति किसके लिये है? इसका प्रत्यक्ष और सीधा उत्तर स्वय कवि के शब्दो में–

कठोर अनुशासन

अपरिसीम साहस

यही तो कुछ एक तत्व है

यही पहुचा देते हैं क्रांति की तलहटियो तक

शोषित–निपीडित–सघर्षशील मानव समुदाय को[3]

क्रांति की अवधारणा में एक निश्चित दिशा होती है। उसमे 'परिवर्तन' की अदम्य आकांक्षा होती है और साथ ही , यथा स्थिति को तोडने की एक ललक। यही कारण है कि नागार्जुन की कुछ कविताओं में 'यथास्थिति' और ' गतानुगतिकता' के प्रति एक नकारात्मक दृष्टिकोण है क्यों कि–

बडा ही मादक होता है, 'यथास्थिति' का शहद

बड़ी ही मीठी होती है ' गतानुगतिकता' की संजीवनी[4]

यहं एक ऐतिहासिक सत्य है कि व्यवस्था और तंत्र (राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक सारे) और अस्तित्व के लिये ' यथास्थिति और गतानुगतिकता' को किसी भी मूल्य पर बनाये रखना चाहते है, और जनचेतना

---

१. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या–पृ० १२
२. युगधारा–पृ० २३
३. खिचडी विप्लव देखा हमने–पृ० ३४
४. खिचड़ी विप्लव–पृ० १०६

और संगठित विरोध (क्रांति) उसे तोडने का प्रयत्न करते है। इस कार्य में 'विचार' और 'कर्म' का अपना विशिष्ट स्थान रहता है क्यो कि विचार धारा अथवा विचार–दर्शन वह खाद प्रस्तुत करते हैं जो 'परिवर्तन' को जनोन्मुख बनाती है। जो विचार–दर्शन इस जनोन्मुखी प्रवृत्ति को गति न देकर व्यवस्था के हाथ, मजबूत करती है, वह एक तरफ से जनवादी चेतना का प्रतिरोध करती है। इस दृष्टि से नागार्जुन की कविता यथास्थिति को तोड़ती ही नहीं है, वरन् क्रांति की वह खाद प्रस्तुत करती है जो शोषित–पीड़ित वर्ग के पक्ष में है। नागार्जुन की यह पक्षधरता अंध पक्षधरता नहीं है क्यों कि वे जनवाद, मार्क्सवाद, क्रांति, व्यवस्था सभी के अन्तर्विरोधों को बिना किसी पूर्वाग्रह के संकेतित करते हैं। वे स्पष्ट शब्दों में *"क्रांति के अंदर रहनेवाली 'मदिर' भ्रांति के प्रति सचेत हैं।"* [1] तो दूसरी ओर वे रूस की दमनकारी नीति का विरोध करते है और क्रेमलिन, मार्क्स, लेनिन तथा स्तलिन के ताला–चाबी को प्रणाम करते है :–

धन्य क्रेमलिन, धन्य क्रेमलिन
लेकिन यह तो अन्य क्रेमलिन !
शरणागत का बधिक क्रेमलिन
क्रूर अधिक से अधिक क्रेमलिन !
मार्क्स और लेनिन–स्तालिन के
ताला–चाबी तुम्हें मुबारक ! [2]

दूसरे स्तर पर नागार्जुन की अनेक ऐसी कविताएं है जिसमें उपनिवेशी दासता, कामनवेल्थ प्रभुता, अमरीकी साम्राज्यवाद, नेहरू, इन्दिरा गाधी और राष्ट्रपति भवन आदि के माध्यम से उन्होंने जहां एक ओर जनवादी चेतना को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया हैं, वहीं अभिजन और बुर्जुआ मानसिकता को भी व्यक्त किया है। यही कारण है कि नागार्जुन अभिजन और श्रमिक –शोषित वर्ग दोनो के लिए समान रूप से उत्तेजक है, अभिजन के प्रति उनकी चेतना नकारात्मक एवं व्यंग्यात्मक हैजबकि 'जन' के प्रति उनकी उत्तेजना सकारात्मक एवं कारुणिक है। यह करुणा का भाव दया का न होकर उन्हे उत्तेजित एवं क्रियात्मक करने के लिए हैं। कामरेड छेदी जगन, लेनिनं, साथी गणपति पटनायक़ आदि पर उनकी कविताएं समसामयिक महत्व की होती हुई भी अपने महत्व में वहीं तक सीमित नहीं है, इसका कारण, वह मूल्यगत क्रियात्मकता है जो जनवादी चेतना के साथ गहरी जुड़ी हुई है। जब तक जनवाद (व्यापक अर्थ में) संघर्षशील है और गंतव्य की ओर अग्रसर रहेगा, तब तक नागार्जुन की ये कविताएं दिशा संकेत करती रहेंगी।

---

१. खिचडी विप्लव देखा हमने–पृ० २२
२. पुरानी जूतियों का कोरस–पृ० ८०

'छेदी जगन' कविता के भ्रष्ट व्यवस्था आदि पर प्रहार करते हैं, वहीं वे मार्क्सवादी, वामपंथी और दक्षिणपंथी खेमों के स्वार्थों और अन्तर्विरोधो पर भी प्रहार करते है। इन्दिरा, नेहरू, ससद, राष्ट्रपति ये मात्र संज्ञाए न होकर नागार्जुन के काव्य में प्रतीक या विचार के प्रेरक स्रोत हैं और यही कारण है कि कवि इन 'संज्ञाओं' के द्वारा आज की पूरी व्यवस्था पर प्रहार कर 'यथास्थिति' को तोडना चाहता है।

नागार्जुन काव्य मे व्यंग्य ओर आक्रामकता उनकी सृजनात्मकता को गति देते हैं और यही बात उनके परोक्ष कथनों में भी देखी जा सकती है। यहां वे पुरानी जूतियो का कोरस, 'नदियॉ बदला लेंगी" प्रतिहिंसा का महरुद्र' आदि कविताओं में जन विद्रोह, प्रतिहिंसा और विस्फोटक तत्वों का आह्वान करते है। इस क्षेत्र में नागार्जुन की सृजन ऊर्जा अधिक गतिशील रही है। " पुरानी जूतियों का कोरस" में पुरानी जूतियां दलित शोषित वर्ग का प्रतीक हैं जो समष्टि रूप से (यहां पर अनेक प्रकार की जूतियों का संकेत है जैसे देहाती जोडा, टायर चप्पल जूता सलीमसाही आदि) 'अनमोल धूल' होते हुए भी बांसों पर टंगे हुए है जो इनकी नियति है, लेकिन अंत में कवि उस नियति ाके मारक विद्रोह में बदल देता है :–

आओ, हम सब चलें, राष्ट्रपति भवन पधारें

महामहिम के जूतों की आरती उतारें

व्रत लेते है, दुखियारों का दैन्य हरेंगे

है अनमोल हमारी धूल, धूल हमरी धूल।[1]

इसी संदर्भ मे नागार्जुन की एक कविता ' छोटी मछली–बडी मछली' है जो शोषण की प्रक्रिया को माइक्रो एवं मैको (लघु और विराट) स्तर पर एक साथ घटित करती है। किस प्रकार का शोषक बड़ी मछली पहले तो शोषित (छोटी मछली) को अपनी ओर रिझाकर उदरस्थ करती है और फिर, उदरस्थ को प्रशिक्षित कर अपने ही समान शोषक का रूप प्रदान करती है जहां शोषित भी सत्ता और अधिकार प्राप्त कर शोषक का रूप ग्रहण लेता है, यह हमें विश्व का इतिहास बताता है। इस पूरी प्रक्रिया को कवि निम्न क्रमिक सोपानों से पाठको के समक्ष रखता है :–

आओ मेरी बच्ची ! वाह मेरी मुन्नी ! –

अभी तो आ जा मेरे मुंह में

देखना, यहां अंदर क्या नही है

संवेदना को गहराने वाली, और देशी मुहावरे में लोकधुनों का उपयोग जब वे करते हैं तो वास्तप में वे कविता की अभिजात्य सीमाओं को ही तोडते हैं। कबीर की तरहं क्या हुआ आप को ? किसकी है जनवरी,

---

१. पुरानी जूतियों का कोरस–पृ० ६

किसका अगस्त है? आदि कई कविताओं में लोक गीतों की शैली का उपयोग किया गया है और नागार्जुन का कवि पाठक के साथ-साथ श्रोता को हुलकारा करता भी दिखायी देता है, बिना अपने आशय का अवमूल्यन किये हुए।[1]

नागार्जुन एक जगह ठहरने वाले कवि नहीं है उनका झोला झण्डा उठा रहता है, इस यायावरी ने उनके अनुभव को समृद्ध किया है। उनका लोक विस्तृत हुआ है, उनकी कविता एक तान नही है, वैविद्धय से परिपूर्ण है। उन्होंने कविता को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए विभिन्न काव्य रूपों का प्रयोग किया ताकि वह पाठकों को सहज संप्रेषित हो सके। उनका लोक अत्यन्त उर्वर है, नागार्जुन को पढते हुए लगातार एक लोक कवि की उपस्थिति का आभास होता है। जैस हम जानते हैं कि लोककवि आडम्बरो से काफी दूर औघडी प्रवृत्ति का जीव होता है, उसकी कवितायें देर तक याद रहने वाली कवितायें हैं।[2]

यह स्पष्ट है कि नागार्जुन जनता के कवि नहीं, जनता के द्वारा स्वीकृत कवि है। वे निरंतर इस प्रयत्न में लगे रहते हैं कि कविता को जनता तक पहुंचाया जाय, इसलिए काव्य रूपों को लेकर वे निरंतर प्रयोग करते रहे। आज जबकि स्वयं शब्द ही खतरे में है, नागार्जुन का काव्य प्रयोगों के तमाम जोखिम उठाकर भी शब्द की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये हुए हैं। लोक की सत्ता का यह पुजारी लोकानुभव, को लोकात्मक भाषा में ही प्रस्तुत करते हुए असल में कविता को पारंपरिक विधान से बिलगाते हुये एक प्रतिसंसार, जो बेहद ऊर्जामय, तेजोमय है – की सृष्टि करता है। नागार्जुन की कविता में आया हुआ तद्भव दरअसल, लोक जीवन में तत्सम के आधिपत्य के अस्वीकार करने वाली है। " इसलिए उनकी कविता में भाषिक संरचना का जंजाल जाल बुनने का उपक्रम नहीं मिलता। भाषा बिल्कुल सरल, आम फहम और बोलचाल की तथा शिल्प, भाषा की ही तरह सहज, आडम्बररहित और प्रवाहपूर्ण है। भाषा और शिल्प की सह सहजता नागार्जुन में शुरू से मिलती है।"[3] और यह 'निस्सहाय नकारात्मकता' तथा जड़ी भूत सौंदर्यभिरुचि' वाले दौर में भी यथावत बनी रही। शायद लंबे समय तक उनकी उपेक्षा का यही कारण था। कविता ? जब शब्दो, बिम्बो, प्रतीकों और गोलमटोल वाक्यो से गढ़ने की कोशिशें की जा रही हों जो सहज और बोधगम्य को अपना आधार स्वीकार करने वाले को कवि कौन मानेगा। समकालीन काव्य पदृिश्य में आज भी जो लोग सन्नाटा, स्मृति, संयम व ठहराव देखते हैं, करबद्ध निवेदन है कि वे नागार्जुन की कविता एक बार देख जरूर लें। शायद उन्हें कुछ शऊर आ जाये। इन कविताओं में वे भाषा के पूरे रंग को झोंक देते हैं। ये शब्द साधारण समाज के रोजमर्रा अनुभव से उपजे हैं जो बातचीत, संबोधन, व्यंग्य के लहजे में

---

१. प्रेमशंकर नागार्जुन सं०–सुरेश चन्द्र त्यागी पृ० १७२
२. स्वप्निल श्रीवास्तव कल के लिए–१९९६–पृ० ३०
३. श्री नारायण समीर, पल प्रतिपल–जनवरी, जून १९९९–पृ० २०२

बदल जाते हैं। आक्रामकता और सपाट बयानी किसे कहते हैं यदि उसे देखना हो तो नागार्जुन की कविता को देखना चाहिए –

" टूटे सींगों वाले सांढों का यह कैसा टक्कर था
उधर दुधारू गाय अडी थी
उधर सकरसी चक्कर था
समझ न पाओगे वर्षो तक
जाने कैसा चक्कर था
तुम जनकवि हो तुम्ही बता दो
खेल नहीं था टक्कर था"[1]

नागार्जुन ऐसी भाषा अर्जित करने के लिए ठेठ देहात से लेकर कस्बों, शहरो की राजनीति, धर्म, व्यापार, जालसाजी, गुण्डागर्दी, जेबकतरी, जरायम पेशा, आर्थिक गुलामी की दुनिया के अनुभवों से अपनी भाषा अर्जित करते है। "ऐसा करते हुए उन्हें कोई शब्द कविता की दुनिया से बाहर का नहीं दिखाई देता । वे सच्चे अर्थों में जनता के, जनता की भाषा में लिखने वाले मूर्ति भंजक क्रातिकारी और औघड, शब्द साधक कवि है। नामवर सिह ने यदि नागार्जुन को व्यंग्य की विद्‌गधता के लिए कबीर के बाद हिन्दी का सबसे बडा व्यंग्यकार कहा तो इसलिए कि उनके पास हमारी शताब्दी के चौतरफा फैले यथार्थ को व्यक्त करने के लिए एक समर्थ, व्यजक , जो कहीं–कही शिष्ट हास्य भी पैदा करती है– भाषा हैं ; उनकी भाषा का पाट उनकी कविता की तरह विविध और विलक्षण है, तभी तो वे प्रकृति राग से लेकर मानवीय राग की सजल कवितायें रच पाते हैं। गौर करे तों उनके व्यंग्य मिश्रित भाषा के भीतर दुख और सन्ताप रिसता रहता हैं।"[2]

देखिये इस कविता को–

शबास!
यह अभिनय तो/कमाल का रहा आपका
दुख था ऐसा मंचन
दर्शक समुदाय
पहली बार देख रहा था
भाव विमुग्ध गूंगे बेचारे

---

१. खिचडी बिप्लव देखा हमने
२. अरविन्द तिवारी–देखना सत्य का मिहिरद्वार–शताब्दी कविता वर्तमान साहित्य–पृ० ३८०

श्रद्धालु सरल सामान्य जन

होली के दिन उमंग में

गुलाब का टीका लगाने गये थे

वे आपको

आपने कहा

मेरा दिल दुखी है

आसाम का दुख देखा नहीं जाता

मैं नहीं दूख सकूंगी (शाबास अभिनेत्री)

देखा जाय तो नागार्जुन ने काव्य भाषा का वही रास्ता चुना जो निराला का पाथेय था। उन्होंने कविता के लिए परम्परा से अर्जित भाव के साथ ही साथ जनता की भाषा का इस्तेमाल किया जिसका उद्गम स्त्रोत बोलियां है। नागार्जुन ने जनपदीय बोलियों के मिश्रण से एक खास तरह की समावेशी जन काव्य भाषा निर्मित की। भाषाई विविधता के साथ, सादगी का ऐसा सौन्दर्य – लोक नागार्जुन रचते हैं कि पाठक सहज ही आकृष्ट हो उठता है। नागार्जुन की लोकात्मता को सबसे सही तरीके से उनकी भाषा के विन्यास में ही खोजा सकता हौ। जो बेहद जीवन्त और प्राणवान है।

भाषा की इसी भगिमा के साथ वह कविता की ओर अग्रसर होते है जो कवि को अपने समय की चुनौतियो का सामना करने में बेहद सक्षम बनाती है। वे इस माने में विलक्षण कवि हैं कि वे भाषा को कविता में उसी तरह लाते हैं जैसे मौसम में अचानक बारिश आती है। यह भाषा में बतकही का लहजा हैं।

वे बतियाते बतियाते अपनी बात कहते हैं, "जिसमें आम आदमी के दुख दर्द तकलीफें सभी कुछ आ जाते हैं। स्वयं नागार्जुन की स्वीकारोक्ति है कि वे जनकवि हैं, उन्हें जानकारी होने और जन कवि की भूमिका निर्वाह करने का पूर्ण अहसास है"[1]

जनता मुझसे पूछ रही है, क्या बतलाऊं ?

जनकवि हूं, मैं साफ कहूंगा क्यों हकलाऊं।

जनकवि हूं, मै, क्यों चाटूं मैं थूक तुम्हारी

श्रमिकों पर क्यों चलने दूं बन्दूक तुम्हारी

या " भारतेन्दु के बाद हिन्दी कविता को जनता के बीच खड़ी करने की कोशिश मैने की।" अग्रज गोर्की की सौवी वर्षगांठ पर वे लिखते है–*करता है भारतीय जनकवि तुमको प्रणाम।* उन्होंने *'जन कवि हूं*

---

१. नामवर सिंह–आलोचना–पृ० ३

मैं' कहकर आत्मबोध को वाणी दी है पर इस वाणी को व्यक्त करने के लिए उन्होने कलम और रचना को ही माध्यग बनाया हो , ऐसा नहीं है। उन्होंने जनराघर्षो में स्वय हिस्सा लिया है, सहभागिता निभाई है । इस तरह आम जनता तक उन्होंने पहुंचने की पूरी पूरी कोशिश की है। अपनी 'जनकवि' शीर्षक कविता में वे कहते हैं–

" समझ गया हूं

जीवन ने इस धरा धाम का क्या महत्व है।

समझ गया हूं ....

अपनी कविताओं के माध्यम से वे जनकवि का उत्तरदायित्व पूर्णतः निभाते रहे हैं। वे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा लेते हैं–*अपने को बेचूंगा नहीं, चाहे दु:ख झेलूं अकथ।* इतना ही नहीं, अपनी जनकवि की भूमिका का निर्वाह करते हुए वे घरघुसना कवियों– अपनी कवि विरादरी के बुद्धिजीवियों–को स्नेह पूर्वक सचेत करते हैं कि यदि लिखना है तो पहले बाहर निकाल, घूम फिर कर स्थितियों को देखो, तब यथार्थ लिखो घर–बैठे बैठे का लेखन वास्तविक नहीं हो सकता। *"आ तेरे को सैर कराऊं, घर में घुसकर क्या लिखता है"* नागार्जुन की लोक चेतना सामान्य जनता के साथ किस घनिष्टता से जुडी है, इसे उनकी 'हरिजनगाथा' मंत्र छोटी मछली बडी मछली जैसी अनेकानेक कविताओं मे बखूबी देखा जा सकता है। डा. अजय तिवारी का अभिमत है कि "हरिजनगाथा' और छोटी मछली बडी मछली जैसी कविताओ की रचनाकरके नागार्जुन ने न केवल अपने आपको वरन् प्रगतिशील कविता को, हिन्दी साहित्य को मूल्यवान अवदान किया है। उत्तरोत्तर अपने प्रखर यथार्थवादी और हद भौतिकवादी उन्मेष के कारण नागार्जुन हिन्दी साहित्य में निराला के बाद सबसे महत्वपूर्ण पद के हकदार हुए हैं।"[1] स्पष्ट है कि नागार्जुन जन कवि हैं, लोक के कवि हैं किसान और मजदूरों के कवि हैं और इसलिए उन्हें यदि वामपथी विचार धारा सर्वहारा के खिलाफ भी जाना पडे तो उन्हें कोई गुरेज नहीं। क्यों कि उनके लिए सिद्धांत महत्वपूर्ण नहीं रोटी महत्वपूर्ण है। किसानों की मजदूरों की रोटी। इसके बीच आने वाले किसी का भी वह विरोध कर सकते है। भारत भूमि में समाजवादी क्रांति की व्यग्रभाव से प्रतीक्षा करने वाले नागार्जुन 'कार्लमार्क्स की दाढी में जूं' डालते है। ' द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तुम्हारा तुम्हे मुबारक कहते हैं, इसलिए कि वे यह जानते हैं कि –

" क्या है दक्षिण क्या है वाम

जनता को रोटी से काम।"

---

१. अजय तिवारी–नागार्जुन की कविता–पृ० ७६

उनके काव्य का एक बहुत बडा हिस्सा पिछले ५० वर्षों मे हुए सैकडों अतर्क्य और बर्बर गोलीकाण्ड से प्रेरित है। किसानों मजदूरों पर अत्याचार, छात्रो नागरिकों पर गोलीकाण्ड प्रहार, देश विदेश की कोई धरना जिसमें शांति के लिए संघर्षरत मानव–समाज आहत हो, नागार्जुन के कवि की मानसिक बेचैनी बढा देती है और जब तक वे उस धरना पर अपनी प्रतिक्रिया, अपना आक्रोश व्यक्त नहीं कर देते, उन्हें शांति नहीं मिलती, उनकी बेचैनी बनी ही रहती है। जमींदारों द्वारा छोटी जातियों के साथ किये गये अमानुषिक व्यवहार का कवि नागार्जुन द्वारा किया गया यह चित्रण कितना मार्मिक एवं संवेदित करने वाला है–

" ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
हरिजन मातायें अपने भ्रूणों के जनकों का
खो चुकी हों– पैशाचिक दुष्काण्ड में
एक नहीं दो नहीं, तीन नहीं.................
तेरह के तेरह अभागे
अकिंचन मनुपुत्र
जिंदा झोक दिये गये हों
प्रचण्ड अग्नि की विकराल लपटों में
साधन सम्पन्न ऊंची जातियों वाले
सौ–सौ मनुपुत्रों द्वारा" (हरिजन गाथा)

सच तो यह है कि " जनता के पक्ष में कवितायें लिखने वाले और भी हैं पर जनता को अपने में आत्मसात कर कविता लिखने वालो में नागार्जुन अपने ढंग के अकेले कवि है। जनता के जीवन में हर दिन हर क्षण घटने वाला यथार्थ नागार्जुन की कविता का यथार्थ है।"[1] उनकी कविताओं में हथियार, द्वंद्व, क्रांतिकारी, कभी नायक नहीं रहा। वे जब जब क्रांति का चित्र खींचते हैं, हमेशा उसमें जनता की भूमिका को सर्वोच्च प्राथमिकता देते है। उनकी कविता है– *लो देखो अपना चमत्कार* – इसका प्रमाण है–

"गोबर महगू, बलचनमा और चतुरी चमार
सब छीन ले रहे स्वाधिकार
आगे बढ़कर सब जूझ रहे
हरनुमा ठन गये लाखों के
अपना त्रिशंकुपन छोड़ इन्हीं का साथ दे रहा मध्य वर्ग

---

१. डा. परमानन्द श्रीवास्तव–समकालीन कविता का यथार्थ–पृ० ३३

स्पष्ट है कि प्रेमचद, तथा निराला के चरित्र नायक नागार्जुन की निगाह में लाखों के रहनुमा हैं और निश्चित रूप से, जैसा कि नागार्जुन मानते हैं क्रांति न तो संसदीय पूंजीवादी तरीके से होगी और न आतंकवादी तरीके से। जब भी होगी क्राति जनवादी तरीके से होगी उसे गरीब, निरन्न, विपन्न, मेहनतकश मजदूर किसान करेगे, जिन्हें उसकी आवयकता है।

..........यह थोथा आशावाद नही, भविष्य का वह सच हैं जिसे नागार्जुन की स्वप्निल आंखो ने देखा था।

****

अध्याय ४ खण्ड घ
त्रिलोचन की लोक संवेदन

आवेगों की संयमित अभिव्यक्ति वाले त्रिलोचन की कविताई का तेवर और समकालीन बोध की खनक ठेठ भाषा की ठोस भाव भूमि से जुडा है । उनकी कविताओं के पीछे एक भरापूरा अतीत है , जिससे उनका गहरा और उन्मुक्त लगाव है । जिजीविषा , सैलानीजीवन ,अद्भुत जीवन ज्ञान , सायास भटकाव एवं प्रतिभापूर्ण काव्य की गुणात्मकता से इनका रचना – संसार परिपूर्ण है। अपने जीवन की आकृति और उसके कंपन को कविता मे तब्दील कर देना त्रिलोचन की ऐसी विशेषता है, जो उन्हे अपने समकालीनो से अलग कर देती है। आज की हिन्दी कविता पर यह आरोप है कि उसका स्थापत्य सर्वदेशीय या विश्वब्यापी (कोस्मापालिटन) हो गया है और उसमें उसकी अपनी जमीन की पहचान गायब हो गयी है । इस प्रकार का आरोप लगानें वालो को त्रिलोचन की कवितायें देखनी चाहिये जिसमे अपनी जमीन और मिट्टी का पूरा स्वाद है। इस धरती के लिये वह कृतज्ञ है। वह इसकी सोधी गन्ध को महसूसते हुए इसे अपने अन्दर तक समोये हुए हैं। वह कहते भी हैं । *" चिर कृतज्ञ हूँ , चिर कृतज्ञ हूँ , चिर कृतज्ञ हूँ , महीयसी भू ने काया का दान भी दिया है अन्न जल दिया, फूल फल दिया "* (उस जनपद का कवि हूँ)

त्रिलोचन की कविता में एक प्रेम करने वाले हृदय की उपस्थिति बराबर महसूस की जा सकती है। एक मुलायम स्नेह की दुनिया, कोमल सम्बन्धों की दुनिया, उनकी कविताओं में बराबर मौजूद रहती है । इस दुनिया के साथ एक सहज अपनापन के लिए त्रिलोचन की कविताओं मे बार–बार आकर्षण है। जो एक नास्टेल्जिया या आत्मरति जैसा लगता है। लेकिन यह लगाव ही है जो आज के औद्योगिक यांत्रिक जीवन में दुर्लभ होता जा रहा है। इसी लगाव के चलते वह मनुष्य के सपनों को अद्भुत नजदीकी से पहचानता है। कोई भी हो – त्रिलोचन उनके सपनों का रंग जानते हैं। वे व्यक्ति की और समूह की भी मनः स्थिति को उसके परे विन्यास में पकड़ते हैं। जिस तरह वे "कुछ नही " से भी कविता निकाल लेते हैं उसी तरह अपनें अभिव्यक्ति कौशल से उसमें प्रभाव भी पैदा कर लेते हैं । कभी शब्दों और वाक्यों को दुहराकर कभी वाक्यों में लोच देकर, कभी संज्ञाओं के पीछे कई – कई विशेषण लगाकर वे कविता सृजित करते हैं। वहां तुकों का समुन्दर संयोजन तो है ही, अनुभव स्थितियों की लय को भी पकडते हैं। कुछ खास किस्म की अँदाजेबयां है – मसलन सानेट जिनमे खास ही नयापन है –

" बढ़ रही क्षण – क्षण शिखायें
दमकते से अब पड़े – पल्लव
उठ पड़ा देखो विहंग – रव

गये सोते जाग

बादलों में लग गयी है आग दिन था।"

अथवा *" मैं अपनें एकाकीपन से ऊब गया था,*

अब गया था, उब गया था। आखिर भागा,

अगले क्षण जीवन – सागर में डूब गया था।"

त्रिलोचन की कविताओ को पढते वक्त निश्छल और भावुक हुआ जा सकता है । एक तरह के उन्माद, स्फूर्ति और इच्छा के प्रभाव में आकर हम इन कविताओं के सहारे बचपन की व्याख्या रहित सकियता और कैशौर्य की खेलपरक नाटकीयता की व्यंजना पाते हैं । इसी आरोह अवरोह से वह कविता स्वयंम को और हमको वयस्क भी बनाती है। उस कविता मे यह वयस्कता, दिनचर्या की सामान्य गतिविधियों और रोज मर्रा के बहुत मामूली से दिखनें वाले अनुभवों के सहारे, अपनी पहचान बनाती है। एक संयत पहचान–जो लोगों से प्रीति करके ही बनती है। प्रीति जिसके मूल मे जीवन है ; कुछ खारिज न की जा सकने वाली गतिविधिया हैं, कुछ बहुत आत्मीयता , कुछ झगडे और मनुहार हैं– जो मध्यवर्गीय शहराती मानसिकता की नकली नफासत औपचारिकता के विपरीत – मनुष्य के अच्छेपन को जिलाये रखती हैं । असल मे नयी कविता का आधुनिकतावाद अनुभव के स्तर पर शहरी मध्यवर्ग की जिन्दगी के छद्म से जुडा और विचारो में पश्चिम के समानधर्मी कवियो–आलाचकों की नकली मान्यताओ का अनुगामी था।

वास्तव मे " त्रिलोचन की कविता का ब्यक्तित्व ऐसा है कि वह आधुनिकतावादियो को पसंद नही आ सकता। उन्होने आज तक अपनी कविता को लगातार आधुनिकतावादी फैशनों और प्रवृत्तियों से बचाया है। नयी कविता के ब्यापक प्रभाव के दौर मे भी वे दृढतापूर्वक अपनी कविता के स्वतंत्र ब्यक्तित्व की रक्षा करते रहे।इस कारण त्रिलोचन की कविता मे नयी कविता का कही कोई प्रभाव नही है। व्यक्तित्ववाद , रहस्यवाद आदि की छाया नही है। उनकी कविता नयी कविता के समानान्तर उसके विरोध मे खडी दिखायी देती है।"[१] त्रिलोचन की कविता की दुनिया एकदम दूसरी है । उसमे गॉव की जिन्दगी की वास्तविकताएं और आकांक्षाए , जनजीवन के चित्र , और गॉव की बोली–ठोली , लाग लपेट, टेक , भाषा , मुहावरा ,आदि हैं। किसान जीवन और जातीय मन का काब्य नयी कविता के आधुनिकतावाद का प्रतिपक्षी और प्रतिरोध है। आधुनिकतावादी वातावरण मे त्रिलोचन की कविता महानगर में बसे बचे गॉव की तरह है। यह आपकी मानसिकता पर निर्भर है कि उसे पिछडेपन की निशानी माने या रेगिस्तान मे नखलिस्तान। त्रिलोचन के यहॉ विचारोत्तेजन का प्रत्यक्ष ऊहापोह इतना नही, जितना कि भाव प्रगति से उत्पन्न सौंदर्य सृजन का, लेकिन

---

१. मैनेजर पाण्डे आलोचना ८२

उसका मतलब यह नही कि वहाँ भाव प्रगति से सम्बद्ध ज्ञानात्मक स्तर का अपना पिष्ट प्रेषण है। "वास्तविकता यह है कि त्रिलोचन की कविता , परम्परा की सम्बद्धता मे नयी है। वह कवि दिमाग की कोरी उपज या आसमान से टपकी कविता नही। यही वजह है कि वे अपने किसी भाव या विचार का आरोहण करने के बजाय उसे परिस्थिति में रूपायति होता हुआ दिखाते हैं। भाव या विचार का आरोहरण कितना सरल है, यह समकालीन कविता में स्पष्ट देखा जा सकता है। त्रिलोचन के भाव विचार और कला परिस्थिति जन्य हैं। आरोपित नहीं।"[1]

इस संदर्भ आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपनी रसमीमांसा में कहा है –" जहां तथ्य केवल आरोपित या संभावित रहते हैं, वहां वे अलंकार रूप में ही रहते हैं। पर जिन तत्वों का अभ्यास हमें पशु पक्षियो के रूप में व्यापार या परिस्थिति मे ही मिलता है वे हमारे भावों के विषय वास्तव में हो सकते है।"[2] त्रिलोचन भावों के वास्तविक विषयों को अपनी कविता का कथ्य बनाते हैं। यही कारण है कि त्रिलोचन किसी भी तथ्य अनुभूति या विचार को रूप व्यापार या परिस्थिति मे दिखाने की कला में प्रवीण है जिसे साधने मे अच्छे अच्छो को हिचकियां आने लगती है। त्रिलोचन की कविता दुनिया में रहने की कविता है। उसे दुनिया की परवाह ज्यादा है, दुनियादारों की नहीं। इसलिए यह मानवीय संकट का तीखा अहसास कराने वाली कविता है। मानवीय संकट इसमें रचे बसे होने का प्रमाण है, जिसके बारे में त्रिलोचन अलग से हल्ला नहीं मचाते। त्रिलोचन का यथार्थवाद अन्य कवियों के यथार्थवाद से कुछ अलग है । उसमें न झूठा आशावाद न काल्पनिक संघर्ष के लिए आवाहन है, मुक्ति आंदोलन के गीत हैं, लेकिन चेतावनी भी है कि सोच समझकर चलना होगा। उपदेश और आह्वान 'धरती' की कविताओं में अधिक है, बाद में संग्रहों में कम।

भाव उन्ही का सबका है जो थे अभावमय,
पर अभाव से दबे नहीं, जागे स्वाभावमय।

वे किसान जीवन के वास्तविक सुख–दुख, आशा निराशा और संघर्षो की कविता लिखते है। जो लोग जन–जीवन की कविता में केवल आशा और उल्लास देखना चाहते है, उनको लक्ष्य करके त्रिलोचन ने लिखा है–

अगर न हो हरियाली
कहां दिखा सकता हूं? फिर आंखों पर मेरी
चश्मा हटा नहीं है। यह नवीन ऐय्यारी

---

१. जीवन सिंह – कविता की लोकप्रवृत्ति – पृ० ११८

२. आचार्य रामचंद्र शुक्ल –रसमीमांसा

मुझे पसंद नहीं है। जो इसकी तैयारी

करते हो वे करे। अगर कोठरी अंधेरी

है तो उसे अंधेरी समझने कहने का

मुझको है अधिकार।

वे मानते है कि अगर जनता के जीवन मे सघर्ष और दु:ख है तो उस वास्तविकता को झुठलाना गलत है। लेकिन वे ये भी जानते है कि दु:ख के तम मे जीवन–ज्योति जला करती है। वे किसान–जीवन की करुण कहानी नही करते, उसके स्वाभिमान की रक्षा को महत्व देते है। उनका किसान अभाव में जीता है, लेकिन अभाव मे दबता नहीं। उनकी कविता में किसान जीवन का यथार्थ सच्चे और खरे रूप में है। न वह भावुकता के उच्छवास में डूबा, न विचार धारा के आग्रह से ढका है।[1] उनके किसान के जीवन के विभिन्न पक्षो के चित्र है वे चित्र अलग–अलग है, फिर भी उनमे सबंध है और उस सबंध से किसान–जीवन की लय उभरती है। त्रिलोचन पहले किसान को किसान के रूप मे, जीवन के लिए प्रकृति से लडते हुए किसान के रूप मे चित्रित करते है–

" है धूप कठिन सिर ऊपर

थम गयी हवा है जैसे

दोनों दूबों के ऊपर

रख पैर खींचते पानी

उस मलिन हरी धरती पर

मिलकर वे दोनों प्रानी

दे रहे खेत में पानी।"

"ऐसा चित्र केवल सुनी–सुनायी बातों के आधार पर कल्पना के सहारे चित्रित नहीं किया जा सकता। इसके लिए चाहिए सहृदयता लेकिन वह काफी नहीं है, उस जीवन से गहरा परिचय चाहिए।" [2]

आम जनजीवन के दुख दर्द को पीकर उसकी ऊर्जा से जो काव्य सृजन होता है, वह अलग तरह का होता है। वह विचलन नहीं, व्यक्तित्व को दृढता देता है। स्पष्ट है ,उनके मूल्यों की दृढता, उनके पुरानेपन और उसकी पारम्परिकता से बना है। "यह आकस्मिक नहीं कि उनकी आंखों में तुलसी और निराला सदैव बने रहते हैं। तुलसी के एक सांग रूपक से चौपाई को सॉनेट में उद्धृत कर एक ओर त्रिलोचन यह बतलाते है।

---

१. मैनेजर पाण्डेय–जीवन की लय में–मुक्ति का राग– आलोचना ८२– जुलाई सित. ८७ पृ० २२
२. मैनेजर पाण्डेय–जीवन की लय में–मुक्ति का राग– आलोचना ८२– जुलाई सित. ८७ पृ० २३

कि सभ्यता के आर्थिक रूप परिवर्तन हो जाने के बावजूद मूल्य स्तर पर अनेक बातें ऐसी शेष रह जाती है जो नहीं बदलती दूसरी ओर वे अपनी काव्य परम्परा के किस बिन्दु से जुड़कर उसका विकास करना है यह बतलाते है। यह कोई त्रिलोचन से सीख सकता है कि परंपरा से एक रचनाकार का संबंध किस सीमा तक और किस रूप में होना चाहिये। जैसे वे परंपरा का सब कुछ स्वीकार नहीं करते, उसी तरह त्याज्य भी नहीं मानते।"[1] अपने एक सॉनेट में वे अपने समय के उन आधुनिकतावादी, प्रयोगवादी और नयी कविता के व्यक्तिवादी व्यक्तियों कवियों से स्वयं को अलग दिखलाते हैं, जो अपने उड़न घोड़े पर बैठकर उड़ रहे थे। जिनकें संबंध हिन्दी जाति की सामान्य क्रियाशील जनता से न होकर उस अभिजात उच्चवर्ग से थे और जो सामान्य जन की निकटता को असभ्यता अपमान एवं लज्जाजनक मसला है।

मित्रों मैने साथ तुम्हारा जब छोड़ा था

तब मै हारा–थक नहीं था, लेकिन मेरा

तन भूखा था, मन भूखा था, तुमने देखा

उत्तर मैने दिया नहीं तुमकों, घोड़ा था,

तेज तुम्हारा, तुम्हें ले उड़ा, मैं पैदल था

विश्वासी था सौरज धीरज तेहि रथ चाका

जिससे विजय श्री मिलती है और पताका

ऊंचे फहराती है।

यह त्रिलोचन की लोक सम्बद्धता को सुचिंतित उद्घोषणा है, जिसका व्यवहारिक प्रमाण उनके सम्पूर्ण आचरण, लोक् व्यवहार और काव्यसर्जना में प्राप्त होता है। परम्परा से सम्बद्धता की चीख पुकार मचाए और कुछ संदर्भित वाक्यों शब्दों से वे बात को कितनी गहराई तक ले जाते है, यह जानकारी उनकी कविता में गहरी पैठ करने से ही संभव है।

त्रिलोचन किसानों को जीते–जागते मानव–समुदाय के रूप में देखते है। त्रिलोचन की कविता में गरीबी, शोषण और उत्पीड़न के शिकार किसान है। उनकी कविता में सबसे अधिक खेतिहर मजदूर आते है। और उन खेतिहर मजदूरों में भी, स्त्रियों की जीवन दशा पर उनका ध्यान अधिक जाता है। उनकी कविताओं में कुछ चरित्र है। वे सब ग्रामीण कारीगर, खेत–मजदूर और स्त्रियां है। नगई गहरा, मोरई केवट, मंगल, निहू, भिखरिया, अतवरिया, चम्पा, सोना और सुकनी आदि ऐसे ऐसे ही चरित्र है। इन चरित्रों के माध्यम से गांव में

१. जीवनसिंह – सापेक्ष त्रिलोचन अंक १८३

सबसे कठिन जिन्दगी जीने वाले लोगों के ठोस अनुभवों की एक दुनियां साकार रूप में हमारे सामने आती है।

इन चित्रों मे वे चरित्रों के रूप–रंग, आकार–प्रकार और नाक–नक्श पर नहीं बल्कि उनके कामकाज व्यवहार, स्वभाव और शील पर ध्यान देते हैं। "अवध के दर्पण मे उन्होने ठेठ ग्रामीण भारत के दर्शन किये और कराये हैं।"[1] महाकुंभ में जन–समुद्र का विराट दर्शन करते हुए उन्होंने अनुभव किया– " *मानचित्र था भारत का रेखांकित आनन*"। उनका प्रगतिशील राजनीतिक 'स्व', धरती में ही सुनाई पड़ने लगता है। उनका प्यार उन्हे '*जगत जीवन का प्रेमी* बना रहा है।' इसीलिए अपने मुक्ति की कामना लेकर लडने वाली '*जनता के पैरों में मेरा हृदय धडकता है* ' जैसे वाक्य कहते हैं। स्वाधीनता के बाद ' *जब से निरहू भाई ने घर–बार संभाला* तब से उनका राजनीतिक स्वर व्यंग्यमय होता गया जिसका परम विकास महाकुंभ के उन सॅानेटों मे दिखायी देता है। महाकुंभ वाले सॅानेटों को पटना–गोलीकाण्ड पर लिखी नागार्जुन की *"खून और शोले"* वाली कविताओ के साथ मिलाकर पढिये, इन दोनों व्यक्तियों का मिजाज और अंदाज काफी कुछ उजागर हो जायेगा। त्रिलोचन अपने आस–पास के बिखरे सूत्रो से अंतर्वस्तु को बुनते हैं यह उनके खुली आंखो से निरखने का तरीका है तभी वह कहते हैं–

मैने उनके लिए लिखा है जिन्हें जानता हूं
जीवन के लिए लगाकर अपनी बाजी जूझ रहे हैं
जो फेके टुकडों पर राजी कभी नहीं हो सकते है।
मैं उन्हें मानता हूं आगामी मुनष्यताओं का निर्मात
नये युग के उद्गाता वे है
जो है निपट निरक्षर[2]

जन मे ऐसा परम् विश्वास करने वाला कवि ही ऐसा कह सकता है। आस्था में बडा बल है। त्रिलोचन के कर्ता ने कहा था *मनुष्यता तुझसे नवीन जीवन पायेगी। घोर पराजय में भी गान विजय के गा तू*। यह परिहास नहीं था, सच था, खरा सच। मानवता की विजय के गहरे विश्वास से भरे त्रिलोचन स्वीकार करते हैं कि वे उस जनपद के कवि हैं जो भूखा रहा है, नंगा है, अनजान है, कला नहीं जानता है वह कैसी होती है, क्या है कला ? वह नहीं मानता कि *कविता भी कुछ दे सकती है*। इस जनपद में आधुनिक संसार किसी जादूगर की तरह इसके अनजाने ही इसके जीवन के तमाम पहलुओं और विचारों को निस्सार कर गया है और इस तरह इस जनपद को दुख में डुबो गया है। "लेकिन आधुनिक संसार की कविता का इसमें प्रवेश

---

१. अवधेश प्रधान–जन संस्कृति अंक –१० अप्रैल जून १९८८
२. दिगन्त पृ० २३

नहीं हो सका। उसे आधुनिक कला चेष्टाओं की खबर तक नहीं है। वह अपने दुख और अपनी रामायण में ही इतना रमा हुआ है कि उसे किसी और बात की फुर्सत ही नही है। लेकिन जैसा कि ध्यान से पढने पर हम यह स्पष्ट देख सकते हैं कि यहां ऐसे जनपद के लिए व्यंग्य का भाव नहीं है बल्कि एक पारदर्शी करूणा अवश्य हैं।[1]

लेकिन ऐसा होते हुये भी त्रिलोचन अपने को जन से संबंद्ध कर, उस नंगे–भूखे जनपद से अपने को संबंद्ध करने में गर्व का अनुभव करते है। क्योंकि वह जानते हैं कि इस अराजकता से तभी त्राण है जब इस जन की वास्तवकि मुक्ति होगी। वह समझौता परस्त नही है। आगे तभी वह कहते है–

इस ऊबड़खाबड़ दुनिया से मैं समझौता
नहीं कर सका हूं, यह मेरी कमजोरी है,
समझौता कर पाता तो कुछ न कुछ अगौता
ही कर लेता, पर स्वभावकी जो डोरी है
जाय यह नहीं जाने वाली है, किसी तरह
वैसे मुझे अनुभवी लोगों ने उपाय तो
एक नहीं दो चार बताये, किन्तु गई रह
बात मूल की संचित, अहंकार जो थोथा
है वह मुझको सत्य नहीं है, मानव असली
मुझको प्रिय है,– खड़ा खेत मेहै जो मोदा
मैं उसको उखाड डालूंगा।[2]

मानव का सकट और उससे मुक्ति की वस्तुगत परिकल्पना के विषय मे त्रिलोचन ने अनुभव और विचार से जो निष्कर्ष निकाले हैं वे उनके व्यक्तित्व की सहजता सरलता के साथी है। मुक्ति के विकल्प की इनकी दिशा वस्तुगत है, इसलिए इसकी तस्वीर बहुत साफ है। इसका कारण भी जीवन–क्रम की द्वंद्वात्मक तथा समग्र पहचान है। यह मनुष्य की आकांक्षा और क्रियाशीलता की आवेशमयी रचना है। यह वह संवेदना है जिसे उन्होने कहीं सामान्य सत्य रूप में, और कहीं व्यापारजन्य रूप में कहा है–

कही जाय कोई
दिशा नहीं खोई
जीवन से जीवन की बात कहो (कुछ ढंग का कहो)

---

१. अशोक वाजपेयी (सं.)–कविता का जनपद–उदयन वाजपेयी का आलेख–त्रिलोचन का जनपद पृ० १०६
२. उस जनपद का कवि हूं पृ० ६३

उन्हें अपनी कविता की सामर्थ्य पर पूरा भरोसा हैं इसलिए वे–

करता हूं आक्रमण धर्म के दृढ दुर्गों पर

कवि हू नया मनुष्य मुझे यदि अपनायेगा

उन गानों में अपने विषय गान पायेगा

जिनको मैंने गाया है

" अपनी रचनाओ के प्रति ऐसा आत्म विश्वास कम कवियों में दिखायी पड़ता है। इस आत्मविश्वास का आधार है जीवन के प्रति आस्था। दृष्टिकोण के अंतर से आज कवि और आलोचक अलग–अलग तत्वों को कविता की शक्ति मानते है। लेकिन त्रिलोचन की कविताओं की शक्ति वास्तव में जीवन के प्रति अस्थायी है।"[1] त्रिलोचन सिर्फ कवि नहीं एक संस्कृति का नाम भी है। जिसके पीछे ठेठ भारतीयता और देशी मूल्यो की परम्परा है। यह परम्परा जिस अर्थ मे प्राचीनता का द्योतक है, त्रिलोचन के लिए उसकी अर्थ में आधुनिकता का भी। इसीलिए कुछ लोग त्रिलोचन में परम्परा और आधुनिकता की वह ऊर्जस्वित धारा देखते है, जिसमें जीवन के अवसाद भी हैं, तो उसकी अपरिमित सभावनाओं के सुख भी। थके हारे की पीडा का संसार है, तो आक्रामक आवेगों से भरा संकल्प भी। दीन–हीन होकर टूटे हुए मनुष्य की करूणा है, तो समाज की सड चुकी व्यवस्था को तोड़ने की चेतना भी। यानी त्रिलोचन में सम्पूर्ण भारतीय लोक मानस का रंग रूप और अनुभव है। यह देशी माटी की ताकत है, जिससे वह निर्मित हुए और जिससे उन्होने ताकत ग्रहण की। त्रिलोचन स्वयं ही कहते हैं कि उनमें जीवन की लय जागी है और ये अपनी धरती के अनुरागी है–

मुझमें जीवन की लय जागी

मैं धरती का हूं अनुरागी

जडी भूत करती थी मुझको

वह सम्पूर्ण निराशा त्यागी।

कवि में जीवन की लय का जगना और अपनी मिट्टी के प्रति अनुरागी होना वस्तुतः उसके प्रखर विश्वास का द्योतक है। यह विश्वास ही उसे आपने मार्ग पर दृढ किये हुए है। वह निराशा को त्याग चुका है जो उसे जड़ीभूत करती थी। वह अब प्रतिबद्ध है, तो सिर्फ अपनी मिट्टी के प्रति। क्योंकि यह प्रतिबद्धता ही उसके जीवन की वास्तविकता है, जीवन का दृष्टिकोण है–समग्रतः जीवन दर्शन है। इसी प्रतिबद्धता के कारण कवि स्वयं को कोसने लगत है, जब वह पाता है कि उससे कुछ नहीं हो पा रहा–

पथ पर धूल उड़ा करती है

---

१. खगेन्द्र ठाकुर–कविता का वर्तमान पृ० ११८

वह भी आखिर कुछ करती है

पर मैं मेरे मन, तुम बोलो क्या करता हूं

और नही तो तत्व मुक्त है

वे विराट में प्रभायुक्त है।

मेरे पांचों तत्व लजाओ मैं करता हूं

क्या मेरा जीवन–जीवन है।

हमारे जीवन–दर्शन के प्रति यह नैतिकता, शायद ही कहीं मिल सके। आत्मालोचन और स्वयं को ही कटघरे में शामिल करने की प्रवृत्ति तो अन्यत्र दुर्लभ ही है। यह त्रिलोचन की निजी विशेषता है जिसमें शास्त्रीयता के साथ गद्य का बारीक सयोजन दिखायी देता है। इसे ही मुक्तिबोध, त्रिलोचन के प्रसंग में, प्राच्य क्लासिकल स्ट्रेन और पाश्चात्य प्रोज़–टेक्नीक का समन्वय कहते हैं। मन के आवेगों को शब्दो में बांधते हुए भी, त्रिलोचन का कवि उसे केवल संदेश या उपदेश का विषय नहीं बनाता है, वरन् अपनी आत्मालोचन का, बेबसी का विषय भी बनाता है, जिसमे वह अपने को सफाई से खोल सके, तौल सके और एक बेहतर लक्ष्य की ओर अपने साथ–साथ औरो को भी लगा सके।

इस आत्मालोचन और विनय भाव की परम्परा हिन्दी कविता में बहुत पुरानी है, वह इसका सदर्भ यहां बिल्कुल ताजा तरीन है। एक आधुनिक धरती के कवि के लिए जिसकी मुक्ति समाज की सम्पन्नता है और जिसकी भक्ति धरती के प्रति अनन्यता में है। त्रिलोचन के काव्य में एक अन्य वर्ग उन संवेगात्मक चित्रों तथा दृश्यो का है, जिनका संबंध प्रकृति के संदर्भो से है। त्रिलोचन के काव्य में जहां परम्परा–बोध जातीय रूप को अर्थ देता है, वहीं प्रकृति के प्रति इनका रागात्मक रिश्ता है। प्रकृति प्रेम, आचार्य शुक्ल के अनुसार एक आदिम प्रवृत्ति है। मनोविश्लेषण की भाषा में यह मानव मन का एक ऐसा 'आद्यरूप' है जो उसे जीवनी शक्ति प्रदान करता है। यदि गहराई से देखा जाय तो पूंजीवाद तथा उपभोक्तावाद का जो नया इजारेदारी रूप विकसित हो रहा है, वह हमारी संवेदना को हमारे जीवन ऊर्जा को तथा हमारे जातीय चरित्र को कुंठित कर रहा है। "प्रकृति, परिवार तथा प्रेम की संवेदना क्रमशः हमारे मनस् से दूर हो रही है। इसी से आज की कविता इन क्षेत्रों को नये तरीके से अर्थ दे रही है। यही कारण है कि समकालीन कविता में संवेदना के ये क्षेत्र पुनः रचनात्मक अर्थ कला प्राप्त कर रहे है। इस दृष्टि से त्रिलोचन की अनेक कवितायें महत्वपूर्ण हैं।"[1]

त्रिलोचन का किसान मन प्रकृति में खूब रसता है। उनके यहां प्रकृति, किसान–जीवन के अंग के रूप में है और उससे स्वतंत्र भी। उसका आकर्षक सौन्दर्य है और विस्मयकारी रूप भी। सावन की बरसात का

---

१. डा० वीरेन्द्र सिंह–काव्य संवेदना का आंतरिक पक्ष त्रिलोचन पर सापेक्ष अंक पृ० १७५

संगीत है और भादों का प्रचण्ड मेघ गर्जन भी। प्रकृति से सहज आत्मीयता है और कठिन से सघर्ष भी। प्रकृति से किसान जीवन का ऐसा ही नाता है।

ऋतुओ के बदलने के साथ किसान का जीवन क्रम बदलता है। त्रिलोचन ने विभिन्न ऋतुओं में बदलते किसान–जीवन का चित्रण किया है। उन्हे वर्षा और बसंत विशेष प्रिय है। एक से किसानों को जीवन मिलता है और दूसरे से जीवन्तता मिलती है। उनकी कविता में वर्षा के अनेकरूपो के चित्र है। एक है भादो की रात में यह वर्षा–

" भारी रात भादो की ....पथ................ वह कौंधा
दीप्ति भर उठी आंखों में इतनी, फिर हम तुम,
कुछ भी पकड़ सके न डीठ से, छाया चौथा।
तड तड़ तड़त्त ड्डा ध्राड़ ध्रु ड़् धू हुम्
रिमझिम रिमझिम——— छक् छक् छक् छक्, सर् सर् सर् सर्
चम चम चमक———— धमाके घन के, उत्सव निशिमद।

और इससे एकदम भिन्न वर्षा के सगीत और चित्र इससे है–

आठ पहर की टिप टिप्
सडक भीग गयी है
पेड़ों के पत्ती से बूंदे
गिरती है टप् टप्
हवा सरसराती है
चिडियां पंख समैटे यहां वहां बैठी है[1]

वर्षा के ये दोनों चित्र एक दूसरे से भिन्न है। दोनों में गति और ध्वनि को मूर्त करने वाली शब्द योजना और भाषिक संरचना भी अलग–अलग है। इन चित्रो से साबित होता है कि त्रिलोचन रूप नही गति और ध्वनि के भी चित्रकार है। यह उनकी यथार्थवादी कला एक और नमूना है। त्रिलोचन प्रकृति के रूप और प्रभाव दोनों का ध्यान रखते है। इसलिए उनकी प्रकृति की कविताएं कहीं भी मानवीय संदर्भ से कटी नही है। ऐसी कविताओं में जातीय जीवन के प्राकृतिक परिवेश का उनका बोध प्रकट होता है।

---

१. त्रिलोचन–ताप के ताए हुए दिन

उनके यहां बादलों के ढेर सारे दृश्य है। *उड़ते हैं पारावत जमी हुयी बदली के नीचे–नीचे लगता है जैसे* बादल के छोटे–छोटे टुकडे खग की तरह अपनी चाल दिखाते हैं । उधर आकाश झुका है। भ्रमर कली के ऊपर का लगता है बादल । कवि कल्पना उत्प्रेक्षओं के सहारे उड़ चली–

भरा उजाला छलके

जैसे रिकू छोरों से कलश गगन का ढलाके

घन ये घूंघट से लगते हैं किसी भली के।

इसके साथ कहीं *कपोती बादल हैं*, तो कहीं *सिलेटी रंग* के। कहीं *बूंदा–बांदी* है तो कहीं *फैल फैलकर मूंदा बदली ने नभ नील नयन* को। उधर *तिरे हैं बादल के ऊपर बादल चहुं ओर फिरे हैं नाना रूपों रेखाओं में जैसे खूंदा खूंदी बंधे अश्व करते हैं* या *' सुन्दर फंदा किरणों से निकला,* । कभी–कभी त्रिलोचन आसमान में मेघों के बनते–मिटते चित्रों को तल्लीनता से देखते हैं और कभी कभी उन्हे मन में साधकर शब्दों मे भी उतारते हैं– *संध्या ने मेघो के कितने चित्र बनाये*

हाथी, घोड़ा, पेड, आदमी, जंगल क्या–क्या

नही रच दिया और कभी रंगों से क्रीडा की,

आकृतियां नही बनायी। कभी चलाये झीने

से बादल जिनमे चटकीली लाली उभर

उठी थी, जाते–जाते क्षितिज परी पर

सूरज ने सोना बरसाया। छाया काली

बढने लगी, रंग धीरे–धीरे फिर बदलें,

पेंसिल के रेखा चित्रों से बादल छाये।

बादलों को इतनी प्रकार इतने तरह से त्रिलोचन वर्णित करते हैं कि वे असल में बहुत दूर आकाश की सम्पत्ति न रहकर हम तक तिरती पतंग के मानिन्द हमारी हथेलियों तक आ जाते हैं– संवेदना के इस आशय के साथ कि हम उन्हें महसूस करते हैं।

बादलों के साथ उनके यहां जो धूप खिलती है

वहीं धूप जो मेरे हाथों को बालों को

छू छूकर इतनी गरनाई ला देती हैं

सूरज की खेती है

लहराती है

वही धूप पेड़ों के पत्तों की हरियाली

ओप रही है कितने रंग निखार रही है

रंग रंग के फूलो में उडती चिडियां के

रोयें डैने चमकाती है। जो खुशहाली

चापांयों में है उठकर ललकार रही है

सुस्ती को। [१]

त्रिलोचन के काव्य में प्रकृति दृश्य वैविध्य के साथ तो आये ही हैं, उनमें अनुभूति और विचार की द्वद्वात्मकता भी लक्षित की जा सकती है। उनमें लघु और विराट को एक साथ समायोजित करने की उत्कण्ठा है।

महाकाश का कलश सुनील पारदर्शी है

इसमें अपनी पृथ्वी स्थित है, धूम रहीहै

एक ओर तो प्रखर ज्योति की धार बही है

सूरज की दूसरी ओर तम सुस्पर्शी है

उपस्थिति मे स्थिति जीवन स्वयं रोमहर्षी है–

ऋतुओं में बसंत त्रिलोचन का समप्राण है। "उनके प्रकृति दृश्यों में एक गन्धोन्माद है प्राण वायु के झकोरे है, जगनी की अनंतता हैं ,धारायें अनुकूल प्रतिकूल है। प्रकृति का असीम जैसे विनाश के बडे से बडे आयोजन को चुनौती दे रहा हो। त्रिलोचन के प्रकृति चित्र अक्सर सौदर्य के निर्देशांक हैं। इसमें संचारित मधु का धीर समीर अनेक सुगंध संजोये यदा कदा ऊधमी भी हो चला है । इसमे गुलाब है तो बुल–बुल भी पर ज्योति और अंधकार के झिलमिल झकोरे अतीन्द्रिय है।"[२]

त्रिलोचन की कविताए उनकी आत्मा की बैचेन हरकते हैं, जो अपनी बनावट में पूरी तरह स्वदेशी है। किसानी चेतना से लैस इसे महानगर निगल पाने मे कामयाब नहीं हुए है। त्रिलोचन के काव्यतत्व की मूल चेतना उनके गांव की स्मृति हैं। उनका गांव भूख, गरीबी और फटेहाली और मुफलिसी में पल रहा गाव है। वहां जो लोग हैं, वह उससे भी जर्जर अवस्था में हैं। यानी एक लोक तंत्र अपने .तंत्र का इस्तेमाल कर, लोक के आम आदमी को कैसे बेजार कर सकता है, इसकी पूरी तस्वीर हमारे कस्बे और गांव देते है। त्रिलोचन इस कस्बे और गांव से जुडे है। वह व्यवस्था के अन्याय और तंत्र की गजालतों का नंगा नाच देख रहे हैं। उनकी नैतिकतायें उन्हीं के साथ जुडी है। इसी लिए वह ज्यादा सुकून इस बात में पाते हैं, कि आम आदमी, जिसमें

---

१. त्रिलोचन –शब्द पृ० २६

२. डा. रेवती रमण–कविता का पृ० १२५– १२६

किसान भी है और मजदूर भी – जो प्रभु वर्गों के चोंचलों से दूर अपनी मशक्कत में जी रहा उसके साथ कैसे जीया जाय?

उन लहरों पर हूं जिनके तल में भाषायें
कितनी बैंठ चुकी है, कितनें सुन्दर सपने
बिला चुके है पानी बनकर, सत्य कभी का
असत् हो चुका है।

जिस सत्य का उसके असत् हो जाने पर, जो मंगलकारी हो सकता था उसके अमंगल की हद तक पहुंचने पर ही , स्थितियों के बिला जाने के अलावा और कुछ रह नहीं जाता । त्रिलोचन की कविता यथार्थ के इसी भयावह सच के गैप को भरते है। यह ही उनकी काव्यात्मक नैतिकता का आग़ाज है।

****

अध्याय ४ खण्ड ड०
शमशेर , नागार्जुन व त्रिलोचन के लोकसंवेदना की तुलना

त्रिलोचन उन प्रगतिशीलों में नही हैं, जो वैचारिक झण्डे के जोश में नारा और कविता का फर्क भूलते हैं, या फिर विचार के लिए, अनुभव के लिए अनुशासन को बलाए ताक रखते हों। वे इस धारणा के कायल हैं कि कवि को काव्य – रचना का क्षेत्र चुनते हुए अपने स्वभाव और सामर्थ्य की जांच परख तो कर ही लेनी चाहिए। "कवि केवल रचयिता या सर्जक ही नही होता, संवेदनशील पाठक और जिम्मेदार आस्वादक भी होता है। अपने पुरखो और समकालीनों के कलाकर्म को समझता वह उन पर रीझता है। किन्तु यह सब जितना सहज और श्लाध्य है, उतना ही आवंछित इस अर्थ में है कि उनका ही वह अधानुकरण न करने लग जाए; किन्तु उस ओर उसकी उन्मुखता का कारण सिर्फ व्यक्तिगत रीझा नहीं होनी चाहिए। अगर वह उनमें कुछ जोड सकता है या कलात्मक ताजगी पैदा कर सकता है, तभी उसे यह प्रवृत्ति शोभा देगी । कलाकार को अपनी अभिलाषा का ही नही, अपनी क्षमता का भी ज्ञान होना चाहिए। उन तमाम बातो के साथ वह यह मानते हैं कि हममें प्रदर्शन का तत्व प्राय घातक होता है। कलाकार की महत्ता सादगी की गहराई में निहित है न कि प्रदर्शन के पाखण्ड में। उसका असली धर्म, जीवन के साथ रचनात्मक सहयोग है। कलाकार जिस समाज में रहता है, उस समाज के स्वाद और स्वप्नों से जुडा रहता है। समाज की चिन्ताओं से वाकिफ और उनमें भागीदार की हैसियत से वह भाषा के जरिए अपनी भूमिका निवाहता है।" [1]

'शब्द' और शब्द पर का अन्योन्याश्रित भाव वह जीवन है, जहां प्रत्येक ध्वनि सिर्फ आकार ही ग्रहण नहीं करती। अर्थ की छवियां भी धारण कर लेती है। " त्रिलोचन के काव्य–व्यक्तित्व का रहस्य उनके तुलसी से संबंधित सानेट्स में मिलता हैं। तुलसी उनके आदर्श भी है और प्रतिमान भी। यानि कि तुलसी जैसी जनोन्मुखता और लोक–परायणता तथा उन्हीं जैसी भाषा सिद्धि " *तुलसी बाबा,* भाषा मैने तुमसे सीखी। मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो। *कह सकते थे तुम सब कड़वी,मीठी, तीखी। प्रखर काल की धारा पर तुम थमे हुए हो। और वृक्ष गिर जाए मगर तुम थमे हुए हो।*"[2] तुलसी और त्रिलोचन में जो अंतर झलका है, वे कालांतर के कारण है। देश वही है । और त्रिलोचन के सदर्भो की पहचान भी।[3]

---

१. विजय कुमार बहादुर सिंह – त्रिलोचन का काव्य ससार– निष्कर्ष १ जनवरी १९८३ पृ० ६
२. त्रिलोचन–दिगन्त पृ० ५६
३. विजय बहादुर सिंह–त्रिलोचन का काव्य संसार पृ० ७

त्रिलोचन विषय में ही नहीं, भाषा में भी यथार्थ का अनुसरण करते है। शमशेर के यथार्थ और शमशेर की भाषा का रिश्ता बहुत सीधा और बारीक है। वे बारीक छलनी से अपने यथार्थ को छानते हैं कि वह आटा नही मैदा बन जाता है। उनकी काव्य संरचना उस रासायनिक प्रक्रिया की देन है जिसे आयुर्वेद में शोधन कहते है। त्रिलोचन इस जटिल और कठिन व्यापार वाले पचड़े से हटकर उन शब्दों को वाक्यों को गूंथते हैं जिसकी अहमियत काव्य क्षेत्र से बाहर लोक क्षेत्र में भी बनी रहती है। लेकिन यहीं से त्रिलोचन के काव्य व्यक्त्वि पर 'लेकिनवादी' व्याख्या शुरू हो जाती है। जैसा कि डा. परमानंद श्रीवास्तव ने इस बात को बहुत दिलचस्प तरीके से अपनी पुस्तक 'समकालीन कविता का यथार्थ में उठाया है'। "धरती (१९४६) के कवि त्रिलोचन में कुछ ऐसा जरूर है कि प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा का विश्लेषण करने वाले डा. राम विलास शर्मा जैसे प्रगतिशील आलोचकों को भी उन्हें स्वीकार करने में कठिनाई होती है और अज्ञेय तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी जैसे काव्य चिन्तकों को भी जो कविता के सौन्दर्य संगठन के बारे मे सर्वथा भिन्न रुचि के पोषक या पक्षधर है।"[1] हंस में (जुलाई १९४६) प्रकाशित समीक्षा में मुक्तिबोध ने जरूर लक्ष्य किया था कि जीवन के विस्तृत दायरे के विभिन्न भागों का काव्यात्मक आकलन करने की क्षमता त्रिलोचन में है। मुक्तिबोध ने यह कहना भी जरूरी समझा कि धरती के कवि की प्रगतिशीलता अट्टाहसपूर्ण आंतरिक क्षति पूर्ति के रूप मे नहीं आयी है, वरन् कवि के अपने जीवन संघर्ष से मंजकर घिसकर तैयार हुयी है। बेचैनी और विह्वलता की जगह तटस्थता को कविता का स्वभाव बनाने वाले त्रिलोचन के मूल्यांकन में क्या कठिनाई आ सकती हैं इसका आभास भी मुक्तिबोध को था। " हिन्दी की उत्तेजना प्रिय रुचि को कदाचित यह अच्छा न लगे, परन्तु जरा ध्यान से पढने पर अभिव्यक्ति के पीछे किसी गहराई का अदाजा हो जाताहै। " त्रिलोचन की तटस्थता अज्ञेय की तटस्थता से भिन्न चीज है यह बताने की जरूरत नहीं। इस तटस्थता के पीछे जीवन की हलचल भी है जिसके लिए त्रिलोचन के शब्द है – "भाषा की लहरों में जीवन की हलचल है ध्वनि में क्रिया भरी है और क्रिया में बल हैं"।[2] वे शब्द भर नहीं उठाते, अर्थ भी उठाते हैं। इसलिए उनकी कविता लोकभाषा के ही निकट नहीं, लोकनुभव की भी समीपी है। 'अपना ही दर'[3] में वे लिखते है– मैने शब्दों का महल तैयार कने की जो इच्छा चुनी है, यद्यपि वह ठीक ठीक नहीं, किसी तरह पूरी हुई है, तथापि सबकी बोली–ठोली, लाग लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, भाव, आचरण, इसमें इंगित हैं। विश्व इतिहास के स्वर की धारा, आवारा – गृही, सभ्य – असभ्य, मनुष्य, शहराती और देहाती, सबका अपना घर है उनकी कविता । पण्डित और अपढ, सांस्कृतिक और निपट देहाती, प्रकृति और उसकी विकासमान सत्ता सब उनकी कविता के सहयोगी भी हैं।

---

१. डा. परमानंद श्रीवास्तव – समकालीन कविता का यथार्थ पृ० १०
२. डा परमानंद श्रीवास्तव – समकालीन कविता का यथार्थ पृ० १०
३. सानेट – ताप के ताये हुए दिन पृ० ५१

और घटक भी । वे वस्तुतः उस पूर्ण जीवन की कविता लिखना चाहते है जिसका कोई अर्थ इकलौता नही हुआ करता। मनुष्य की सौन्दर्यसजगता, उसकी विकास प्रियता, परिवर्तनोन्मुखता और सामाजिकता सबको उनकी कविता, अपने दायरे में लेती है और इस रूप मे कोई वाद या सम्प्रदाय वहां नहीं पलता। उनकी कविता उतनी ही खुली व सहज है, जितने कि वे स्वयं हैं। वह उसी प्रकार निसर्ग प्रवाहित है जिस प्रकार कवि का जीवन है। वस्तुतः उनकी कविता आज के मनुष्य की वाजिब माप है। चाहे भाव के क्षण हों या विचार के, वह अपने कथन के स्वाभाविक अदाज को कहीं भी नहीं छोडती। इसलिए हमारे समय की तीव्र कुंठाएं, प्रचण्ड चीत्कारें और दंभपूर्ण जोशीले वादों, गर्वोक्तियों और अहम्मन्यताओं की प्रतिध्वनियां त्रिलोचन की कविता मे नहीं सुनाई देतीं। त्रिलोचन के पास जैसा अगाध पाण्डित्य और प्रभूत सूचनाएं हैं, काव्य और कला के आधुनिक फैशनों और प्रवाहों की विस्तृत जानकारी है, किन्तु वे यहां से भी कुछ न ग्रहण करना ही मुनासिब समझते है।

ठेठ कविता से त्रिलोचन का तात्पर्य उस कविता से है जिससे यह सवाल पूछना बहुत आसान नहीं होता कि वह आधुनिक है या अनाधुनिक, प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावादी। त्रिलोचन आधुनिक जीवन की अनुकरणधर्मिता, कठमुल्लेपन और नयी रूढियो की जहां आलोचना करते हैं, वहीं पारम्परिक जीवन के जीवंत और सक्रिय मूल्यों के प्रति भी अपनी निगाह रखते हैं।

कवि का काम जीवन के मधुमय गानों का तो संचय करना है ही, साथ ही उनके कड़ुवे कसैले, तीखे और चरपरे अनुभवो को भी शब्दबद्ध करना है, जो जीवन को कई दृष्टियों से पूर्णता देते हैं। अगर *'जगदीश जी का कुत्ता'* जैसा सानेट समकालीन जीवन के जहर को प्रकट करता है तो *'रोटी'* जैसे सांनेट उस पारम्परिक ढोंग और शोषण से हमे उदबुद्ध करता है, जो घिनौना और अश्लील है। त्रिलोचन के व्यग्य का तीसरा क्षेत्र साहित्यिक – समाज है, जो समकलीनो, साथी लेखकों और कवियों को अपनी परिधि मे समेटता है। कवि त्रिलोचन खुद भी कही–कहीं इस व्यंग्य की चपेट में है। *'औरों की ही नहीं, हसी मैने अपनी भी खूब उडाई है'*। अनेक व्यंग्य न तो परसाई जितने हिंसक और क्रूर हैं, न नागार्जुन जैसे विडम्बना – धर्मी और दाव पेंच वाले। त्रिलोचन के व्यंग्य झूठ, दश, छल–द्वेष, घृणा के काले यथार्थ को सामने लाने वाले हैं। अपने समकालीन साहित्यिकों की समझ पर भी मीठा बार करने के लिए व्यंग्य का इस्तेमाल करते हैं। व्यंग्य उनके यहां कूटोक्ति भी है और फब्ती भी। सामाजिक विपदा की तीव्र आलोचना भी, और असहमति की मुद्रा भी। 'उस जनपद का कवि हूं' के आाखिरी सांनेटों मे त्रिलोचन ने साहित्यिक व्यंग्यों की रचना की है और उनमें (कवि का उत्साह पृष्ठ ८४ कविता सुनते–सुनते) वह स्वयं ही उनके केन्द्र में हैं।

नागार्जुन लोक जीवन के कवि है। जन कवि हैं । उनकी भाषा बोलचाल की भाष है। इसमें लोक जीवन की शब्दावली बहुत है। गांव के परिवेश की चीजों के नाम उनकी कविता में बहुत मिलेगे। कहीं पेड़ों

के नाम। कहीं मछलियों के नाम। नागार्जुन को अपनी धरती का मोह बार–बार उमडता है। अपने गांव से बिछुडने की पीडा उन्हें सालती रहती है। उनकी कई कविताओं में इस पीडा और इस मोह को अभिव्यक्ति मिली है। *'सिन्दूर–तिलकित भाल'* शीर्षक कविता में नागार्जुन को अपने स्वजनों की स्नेह भरी आखें याद आती हैं, उनका तरउनी गांव याद आता है, मिथिला का वह भूभाग याद आता है जहां कुमुदिनी है, तालमखान है। *'ऋतुसन्धि'* शीर्षक कविता में कवि को अपने गाव की बरसात याद आती है। वाग्मती की धारा और पोखरो के कुमुद पद्म मखान याद आते है। *एक मित्र के पत्र* शीर्षक कविता में कवि याद करत है कि वाग्मती कमला और गण्डक कोसी अंचलों में मकई–महुअ, धान गम्हडी, आदि की बुवाई हो रही होगी। 'बहुत दिनों के बाद' शीर्षक कविता में कवि लिखता है–

बहुत दिनों के बाद

अब की मैं जी भर छू पाया

अपनी गंवई पगडण्डी की चन्दवणी धूल

बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद

अब की मैने जी भर तालमखामा खाया

बहुत दिनों के बाद।

धरती को नागार्जुन ने मां कहा है। भारतीय ऋषियों, कवियों चिन्तकों ने बहुत प्राचीन काल से धरती की मां के रूप में देखा है। वह आधार है। वहीं जन्म देती है, वही पालन कर्ती है। नागार्जुन ने इस धरती को विनाशक वैज्ञानिक अस्त्रों से बचाने की इच्छा व्यक्त की है; युद्धों का विरोध करते हुए वे लिखते हैं–

पौधों या पेडों में कभी नीं फैली हैं छुरियां

कन्द की जड़ से कभी नहीं निकला है

विस्फोटक बम

चर कर घास गाय ने दूध के बदले कुछ नहीं लिया; हलाहल सोख कर धरती का रस जहर नहीं बना। धरती तो सिर्फ देना जानती है इसलिए यह आततताइयों के महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले युद्ध के लिय नही बनी है। इसलिए –

तुम्हारी नहीं, हमारी है धरती

सुनो है व्रजपाणि युद्धव्यसनी दानव

सुनी है अशोभन अमंगल अघायु

तुम्हारा अपावन स्पर्श नहीं चाहती

अहल्या कल्याणी चिरकुमारी धरती

धरती के प्रति यह पूज्य भाव नागार्जुन की कविता को महान बनाता है। नागार्जुन की कविता की शक्ति भारतीय निम्नमध्य वर्गीय जीवन को पूर्ण सहानुभूति के साथ चित्रित करने मे है। नागार्जुन ने राजनीतिक कविताए भी बहुत लिखी हैं, परन्तु ये कविताएं उनकी इस मुकाबले में बहुत सफल कविताएं नही हैं। वे समय–समय पर अपनी राजनीतिक विचारधारा बदलते रहे हैं इसलिए उनकी कविताएं तात्कालीन राजनीतिक समझ से लिखी गयी हैं। इसके उदाहरण में उनकी *'अब तो बंद करो है देवी यह चुनाव का प्रहसन'* शीर्षक कविता तथा 'पहल – ८' मे प्रकाशित कुछ कविताओं को साथ–साथ रखकर पढा जा सकता है। उनकी कुछ और कविताओं को इन्ही के साथ जोड़कर देंखे तो पायेंगे कि उन्होंने कभी छापामारो समर्थन किया, कभी सम्पूर्ण क्राति का। यहा तक की वे 'सम्पूर्ण क्रांति' को ' भ्रान्ति क्रांति' घोषित करते हैं। नागार्जुन ने जहा कहीं राजनीतिक अत्याचार का तानाशाही का या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर युद्धो का विरोध किया है वहां तो उनकी कविताए अपना अर्थ रखती हैं लेकिन जहां नागार्जुन अपनी कविता को कुछ राजनीतिक व्यक्तियों से जोड देते हैं वहां वे राजनीतिक अवसरवाद से ग्रस्त होकर अपना व्यापक अर्थ खो देती हैं। नागार्जुन का व्यक्तित्व एक विवादास्पद व्यक्तित्व रहा है। दरअसल यह अंतर्विरोध नागार्जुन मे है ही। वे कालिदास तुलसीदास और विद्यापति के भी प्रेमी है तथा अपने के कम्युनिस्टों से भी जोडते हैं। रोमैण्टिक कविताएं भी लिखी हैं और नारेबाजी वाली राजनीतिक कविताएं भी। बयान भी बदले है बार–बार उन्होंने । लेकिन इस सन्दर्भ मे एक बात स्पष्ट रहनी चाहिए कि नागार्जुन अपनी कविता में 'दल' के साथ तो नहीं मगर 'जन' के साथ बराबर बधे रहे है। लोक जीवन और लोकमनको जितनी आत्मीयता से नागार्जुन ने व्यक्त किया है, किसी दूसरे आधुनिक हिन्दी कवि ने नही। कारण सिर्फ यह है कि वे स्वयं लोक के विभिन्न स्तरों से गुजरे हुए कवि है। देखा और भोगा है। उन्होंने उन स्थितियों को उस समूचे जीवन और भाषा परिवेश, को देखा है इसलिए उनकी कविता अपने पूरे विन्यास मे छद, लय, तुक हर दृष्टि सें लोकजीवन की सच्ची कविता है। छद, लय, तुक आदि के क्षेत्र में उन्होने अनेक नये प्रयोग भी किये है। वे भारतीय मिट्टी से जुडे जनता के कवि है। उनके पास भाषा की अद्‌भुत शक्ति है। व्यंग्य करने में उनका मुकाबला कम कवि कर सकेंगे। भ्रष्ट व्यवस्था, पाखण्ड शोषण, अंधविश्वास अदि पर तिलमिलाने वाला व्यंग्य नागार्जुन करते है। व्यंग्य की यह शक्ति नागार्जुन में कबीर जैसी ही है। नागार्जुन को जो जीवंत भाषा मिली है वह जनता के बीच से ही मिल सकती है। कबीर को भी इसी तरह मिली थी, निराला को भी, और प्रेमचन्द्र को भी।

शमशेर की समस्या यह है कि उनके शब्द, यथार्थ और अथथार्थ के किसी एक लोक को समर्पित होने या अभिव्यक्ति देने के बजाय, केवल उनके बीच की खाई को अनुभव करते हैं। इस तरह कि वह उनके बीच एक पुल बन जायें। एक ऐसा पुल जो लचीला और जीवंत हो। शमशेर जब शब्द के माध्यम का ऐसा उपयोग

करते हैं तो शब्दों की विशिष्टता पहचान कर ही। एक रचनाकार इस संसार में सामान्यजन से हिलने मिलने और जूझने के बाद ही शब्द की ओर पुनः लौटकर एक सार्थक अर्थ प्रदान करता है। जाहिर है यह मेल मिलाप उनकी अनुभूतियों को जन्म देते है। जाहिर है शमशेर के लिए रचना शब्द विलास मात्र या शब्दों की क्रीडा भूमि नहीं है। वे शब्दों के उस रूपाकार को पहचानते हैं, जिसकी जडें कला के भव्य आलीशान शिखरों तक फैली होने के बावजूद अपने समय और लोक के प्रति कहीं न कहीं से जुडाव महसूस करती हैं ।

'दूसरा सप्तक' में शमशेर बहादुर सिंह के समावेश को डा. नामवर सिंह ने अज्ञेय की भूल सुधार कहा है। निश्चय ही इस टिप्पणी का आधार शमशेर की प्रगतिशील चेतना और सच्चे कलाकार की आत्मा की पहचान कराने वाली उनकी भव्य दृश्य कविताओं की है। छायावादोत्तर हिन्दी कविता के इतिहास में शमशेर का नाम एक खास वजह से चर्चित रहा है। उनकी कविताओं में अलग–अलग मनः स्थितियां रेखाकित है। वे एक ओर प्रयोगशील हैं तो दूसरी ओर प्रगतिशील। जहां सौन्दर्य के उपासक हैं वहां यथार्थ के चितेरे कलाकार भी। शमशेर की रचनाओं मे एन्द्रजालिक सम्मोहन क्षमता, जीवन की सचाई और संघर्ष की खुरदुरी जमीन अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहती। शमशेर जीवन की नीलिमा को शब्दों मे उतार कर उसे उजाले में परिवर्तित करने की कोशिश करते हैं। ऐसा वही कर सकता है जो जिम्मेदारी की भावभूमि पर खडा हो और जिसकी संवेदना का दायरा विस्तृत और बढा हो।

अक्सर उनकी कविताए आंखों के सामने जीती जागती पेटिंग्स के रूप में साकार होने लगती है। इसलिए शमशेर की कविताओं को आसानी से भव्य दृश्य कविताओं की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। मजे की बात है कि शमशेर की रचनाओं में अनायास श्रव्य, भव्य – दृश्य बन जाता है, और दृश्य श्रव्य। हीरे नीलम की विजलियां, हरियाली पानी के स्पष्ट मधुर बोल में डूब जाती हैं और मेघ का गरजना हरियाली में। विभिन्न संवेदन मिलकर रचना की संवेदना मे एक लय हो जाते हैं, भाषा में अर्थ उससे अलग नहीं रह जाता। इसी को कवि ने नाम दिया है– *'राग'* । पानी और आसमान के वे नये–नये रूप प्रस्तुत करते है। *'एक नीला आईना बेठोस'* कविता में चांदनी का वर्णन नहीं है, वरन उसका विशिष्ट अनुभव है, जिसे कवि ने शब्दबद्ध किया है। उसी प्रकार *'ऊषा', 'एक पीली शाम', 'सींग और नाखून';* *'शिला का खून पीती थी'* आदि कविताएं दरअसल अपने आप मे विम्बो का वह अवतरण हैं, जिनमें कविता और चित्रकला आपस में घुलमिल गई हैं।

शमशेर की कविताएं सही मायने में रूप,रस, गंध और स्पर्श के शब्दचित्र है। ये शब्द चित्र कभी रोमानी भावबोध और कभी यथार्थबोध को हमारी आंखों के सामने लाकर खड़ा कर देती हैं। उनकी कविताओं में बिखरे हुए बिम्बों को अगर एकत्र करना शुरू करें तो निश्चय ही उसका अंत नहीं मिलेगा। *' 'एक दरिया उमड़कर पीले गुलाबों को चूमता है,' 'बादलों के झिलमिलाते स्वप्न जैसे कवि के हृदय में रंगे हुए हैं,' 'मौन*

गगन लोक मे बिछल रही है', 'मैं खुले आकाश के मस्तिष्क में हूँ' ऊषा के जल में सूर्य का स्तम्भ हिल रहा ' तथा ' खून जला है हवा मे' जैसे अनेकानेक बिम्ब है। जैसाकि नामवर सिह कविता को शमशेर के घर के रूप मे देखते हुए 'बैल' शीर्षक कविता को याद करते हैं। [1] और *"तभी मुझे शमशेर की वह 'बैल' शीर्षक कविता याद आई: "* मैं वह गुट्टल काली कूबड वाला बैल हूँ। शमशेर और बैल ? और बैल भी ऐसा वैसा नहीं। गुट्टल काली कूबड वाला। हिन्दी में सौदर्योपासकों की कमी नहीं है। उनकी दृष्टि मे शमशेर शुद्ध सौन्दर्य के कवि हैं। उनके सौन्दर्यबोध को कवि की इस छवि से निश्चय ही चोट पहुंचेगी। " कैसा है यह बैल : ठेले पर ऊपर तक लदा हुआ माल खींच कर ले जाते हुए । अकेला। चुपचाप धीरे–धीरे। आंखे बाहर को निकली हुई। त्यौरी चढी हुई। काधे जोर लगाते हुए । राने भरी हुई। गर्म पसीने से लतपथ। मगर जोर लगाती हुई। नथूने फूले हुए। ठेले को लगातार, सारी आंतों और नसों के तनावों से खीचते हुए। और अंत मे अतस से निरुत्तर कर अंदर तक दहला देने वाली आवाज ' बां ...बां....बा..![2] एक आदमी दो पहाड़ों की कुहनियों से ठेलता' तो बहुतो को नजर आया, लेकिन ठेले को लगातार सारी आंतों और नसो से खींचता हुआ बैल' कम लोगों की ही दृष्टि की पकड में आ सका। शायद इसीलिए कि यह कोई 'बिंब' नही बल्कि एक नगा सच है– आखो में चुभता हुआ। उन्हे यह सुनकर हैरानी होगी कि कविता के जिस घर की सदुरता पर वे मुग्ध होते हैं, उसके पीछे इस बैल का ही श्रम है। काव्य रसिक जिसे 'साधना' कहते हैं, शमशेर की नजर मे वह ठेठ श्रम है – बैल का सा श्रम। वह घर भी शब्दों का महल नहीं है। उसमें भी इसी धरती का गारा, चूना, ईट–पत्थर वगैरह लगा है। इसी धरती के नाते शमशेर अपने आपको त्रिलोचन के अत्यत निकट पाते है। 'सारनाथ की एक शाम' (त्रिलोचन के लिए) कविता में एक टुकडा है: *' तू धरती के दोनों ओर से। थामे हुए और । आंख मीचे हुए ऐसे ही रूंध रहा है उसे । जाने कब से। तुझे केवल मैं जनता' हूं उसकी । ऋतुओं की पलकों सा बिछा हुआ मैं। उसकी ऊष्मा में सुलग रहा हूं। शांति के लिए।*

यह धरती किसी की जागीर नहीं, सब के लिए सुलभ है। फिर भी तथ्य यही है कि हर धरती पुत्र कवि इसे नए सिरे से अर्जित करता है। दी हुई धरती से संतोष कर लेने वाले कवि और होंगे। शमशेर को उस धरती की तलाश है जिसे वे खुद अपनी आंख से देख रहे हैं, अपनी अंगुलियों से छूते हैं, अपने नासपुटों से सूंघते है और शायद जिसे उन्होंने अपनी जीभ पर रखकर चखा है। एक–एक कोंपल को वह निरखते हैं । महज इसलिए कि वह धरती की अकूत सम्पत्ति से प्यार करते हैं। इस धरती के लोगों से भी।

---

१. डा० नामवर सिंह जनसत्ता २३ मई १९९३ परिशिष्ट
२. विष्णु चन्द्र शर्मा – पहल।

अध्याय ५

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैचारिक परिप्रेक्ष्य

क : विचारधारा

ख : शमशेर की वैचारिक संवेदना

ग : नागार्जुन की वैचारिक संवेदना

घ : त्रिलोचन की वैचारिक संवेदना

ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के वैचारिक संवेदना की तुलना

अध्याय ५—खण्ड क
विचारधारा :

जीवन तथा जगत के विषय में चिन्तक एवं साहित्यकार जिन सिद्धान्तों को मान्यता देता है, उनकी समष्टि को उनकी आइडियोलॉजी विचारधारा या वैचारिकी कहा जाता है। परन्तु इस सिद्धान्त में समष्टि की अवधारणा और विचारधारा में शक्ति, व्यापकता एवं गम्भीरता का होना आवश्यक है। विचार—इन्द्रियबोध अथवा भावना से भिन्न, भाव पर मानसिक केन्द्रीकरण की परिणति है। 'विचार' इन्द्रियबोध के अतिरिक्त, पदार्थों के समस्त अभिज्ञान को विचार शब्द से किया जाता है। "कभी—कभी इस शब्द को अवधारणा प्रक्रिया के पर्याय रूप में भी प्रयुक्त किया जाता है। इस दृष्टि से इसकी परिधि मे अवधारणा, निर्णय या तर्क की प्रक्रिया आ जाती है"[1]

अरस्तु के अनुसार विचार का अर्थ है प्रस्तुत परिस्थिति मे जो सम्भव हो, संगत उसके प्रतिपादन की क्षमता। उनके शब्दों में—"विचार वहॉ विद्यमान रहता है जहॉ किसी वस्तु का भाव या अभाव सिद्ध किया जाता है या किसी सामान्य सत्य की व्यजंक सूक्ति का आख्यान होता है । विचार का वस्तु क्षेत्र निर्देशित करते हुये अरस्तु ने कहा, विचार के अन्तर्गत ऐसा प्रत्येक प्रभाव आ जाता है जो वाणी द्वारा उत्पन्न हुआ हो। इसके उप विभाग हैं—प्रमाण और प्रतिवाद, करूणा त्रास, कोध की उद्‌बुद्धि, अतिमूल्यन और अवमूल्यन।"[2]

विचार की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुये अरस्तु ने लिखा है—"विचार की आवश्यकता तब पडती है जब किसी वक्तव्य को सिद्ध किया जाता है या सामान्य सत्य का आख्यान किया जाता है।"[3]

विचार पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी विचार हुआ है। शब्द कोष के अनुसार 'विचार' के अनेक अर्थ है:—

१. मन में सोचा हुआ या सोचकर निश्चित किया गया प्रत्यय।

२. मन में उत्पन्न होने वाली बात। लेकिन वुडवर्थ के इस विश्लेषण में सम्भवतः थोडी कमी रह गयी है—क्योंकि मनुष्य न सिर्फ मार्ग ढूंढ़ने या समस्या के समाधान के लिए स्मृति तथ्यों या अनुभवों का उपयोग ही नहीं करता अपितु नये मार्ग ढूँढकर, नये समाधान खोजकर नये अनुभव भी प्राप्त करता है। और इस प्रकार नये विचार भी देता है और पुराने विचारों को आगे बढ़ाता है। अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गये विचार के निम्नलिखित लक्षण इस दृष्टि से अधिक पूर्ण हैं :—

---

१. डा० नगेन्द्र—मानविकी परिभाषा कोष—साहित्य

२. वही पृ० ५१

३. वही पृष्ठ २०

१. समस्या, समाधान, लक्ष्य प्राप्ति या उद्देश्य पूर्ति के लिए किया गया चिन्तन ही वस्तुतः विचार है, अन्यथा वह कल्पना मात्र है। विचार के दो लक्ष्य होते हैं :–(क) नये सत्यों का अनुसंधान, (ख) नयी योजना का आविष्कार। इनमें से नये सत्यों का अनुसंधान किसी सैद्धान्तिक समस्या के समाधान के लिए और नयी योजनाओ का आविष्कार मुख्यतः किसी व्यावहारिक समस्या के हल के लिए होता है।

२. विचार में सदा पूर्व अनुभवो एवं पूर्व उपलब्ध ज्ञान का उपयोग नये रूप में होता है। अतः विचार के लिए पूर्व उपलब्ध अनुभव एवं ज्ञान आवश्यक है।

३. विचार सदा स्थूल से सूक्ष्म की ओर या मूर्त से अमूर्त की ओर गतिशील होता है। वह स्थूल पदार्थों एवं वस्तुओ के सबंध मे स्वय इन वस्तुओं के माध्यम से नहीं, अपितु सूक्ष्म चिन्हों या शब्दों के माध्यम से निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। पर सभी विचार एक से नहीं होते, उनमे स्तर भेद होता है–जो इस प्रकार है:– (क) प्रत्यक्षात्मक विचार– (ख) कल्पनात्मक विचार

(ग) यह सबसे निम्न स्तर का है। इसमे अनुमति एवं कल्पना का अश अत्यन्त कम और प्रत्ययों (कन्सेपट्स) या अवधारणाओं का प्रयोग अधिक होता है। विचार का सर्वोच्च स्तर और उसका शुद्ध रूप अवधारणाओ में ही माना जाता है। वैयक्तिक, वर्गगत, जातिगत और इसी प्रकार की अन्य विभिन्नताओं के होते हुये भी प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे विचार भी हुये हैं, जो सर्वमान्य होती हैं तथा जिन्हे समाज के अधिकांश व्यक्ति सामान्यत. अपनाते हैं। सामाजिक अंतः क्रियाओं के दौरान अथवा व्यक्तिगत चेतना के पारस्परिक प्रभावो के फलस्वरूप उपर्युक्त सामान्य विचार आदि उत्तरोत्तर स्पष्ट होते जाते हैं और सामाजिक जीवन मे जड पकडते जाते हैं। अंततः वे सामाजिक प्रतीको के रूप में विकसित हो जाते हैं।

प्रत्येक समाज के आदर्शो की एक पद्धति होती है और समाज द्वारा मान्य आदर्श, व्यक्ति उसकी सम्पूर्ण सामाजिक पद्धति की कुंजी और उसकी एकता का कारण होता है। आदर्श समाज की वस्तुस्थिति और उसकी उच्चाकांक्षाओं के प्रतीक होते हैं। वे इस समाज के अतीत, वर्तमान और भविष्य के बीच संबंध सूत्र होते हैं। वे समाज को अपने साथ एकात्मकता, गत्यात्मक प्रयत्नशीलता दोनों प्रदान करते हैं पर कभी–कभी आदर्श व्यवहार से बहुत दूर भी हो जाते हैं।

बोगार्डस ने सामाजिक विचारधारा की व्याख्या करते हुए लिखा है –"सामाजिक विचारधारा से तात्पर्य होता है व्यक्तियों द्वारा सामाजिक प्रश्नों पर विचार। इस अर्थ में कर्म या क्रीडा से कोई पार्थक्य ही नहीं था।

अध्ययन से संबंधित अनेक प्रश्न अन्तत· या परोक्षत· सामाजिक प्रश्न हैं। निःसंदेह साहित्य से एक सामाजिक तस्वीर निकाली जा सकती है। उसमें व्यक्त विचारो से तत्कालीन समाज की विचारधारा का पता लगाया जा सकता है। एक सामाजिक अभिलेख के रूप मे प्रयुक्त किये जाने पर साहित्य से सामाजिक विचारों के इतिहास की रूपरेखा प्राप्त की जा सकती है। लेकिन साहित्य को सामाजिक विचारों के अभिलेख के रूप मे प्रयोग करते समय साहित्यकार या कवि की कलाविधि को भी ध्यान में रखना पड़ेगा। क्योंकि साहित्यकार कहीं व्यंग्य करता है कहीं विरोध करता है और कहीं आदर्शीकरण प्रस्तुत करता है। अनेक बार उसके विचार उसके निजी जीवन की परिस्थितियों तथा अपने व्यक्तित्व से प्रभावित होते हैं। कोहन ब्रेमस्टेड ने अपनी पुस्तक 'एरिस्टोक्रेसी एण्ड द मिडिल क्लास इन जर्मनी' में हमें सचेत करते हुए ठीक ही लिखा है कि "वही व्यक्ति जिसे साहित्यिक स्रोतों के अतिरिक्त अन्य स्रोतों से समाज की संरचना का ज्ञान है, वही यह जान सकता है कि क्या और कहां तक सामाजिकता के प्रकार और उनका व्यवहार उपन्यास में पुनः प्रस्तुत किये जा सकते हैं–क्या निजी कल्पना, यथार्थवादी निरीक्षण और लेखक की आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति को एक–दूसरे से पृथक किया जाना चाहिए। यह बात अध्ययन की सावधानी पर निर्भर है।[1] इसी बात को आगे बढाते हुए रवीन्द्रनाथ मुखर्जी का कहना है–"सामाजिक विचारधारा, मानवीय विचारधारा की वह शाखा है जो कि अपनी सामाजिक तथा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर मानवीय अंतःसबंधों तथा अंतःक्रियाओ से विशेष रूप से संबंधित हो।"

मोटे रूप में सामाजिक विचारधारा के दो पक्ष देखने को मिलते हैं :–

१ सैद्धान्तिक पक्ष – जिसके अन्तर्गत सामाजिक विचारधारा का संबंध सामाजिक गठन, सामाजिक नियोजन, सामाजिक प्रगति या सामाजिक जीवन के अन्य किसी पक्ष से होता है।

२. व्यावहारिक पक्ष – जिसके अन्तर्गत सामाजिक विचारधारा का सबंध सामाजिक समस्याओं के निराकरण से होता है।

साहित्यकार या कवि भी स्वयं समाज का सदस्य है, जिसका अपना एक विशेष सामाजिक स्थान है, समाज से ही उसे मान्यता और पुरस्कार प्राप्त होता है और जिस श्रोता वर्ग को चाहे वह कितना ही कल्पित हो, वह सम्बोधित करता है, वह भी सामाजिक है– चाहे वह व्यक्ति हो या समाज। अपनी सृष्टि में भी साहित्य विशेष सामाजिक संस्थाओं से घनिष्ठतः सम्बन्धित रहा है। यहां तक कि आदिम समाज में तो कविता का

---

१. एमोरी.एस. बोगार्डस 'द नेचर सोशल थॉट/डेवलपमेंट आफ सोशल थॉट–पृ० ३

धार्मिक विधियों के स्तर पर भी प्रयोग होता था। साहित्य और उसकी रचना – प्रक्रिया का मानव समाज की हार्दिकता और मानसिकता के स्तर पर जागरूकता से बहुत गहरा सम्बन्ध है। हार्दिकता के द्वारा उन्नत स्तर द्वारा साहित्य को विश्वसनीय बनाने मे एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मार्क्सवादी विचारधारा चूकि मानव समाज की हार्दिकता और मानसिकता पर चाहते–न–चाहते अपना प्रभाव डाल रही है, उसे परिवर्तित करती जा रही है। अतः यदि रचनाकार को जन–मानस या मानव समाज की हार्दिकता और मानसिकता से अपना संवाद बनाये रखना है तो उसे भी लगभग उसी अनुपात से अपनी हार्दिकता और मानसिकता को विकसित करना होगा।वरना निरन्तर जागरूक होते हुए मानव–समाज और अपने मे सीमित रहने वाले आत्ममुग्ध रचनाकार के बीच संवाद–हीनता की स्थिति उत्पन्न हो जायगी । हिन्दी की नई कविता के साथ यही हुआ । वह हमारे परिवेश, और परिप्रेक्ष्य से कट कर चद कवियों और उनके प्रशंसको तक सीमित होकर रह गई । क्योकि अज्ञेय, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती और श्रीकान्त वर्मा आदि रचनाकारों की हार्दिकता तथा मानसिकता और हमारे जन–मानस की बदलती हुई हार्दिकता तथा मानसिकता के बीच की खॅाई चौडी होती गई । लेकिन, दूसरी ओर नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन आदि रचनाकारों की कविताएं हमारे जन–मानस के साथ सीधे सवाद स्थापित कर पाने में सफल रही हैं । जहॉ तक मुक्तिबोध और शमशेर जैसे कवियो का सवाल है, इनकी रचनाएं भी जन–मानस से सीधे संवाद कर पाने में सक्षम हैं । 'अन्धेरे में' और 'अमन का राग' या 'अगोला' जैसी कविताए यदि थोडी–सी व्याख्या के साथ जन–मानस को समझा दी जाएं तो उसके बाद वे जन–मानस से संवाद कायम कर लेंगी। रामचरितमानस की भी व्याख्या कथावाचक लोग सैकडों वर्षो से लोग करते आ रहे हैं तभी जन–मानस और 'रामचरितमानस' के बीच सवाद बना रहा है तो फिर मजदूरों और किसानो तथा अन्य जनों के बीच 'अन्धेरे में'जैसी कविताओं की भी व्याख्या की जा सकती है।जबकि 'हरिजन गाथा' (नागार्जुन) जैसी कविताएं उस व्याख्या की भी अपेक्षा नही रखती। लेकिन अज्ञेय, जगदीश गुप्त या श्रीकांत वर्मा जैसे कवियों की सरल व जटिल रचनाओं को लाख–लाख व्याख्याओं द्वारा भी जन–मानस तक सम्प्रेषित नहीं किया जा सकता । 'असाध्य वीणा' या 'माया दपर्ण' जैसी कविताएं प्रयत्न करने के बाद भी जन–मानस से संवाद स्थापित नहीं कर पायेंगी '। क्योंकि सवाल यहां भाषाई जटिलता का उतना नहीं होता जितना रचनाकारों की हार्दिकता और मानसिकता का स्तर जन–साधारण की हार्दिकता और मानसिकता के स्तर की तुलना में काफी पिछड़ापन लिए होता है । कोई भी रचना अपने युग की विकसित विचारधारा को आत्मसात न कर पाने के कारण अथवा उक्त विचारधारा के प्रति नकारात्मक रवैया अपनाने के कारण कलात्मक उत्कर्ष का प्रतिमान नहीं बन पाती, फिर चाहे वह क्षतिपूर्ति के नाम पर बाग्जाल या चमत्कारपूर्ण कलाबाजी का नमूना भले ही हो जाए । प्रेमचन्द, निराला, मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदार आदि जैसे कलाकार अपने युग की विकसित विचारधारा के प्रति सकारात्मक रवैया अपनाने के ही कारण अपनी

हार्दिकता–मानसिकता और बदलते हुये मानव–समाज की हार्दिकता–मानसिकता के बीच सहज या प्रयास–सिद्ध संवाद स्थापित करने मे सफल हो पाये हैं। एक रचनाकार के लिये यह बहुत बड़ी सार्थकता है। लेकिन इसका आशय यह कदापि नही है कि कोई भी रचनाकार मात्र विचारधारा के बलबूते पर अपनी रचना–प्रक्रिया मे सफल हो सकता है।

केवल विचारधारात्मक तैयारी के आधार पर कलात्मक रचना खडी नही की जा सकती। ऐसे उदाहरण भी हैं कि जहां जीवन–संबध , अनुभव/आब्जर्वेशन सतह के छिदली होने के कारण प्रगतिशील कवि की रचना कमजोर हो गई, हालाकि रचनाकार का विचारधारात्मक बोध काफी विकसित और उन्नत हो सकता है। इसी तरह अभिवयक्ति कौशल सधा न होने के कारण कभी यह भी हो सकता है कि प्रगतिशील रचनाकार अच्छी पारदर्शी नही दे पाये हैं। लेकिन ऐसे उदाहरणो की भी कमी नही हैं जहां जीवन–संबधी , अनुभव/आब्जर्वेशनों के मर्मज्ञ और अभिव्यक्ति कौशल के विशेषज्ञ होते हुये भी अनेकानेक रचनाकार श्रेष्ठ साहित्य की रचना करने मे निर्णायक रूप से असफल है। शायद इसका कारण यही रहा है कि उनका विचारधारात्मक बोध अपने युग और समाज के विकसित, उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारात्मक बोध की तुलना मे पिछ्डा हुआ है अथवा यह भी कि वे अपने युग और समाज की सर्वाधिक विकसित और उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारा के प्रति नकारात्मक रूख अपनाते रहे हैं। हमारे युग की सर्वाधिक विकसित, उन्नत और वैज्ञानिक विचारधारा मार्क्सवाद है। इसके प्रति नकारात्मक रवैया अपनाकर मेहनतकश किन्तु पीडित और अभावग्रस्त जनता की आकाक्षाओ उनके अनुभवो और स्वप्नों की परिकल्पना करना और उनसे सहानुभूति रख पाना लगभग असम्भव हो जाता है। जबकि साहित्य रचना, चाहे वह किसी भी युग मे की गई हो यातनाग्रस्त मानव समुदाय के दुःख दर्दो के प्रति तटस्थ नहीं रह सकती। और वर्तमान युग के साहित्य के लिये गरीबो या पीडितों के प्रति महज सहानुभूति रख पाना ही पर्याप्त नही है।उसे सामाजिक परिवर्तन या सामाजिक क्रान्ति लाने वाला विचारधारात्मक बोध हो। "आज सवाल जनमानस की हार्दिकता और मानसिकता के साथ केवल संवाद स्थापित कर लेने का ही नही है, उसे और आगे तेजी के साथ विकसित और गुणांतरित कर पाने का है। जाहिर है कि यह कार्य बल्कि यू कहें कि यह महाकार्य उन साहित्यकारों के बूते का नही है जो विचारधारा मात्र से परहेज करते हुये अपनी कायरता को तटस्थता नामक तथाकथित 'कलात्मक प्रतिमान' के रूप मे महिमामंडित करते हैं। यह महाकार्य उन रचनाकारों के बस का भी नही है जो पुरानी, दकियानूसी, अविकसित और अवैज्ञानिक विचारधाराओं के हामी है। यह महाकार्य तो केवल वही रचनाकार कर पायेंगे जो अपने जीवन संबंधी गहरे और व्यापक अनुभवों/आब्जर्वेशनों को तथा साधना द्वारा अर्जित अभिव्यक्ति कौशल को शोषण–मुक्त वर्गहीन समाज की स्थापना करने वाले विचारधारात्मक बोध द्वारा पुष्ट और अर्थवान बना सकेंगे।"[1]

---

१. राजकुमार सैनी–विचारधारा और साहित्य–पृ० ८१

****

अध्याय ५—खण्ड ख
शमशेर की वैचारिक संवेदना :

शमशेर बहादुर सिंह की कविताओं मे हम ऐसे एक आधुनिक मानस को देख पाते हैं, जो बौद्धिक और रागात्मक अनुभूतियों से संतुष्ट होकर अपने लिये सुरक्षित संसार की सृष्टि नहीं कर लेता है, बल्कि उसमे विचारशीलता की वह गुनगुनी ऊष्मा है जो राहत देती है—सकून। कविता के लिए इस बेहद कठिन और चुनौती भरे समय में उनकी कविता अपने गहरे मानवीय अर्थ में आज हिन्दी की सम्भवत. सबसे ऐन्द्रिक कविता है । पर यह अद्भुत पारदर्शी ऐन्द्रिकता किसी तरह के सरलीकरण से नही पायी गयी है। २०वी शताब्दी के भयावह वैचारिक टकराव से यह कविता गहरे स्तर पर जुडी है और उसमे वह अपनी पूरी शक्ति के साथ शामिल है । हमारे समय के सच की भयानक अमानवीयकता और जटिलता के बीच वह स्वयं को रेखांकित करती है और इस क्रम मे हमे बहुत जानी पहंचानी वस्तुओ के माध्यम से मानव विरोधी शक्तियो के स्वरूप, उनकी कल्पनाशीलता और साहस का आत्मीय संस्पर्श कराती हैं।

शमशेर की कविता वैचारिक ऊर्जा से संचालित है। यह कविता दुनिया को बनाने का जो सपना देखती है उससे कहीं अधिक सपने की दुनिया बनाने के लिए सक्रिय रहती है। सक्रियता और गतिशीलता का यह गुण शमशेर की तमाम कविताओं में कुछ इस तरह है, जैसे दुनिया में हरे पत्ते का होना । यह देखना खासा दिलचस्प है कि शमशेर की कविताए चुप शान्त नही बैठतीं, उनके विचार और शिल्प दोनों में एक अन्तर्निहित बेचैनी और गति है ।

शमशेर मात्र अनुभूति के नहीं, विचार के भी कवि हैं। उनके यहॉ अनुभूतिपरकता और विचारशीलता, अहसास और समझ, एक दूसरे घुले—मिले हैं और उनकी कविता केवल भावात्मक स्तर पर नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर भी सक्रिय होती है। शमशेर की कविता व्यक्तिवादी नही, वैयक्तिक काव्यानुभूति में पैदा होती है। तीखी राजनीतिक चेतना और गहरे समय बोध से युक्त इस कविता में स्वस्थ सामाजिकता के आयाम के लिए किसी नाटकीय मुद्रा की जरूरत नहीं पडती । स्पष्ट है वह समाज की पीड़ा को समझने वाले कवि हैं। पीड़ा को पहचानने की कोशिश इस प्रकार करते हैं कि उसी वक्त पीड़ा का सामाजिक अर्थ भी प्रकट हो जाय।

शमशेर दुनिया की विभिन्न सस्कृतियों और भाषाओं के बहुत सजग और संवेदनशील पाठक थे लेकिन उनकी धुर आस्था मार्क्सवादी जीवन—दर्शन में लगातार रही । उन्होंने कम्युनिष्ट पार्टी सदस्य की हैसियत से काम भी किया और अलग भी हुये; लेकिन वह यह भी मानते रहे कि उनकी विश्वदृष्टि का आधार मार्क्सवाद ही रहा था। एक पूरी सामाजिक पक्षधरता उनके यहॉ बीज रूप में इसीलिए विद्यमान है। इसीलिए वह पृथ्वी के लिए चिन्तित रहने वाले कवि हैं। इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य के लिए चिन्तित होते हैं। इसीलिए

चिन्तायें उन्हें विकल बनाती हैं। इस विकलता में वे कहीं बहुत अकेले रह जाते हैं। क्योंकि दरअसल यह दुनिया तो व्यवहारिक लोगो द्वारा बसायी गयी दुनिया है। उनके छल हृदय से दूर शमशेर का यह अकेलापन–

"मेरी दुनिया सहज ही इनसे दूर पार कहीं दूर हो गयी है।

वहाँ अभी बस्तियाँ नहीं बसायी गयी।

वहाँ झुलसा देने वाला दिव्य प्रकाश अभी नहीं उजाला गया,

और लोग वहाँ वर्णो के वर्णो के प्रवर्णो में,

सवर्णित घूर्णित नहीं हुये ,अभी–अभी–नहीं हुये।

ऐसी स्थिति में अगर शमशेर जैसा इस धरती और इसको बनाने–और सवारने वाले तमाम मेहनतकश लोगों से बेइंतिहा प्यार करने वाला संवेदनशील कवि खुद पूंजीवादी समाज व्यवस्था में एकदन अकेला महसूस करे तो कोई आश्चर्य नहीं हैं। उनका अकेलापन "अटामिक विस्फोटक' के खतरों से झूलता हुआ पृथ्वी पर एक अर्धसामंती और पूंजीवादी समाज का पूर्ण निषेध करने वाला लेकिन फिर भी उसी समाज व्यवस्था के भीतर जीने पर विवश कलाकार का अकेलापन है। शमशेर और उनकी पृथ्वी दोनों ही इस अर्थ नें अकेलेपन के शिकार हैं। 'हमारी जमीन' शीर्षक कविता में वे कहते हैं .....उफ : कितने असहाय और अकेले......मैं और मेरी जमीन, इस विश्व में।" इस जमीन के किसी 'अटामिक विस्फोटक' से नष्ट हो जाने की कल्पना मात्र से वे दहल जाते हैं और इस आशका से सिहर कर सोचते हैं :–

मैं तो खैर ......

मेरी जमीन भी किया

एक दिन

एक दिन.....

खैर ।

इस कविता मे यह "खैर" बहुत महत्वपूर्ण है। यह एक शब्द मात्र नहीं है। यह शमशेर के समूचे आस्था और विश्वास का प्रतीक है। यह "खैर" उनके जीवन दर्शन से प्राप्त उनका सबसे बडा संबल है, ऐसा मानने का उनका आधार है कि दुनिया को नष्ट करने के तमाम प्रयासों के बावजूद यह दुनिया अपने लोगों और मासूम प्यारे–प्यारे बच्चों के साथ सदा कायम रहेगी। और इस जमीन की गति का हर चक्कर इतिहास के सुदीर्घ पथ पर उसे थोड़ा आगे, कुछ और बेहतरी की तरफ ले जायेगा।[1] इसलिए जब शमशेर कहते हैं... मैंने हमेशा जीवन के शुद्धतर मूल्यों को ही अपनाया, दुनियावी मूल्यों को नहीं, तो वह उस प्रतिबद्धता के प्रति

१. श्याम कश्यप–आलोचना–८१, जनवरी मार्च अप्रैल जून पृ० ५६

प्रतिश्रुत होते हैं। इसीलिए शमशेर बावजूद अपनी आशकाओं और अकेलेपन की असहाय भावनाओं के , कभी पूरी तरह से निराश और पस्त नही होते। इसी कविता की अतिम पंक्तियों में वे कहते हैं कि 'जो नियम है वह नियम है। जो नियम है यह है।' "ऐसे अटूट विश्वास और अटल आस्था वाले लोगो को ही तथाकथित 'समझदार' और अवसरवादी , दुनियादार लोग ऐसों को जुनूनी या 'मूरख' कहते हैं। ऐसे 'मूरख' लोग ही अपनी धरती और उसके लोगों तथा जीवन के समूचे सौन्दर्य से अथाह प्रेम करते हैं और ऐसे मानव–मूल्यो के उत्कट प्रेमी ही उनकी रक्षा के लिए जुझारू संघर्ष भी करते हैं।"[1]

शमशेर अपनी कविता के यथार्थ में जिस छवि के साथ आते हैं, उसमें हम बहुत अपनापा पाते हैं– अपने दुख का तलबगार, अपना हित चिंतक, अपना अग्रज, अपना कोई बहुत गहरा नजदीकी। शमशेर इस नजदीकी को हम पर लुटाते है, कुर्बान करते हैं। अपनी सारी संवेदनाओं के साथ हमारी आत्मा में रचते–बसते हैं–

"जो है

उसे ही क्यों न संजोया?

उसी के क्यों न होना

जो कि है।"

शमशेर की कवितायें विरल कविताएं हैं। ऐसा नही कि अपने निर्माण मे यह खुरदुरे स्थापत्य के कारण विरल हैं या इसलिये कि यह सारी निर्मितियॉ सुगठित नहीं। यह विरल इसलिए हैं क्योंकि इनमें कविता की बारीक, सूक्ष्म अर्थछवियॉ होती हैं – मनुष्य के गड्डमगड्ड दुखों की तरह ; इसलिए कि वे मनुष्य के दुखवाद को प्रखर करने वाली कवितायें हैं–जो गहरी व्यंजना, गहन चिन्तनात्मकता से संयुक्त हैं। "इस स्तर पर वे बिल्कुल अकेले कवि हैं, जिनकी कविता का एक भी शब्द फिजूल नहीं होता और कविता की पंक्तियॉ अपनी अन्विति में होते हुये भी, अर्थो के बहुकोणीय विधान को खोलती हैं। इसमें मेरा यह आशय है कि शमशेर की कविता कहीं–कहीं रुक सी जाती है। इस स्थगन को समझना जटिल होता है और इसके अर्थस्तर तक जाना दुश्वार। यह कविता में ऐसे जरूरी पक्ष का प्रमाण है जिससे दुनिया को जानने की सुविधा होती हैं। और जिसे कविता की आलोचना की भाषा में 'अनिवार्य काठिन्य' कहा जाता है। यह शमशेर की सर्जना और उनके तनाव की तीव्रता के कारण होता है।"[2]

'हवा से एकदम पतली–
कि आर–पार देख लो–किन्तु
इस्पाती दीवार,'

---

१. श्याम कश्यप–शमशेर की कविता–आलोचना जनवरी मार्च–अप्रैल जून ८१/५६
२. ज्योतिष जोशी–शमशेर की कविता का यथार्थ–पल–प्रतिपल जुलाई, दिसम्बर–९३

यह कविता के स्थापत्य का बिल्कुल अछूता रूप है, एकदम नया–जिसमें तराशी हुयी नक्काशी नहीं है फिर भी जहाँ अर्थ की सम्भावनायें हिलोर मारती रहती हैं। इसीलिए शमशेर हिन्दी ही नहीं समूची भारतीय कविता के कृती कवियो में हैं। क्योकि उनके यहाँ कविता जीवन के अनुभवों से–साधी गयी हैं। नामवर सिंह ने ठीक ही लिखा है–"यह कोई चिर परिचित गीत नहीं । गद्य है। बोलचाल की गद्य का लय। रुक–रुक कर बढता हुआ विलम्बित विपर्यस्त। फिर भी कविता।" और यही शमशेर को समझने की शुरूआत है। शमशेर की कविता की कई रंगते हैं और उन रंगतों में गहरी पर्तो के बीच कवि का हूंकार–टंकार है और उसकी निजी वेदनाओं का मार्मिक प्रसार भी। कवि का यथार्थ जीवन का यथार्थ है, समाज का, परिवार का, देश का तथा मनुष्यता का यथार्थ है। कुछ प्रेम, कुछ पीड़ा , कुछ गीत, कुछ गान, कुछ खीज, कुछ आक्रोश और इन सबमे लिप्त शमशेर , ऐसे कि जैसे जिया हो हर पल, हर क्षण को कवि ने :–

" लौट आ ओ धार

टूट मत ओ साँझ के पत्थर

हृदय पर।"

इस तरह जीते हुये वे बेचैन रहते हैं– सत्य को प्राप्त करने के लिये । शायद निजो उपलब्धि मे शमशेर की आत्मीय खोज एक विराट सत्य का साक्षात्कार ही है। शमशेर के लिये सत्य यथार्थ सापेक्ष है, व्यक्ति आपेक्ष और गतिशील है। इसलिये वे जटिल जीवन मे चोट पहुँचाने वाले सत्यों या हाँथों से परिचित हैं। अपनी कृश म्लान देह से, और बाबू लोगों के घुटते हृदय भावों से और निठल्ले युवक की स्फूर्त–मन–ललक से भी, वे परिचित हैं। आज की आर्थिक वास्तविकता का दांव भी वे झेल रहे हैं। इसके बावजूद भी वे आत्मनिष्ठ हैं। एक सुन्दर मौन को उपलब्ध कर , उसे हृदय मे भरकर गाते हैं ; और सरसता का उनका आकाश उनकी खिडकी से कटकर, जिन रूपो में रचता है , वे उन रूपों को प्यार करते हैं। वे अपनी साँसों मे गाते हैं, लेकिन इन साँसो की रक्षा कैसे होती आयी है, इसका उत्तर सिवाय खुद से उदासीन रहने के, और उनके पास नही है। उनमे कहीं छिपा हुआ बहता पानी बोल रहा है, अपने स्पष्ट, मधुर प्रवाहित बोल वही बोल उनकी कविता हैं । अपने सारे आघातों के विरूद्ध अपना कठोर हृदय उन्होंने फंसा दिया है। और उस कठिन हृदय में अनगिनत सूराख हैं। फिर भी वे गाते हैं:–'जहाँ में अब तो कितने रोज, अपना जीना होना है: तुम्हारी चोटें होती हैं– हमारा सीना होता है।'[1] शमशेर के लिए 'सत्य' क्या है इस कवि ने बहुत ही सीधे, पर अर्थगर्भित रूप में अपनी प्रसिद्ध कविता 'बात बोलेगी' में सत्य के बारे में एक जैविक दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है–

---

१. विष्णुचन्द्र शर्मा–अभिन्न–पृ० १४३–१४४

सत्य का रुख

समय का रुख है

अभय जनता को

सत्य ही सुख है

सत्य ही सुख है!

यहॉ पर सत्य 'समय' सापेक्ष है और उसका सम्बन्ध 'जनता' से है। "यहॉ पर सत्य यथार्थ सापेक्ष भी है और जन–सापेक्ष। यदि गहराई से देखा जाय तो कवि यहॉ जनवादी चेतना को एक आयाम देता है। जो नितान्त उसकी निजी दृष्टि है। यही कारण है कि शमशेर के लिए 'सत्य' जनतान्त्रिक मूल्यों से प्राप्त होने वाला तत्व है। वह एक खोज की 'प्रक्रिया है और अपने को गतिशील करने का प्रत्यय'"[१]

अभी सत्य की खोज बाकी ही थी

x x

वह इतिहास की अनुभूतियॉ हैं

मैंने सोवयत यूसुफ के सीने पर कान रखकर सुना।

'अमन का राग' कविता 'सत्य' के एक ऐसे रूप को सामने रखती है जो सृजन प्रक्रिया का भी एक अंग है जिसमें सभी प्रभाव प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं। 'सत्य' एक देशीय न होकर एक सर्ववादी दृष्टि का परिचायक हो जाता है।

शमशेर की कविताओं में प्रगतिशील चेतना, क्रांतिशील चेतना है जो गाधीवाद की प्रगति चेतना से अलग–थलग है। उनकी अनेक कवितायें वामपंथ, मार्क्सवाद, जनवाद तथा मजदूर क्रांति से संबंधित हैं जिसे 'हाशिए' पर कहकर टाला नहीं जा सकता है। विजयदेव नारायण साही ने शमशेर के इस काव्य–पक्ष को कविता के 'हाशिए' पर माना है, जो एक प्रकार से उनकी काव्यानुभूति के बाहर की वस्तु है। वस्तुत. शमशेर के लिए कोई भी विचार–दर्शन(चाहे वह प्रगतिवाद हो या साम्यवाद) मात्र वह नहीं है जो वह मूलतः है। पर तथ्य तो यह है कि जो कुछ भी उनकी सर्जना में है, वह उनकी आवश्यकता है; उनकी काव्य–दृष्टि का अभिन्न अंग है। इस दृष्टि से कोई भी विचार–दर्शन उनके लिए अभिनय नहीं है, उनकी अनुभूति पर आरोपित नहीं है।वह उनके लिए एक वास्तविकता है– उनकी संवेदनात्मक ऊर्जा का स्रोत है इस संदर्भ मे शमशेर की यह युक्ति विचार योग्य है–" जहॉ तक वह (प्रगतिवाद) मेरी निजी उपलब्धि है , वहीं तक मै उन्हे दूसरों के लिये भी मूल्यवान समझता हूँ।" शमशेर का मार्क्सवाद आरम्भ से ही इस 'यहाँ से वहॉ तक' , की सीमा

---

१. विष्णु चन्द्र शर्मा –अभिन्न –पृ० १४३–१४४

मे आबद्ध रहा है, वह कभी भी उन पर हावी नही हुआ है। यह सब इतना प्रच्छन्न और बारीक है कि उनकी व्यक्ति प्रधान कविताएं (क्रान्तिकारियों पर) भी इससे अछूती रही हैं। शमशेर की काव्य–यात्रा (दूसरे सप्तक से बात बोलेगी संग्रह १९८१) तक को यदि गहराई से देखा जाय तो प्रगतिवादी चेतना का क्रमिक विकास उनकी कविताओ में प्राप्त होगा और बात बोलेगी की अधिकांश कवितायें, जिनमें से कुछ कविताये उनके पूर्व प्रकाशित संग्रहों में भी मिलती है, इसी चेतना से अनुप्राणित हैं।

प्रगतिशील चेतना के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है। कुछ आलोचकों का मत है कि शमशेर के रचना संसार में द्वंद्व और संघर्ष का स्वरूप प्राप्त नहीं होता है जो हमे आज की कविता में दृष्टव्य होता है यह बात पूर्णरूप से सत्य नहीं है बात बोलेगी की कुछ कविताओं मे तथा अन्य संग्रहों की कुछ कविताओं में संघर्ष का यथार्थ रूप प्रात होता है पर वह वाह्य नात्र न होकर संवेदना और आंतरिकता के धरातल पर अधिक व्यंजित हुआ है, भाषिक स्तर पर उनकी शैली आक्रामक मुद्रा की नही है, और यही कारण है कि संघर्ष, द्वंद्व और टकराव की जो भी स्थितियां उनके काव्य में प्राप्त होती है, वे परोक्ष और व्यंजनात्मक हैं, साथ ही आंतरिक संवेदना के धरातल पर वह अधिक गतिशील है। इसका प्रमाण उनकी वे पक्तियां हैं जो संघर्ष और विरोध की मनोदशा को एक व्यंजनात्मक रूप प्रदान करती हैं–

शरीर लड़े जा रहा है,लड़े जा रहा है !
हृदय होम हो रहा है
धरती के मनुष्य सा
निरन्तर निरन्तर !!

कवि इस होम होने की प्रक्रिया को अर्थवत्ता उस समय देता है जब इसके द्वारा चतुर्दिक उजाला का विस्तार होता है–

वह नींद
जो मीठी सुबह का
उजाला लाए !
चतुर्दिक
समानरूप
उजाला

'बात बोलेगी' की अनेक कविताओं में यह संघर्ष, विद्रोह और क्रान्ति की अनेक व्यंजनात्मक भगिमाएं प्राप्त होती है, जो जनवादी चेतना को एक ऐसा स्वरूप प्रद्रान करती है जो कवि की रचनात्मकता का एक स्वतंत्र आयाम है ! जिसका हल्का आरम्भ पूर्ववर्ती संग्रहों में यदा–कदा प्राप्त होता है ! कुछ और कविताएं

में वाम कविता और कुछ अन्य कविताए जहॉ एक ओर उन्हें वामपन्थ या साम्यवाद से जोडती है, वहीं वे कविताएं वामपन्थी या साम्यवादी मात्र नहीं है, पर वे उनकी रचनात्मक ऊर्जा का अग है। यह वाम के प्रति उनका आग्रह एकांगी नहीं है क्योकि जनवादी या प्रगतिवादी चेतना के विकास में यह कविता उन्हें एक ऐसी दृष्टि देती है जो बात बोलेगी' की जनवादी, क्रान्तिवादी और प्रगतिवादी कविताओं के भारतीय संदर्भों' को उजागर करती है। पथ प्रदर्शिका मशाल' और 'मुक्ति का धनंजय' जैसे शब्दों के द्वारा कवि वाम–दर्शन को कामगार की मुट्ठी' में केन्द्रित मानता है, और उसे पक्षवादी भी कहता है। यह पूरी कविता कवि के रूझान को सांकेतिक रूप से रखती है और साथ ही, उनकी रचना–दृष्टि को भी सामने लाती है।

शमशेर वस्तुपरकता के मर्म को अभ्यांतरीकृत कर, उसे एक नया सदर्भ देते है *हमारे दिल सुलगते हैं'* नामक कविता मे जो अलजीरियी वीरो को समर्पित है– उसमें कवि की यह पक्ति *जब भूख लगती है तब इंकलाब आता है– और जब हमारे नेता हमें भूल जाते है, और जमाना उन्हें भूल जाता है तब इंकलाब आता है* – जैसी पक्तियो के द्वारा कवि की रचनात्मक दृष्टि' का परिचय प्राप्त होता है। इस संदर्भ में एक म्हत्वपूर्ण कविता कला' की ओर संकेत आवश्यक है, जो कवि की रचना दृष्टि की और साथ ही संघर्ष,संगीत और समाज के सापेक्ष सम्बन्ध को सांकेतिक रूप से व्यजित करती है। कला, मानव की आत्मा का एक बडा सघर्ष और प्रेम की विशालता को नये अर्थ सन्दर्भो में रूपान्तरित करती है। ये नये अर्थ सौन्दर्य आत्मा के संघर्ष से ही जन्म लेते हैं–

कला सबसे बडा सघर्ष बन जाती है–
मनुष्य की आत्मा का
प्रेम का कम्बल कितना विशाल हो जाता है
आकाश जितना
और केपल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जातें हैं
मनुष्य की आत्मा में !
सायास एक धड़कन हो जाती है ज्ञान स्वरूप,
और मनुष्य का समाज एक हो जाता है
संगीत से !"[१]

यदि गहराई से देखा जाय तो कवि की ये पंक्तियों सामाजिक सत्य को संगीत राग तत्व से जोडकर, एक प्रकर से राग तत्व और ज्ञान तत्व को समाज सापेक्ष बनाकर एक सूक्ष्म प्रगति चेतना की ओर

---

१. इतने पास अपने पृ० ४४ – ४५

इशारा करती है। यही कारण है कि शमशेर को मात्र किसी कठघरे' मे बांधा जा सकता है "मेरे विचार से प्रगतिशील चेतना कठघरे की चेतना नहीं है, वह पूरे युग के विचार –दर्शन का, युग के संघर्ष का और युग के राग तत्व का एक ऐसा घोल' है जो रचनात्मक दृष्टि का एक आवश्यक एवं अभिन्न अंग माना जा सकता है। "[1] कवि की प्रगतिशील संवेदना का स्वरूप एक व्यापक परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करता है! वह जनवादी विचार एवम् कर्म से इतना ओत–प्रोत है कि अनेक कविताओं में जन, मजदूर और क्रान्तिकारियों के प्रति उनके उद्‌गार केवल उद्‌गार मात्र नही हैं, पर उनके पीछे उनकी रचनात्मक दृष्टि और विचार दृष्टि' का एक संयोजन एवं समन्वय प्राप्त होता है। आज का कवि उसी समय सही अर्थों में जनवादी या प्रगतिवादी चेतना से युक्त होगा जब वह बुर्जुवा' भावो को काट सकेगा।

काट बुर्जुवा भावों की गुमठी

गाओ !

अति उन्मुक्त नवीन प्राण स्वर कठिन हठी !

कवि हे, उनमें अपना ह्रदय मिलाओ !

इस प्रगतिवादी चेतना को गतिशील करने में जहॉ एक ओर बुर्जुवा मनोभावों से मुक्ति आवश्यक है, वहीं दूसरी ओर फासिस्ट से लोहा लेना आवश्यक हैं। कवि शमशेर की पंक्तियां हैं–

जब जन–जन का सागर

दहाड़ कर उठेगा

करता विचूर्ण फासिस्ट हाड !"

यह फासिस्ट हाड्ड एक ऐसी शक्ति है जो सदैव से जनवादी आन्दोलनों और क्रान्तियो के मार्ग में बाधाएं उपस्थित करता रहा है, पर जनवादी शक्तियों ने इतिहास के पृष्ठों पर सदैव से इसका किसी न किसी रूप में सामना किया है। शहीदों और क्रान्तिकारियों के बलिदान इस जन–चेतना को आंदोलित ही नही करते हैं, बल्कि जूझने की शक्ति भी प्रदान करते है। ऐसी अनेक कवितायें इस संग्रह में प्राप्त होती हैं। उदाहरण के तौर पर कामरेड रूद्रदत्त भारद्वाज और शहीद नागेन्द्र सकलानी की शहादत पर लिखी उनकी कविताएं जनवादी क्रांति–चेतना को स्वर देती हैं। रूद्रदत्त या नागेन्द्र तो केवल माध्यम है, पर ये माध्यम कांति और बलिदान के स्रोत है जिस पर संघर्ष और क्रांति का भवन निर्मित होता है।

एक उदाहरण प्रस्तुत है–

देखता है मौन अक्षयवट

---

१. वीरेन्द्र सिंह –बिंबों से झाकता कवि शमशेर – पृ० ६३

क्रांति का एक वृहद् कुंभ

चमकती असिधार–सी है, धार गंगा की :

हरकराकर उठ रहा

नव

जनमहासागर। [१]

भारतीय राष्ट्रीय संघर्ष में इन अनाम बलिदानो की एक अपनी कहानी है जिसे कवि बार–बार याद करता है क्योंकि यह हमारे स्वतत्रता संग्राम की एक बहुत बड़ी विडम्बना है कि इन क्रांतिकारियों की देन को हम उस दृष्टि से नहीं मूल्यांकित कर रहे हैं, जिस दृष्टि से हम अहिंसक कांग्रेसी देय को – जो नेता' के नाम से पुकारे जा रहे हैं। असल में नेता' शब्द का अवमूल्यन हमारे राष्ट्रीय संघर्ष का फल भी कहा जा सकता है।

यह कहानी

जो अजब इतिहास है संघर्ष का अपने

ओ नौजवान।

तू वहीं कुछ है।[२]

कवि के अनुंसार यह नौजवान' मार्क्सवादी और साम्यवादी युग का एक ऐसा तारा' है जो भविष्यत् लोक युग' का एक सजीव सपना है। कवि की इस प्रकार की कविताएं स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद उन शहीदों और नौजवानों को संबोधित है जो जनवादी या प्रगतिवादी चेतना के अभिन्न अंग है। शमशेर की जनवादी चेतना का एक अन्य पक्ष उनकी उन कविताओं में प्राप्त होता है जो सज्जाद जहीर और काजी नजरूल इस्लाूम के प्रति लिखी गयी है। इन दोनों कविताओ का अपना विशेष महत्व है क्योंकि इसके द्वारा कवि जन–चेतना अंतर्राष्ट्रीय तीसरी दुनिया भी धरातल पर की एक व्यापक तस्वीर पेश करता है कवि का एक अंतर्राष्ट्रीय रूप ले–

अलग अलग भाषाओं के एशियाई–

अफ्रीकी शायरों के

दूर और पास

बिखरे हुए हलके

---

१. बात बोलेगी – पृ० ११
२. बात बोलेगी – पृ० ६६

जैसे इन्कलाबियों की

देश देश की

नई पुरानी

भाषाएं

गलबहियां सी डाले

बढ़ती चली जाएं [1]

इसी चेतना को जो नया अर्थ और संदर्भ कवि ने दिया है, वह एक प्रकार से हमारा नया सम्मिलित अहं ही है जो जनवादी चेतना का एक ऐसा फलक है जो अहं और समष्टि का एकीकृत रूप है। यदि गहराई से देखा जाए तो जिसे हम प्रगति या जनवादी चेतना कहते है, वह इसी सम्मिलित अहं की एक इकाई है जिसकी अर्न्तदृष्टि, मार्क्सवाद, साम्यवाद और वामपंथ के मंथन से ही प्राप्त हो सकी है। इस संदर्भ से एक और महत्वपूर्ण कविता का संकेत आवश्यक है जो नजरूल इस्लाम के निधन पर लिखी गई , और जो कवि की प्रगतिशील एवं विद्रोही–चेतना को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करती है । यह कविता नजरूल इस्लाम की विद्रोही एवं क्रांतिदर्शी चेतना से सबंधित काव्य पंक्तियां हैं जो एक प्रकार से एशिया और तीसरी दुनिया के विद्रोह को रचनात्मक स्तर पर रेखाकित करती है, साथ ही नजरूल के देय को अर्थवत्ता प्रदान करती हैं। कविता का आरंभ नजरूल के उस रूप को प्रकट करता है जो तीन देशों भारत, बांग्ला देश और पाकिस्तान की मानसिक एवं सांस्कृतिक एकता का प्रतीक है–

तीन देशो की विप्लवी

एकता में

कहीं चित्त बसाएं

हमारे लिये तीन

जो तुम्हारे लियें एक

नजरूल की कविता एक उद्देशीय नहीं है, वह अन्तर्देशीय है क्योंकि उसमें कास्मिक विद्रोह की प्राण शक्ति है–

जाने क्या अवलोकन करते

कौन सी–कविता लिखते,

किस नए कास्मिक विद्रोह और

---

१. बात बोलेगी –पृ० १०५

निर्माण की।

यह विद्रोह और क्राति की चेतना, तीसरी दुनिया को भी जगा चुकी है। अफ्रीका, चीन, वियतनाम और अरब दुनिया की जागृत चेतना मानव इतिहास में व्याप्त हो चुकी है और *"हम अपनी सांस में इन सबको जीते है"* और उनसे प्रेरणा ग्रहण करते हैं। कवि को लगता है कि अपने *"सुदूर विद्रोह अवचेतन में, कौन से महाकाव्य की मूक रचना करते रहे, नजरूल"* जैसी पक्तियों के द्वारा धरती की चेतना' को उर्वर बनाने का आवाहन कवि की आंतरिक आकांक्षा है। इस विद्रोही और क्रान्तिदर्शी चेतना को कवि ने पूरी कविता में अन्तर्भूत कर दिया है और सुर्ख गुलाब के बिम्ब के द्वारा उसकी गतिशीलता को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

देशों देशों के

अक्षांशों को

अपनी सुंगंध से मस्त बनाए हुए

सुर्ख गुलाबों के शिशु–मुख

उल्लास से तमतमाए हुए

ऊर्जाओं की

हारमनी से सगीतमय

मानो

अपने नृत्य–दोल से

प्यारी मासूम

धरती को

उद्वेलित किए हुए

दूर तक गुलाबों का

एक ओर छोरहीन दरिया।

यदि गहराई से देखा जाय तो सूर्ख गलाब का छोरहीन दरिया क्रांति–चेतना की अर्न्तभूत धारा की गतिशीलता को व्यंजित करता है, जो इतिहास की द्वन्द्वात्मकता मे साकार होता है। शमशेर ने इतिहास की इसी गत्यात्मकता को पकड़ने का प्रयत्न अपनी इस लम्बी और अर्थपूर्ण कविता में किया है। इस गतिशीलता में नज़रूल एक प्रतीक है और उसकी बात जहॉ से भी शुरू होगी, वह *'शोनार, और शोणित'* से शुरू होगी जो *प्राणों का अमर विद्रोह '* और विश्वशांति के अमर समायोजक का प्रतिरूप है। हमारी सांस और उसकी सांस एक निरन्तर और नित्य प्रक्रिया है, क्योकि–

उसकी सांस

हमारी सांस में

इतिहास बनती हुयी

चल रही है।

वस्तुतः शमशेर, कवि के लिए, वस्तु–सत्य की अर्थपूर्णता तभी सिद्ध हुयी मानते हैं, जब वह उसकी अपने अंदर की संज्ञा या चेतना की पकड में आकर निजी, संवेदना का अंग बने सके। मुक्तिबोध के शब्दों में इसी को वाह्य का आभ्यंतरीकरण कह सकते है। शमशेर का प्रगतिवाद मात्र इतने से संतुष्ट नही ताकि यथार्थ के नाम पर वस्तु–सत्य को अभिव्यक्त भर कर दिया जाये। ऐसा प्रगतिवाद तो एक सामान्य ढाचा मात्र बनकर रह जाता है , जिसमें कविता ढाली तो जा सकती है लेकिन रची नहीं जा सकती। एक सच्ची कविता रची जाती है, तब, जब इधर–उधर तैर रहे अनुभवकण छवि की अनुभूति मे थिराते हैं, स्थिर होते हैं। इस स्थिरता की गति के विरोध में रखकर देखने के अभ्यस्त चिंतको को शमशेर के प्रगतिवाद में किसी किस्म का विरोधाभास नजर आये जो आता रहे।"[1]

---

१. डा० राजेन्द्र कुमार –शमशेर बनाम प्रगतिवाद–कल के लिए' – मार्च १९९४–पृ०–४०

****

अभ्यास–५–खण्ड –ग
नागार्जुन की वैचारिक संवेदना :

हिन्दी के आधुनिक कवियो में नागार्जुन ने ही कदाचित सबसे ज्यादा राजनीतिक कविताएँ लिखी हैं– ऐसी राजनीतिक कविताएँ, जो अपने समय के जनान्दोलनों का अनुसरण करती है। मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित इस कवि की काव्य–चेतना राजनीति के आंलिक स्वरूप को जिस सफाई से आत्मसात करती है , उसी सफाई से उसके विश्व–परिदृश्य को भी समझा जाता है कि एक कवि के लिए वास्तविक राजनीतिक कविता लिखना क्रान्तिकारी जीवन जीने से ज्यादा कठिन कर्म है। नागार्जुन को हिन्दी का सबसे बड़ा राजनीतिक कवि माना जाता है तो इसलिए कि वे कवि के साथ–साथ एक समझदार राजनीतिज्ञ भी हैं। उन्होंने पहले के कवियों के जीवनानुभवों से लाभ उठाया है और प्रायः हर तरह की कविजनोचित भावुकता से बने हैं। उन्हें जैसी सर्वमान्य प्रतिष्ठा मिली है,वैसी जीवन–काल में अन्य कवियों को नही मिली। पिछले पॉच–छह दशको से लगातार नागार्जुन की कविता का दबाव महसूस किया गया है अर्थात इस बीच हिन्दी कविता के परिदृश्य में उन्हें कभी नेपथ्य–गमन करते नहीं देखा गया।

समकालीन काव्य–परिदृश्य के भी केन्द्र मे उनकी प्रतिष्ठा का कारण है– क्रान्ति–प्रक्रिया से उनका सतत जुडे रहना। नागार्जुन घूम–घूमकर जन–आन्दोलनों के छोटे–बडे स्वरूप की खबर लेते रहते है और कई बार खुद भी इसमें सक्रिय हो जाते है पर जब कभी मोह भंग हो जाता है, तो वे अलग प्रवाह में बहते दिखाई पडते हैं। इससे उनकी क्रान्तिकारी सक्रियता किसी दलगत राजनीति की संकीर्णता से विलग, हमेशा ही मुक्त और ताजा बनी रहती है।

एक सच्चे क्रान्तिकारी कवि की पहचान यह होती है कि यथास्थित को जीवन और कविता दोनों में ह समान रूप से तोडता है। उसके पास उज्ज्वल मानवता के, बेहतर भविष्य के सपने होते है; और जनीतिक–सांस्कृतिक पराधीनता से मुक्ति की संभावना उसकी कविता में हमेशा ही जीवन्त बनी रहती है। गार्जुन की एक अत्यन्त कविता है– नदियॉ बदला ले ही लेंगी। इसमें एक जगह वे लिखते है–

होली में भूमिहीन की किस्मत का भुट्टा सिंकता है

खेतों में बन्दूकें उगती टके सेर तो बम बिकता है

कान्ति दूर है, सच–सच बतला, बुद्ध तुझको क्या दिखता है?

आ,तेरे को सैर करा दूँ ए घर में घुसके क्या लिखता है ?"

(इस गुब्बारे की छाया में)

क्रान्ति दूर है या निकट –यह कोई खास बात नहीं है। खात बात है इस कविता में जनकवि की क्रान्ति मे आस्था। नागार्जुन घर में घुसकर लिखने वाले कवि नही हैं। उन्होंने समूचे देश में घूम–घूमकर कविताएँ लिखी है। इसीलिए उनकी जनचेतना किताबी मार्क्सवाद के लिए कई बार विभ्रम पैदा करती है। जनसाधारण का जैसा उग्र शोषण हमारे जनकवि ने देखा है, उसमे वर्ग–घृणा उनके लिए अत्यंत स्वाभाविक है। हिंसा एक कविता का शीर्षक ही है– प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव हैं।

नफरत की अपनी भट्टी में

तुम्हें गलाने की कोशिश ही

मेरे अन्दर बार–बार ताकत भरती है

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है अपने ऋषि का

नव दुर्वासा, शबर–पुत्र मैं, शबर–पितामह

सभी रसों को गला–गलाकर अभिनव द्रव तैयार करूँगा

महासिद्ध मैं, मैं नागार्जुन

अष्टधातुओं के चूरे की छाई से, मैं फूँक भरूँगा'

x x x x

"हिंसा मुझसे थर्रायेगी

प्रतिहिंसा ही स्थायी भाव है मेरे कवि का

जन–जन में जो उर्जा भर दे, उद्गाता हूँ उस रवि का"

हिंसा के विरोध में प्रबल प्रतिहिंसा का स्वर नागार्जुन के काव्य की ऐसी विशेषता है जो अन्य कवियों में, इस रूप में नहीं मिलती। इसका सबसे बड़ा कारण है, जिन शोषितों के पक्ष मे नागार्जुन की कविता डटकर खडी जान पडती हैं, स्वयं कवि भी उन्हीं में से एक है। 'एक मित्र को पत्र' कविता में नागार्जुन लिखते है–

घरा है पट, सिन्धु है मसि पात्र

तुच्छ से भी तुच्छ

जन की जीवनी पर हम लिखा करते

कहानी, काव्य, रूपक, गीत

क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम

थक हम पर सीधे पड़ी है गरीबी की मार

सुविधा –प्राप्त लोगों ने सदा

समझा हमें भू–भार''[1]

सुविधा–प्राप्त, जो स्वयं भू–भाग है–उल्टे जन साधारण को भू–भाग समझते है। नागार्जुन की जनसम्बद्धता का रहस्य उनकी दरिद्रता मे ढूँढा जा सकता है । उन्होने बडी स्पष्टता से, दो टूक शब्दो में स्वीकर किया –

बन्धु, मेरे पास भी

यदि बाप दादों की उपार्जित भूमि होती

धान होता बखारों में

आम–कटहल–लीचियों के बाग होते

पोखरा होता मछलियों से भरा

फिर क्या न मैं भी

याद कर प्रथमा, द्वितीया या तृतीया प्रियसी को

सात छेंदों की दुपहली बॅासुरी से फूॅक भरता

वैष्णवों की विरहणी वृषभानुजा के नाम पर ही सही

फिर भी फूॅक भरता।''[2]

हिन्दी भाषी जनता के प्यारे कवि नागार्जुन अत्यत दरिद्र परिवार जन्मे, अर्थाभाव में जिये, पर कवित्व की नैसर्गिक प्रतिभा ने शुरू से ही उन्हें शोषण के विरूद्व सक्रिय रखा। नागार्जुन दलितों के बंधु, सखा बनकर प्रगतिशील जीवन दृष्टि के विकास में लगे रहे। अतः उनकी पक्षधरता एक तरह से स्वयं की पक्षधरता है, अपने जैसों की पक्षधरता है। पक्षधर शीर्षक कविता में नाग्रार्जुन लिखते हैं –

इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत

कलाधर या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है

पक्षधर की भूमिका धारण करो।''[3]

वास्तव् में प्रगतिशील काव्यान्दोलन की निजी उपलब्धि–पक्षधर की भूमिका है। इसके पहले कलाधर या रचयिता होना पर्याप्त माना जाता था। पहले विजयिनी जनवाहिनी की अवसाधारणा स्पष्ट नहीं थी। नागार्जुन ने सबसे पहले हिन्दी कविता में इसे स्पष्ट किया। उन्हे जनकवि कहने का वास्तविक कारण उनकी

१. चुनी हुई कविताएँ–भाग–२–पृ० ६७
२. चुनी हुई रचनायें–पृ० ६७
३. चुनी हुई रचनायें–पृ० ८०

कविता का सुस्पष्ट जनाधार है यह सबको समझ में आने कविता है मध्य वर्गीय तमाम अर्न्तविरोधों से मुक्त होकर ही नागार्जुन कविता को नया जीवन दे सके है।"[1]

नागार्जुन की कविता में शोषित, पीडित, अभावग्रस्त मामूली जन का स्पष्ट चित्रॉकन हुआ है। साधारण जनता के इस कवि की यह भूमिका अत्याचार, अन्याय, असंवेदनशीलता के विरूद्ध है। नागार्जुन की दुनिया ग्रामीण सच्चे भोले–भाले, दॉवपेच से मुक्त निश्छल लोगों की दुनिया है जिसमें उनके अधूरे सपने है, अभाव, दुःख और संघर्ष है, और है शोषकों द्वारा उनके श्रम की शोषण की पराकाष्ठा। वह जानते है कि भूख की तडफडाहट क्या होती है–

ऑत की मरोड़ छुड़ा न पायीं

बरगद की फलियॉ

खड़ा है नई पौध

पीपल के नीचे खाद की खोज में

देख रहा उपर

कि फलियॉ गिरेगीं

पेट भरेगा

और फिर जाकर

सो रहेगा चुपचाप झोपड़ें के अन्दर

भूखीं मॉ के पेट से सटकर।"

स्पष्ट है नागार्जुन की कविता कृषको, दलितो शोषितों के सपनों और उनकी वस्तुस्थिति को शब्दबद्ध करने वाली कविता है। सामाजिक विषमता मनुष्य और मनुष्य में भेद –इन सबके प्रति कवि की कविताओ मे तीखा अक्रोश भाव है। समाज में हुई गहरी खाई के लिए यह कवि सामाजिक व्यवस्था को दोषी ठहराता है इसीलिए वह कहता है–*जनता मुझसे पूँछ रही है क्या बतलाऊ ? "मैं साफ कहूँगा क्यों हकलाऊ"*। नागार्जुन यह इसलिए कह सके क्योंकि वह व्यवस्था के पोषकों में नहीं है। उन्होंने जो महसूस किया वह कहा, इसलिए कविता की सपनीली दुनिया उनके यहॉ नहीं है । वह चट्टानी यथार्थ ने हमें दो –चार कराते है। और इस रूप में अनुभव के उस संवेदना से रूबरू कराते है जो जीवन के दुःखों के बारे में हमें बता सके। अपनी कविताओं में वह चुनौती प्रस्तुत करते है –

"हॉ बाबू ,निष्ठापूर्वक मैं शपथ आज लेता हूँ

---

१. डा० रेवती रमण–कविता का समकाल–पृ० –८३

हिटलर के ये पुत्र–पौत्र जब तक निर्मूल न होंगे

तब तक मैं इनके खिलाफ लिखता जाउँगा

लौह लेखनी कभी विराम न लेगी।''

स्वाभावतः यह उनकी क्रान्तिकारी चेतना का सकारात्मक पक्ष है– नागार्जुन की वाणी में हकलाहट कभी नहीं थी । अन्तर केवल यह आया है कि उन्होने अपने रोष और जनता की स्थिति को संगत ढंग से समझा है । इसीलिए वे अपने रोष का काव्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करके जन–जन में उर्जा भर देने के लिए उद्यत हुये हैं।''[1]

नागार्जुन जनचेतना के कवि है। अपनी जड़ों से कटे लोगों की जीवन–पद्धति इस कवि के संस्कारों के विपरीत है । मनुष्य की नियति को संचालित करने वाली राजनीति नागार्जुन की कविताओं की रीढ़ है। अपने समय में होने वाली राजनीतिक हलचलों और युग के सच को कवि की कविताओं में देखा जा सकता है। इमरजेंसी के समय में भी बड़ी निर्भीकता से उस समय की भयावह आतंकग्रस्त स्थिति को इस कवि ने शब्दबद्ध किया है –

जी हॉ, सत्य को लकवा मार गया है

उसे इमरजेंसी का शॉक लगा है

लगात है, अब वह किसी काम का न रहा

जी हॉ, सत्य अब पड़ा रहेगा

लोथ की तरह, स्पंदन शून्य मांसल देह की तरह ।''

स्वतंत्रता के बाद की जनता के संघर्ष को इस कवि की राजनीतिक चेतना से युक्त कविताओं में लक्षित किया जा सकता है। नागार्जुन का राजनैतिक दृष्टिकोण बिल्कुल स्पष्ट है कवि की पक्षधरता उस विशाल जन–समुदाय के साथ है, जो आबादी के कई वर्ष बीत जाने के बाद भूखे, नंगे, बेघर, शोषित, पीड़ित, विवश लोगों का है। नागार्जुन की कविता की मूल ताकत जनशक्ति में निहित है। जनता भूखी, नंगी, पीड़ित तो है लेकिन डरी हुई, हतोत्साहित नहीं। यह जनता जागरूक है । अपने छीने गये अधिकारों के लिए यह कान्ति करने की इच्छुक है। कवि की संवेदना का क्षितिज अपने देश की सीमा तक सीमित नहीं है। दुनिया के किसी भी कोने में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करती हुई जनता को यह कवि अपनी सहानुभूति से, शक्ति प्रदान करता है। चाहे वियतनामी जनता का मुक्ति–युद्ध हो, या नेपाली जनता का संघर्ष या नीग्रो–संघर्ष–सबके साथ कवि अपने को खड़ा करता है । क्रान्ति की लड़ाई में अपने महत्वपूर्ण योगदान देने

---

१. अजय तिवारी–नागार्जुन की कविता–पृ० ४८–४६

वाले इस कवि का सृजन, जीवन के अपने अनुभवों पर आधृत है । कवि ने बिहार के किसानों के संघर्ष की लड़ाई लडी है, जेल भी गया है, मीसा की मार भी झेली है। नागार्जुन मानते है कि जब देश में दो प्रतिशत लोग भी सुखी नहीं है तो वह शांति पर कविता कैसे लिखे ?

मैं दरिद्र हूँ। पुश्त –पुश्त की यह दरिद्रता
कटहल के छिलके जैसी जीभ से
मेरा लहू चाटती आई
मैं न अकेला
मुझ जैसे तो लाख–लाख है, कोटि–कोटि है
सभी दुःखी है । दो प्रतिशत लोग भी सुखी नहीं है
कैसे लिखूँ शान्ति पर कविता ?

नागार्जुन की ऑखों ने कभी भी वह नहीं देखा जिसे शास्त्रों के प्रेताचार्यो ने दिखाना चाहा। उनकी कविता लोकरीतियों और कुप्रथाओं के चालू रंग–ढंग से बचतो –बचाती वह उन ठिकानो तक पहुँचती रही, जहॉ उकस–मुकस, बेचैनी, अस्त व्यवस्तता और हलचल थी। उनमें कुछ ऐसा घटता रहता था जिससे अति संभ्रान्त और कथित तौर पर मर्यादित जीवन की मक्कारियॉ उधड़ सकती थीं । वे अक्सर ऐसे असुरक्षित और खतरनाक इलाकों में पहुँच अपनी टुनटुनिया डुगडुगी और करताल बजाने लगतीं। अपनी खुरपी, हॅसिया और गडॉसा तेज करने लगतीं। जिन्दगी भर जिसकी आदत मोर्चे पर डटकर मरने–मारने की रही हो, वह क्या कोई ऐसा घोडा होगा जिसे सचमुच नीलाम किया जा सकता है।"[1]

यह वह आदमी है जिसे कोइ तंत्र खरीद नहीं सकता, कोई मोह बेच नहीं सकता । जिसकी कलम की नोक पर उसकी मर्जी के बगैर मक्खी नहीं बैठ सकती। अपनी अलग धूनी रमाये, अपना अलग चिमटा फटकारता । पार्टी बॉसेज को ललकारता और अपने समय के राजनीतिक दिग्गजों की ऐसी–तैसी करता *ओ अष्टधातुओं के ईंटों के भट्ठों। ओ महामनि महामहो ,उल्लू के पट्ठों।* इसके पास क्रोध का एक ऐसा स्पृहणीय रूप है जिसकी कामना कोई भी अन्याय पीड़ित, किन्तु सचेत और जाग्रत समाज हमेशा करता आया है। आखिर आचार्य शुक्ल ने कुछ सोच समझकर कहा होगा–क्रोध एक सामाजिक सम्पत्ति है। नागार्जुन इसके महासागर थे। अपने को अगर वे नव–दुर्वासा कहते रहे तो शायद इसीलिए।"[2]

---

१. विजय बहादुर सिंह–कथा, अंक–१०, फरवरी २०००–पृ० ६
२. विजय बहादुर सिंह–कथा, अंक–१०, फरवरी २०००–पृ० ६

नागार्जुन असिद्ध प्रतिपक्षी रहे विरोध इसी वजह से उनकी कविता की मुख्य भाव भूमि बना। प्रतिपक्षी की भूमिका निभाते हुए, वह उन लोगों का लगातार विरोध करते है जो व्यवस्था के पोषक, सत्ता के दलाल और चिकनी–चुपडी खाने वाले हैं। लेकिन नागार्जुन के अन्दर का कवि उनको भी नहीं छोंडती जो तथाकथित बुद्धिजीवी सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं। ऐसे लोगों के लिए जिनके मन में अपनी जनता के लिए कोई प्यार न हो उनके लिए नागार्जुन की कविता की सदाशयता प्राप्त नहीं हो सकती । तो फिर क्या हुआ शीर्षक कविता में वे ऐसे ही बुद्धिजीवियों पर व्यंग करते है। कवि शीर्षक कविता में नागार्जुन उन कवियो पर व्यंग करते है जिनका गला मीठा है, जो रेडियो के लिए गीत लिखते है, एजरा पाउण्ड और इलियट पढते है और बाकी सबको ईडियट समझते है । इसीलिए दोस्त और दुश्मन का विवेक गवाएँ बिना, मन में बनाएँ बिना नागार्जुन ने तीखी राजनैतिक कविताए रचीं। दुर्भाग्य से नागार्जुन के राजनीतिक विचारों की छानबीन के जितने ही प्रयास इधर आये हैं उनमें या तो उनकी राजनीति को लेकर प्रतिक्रियावादी खेमा चुप रहता है या उनके भटकाव को ही उनकी महत्ता घोषित करता है। लेकिन यह दोनों ही प्रकार के विचार नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं के संदर्भ में एक भ्रम की स्थिति ही पैदा करते है। इतिहास गवाह है कि रचना वहीं कालजयी होती है जो इतिहास प्रक्रिया में जीवित रहती है। कालजयी होनी की पहली शर्त यह है कि वह कालजीवी भी हो जो लोग केवल शाश्वत विषयों पर केवल शाश्वत कविताएँ लिखकर बडे होने का भ्रम पालते है`किन समाज की इतिहास प्रक्रिया से कटे होते हैं। उन्हें इतिहास भी अपने कूडे दान में डाल देता है । नागार्जुन इसी अर्थ मे बडे है क्योंकि उनकी कविता का ऐतिहासिक प्रक्रिया से गहरा रिश्ता है। लेकिन वे अतीतजीवी और अतीत मोह की कविताएँ नहीं हैं बल्कि समाज के द्वन्द्वात्मक विकास की कडी के रूप में अपनी अभिव्यक्ति के द्वारा यह समाज्र की पडताल करती हैं।

मनुष्य की केन्द्रीय स्थिति के बारे मे वह चिंतित होते है। साम्राज्यवादी, बाजारवादी वृत्तियो की सडांध को सारे चौराहे दिखाते है और वह यह इसलिए कर पाते है क्योकि वह आयातित इतिहास को नही जन इतिहास को पकडते है। उनकी पक्षधरता इसी इतिहास बोध से निर्मित होती है चह प्रतिबद्ध होते है तो सिर्फ जन के लिए । इसीलिए समाज की कुचालक प्रवृत्तियो के गंदे षड़यंत्र को बेनकाब कर पाते है । जीवनधर्मी अहसास से युक्त उनकी कविता जीवन से लगाव को अपनी पहली काव्यात्मक शर्त बनाती है। इसीलिए नागार्जुन साफ–साफ देख पाते है कि कौन किस मे खड़ा है, किसकी राजनीति किसके साथ है और शायद थोड़ा भी प्रतिक्रियावादी मिले उसकी खिचाई भी वे उसी भदेसपन के साथ करते हैं।

निश्चय ही किसी कवि का यह अडिग विश्वास जनता के साथ उनके अविच्छेद्य संबंध पर निर्भर है। नागार्जुन की कविताओ मे अगर हमे जनता की भावनाओं–आकांक्षाओं का सुंसबद्ध इतिहास देखने को मिलता है तो इससे पता चलता है कि यात्री नागार्जुन अपनी तमाम यायावरी के बावजूद अपने विशाल पाठकवर्ग से

असंपृक्त नही बल्कि संवेदनात्मक रूप मे दृढ़तापूर्वक संपृक्त है। और यही उनकी तात्कालिक लगने वाली कविताओ की कलात्मक सफलता का रहस्य है। इससे यह नही समझना चाहिये कि जिसे कलात्मक मूल्य समझा जाता है, वह इन कविताओ मे नही है। बात दरअसल यह है कि नागार्जुन की कला सौंदर्यशास्त्र के स्वीकृत विधान के लिए बहुत बड़ी चुनौती है और इसीलिए सौंदर्यशात्रं के स्वीकृत मापदण्ड पर विचार करने को यह बाध्य करती है।

नागार्जुन की कविता यदि मूल्यभ्रंश के विरूद्ध अपने को खड़ा कर सकी है, तो इसलिए कि उसमे समय और मनुष्य के यथार्थ के एकांगी व्योरो को इकट्ठा कर, अपने कर्म की इति मान लेने की नासमझी नही है , और न ही दुनिया को पूरी तरह से व्यर्थ मानकर रद्द करने की विचारहीनता। "यही कारण है कि मिथिला के ठेठ गॉवो की मिट्टी से लिपटा यह यात्री देश देशान्तरो के अनुभवो और दृश्य से इतना सम्पृक्त हो उठा है कि सामाजिक चेतना उसकी सरस्वती में शतधा स्थापित हो उठी–कही व्यंग्य की तिक्त बौछार ,तो कही करूणा के मार्मिक उत्स कही गॅवई प्रकृति के यथार्थ चित्र तो कही गहरी ढंग का उद्घाटन। भाषा भी तदनुरूप, कहीं प्रांजलता तो कहीं ठेठ बोलचाल।"[1]

यह जुझारू कविता अपनी उर्जा में विलक्षण और सृजनात्मकता मे अद्भुत है, जहॉ दृश्यमान सामाजिक स्थितियॉ बुनियादी तब्दीलियो के लिए बेचैन हैं। राजनीतिक संघर्षो की क्रान्तिकारी सरगर्मी इसकी मूलवर्ती धारा है , जो गुरिल्ला छापामारो की तरह हम तक आती है और आकर झिझोड़ती है: यह आज के समाज को जगाने का उपक्रम है। नागार्जुन की कविता यही करती है।

---

१. नामवर सिंह–चुनी हुयी कविताये–भूमिका

****

अध्याय ५—खण्ड घ
त्रिलोचन की वैचारिक संवेदना :

त्रिलोचन के काव्य ससार से गुजरते हुए हम अनुभव कर सकते हैं कि उनके यहां कोई आश्चर्य लोक नही है। परिचित, अपरिचित के तनाव से कविता में जो आश्चर्य जन्म लेता है, वह महज चमत्कार नहीं होता । कई बार उस तनाव से ही महत्वपूर्ण अथवा बडी कविता पैदा होती है। त्रिलोचन के जीवन दर्शन और काव्य दर्शन के आधार पर कहा जा सकता है कि त्रिलोचन की कविता महानता की अवधारणा से इंकार करती है, महानता के मिथ के तोडती है और साधारणता में ही अपनी सार्थकता सिद्ध करती है। उनकी दृष्टि साफ है। उनकी पक्षधरता उन्हे वह दष्टि देती है, जो समाज को, व्यवस्था को, और इन सब के बीच मनुष्य की स्थिति को बहुत स्पष्ट नजरिये से विश्लेषित करती है।

रस जीवन का, जीवन से खींचा,

दिये हृदय के भाव, उपेक्षित थी जो भाषा,

उसको आदर दिया।

कहना न होगा कि *"उपेक्षित भाषा"* उन्हीं लोगो की हैं, जो सभ्यता की जीवन धारा में उपेक्षित है। स्पष्ट है कि जहा से भाषा आ रही है, वहीं से जीवन का रस और दृश्य के भाव भी आ रहे हैं । समृद्धि को आदर देने में खास बात नहीं है। वह तो सब करते ही है। त्रिलोचन यहा अलग इसलिए है क्योंकि वे " उपेक्षित भाषा" के आदर देते है। इसी तरह सींचे हुये को सीचने वाले तो संसार में अनेक हैं लेकिन उपेक्षित, परित्यक्त मरूस्थल को सीचने वाले कितने है। "त्रिलोचन उसी मरूस्थल को जीवन से प्राप्त जीवन रस से सीचते हैं। उपेक्षितों और पत्यिक्तो के जीवन को कविता का जीवन बनाने का काम आसान नही है। त्रिलोचन अपनी कविता में इसी कठिन कार्य करते हैं। किन्तु त्रिलोचन इस बात में उनसे भिन्न हैं कि वे समाज के, वह भी सबसे निचले स्तर पर रहने वाले समाज के, स्तर पर रहकर इस कार्य को करते हैं। वे अपनी समृद्ध काव्य–परम्परा के उदात्त स्वरूप से विमुख नहीं हैं, किन्तु उस आधुनिकतावाद की गिरफ्त से मुक्त हैं, जो गगन बिहारी हैं।" वे उस धरती के कवि हैं कि जो गर्जन तर्जन वाली नहीं है। त्रिलोचन अपनी पीढ़ी में सबसे शांत प्रकृति के कवि है। लेकिन अपने शब्दों की मर्यादा में उत्पन्न दृढ। उनमें इतिहस का बोध जन की पक्षधरता का अटूट संकल्प है।"[1]

---

१. जीवन सिंह (सं० महावीर अग्रवाल)–त्रिलोचन, अंक–पृ० ४८

त्रिलोचन मार्क्सवादी चेतना से सम्पन्न कवि हैं। लेकिन इस चेतना के उपयोग का उनका अपना ढंग है। प्रकट रूप में इनकी कविताएं विचारधारा का स्पष्टीकरण नहीं करती। त्रिलोचन के अंदर विचारो को लेकर कोई बडबोलापन नहीं है। वे अपनी बात धीमे–धीमे स्वाभाविक ढंग से कहते है। क्योंकि उन्हें भरोसा है कि *"हाथों के दिन आयेंगे"*। उन्हें उस जनता पर विश्वास है जो परिवर्तन में क्रातिकारी भूमिका का निर्वाह करेगी उन्हें देश की जनता के चरित्र की पहचान है। इसलिये उनके यहां दीन–हीन सा आने वाला मनुष्य भी केवल संघर्ष में विश्वास करता हैं; इसलिए त्रिलोचन की कविता में आने वाले चरित्र और क्रांति का स्वप्न देखने वाले बुद्धिजीवियों के बीच के अंतर को त्रिलोचन के कवि रूप पर विचार करते समय जरूर ध्यान में रखना चाहिए। प्रमाणिकता कहां है, जानना कठिन नहीं होगा।[1]

त्रिलोचन ने जन जीवन की क्रियाशीलता और जीवन व्यवहार का चित्रण करते हुए उसके भीतर सामान्य–समाज–सत्य को रखा है, जैसे हिन्दी जातिं का किसान रखता है। त्रिलोचन गंवई कवि की इसी सहज सवदेना के द्वारा प्रकृति को, जीवन को, मानवीय संघर्ष को पूर्ण आत्मीयता से अपनाते है। सहज बतकही करने वाली कविताएं, कब जीवन के बारे में कोई संदेश दे जायेगी, कहना कठिन है। कविताई उनके लिये लोक जीवन से विमुखता का बहाना नहीं बनी। उसमें डूबकर ही त्रिलोचन का कवि कर्म सार्थकता पा सका है। लोक जीवन में रचा बसा कवि ही लिख सकता है–

यह रहस्य गढ़ा किस ओर से
हृदय की लिपि वायु तरंग में
लिख उठी छवि की अरधान सी
नयन देख जिसे चुप हो गये

हिन्दी जाति के किसान स्त्री पुरुषों ने अपने लोक साहित्य में कथा, गीत एवं गाथाओं के माध्यम से अपने जीवन के सामान्य सत्यों की अभिव्यक्ति की है, कुछ–कुछ वैसा ही त्रिलोचन भी अपनी कविता को बना कर रखते है। इसी अर्थ में वह अपने समकालीनो में उनका मिजाज अलग है। एक अर्थ में विशिष्ट। उनके पास कविता की अभिजात्य भाषा नहीं, न ही महानगरीय चेतना का जादू है । इस वजह से उनकी कविता आधुनिक प्रवाह से दूर छिटकी हुई सी प्रतीत होती है। आधुनिक सभ्यता के नागरिकों को अपने देश का किसान भी तो ऐसा ही लगता है। आज जो सभ्यता में जो जितना अग्रणी दिखायी देता है, संस्कृति में उतना ही पिछड़ा हुआ है। त्रिलोचन इस उल्टी रीति के सच को जानते हुए जन–संस्कृति के पक्ष में खडे होते हैं। वह अपनी कविता को रूपवान नहीं बनाते, उनका प्रयास उसे अपना हृदय देने का रहता है।

---

१. स्वप्निल श्रीवास्तव, आलोचना जुलाई सितम्बर ८७ पृ० ३७

" ह्रदय चाहते हो तो दे दूं इसमें कोई
द्विधा नहीं है और हृदय ही तो जीवन
का मूल श्रोत है, उसे सौंप कर तुम्हें
जिनका मन से दूर हो जोयगा।[1]

वर्ग विभाजित समाज को विश्लेषित करते हुए त्रिलोचन समाज के लोकतत्व से, उसकी ऐतिहासिक परंपरा को ग्रहण करते हैं। यानी कि लोकात्मक वृत्तियों के अनकहे साहित्य के, अनकहे लोगों को, अपनी काव्य–यात्रा वह ऐतिहसिक चरित्रों का निर्माण न करके, चरित्रों में सामाजिक इतिहास का पूरा आकलन करते हैं। क्योंकि वह जानते हैं कि जनभाषा पर कुछ भी कहने के पहले यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह बहता नीर है। केवल सामाजिक संबंधों से ही उसे काव्य का समर्थ माध्यम बनाया जा सकता है। इसके लिए कोई खास नियम या विधान नहीं है। वैयक्तिक विवेक या शक्ति ही इसके निर्णायक तत्व है। कहना न होगा त्रिलोचन के पास यह वैयक्तिक विवेक है, जिसके चलते उनकी प्रखर वैचारिकता का भाषिक उन्मेष जन के पक्ष में हुआ है।

उनका इतिहास–बोध स्थूल ऐतिहासिकता से आगे बढकर सामाजिक विनिमयों में छिटका दिखायी देता है। त्रिलोचन उसे इसलिए जीवन से ग्रहण करते हैं। वह इतिहास के उन कालखण्डों को भी पहचानते हैं, जिनसे होकर ही मुक्ति की मशाल जलायी जा सकती है। इसलिए त्रिलोचन का इतिहास–बोध जन की आकांक्षा और मुक्ति के बोध से जुडा हुआ हैं।

तुम्हे पुकार रहा है कोई
अभी तुम्हारी शक्ति शेष है
मत अलसाओ, मत चुप बैठे
तुम्हें पुकार रहा है कोई[2]

ऐसा लगता है, त्रिलोचन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को संवेदनात्मक ज्ञान की तरह ट्रीट करते हैं, इसीलिए उनकी कविताओं में मसीहाई या क्रांतिकारी तेवर अनुपलब्ध हैं वे बहुत छोटे–छोटे हर्ष विषाद और जद्दो–जहद की कवितायें हैं। थोडा लिखा बहुत समझना के संदेश के साथ। लेकिन उनमें छोटा या मामूली होने की न तो भंगिमा है और न लज्जा न पश्चाताप बल्कि, अधिकतर कविताओं में वे स्वयं को उघाड़कर निहत्था रख देते हैं। छोटी–छोटी चीजों इंसानी कीमत की असलियत को महसूस करते हुये हुए अपने बनाये

---

१. त्रिलोचन–अनकहनी भी कुछ कहनी है–पृ० २६
२. त्रिलोचन–तुम्हे सौंपता हूं –पृ० ३३

गये चित्रों में वे आदमी और आदमी के बीच के रिश्तो को स्पष्ट करते हैं। त्रिलोचन की कवितायें इन्सानी रिश्तों में गहरी रूचि लेने वाली कवितायें हैं। शीतयुद्ध के दौरान उसकी छाया में, व्यक्ति और समाज, रूप और अंतर्वस्तु यानी दक्षिण और वाम के नाम पर बने परंपरागत खेमें शीतयुद्ध के अंत के साथ ही अप्रासंगिक हो गये। पुराने नारों और मुहावरों में आज की कविता को समझा नहीं जा सकता। शीत युद्ध में समाजवादी कैंप के पराभव और एकध्रुवीय नयी विश्व व्यवस्था के आगमन ने हमारी दुनिया को वस्तुगत तौर पर बदल डाला है। हमारे साहित्य में अभी उस दौर का दखल होने की वजह यह है कि पराजय के शोक से उबर कर हम अभी नई लाभबंदी की कार्यनीति सूत्रबद्ध नहीं कर सके हैं। लेकिन कवि को विश्वास है कि हम अपने शोक को शक्ति में बदलने में सफल होंगे–

" ताप कठिनतम खाते–खाते पके हुए हैं। फिर भी अभी
और पकना है नये तौर भी। अभी सीखने हैं,
जीवन के लिए कौर भी। हाथों में लेना है।

जन–जीवन के प्रति उनकी इसी प्रतिबद्धता को देखकर ही शायद 'रेणु' ने कहा था कि "कविता मेरे लिए समझने बूझने या समझाने का विषय नहीं है, जीने का विषय है ; कवि नहीं हो सका, यह कसक सदा कलेजे को सालती है। और अगर कहीं कवि हो जाता तो , त्रिलोचन नहीं हो पाने का मलाल जीवन भर रहता।"[1]

शीत युद्धोत्तर परिघटना के असर में हमारे साहित्य में एक–दूसरे से उल्टी दो नयी प्रवृत्तिया भी सामने आयी हैं। एक वह है जिसने सच्चाई को कबूल करने के नाम पर पराजयवादी मानसिकता का निर्माण किया है और नये शासकों के तर्कों को वामपंथी शब्दावल में पेश करके उनकी सेवा करनेकी राह चुनी है। कट्टर वर्गीय दृष्टिकोण की वकालत की आड में यह न केवल भारतीय समाज की असलियत पर पर्दा डालती है बल्कि वर्ग सहयोग के अपने रवैये को भी छिपाने की कोशिश करती हैं दूसरी प्रवृत्ति ने अपने समय की चुनौतियों से मुठभेड़ करने की रचनात्मक इच्छा शक्ति का परिचय दिया है। पहली ने अगर वाम और दक्षिण का घालमेल करके, धुंध और कुहासा फैलाने की कोशिश की तो दूसरी ने इस को एक विकसित चरण में पहुंचाने का प्रयास किया ; सूत्र में कहें तो पहली प्रवृत्ति ने थीसिस और एंटी थीसिस का घोल बनाया जबकि दसूरे ने सिंथीसिस को हासिल करने की जद्दो जहद की। त्रिलोचन की कवितायें इसी दूसरी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। तय है: उनकी कवितायें घाल मेल करने की व्यवहारिकता पर विश्वास न करके मनुष्यता के संघर्ष को एक कदम आगे ले जाने के अपने संकल्प को व्यक्त करती हैं –

---

१. फणीश्वर नाथ रेणु चुनी हुयी रचनायें भाग– २)

कवि की विशेषता है उसका वर्गीय दृष्टिकोण। यह उसकी प्रमाणिकता की ही तलाश का नतीजा है। कोई दुराव छिपाव नही, कोई आडंबर नही। अपने वर्ग के सामर्थ्य और उसकी सीमाओं के प्रति सचेत यह कवि , गहरे आत्मविश्लेषण मे जाता है ; और सुंदर यात्राओं से हमारे लिये कीमती चीजें इकट्ठी करके लाता है। वह मध्यमवर्ग के ढुलमुलपन और अवसरवाद से पूरी तरह परिचित है। वह जानता है कि इस वर्ग की समझौतापरस्ती के चलते ही यह वर्ग नेतृत्वकारी भूमिका खो चुका है और आज इसे एक विशाल उपभोक्ता बाजार में बदलकर पूरी दुनिया के सामने निष्कवच छोड दिया गया है। इस प्रक्रिया में इसका विघटन भी शुरू हो गया है। कवि इसीलिए इस मध्यवर्ग के सुविधापरस्ती के सामूहिक आत्मघाती प्रवृत्ति से विलग आम आदमी, किसान, और मजदूरों की शक्ति में विश्वास करता है। टूटे हुए विश्वास को रचनात्मक संबल देता है। क्योकि वह स्वयं हारना नहीं जानता। स्वयं न हार कर ही, वह दूसरों को भी हार न मानने का आत्मविश्वास प्रदान करता है–

नद नदी ने पांव धोए

पुष्प पादप ने चढ़ाये

मेघ ने सित छत्र ताना

वायु ने चामर हिलाये

इन्द्र धनु नत सूर्य ने दी

चद्र ने दीपावली की

तुम न हारे देख तुम को दूसरे जन भी न हारे[1]

त्रिलोचन की कविता, यथार्थ मे एक जीवन है, उत्पादक वर्ग के सपने और उसके स्वाभिमान से जिसका सीधा संबंध है। उनके सौदर्य को प्रतिष्ठा देने का रचनात्मक सकल्प इस कविता को हमारे लिए और ज्यादा अर्थपूर्ण और प्रासांगिक बना देता है। वर्ग विभाजित समाज में विजयिनी जनवाहिनी की पक्ष धरता से इसकी प्रयोजन धर्मिता स्पष्ट होती हैं। स्वांतः सुखाय नहीं, बेहतर दुनिया बनाने के प्रयास में सक्रिय जुझारूपन के साथ होने का अहसास ही त्रिलोचन की कविता की असली ताकत है और इसके बीच वह उन तमाम कारणों का विरोध करती है जो इसके विपरीत पड़ता है। अस्वीकृति और असहमति इसलिए इसकी शक्ति बनते हैं। उत्तेजनाओं से अलग, त्रिलोचन की कविता मनुष्य के केन्द्रीय प्रश्नों से जुड़ी हुई है। जिसमे भूख और रोटी के प्रश्न पूरी शिद्दत से उठाये गये हैं। यह समकालीन वास्तविकताओं का साक्षात्कार करने वाली कविता है, जिसका ठोस और जीवित प्रासंगिक संसार है। इसीलिए वह कह सके–धन की उतनी नहीं

---

१. त्रिलोचन–सबका अपना आकाश–पृ०–३१

मुझे जन की परवाह है।[1] जन की परवाह करने वाला कवि निश्चित रूप से जीवन को समझने वाला ही होगा। संसार से जुडने और जीवन से प्यार करने की प्रक्रिया में ही त्रिलोचन कई बार आपद्धर्म की तरह वर्ग युद्ध को अनिवार्य मानते हैं ; कि उन्हें पता है कि राज्य आमतौर पर एक रूढ़ि होती हैं और कविता उसके सार्थक विकल्प की तलाश। अतः राज्य सत्ता जब पूंजीवादी हो तो वर्ग विहीन समाज की स्थापना का सद्प्रयास ही सार्थक है। त्रिलोचन के काव्य संसार में ये बाते इतनी सहज हो गयी हैं कि अलग से इनका उल्लेख करना अनावश्यक लगता है। इस कवि के जीवन की खास बात है।—सर्वहारा संस्कृति के निर्माण के लिए किया गया संघर्ष। वह अपने इस संघर्ष में इस उपेक्षित समाज के सारे रोग, व्याधि अपने ऊपर लेना चाहता है, जिससे कि एक सुन्दर सुखद भविष्य का निर्माण हो सके—

" तेरे रोग दोष मैं ले लूं, आ तू आ तो,

झिझक न मेरी छाती सब संभाल सकती है,

तेरे दुख की ताब नहीं है।मेरे अपने,

अपनों से भी अपने, खुले कंठ से गा तो

नए गीत जीवन के मनसा कब थकती है।

गीतों से आंखों में नये जगा तू सपने।"

त्रिलोचन की कुछ कवितायें इसीलिए लंबी हुई क्योकि यह विवरण के विस्तार में, कलात्मक निष्पत्ति मे एक सुनियोजित सांस्कृतिक रणनीति हैं। कभी निराला ने 'चतुरी चमार' और 'बिल्लेसुर बकरिहा ' लिखकर गद्य मे जिस सर्वहारा की कला का प्रस्ताव दिया था, नागार्जुन की हरिजन गाथा ओर त्रिलोचन की 'नगई महरा' कवितायें उनका अग्रअनुमोदन हैं।

त्रिलोचन की ये लम्बी कवितायें, (और उनकी छोटी कवितायें भी) एक सम्पूर्ण आख्यान हाने के साथ भारतीय समाज के ढाँचे में, जो सर्वहारा कहे जा सकते हैं, उनकी प्रभावशाली चारित्रिक अभिव्यंजना है। स्पष्ट है उनकी ये कवितायें संवेदनात्मक ज्ञान के नपे तुले आकार मे शिल्प—रूढ़ि का अतिक्रमण है। बिंब का विचार मे प्रासंगिक पर्यवसान, जो कुल जमा मानवीय सुख—दुख से सम्बन्धित है। ताजगी और नयापन लिये इन कविताओं की विशेषता है—इनकी सवेदनात्मक ज्ञान निर्भर संरचना का विचारों में स्तब्धकारी पर्यवसान। तय है कि इन कविताओं का बिंब, विचार का अनुपूरक और इसका 'निश्चय कथन' तार्किक संगति से निर्मित है। कृषक , श्रमिक जीवन, सामान्य जन और उनके चरित्रों को उभारने वाली ये कवितायें इस सारे जीवन से बहुत आंतरिक संलग्नता, और जन जीवन से अपनी अंकुठ पक्षधरता सिद्ध करती है।

---

१. त्रिलोचन—अनकहनी भी कुछ कहनी है—पृ० १७

" मैने उनके लिये लिखा है, जिन्हे जानता हूं,

जीवन के लिए लगा कर बाजी जूझ रहे हैं,

जो फेंके टुकडों पर राजी कभी नही हो सकते हैं,

मै उन्हे मानता हूं , आगामी मनुष्यताओं का निर्माता ।"

त्रिलोचन इसीलिए विश्वास करने योग्य कवि हैं। त्रिलोचन जैसा लिखते और कहते हैं, वैसा ही आम आदमी का जीवन जिया है। उनकी कथनी और करनी मे भेद नही है।त्रिलोचन ने अपने को जनतांत्रिक बनाया और बेहद जनतांत्रिक होना इनकी प्रगतिशीलता का मुख्य आधार है। जनता की अज्ञानता को पहचानने के बाद भी त्रिलोचन गर्व से कहते हैं – *" मै उस जनपद का कवि हूँ , जो नंगा , भूखा और दूखा है।* " जनता को प्यार करने वाले , उसका सम्मान करने वाले और उनकी संघर्षशीलता मे साथ देने वाले कवि त्रिलोचन मानते हैं कि जनता कभी पराजित नही होगी । संघर्षों के बीच जूझती जिन्दगी को भीतर से प्यार करने वाले त्रिलोचन अद्वितीय है। वह संघर्ष के कठिन राहो के सहयात्री है जिसकी धूल और गर्द से उनका सघन परिचय है।" यात्रा , पथ , पथिक , मंजिला इन सब पर बहुत कवियों ने लिखा है, त्रिलोचन की कविता मे यं अलंकारो की तरह नही हे, प्रतीक नही है। वे चलने के भौतिक श्रम से सम्बद्ध हैं"।[1]

" राह बहुत लम्बी हो जाती हे जब चलते

चलते दोनो पैर भर उठे और उठाना

उनको भारी लगने लगे ।"[2]

" त्रिलोचन की कविताये पढते समय जो बातें सबसे ज्यादा हम पर प्रभाव छोडती है वे हैं, वह है– गति। चाहे वह मनुष्य की हो या प्रकृति के किसी अंश की। इसी कारण ऊपर–ऊपर सहज और शान्त दिखने वाली उनकी पंक्तिया अपने अन्तर्वस्तु मे गहरी हलचल और बेकली से भरी होती हैं। उनकी संवेदना घटना के , हृदय के , मनोजगत् के , चाहे जितने छोटे टुकडे को हमारे सामने रखे– अपने बोध की व्याप्ति से वह उस टुकडे से सम्बद्ध सभी दूसरे मनस्तत्व , सच्चाइयॉ और अवधारणायें हमारे मन मे उद्भासित करने में सफल हो जाती हैं। अपनी प्रगति को कलात्मक (कलावादी अर्थो में नही), रूपाकारों (रूपवादी अर्थों में नही) में , सक्रिय गतिमान भावार्थों में ढालने और उसमे व्यापक सामाजिक आशय समोने की, यह अद्वितीय प्रतिभा त्रिलोचन जी मे बहुत पहले आ गयी थी– जब वे वासुदेव सिंह थे – धरती की कविताओं के मर्म को ढोते समय ही।"[3]

---

१. रामविलास शर्मा–सप्तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि

२. त्रिलोचन–फूल नाम है एक पृ० ६६

३. सोमदत्त–त्रिलोचन–पूर्वग्रह ३६–४०

त्रिलोचन की कविताओं का अपना एक जीवन्त सम्पूर्ण संसार है और वह बेशक त्रिलोचन का तैयार किया गया संसार है। वे इसमे प्रवेश करते हैं और हमें उसके बारे मे बताते हैं। इसे तामीर करने मे निश्चित रूप से एक लम्बा समय उन्होने गुजारा है। इस तरह से वह उनकी पहचान बन चुका है। यहां एकदम जानी–पहचानी वस्तु से लेकर नितांत नयी चीज को वे अपनी कविता से जोड़ते हैं । इस तरह कोई मामूली और इस्तेमाल मे आ चुका प्रतीक उनके यहां , उनके अपने मुहावरे में ढलकर नया होता है। ऐसा इसलिये भी हुआ है , कि अपने आस–पास की भाषा ,अपने पात्रों की भाषा की गहरी पहचान उनके यहां दिखती है और तब कविताओं के बारे मे उल्लखित यह तथ्य और सच होता जान पडता है कि अपनी प्रतिबद्ध चेतना को त्रिलोचन उसे अपने समय के कलात्मक मूल्यों से जोड देते हैं। वह जो अनुभव करते हैं– वह जो उनके अंतस् मे समाया रहता है– कविता की शक्ल में ढलने के बाद नितांत निजी नही रह जाता । तमाम निजत्व के बावजूद, *क्योंकि वह एक साझे अनुभव के आधार पर लिखते हैं –*

बाधाओं के सम्मुख थक कर बैठ न जाना

तुम मनुष्य हो , मनुष्यता का यह बाना

करते ही जायेंगे उसको जो ठाना है। अंतिम क्षण तक[1]

यह साझा अनुभव जीवन और उससे जुडे तमाम प्रश्नों के उत्तर की तरह लिखा गया होता है। स्पष्ट है कि त्रिलोचन के यहाँ के आत्म का बर्हि से सीधा संघर्ष–जीवनवादी दृष्टि के चलते नही है। यदि यहाँ संघर्ष है भी तो पृथ्वी को बचाये रखने की कोशिश में हैं। वर्तमान मे अमानवीय व्यवस्था एवं स्थितियों मे उनका बिल्कुल विश्वास नही है। *" सड़ी व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिये मै ललकार रहा हूँ उस सोई जनता कों ।"*[2] त्रिलोचन अपनी कविताओं मे जिस राजनैतिक संवेदना और इस रूप मे समाज की राजनैतिक विडम्बना का चित्रण करते हैं, वह विडम्बना अपनी पूरी विद्रूपता के कारण लोकगाथा बन जाती है। त्रिलोचन की रचना–प्रक्रिया को समझने के लिये यदि कुम्हार और उसकी चाक के निर्माण प्रक्रिया को जानना जरूरी हैं , तो उतना ही जरूरी प्रकृति के रचना ब्यापार को भी समझना होगा । धान की मंजरियां , सरसों के फल , गेहूँ के पौधे और दूब की प्रकृति को भी जानना जरूरी है क्योंकि इनको जानना मनुष्य जीवन की गरिमामय रचनात्मकता को भी जानना है। इसीलिये त्रिलोचन की कवितायें हमारे लिये लोक–शिक्षण का माध्यम भी हैं।

यह लोक समाज अपनी मान्यताओं मे पिछडा और जड़–अभिजात्य समाज द्वारा उपेक्षित और नागर समाज द्वारा नकारा गया है। इसी लोक की उपेक्षा के कारण हम तथाकथित आधुनिक और शहराती होते हुये , अपनी परंपराओं से कटते जा रहे हैं।

---

१. त्रिलोचन–अनकहनी भी कुछ कहनी है–पृ० ३६
२. त्रिलोचन–अनकहनी भी कुछ कहनी है–पृ० ८७

लोक और नागर का यह द्वन्द्व त्रिलोचन की कविता मे बहुत बेबाक तरीके से व्यक्त हुआ है। कवि की चेतना मे यह सब कुछ छूटता नही है। इसी कारण वह अपने देश और काल को याद रखते हैं। तुलसी, निराला , नागार्जुन को याद करते हैं, अपने जनपद अपनी भाषा को याद रखते हैं और वह सब कुछ, जो स्मरणीय है, उसे अपने साथ स्मृति मे रखते हैं।

केदारनाथ सिंह कविता के जिस आन्तरिक लय की बात करते हैं, वह त्रिलोचन की कविताओं में साथ–साथ देखी जा सकती है। उनकी कविता की यह लयात्मकता भारतीय जनता की आन्तरिक चेतना और प्रकृति की लयात्मकता का ही नया उन्मेष है। इसीलिये त्रिलोचन के काव्य–बिंब , ऐन्द्रिक संवेदन का एक जरूरी और पूर्ण हिस्सा बनने की हद तक सफल हैं। आश्चर्य तो यह है कि कवि ऐसे बिंबो की पूरी श्रंखला को रचकर उन्हे यथार्थ के व्यापक चरित्र वाली दुनिया की संगत मे ला देता है। जहॉ वह काव्य अनुभूति कविता के बडे निहितार्थो मे तब्दील हो जाती है।

इस प्रकार वर्गापसरण के लिये किये गये त्रिलोचन के इस सृजनशील आत्मसंघर्ष का महत्व ऐतिहासिक है। प्रगतिवादी दौर के मध्यवर्गीय कविताओं का अधिकांश, इस आत्मसंघर्ष से नही गुजरा था। उसने स्वयं का व्यक्तित्वांतरण नही किया था। फलतः जिस शोषित जनता को ये कविता सम्बोधित थी , उन्हे भी यह कवितायें सतही ढंग से ही स्पर्श कर सकीं । यही कारण है कि ऐसी कवितायें , शोषित जनता के पक्ष मे लिखी गई कवितायें अवश्य थीं, पर शोषितजनों की कविता नही थी । कवियों के यह सम्भवतः वर्गीय संस्कारों की सीमाओ के कारण होता था। सर्वहारा की दयनीयता का चित्रण कई बार इस उद्देश्य से किया जाता था कि पाठकों के प्रति सिर्फ दया उत्पन्न की जा सके। लेकिन त्रिलोचन सिर्फ यह नही करते बल्कि इससे आगे बढ कर वह उस जीवन मे सहभागिता करते हैं कि एक ठोस जमीन का पुष्ट धरातल वंचितो के लिये तैयार हो जाये। स्पष्ट है यह खामख्याली वाली नारेबाजी, और धत् तेरे की करने वाली कविता न होकर अपनी पक्षधर भूमिका को खूब समझने वाली कविता हैं।

" हमने बढ़कर उन लोगो की रोटी छीनी
जा चुपचाप खा रहे थे , जनता के हामी
बनते थे । केवल इनको उनको उकसाया
अपना काम बन गया । बड़े जतन से बीनी
है जाली हमने जालों की । अब आगामी
भय समाप्त है, स्वर्ग नरक तक अपनी माया।"[1]

---

१. त्रिलोचन–फूल नाम है एक–पृ०–२२

त्रिलोचन की कविता व्यापक सहानुभूति में परिणत, सशक्त मानवीय संकल्प की कविता है ; जिसमे चतुराई का कौशल नही बल्कि जबर्दस्त नैतिक मूल्यानुभूति है। वे इसलिये भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि ये सामान्य जन की, सामान्य समझ की असामान्य कवितायें हैं। इसमे " कवि की अभिव्यक्ति बिना बौद्धिकता के मुलम्मो के ही खरा सोना बनकर चमक उठा है। उसकी अनुभूति की वास्तविकता की चोट से उत्पन्न विचार स्फुलिंगों में दग्ध करने की शक्ति है। उसकी पंक्तियों मे बाहरी जगत की खरोंचों से बुलबुला उठने वाले मन की संवेदना की तीव्रता है।"[1]

स्पष्ट है त्रिलोचन की कविताओं में कहीं बौद्धिक जुगालीपन नही है। वह सहज है और सहज रहकर भी , इस अत्याधुनिक संसार में अपनी राह के राही हैं—अलमस्त , निर्द्वन्द्व। उन्हे कोई रोक नहीं सकता। उन पर कोई हँसता है तो हँसे। "डर नही है। हँसा जाऊंगा।" बहुत ही विद्वतापूर्ण तरीके से इस पूरे प्रसंग को राधावल्लभ त्रिपाठी ने बड़ी विदग्धता से इसे बताया है। इसीलिये " स्मृति मति और प्रज्ञा की जाग्रत अन्विति के कारण त्रिलोचन कविता के 'ऊँचाए हॉथ' से ऊँचाइयाँ नापते हैं, जो सहजगम्य नही हैं। स्मृति के कारण त्रिलोचन में परम्परा के प्रति कृतज्ञता का भाव है, वे संस्कृत कवियो की उस परम्परा को लेकर चलते हैं, जहॉ कवि अपने से पहले के उन बड़े कवियों को प्रणाम करके ही रचना मे प्रवृत्त होता था । कालिदास और तुलसीदास दोनो के प्रति कृतज्ञता त्रिलोचन ने ज्ञापित की है—कहीं शिप्रावात को अपने मे समा लेने की बात कहकर तो कहीं 'तुलसी बाबा भाषा मैने तुमसे सीखी' कहकर ।"[2]

---

१. हरिनारायण व्यास—'दिगन्त'—समीक्षा के संदर्भ मे—विवेक के रंग—संपा०—देवीशंकर अवस्थी पृ० ३७४—१७५
२. राधावल्लभ त्रिपाठी—ऊँचाए हॉथ ऊँचा—त्रिलोचन की कविता—साक्षात्कार

****

अध्याय ५–खण्ड ड०
शमशेर, नागार्जुन एवं त्रिलोचन के वैचारिक संवेदना की तुलना :

शमशेर की कविता में यथार्थ के छोर स्मृति और कल्पना में बंधे हुए हैं। वह स्वप्न देखती हुई कविता है। १९५५ में प्रकाशित 'कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ,' कविता संग्रह में ढेर सारी ऐसी कविताएं है, जो उनके तमाम जानी पहचानी आहटों का संग्रह है। ये आहटें कैसी थीं और भले ही इसके बारे में शमशेर चुपचुप से हों, पर उस इच्छित और सम्भावित यथार्थ का स्वप्न हमेशा बचा रहा। उनकी कविताओं में प्रेम के तकाजे हैं, तो क्रांतिकारी आकांक्षा के गठजोड़ भी हैं। जीवन के अन्तर्विरोध हैं, तो कुछ पाने की जद्दोजहद भी। एक बडी उथल–पुथल के बीच लिखी गयी इन कविताओं में यह उथल–पुथल इसलिए है क्योंकि यह एक जिम्मेदार कविता है। इसलिए शमशेर की कविता में यहां काव्यात्मक संवेदना के अभ्यास प्राप्त होते हैं।

सम्भवतः यही कारण है कि अति प्रचलित और अनाधुनिक माने जाने के बावजूद शमशेर बहादुर सिंह 'रेहटरिक' को कविता का एक मुलभूत गुण मानते हैं। वही 'रेहटरिक' जिस पर मुक्तिबोध सरीखे कवि की ज्यादातर कविताओ का विचलित करता हुआ स्थापत्य निर्मित होता है। एकालाप "रेहटरिक" का स्वभाव है, इसलिए हम देखते हैं कि मुक्तिबोध से लेकर कहीं कहीं धूमिल, राजेश जोशी और पंकज सिंह तक एकालाप का यह स्वर– कहीं पूरे समाज और सभ्यता को, तो कहीं एक पूरी पीढी को क्रंदन की तरह ऊंचा उठाता जाता है। मुक्तिबोध के बारे में आलोचकों ने प्रायः कहा है कि वे जीवन भर एक ही कविता लिखते रहे। शायद यह धारणा उनकी रचनाओं में निहित एकालाप के कारण बनी होगी। शमशेर की कवितायें पढ़ते हुए भी ऐसा लग सकता है कि उनमे एक ही यातना बार–बार याद की जाती है, एक दुख बार–बार बजता है, एक स्वप्न बार–बार देखा जाता है–लेकिन यह एक संरचनात्मक अवस्थिति है। शब्दों की सतह पर शमशेर की कवितायें मानों इस बात की गवाही हैं कि शब्द जितना कहते हैं, उससे अधिक अनकहा रह जाता है। शब्दों के पास ही खामोशी हमेशा घुटनों के बल बैठी रहती है। जो अकथ रह गया, उसका बयान संभव नहीं। कविता में केवल उस अकथ के चारों ओर के 'स्पेस' को रचा जा सकता है। शमशेर कविता में किस रहस्य को घेरना चाहते हैं ? वे किस अकथ की गवाही देने को आतुर है ? शायद उसकी, जो हमारे जाने–बूझे और तयशुदा सच के बाहर खड़ा है, या वह जो हमारी बनी बनायी चाहतों का अतिक्रमण करना चाहता है। वह जो इस दुनिया की तमाम–तमाम साधारण वस्तुओं की सत्ता के भीतर और उनके इर्द–गिर्द पसरा हुआ है। पहली दृष्टि में यह बात किसी अमूर्त रहस्यवादी कवि की लगती है, पर ऐसा है नहीं। शमशेर इसी ठोस दुनिया के कवि हैं। उनकी कविता रोजमर्रा के दुनिया की इन्हीं साधारण वस्तुओं को साहचर्य की लंबी

श्रंखलाओं में इस तरह एक–दूसरे के साथ रख देती हैं, कि उनका अनछुआपन और उनकी कोमलता यकायक मायावी हो उठती है। हर अलग–अलग पडी वस्तु जैसे दूसरी वस्तु का पुकारती सी लगती है।

स्मृतियॉ, कामनायें, पीडा और तड़प इन साधारण वस्तुओं के गुहयतम इलाकों को आलोकित कर देती है। इस बेहद संकट में भी जीने और खाने की सबसे बुनियादी बातों की तरफ वह खड़ी दिखायी देती हैं। निर्वासन, अकेलेपन और थकान से जूझते हुये उन्हें हमेशा यह लगता रहा कि कवि किसी भी आततायी से ज्यादा शक्तिशाली है क्योंकि वह रच सकता है। निरंतरता और सातत्य की कल्पना शमशेर की कविताओं का स्थायी भाव है। प्रतिरोध की सम्भावनायें जब सीमित मान ली जाती हैं, तब आंतरिक स्रोत कैसे मनुष्य को झुक जाने और समर्पण कर देने से रोकता है, शमशेर की कवितायें इसका बयान हैं; इनमें विस्थापन, टूटन और हताशा के समक्ष–हिस्सेदारी, मूलभूत–करूणा और मनुष्य की नियति का एक जिद्दी आशावाद दिखाई देता है।

जबकि नागार्जुन शुरू से चुनौती स्वीकार करने वाले और चुनौती देने वाले कवि रहे हैं। इन दोनों पक्षों में ज्यादा महत्वपूर्ण , चुनौती स्वीकार करने वाली स्थिति को माना जा सकता है। नागार्जुन ने कविता के भीतर और बाहर दोनों जगह, की चुनौतियॉ स्वीकार कीं। समाज में गरीबी, शासन, सत्ता, तंत्र का आतंक और अत्याचार समाज के सबसे गरीब लोगों के उत्पीड़न की दिशा, इस दिशा–दशा से लड़ने के लिए उभरने वाली शक्तियॉ, गॉव का जीवन, गॉव का सौन्दर्य, समाज में फैली रूढियॉ व अन्धविश्वास, फसलों का सुनहला संसार, नयी पीढी की शक्ति की पहचान, नई पीढ़ी से हमेशा रू–बरू होने की कोशिश आदि आदि नागार्जुन की कविता के भीतर का संसार है, जिसे उन्होने बाहर से ही ग्रहण किया है। उन्होंने लोक–जीवन और सामान्य जीवन के व्यापक स्तर पर फैली उन तमाम वस्तुगत चुनौतियों को स्वीकार किया, जिन्हें उठाने में उनके कई समकालीन विचलित हो जाते थे। उन्होंने पश्चिम को छोड कर, कहना चाहिए कि एक तरह से उनकी उपेक्षा करते हुए, व्यापक भारतीय जनता के जीवन और उसकी समस्याओं पर अपने को केन्द्रित रखा।

उन्होंने अपनी विशाल जनता के जीवन को ही जिया और उसके बीच रहे। उन्होंने जनता की तरफ कभी पीठ नहीं की। काव्य की इस भीतरी चुनौती को उन्होंने हर स्तर पर पूरे तरह स्वीकार किया और यह अकारण नहीं है कि उनकी कविता आम जनता तक सीधे प्रवेश पाती है। उसका एक व्यापक जनाधार हैं।

उनकी कवितायें जनता के क्रान्तिकारी तेवर को केन्द्रित करते हुए समाज परिवर्तन की कविता है– *"कोर्ट की दीवार पर। चुपचाप जो पोस्टर चिपका गया। वह कौन था ? ____। " जमींदारों के ह्रदय में घुस गया है बाघ। बस चले तो बेच कर वह भूमि–धन–पशु दास–दासी बाग पोखर चौर–चाचार। भाग जाये फारमूसा।"*

नागार्जुन असल में समय व राजनीति के परिवर्तन पर ध्यान रखते हैं और उसमें विश्वास जाहिर करते हैं साथ ही उनका यह विश्वास और परिवर्तन की इस आहट को आम आदमी भी किस तरह पकडता है तथा उसकी जरूरत समझता है वह इस बात को भी जानते हैं। जो एक तरह से अनपढ है पर जिसके मन मे समाज परिवर्तन की एक आकांक्षा हिलोरे ले रही है। नागार्जुन आम जनता की इस आकांक्षा को पकडते है, राजनीति की इस परिवर्तन को पकड़ते है और एक रचनाकार की सामाजिक भूमिका में खड़े होकर इस प्रकार के कविता की रचना करते हैं।

अनेकानेक तत्सम शब्दों के होते हुए भी, यह कविता अपने निहितार्थ आम जनता तक ले जाती है। यानि नागार्जुन के सामने हमेशा व्यापक जनसमूह और उसके सुखद समाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और उसमें रचनाकार की भूमिका स्पष्ट रही। नागार्जुन ने हमेशा सत्ता के प्रति एक आलोचनात्मक रुख रखा है। उनका पूरा काव्य इस रुख से भरा हुआ है। शायद हिन्दी के वह अकेले कवि हैं, जो "कवि–सम्मेलनी" न होकर भी अपनी कविताये सबसे ज्यादा जनता को सुनाई हैं, चाहे वह कोई मीटिग हो, सभा हो, नुक्कड सभा या नुक्कड काव्य–पाठ हो। कविता के उनके पाठ और प्रस्तुतिकरण में हमेशा एक व्यापक क्षोभ तथा व्यंग्य–विद्रूप दिखाई देता है। इस दृष्टि से उनकी कवितायें जीवन के विडम्बना बोध को अग्रसारित करने वाली कवितायें हैं।

१. *नाजियों के बाप। जी हां, आप गोलियां चलवा चुके हैं अब नेहरू का रुख रहे है नाप....। अजी सुनिये, रक्त रजित क्रान्ति की पदचाप* (नाजियो के बाप)।

२. *बाहर निभा रहे हो अपने पंचशील दसशील। ठोक रहे हो तरूणों के सीने पर कील। अजी, तुम्हारे दिल दिमाग की खूबी कौन बताये। हे अद्भुत नटराज, तुम्हारी माया कहीं न जाय।*" (नेहरू)

अपने हास्य–व्यंग्य, नाटकीयता, गम्भीरता के साथ वे सत्ता–पक्ष पर प्रहार करते हैं और उसकी जन विरोधी, निजी सुख–चैन की दुनिया बनाने के षडयंत्र को स्पष्ट करते हैं। इस दृष्टि से उनकी अधिसंख्य कवितायें राजनीतिक है, यही उनकी वैचारिकता का संबल है जो प्रहरी की तरह हम तक पहुंचता है।

किसी भी आदोलन के, यहां तक कि प्रगतिशील आंदोलन के केन्द्र में भी त्रिलोचन कभी नही रहे। चौथे या पांचवे दशक के प्रमुख प्रगतिशील कवियों में उनके समानधर्मी कुछ अन्य कवियों का जिक्र तो बार–बार किया जाता था, पर त्रिलोचन का बहुत कम। उनकी कविताओं को पढने के बाद यह बात साफ हो जाती है कि ऐसा क्यों है ? असल में त्रिलोचन एक ज्यादा गहरे अर्थ में प्रगतिशील हैं, और अक्सर उनकी प्रगतिशीलता सतह पर दिखाई भी नही पड़ती। उनकी कविता एक शान्त, गम्भीर मैदानी नदी की तरह है, जिसमें उद्वेलन हमेशा कहीं बहुत गहरे होता है। सतह की खामोशी से पाठक कई बार धोखा खा जाता है। उनकी 'झपास' कविता इस तरह शुरू होती है–"*आठ पहर की टिप्–टिप्। सड़क भीग गयी है। पेड़ों के पत्तों*

से बूदें। गिरती है टप्–टप्। हवा सरसराती है। चिडिया समेटे पंख यहां–वहां बैठी है।' बारिश के इन स्थिर और स्थानिक चित्रों के बाद कविता में अचानक एक मोड आता है–*"बादलों ने हलकी अगडाई ली। एक ओर चमक जरा बढ़ गयी। हवा नये आशुओं से यों ही बतियाती है। उनका सिर हिलता है। फूल खिल–खिलाते हैं।"* इस कविता में आये विशेषणों पर ध्यान दे तो बादल की अंगड़ायी 'हल्की' है और उससे पैदा होने वाली चमक भी 'जरा–सी',। कविता का शीर्षक भी 'झापस' (लगातार होने वाली हल्की बारिश) है, झंझावात या मुसलाधार बारिश नहीं है। पर सतह के नीचे झांक कर देखने पर, वस्तुओं के सम्बन्ध में कई बारीक स्तर खुलते दिखाई पड़ेगे। और हम पायेंगे कि पूरी कविता धीरे–धीरे एक खास दिशा की ओर बढ रही है। वस्तुओं के संबंध के भीतर से उभरने वाली इस दिशा का त्रिलोचन की जीवन दृष्टि से गहरा संबंध है। उन्होंने इस दृष्टि को अपने और अपने समय के जटिल संघर्षों के भीतर से अर्जित किया है। यह मार्क्सवाद तक पहुंचने का, त्रिलोचन का अपना बनाया हुआ रास्ता है, जिस पर वे निहायत सधे हुए कदमों से धीरे–धीरे मगर पूरे विश्वास के साथ आगे बढते हैं।

त्रिलोचन के लिए मार्क्सवाद कोई अमूर्त विचार–दर्शन नहीं बल्कि एक सच्चे कवि की छटपटॉहट और यातना है। इसे उनकी अनेक कविताओं–खास तौर से सॉनेटो और लम्बी कविताओं में देखा जा सकता है। 'नगई महरा' त्रिलोचन की एक ऐसी कविता है, जिसकी हिन्दी मे पर्याप्त चर्चा हुयी है। यह लम्बी और वाह्यत. वर्णनात्मक कविता के मंच पर कुछ भी नाटकीय या महत्वपूर्ण घटित होता हुआ दिखाई नहीं पडता ; पर सीधे–सपाट शब्दों के पीछे एक समूची दुनिया है, जहॉं बिना किसी घोषणा के चुपचाप एक पूरा युद्ध लडा जा रहा है । बहुत कुछ होरी के जीवन–युद्ध की तरह। त्रिलोचन की कविता में भाषा के विविध धरातल मिलते हैं ,पर नगई महरा की जमीन पर आते ही जैसे उनकी भाषा अपने घर में वापस आ जाती है फिर भाषा का सारा वाह्य रचाव, यहॉं तक की शब्दों का मुखर संगीत, आवेश और तनाव भी अपने आप खत्म हो जाता है। *"नगई खांची फॉदे बैठा था। हॉथों में वही काम। ऑखे उन हाथों को । हथवट चिताती हुयी। खॉची में लगी एक ऑख से मुझे भी देखा। और कहा बैठो उस पीढे पर। ....अच्छा बॉच लेते हो रामायन। तुम्हारे बाबू कहते थे। अब कोई क्या कहेगा । उनकी भीतर की ऑख खुली थी। सुर भी क्या कंठ से निकलता था। जैसे असाढ़ के मेघ की गरज । "*

त्रिलोचन के शिल्प की खास बात यह है कि किसी भी वस्तु का वह प्रतीकवत् प्रयोग नहीं करते बल्कि अपनी सारी काव्यात्मक जिम्मेदारी मे वे उसे 'वस्तु' ही बने रहने देते हैं। वस्तुतः इसका सम्बन्ध भारतीय साहित्य की रूप सम्बन्धी अवधारणा की एक विशिष्ट परम्परा से है, जिसके व्यवहारिक उदाहरण हमें अपनी लोक–कविता और क्लासिकी कविता में एक साथ मिल सकते हैं। यह परम्परा एक खास ढंग से प्रेमचन्द्र के कथा साहित्य में भी जीवित है। वहॉं भी वर्णन के क्रम में आने वाली वस्तुओं के प्रतीकों में बदल

डालने की जल्दी कहीं नहीं दिखाई पडती। 'नये पत्ते' और 'बेला' की कुछ कविताओं में निराला ने इसी तथ्य पर कला का प्रयोग किया है। 'नगई–महरा' में त्रिलोचन ने, कविता के सारे प्रलोभनो को एक तरफ रखकर और पूरी तरह अकाव्यात्मक हो जाने का खतरा उठाते हुये भी, इस पद्धति का अत्यन्त सधा हुआ इस्तेमाल किया है। वे गॉव–गवंई के कथा वाचक की तरह एक–एक दृश्य और घटना को सामने लाते जाते हैं और एक अद्भुत धैर्य के साथ इस बात का इन्तजार करते हैं कि तथ्यात्मक तफसीलों और ऊपर से तनाव युक्त दिखने वाला यह सारा वर्णन धीरे–धीरे परस्पर गुम्फित होकर एक अर्थपूर्ण रूपक मे बदल जाय। 'नगई–महरा' की कला का यही रहस्य है और बेशक कवि की यथार्थ दृष्टि से उसका कोई न कोई रिश्ता होना ही चाहिए । एक तरह से त्रिलोचन के लगभग पूरे काव्य में–फिर वह गीतात्मक हो, चाहे वर्णनात्मक–उनकी कला का यह बुनियादी साचा किसी न किसी रूप में हमेशा मौजूद रहता है। अपनी वर्णनात्मक तकनीक मे इसके कई रंग देखे जा सकते हैं । एक ऐसे युग में जब कला, अपने सिकुड़ते हुये पाठक वर्ग की रूचि के अनुरूप निरन्तर सूक्ष्म और विशेषीकृत होती जा रही हो, त्रिलोचन जैसे कवि का वर्णनात्मकता की सामान्य और लोकपरक पद्धति को , अपनी काव्य–कला का बुनियादी ढांचा बनाना एक जोखिम का काम है ; और कवि को लम्बे समय तक समकालीन कविता की पृष्ठभूमि मे रहकर उसकी कीमत भी चुकानी पडी है। वस्तुतः उनकी कविताये एक सघर्षरत कवि के अनुभव के ताप से तायी हुयी कविताये हैं।

असल में जनपक्षधरता की लम्बी राह में त्रिलोचन अकेले नहीं हैं। सुविधा भोगी व्यवस्था के प्रचलित जिन सांचों को वह अस्वीकार करते हैं, उनके साथ नागार्जुन भी उन्हें अस्वीकार करते हैं । जीवन यात्रा में जैसे धरती आकाश उनके साथ हैं, वैसे ही तुलसी, निराला और नागार्जुन भी उनके साथ हैं।

यह सही है कि त्रिलोचन ने कलागीत नहीं लिखे हैं, जैसे महादेवी वर्मा आदि ने लिखे हैं ; लेकिन देखना यह है कि उनकी क्षमता कलागीत लिखकर प्रमाणित तो होती, प्रयोजनधर्मी होने से रह जाती । एक बडे उद्देश्य की सिद्धि के लिए प्रतिभाशाली कवि जब स्वान्तः–सुखाय न रचकर लोकहित को प्राथमिक महत्व देता है, तब वैसा ही लिखता है, जैसा त्रिलोचन ने लिखा है।

तत्समनिष्ठ लेकिन निरलंकृत, प्रतीक और सायास विम्बविधान का भी निषेध करने मे समर्थ त्रिलोचन के गीतों की भाषा वर्णनात्मक काव्य के उपयुक्त होने पर भी बेजान नहीं है। उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् से भाव ग्रहण करते हुये एक गीत लिखा है:–

"कल्पना रूप धरकर आयी ।

रूप में मोहनी भर लायी ।

भाव स्थिर जननान्तर सौहृद।

वाणी निर्जन में लहर गयी।

रमणीय रूप मधु गीत लहर।

पर्युत्सुक मन में गये ठहर।"

प्रकृति गीतों के अतिरिक्त त्रिलोचन ने ऋतु गीतों की भी रचना की है। उनके ये ऋतुगीत बसन्त और पावस वर्णनों के क्रम में रचे गये हैं। बसन्त के प्रति वे आकांक्षा से भरे हैं तो बरसात के स्वागत मे पलक पांवड़े बिछाये हुये हैं । *"बरखा मेघ मृदंग थाप पर। लहरों से देती है जीव। रिमझिम–रिमझिम नृत्य ताल पर। पवन अथिर आये दादर, मोर, पपीहे बोले, धरती से सोंधे स्वर खोले मौन समीर तरगित हो लो। "* (सबका अपना आकाश)

त्रिलोचन के इन गीतों में नवगीत की कृत्रिमता नहीं है; आधुनिकतावादी प्रश्नाकुल मुद्राओं से बचकर स्थिर चित्त से त्रिलोचन ने आत्मा का राग अलापा है। उनकी काव्यभूमि किसान–मजदूर के जीवन से सम्बद्ध रही है। उसकी नैसर्गिक जीवन– चर्चा और परिवेश का त्रिलोचन ने सहज चित्रण किया है वह उन कवियो मे से नहीं है, जो शहर में स्थायी रूप से बसते हैं और प्रगतिशीलता की होड में यदा–कदा गॉव का स्मरण कर लेते हैं। बल्कि उनकी स्मृति में गॉव, देहात , लोक , जन आदि की अद्‌भुत यादें विद्यमान हैं।

गॉव त्रिलोचन का काव्य ससार है, जो उनके काव्य संस्कार को भी निर्मित करता है। यह सस्कार निसर्गत. उनके गीतों में व्यक्त हुआ है–*"हाथ मैंने ऊंचाये हैं उन फलों के लिए। जिनको बड़े हाथों की प्रतीक्षा है फलों को मैं देखता हूँ। जानता हूँ चीन्हता हूँ और मुझमें ललक भी है।"*(त्रिलोचन–तुम्हे सौंपता हूँ) त्रिलोचन में एक कलात्मक नियंत्रण, एक लगाव, अलगाव का युगपत् व्यापार पाया जाता है। वह आवेग के स्थान पर प्रत्युत्पन्नता से काम लेते हैं , और इसलिए उनकी सादगी विचलित और विगलित ना करके यह हमें चमत्कृत ही करती है। संकेतों और गूढ व्यंजनाओं के द्वारा अर्थ की पारदर्शिता के साथ आशयों को व्याप्ति कवि की असाधारण कवि शक्ति को उद्‌घाटित करती है फलतः त्रिलोचन न केवल ऐसा स्तर हासिल करते हैं जो न सिर्फ दूसरों के लिए बल्कि स्वयं उनके लिए भी–एक चुनौती है। इसे उन्होंने अपनी खोज में घटित परिवर्तन से हासिल किया जिसने स्वतः एक कलात्मक परिष्कार को जन्म दिया है और जो आरोपित दुरूहता के विपरीत नियंत्रित सादगी से निर्मित है।

⁝

****

अध्याय ६

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य

क : वैयक्तिकता

ख : शमशेर की वैयक्तिक संवेदना

ग : नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना

घ : त्रिलोचन की वैयक्तिक संवेदना

ङ : शमशेर ,नागार्जुन और त्रिलोचन के वैयक्तिक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय ६—खण्ड क
वैयक्तिकता :

क्या वैयक्तिकता की तलाश कवि के व्यक्तित्व की तलाश है ? क्या कवि का सामान्य जीवन में दिखने वाला व्यक्तित्व ही उसका रचनात्मक है ? क्या वैयक्तिकता का अर्थ कवि की व्यक्तिवादिता है ? क्या उसके अहं की बनावट और उसकी अभिव्यक्ति स्वरूप को ही एक ग्रंथ में खोजा गया है ? क्या वैयक्तिकता का अभिप्राय मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्ति के उन गुणों को रेखांकित करना है, जो उसे अन्य व्यक्तियों से अलग करते है ? वैयक्तिकता एक रचनाकार के सृजन का भावात्मक पक्ष है या एक विवशता ? इन सारे प्रश्नों का सीधा और सरल उत्तर देना संभव नही हैं।

कवि का भी एक निजी जीवन होता है, जिसमें उसका प्रेम उसके संघर्ष, उसकी पीडायें उसके संकल्प विकल्प आदि होते हैं। पार्थिव जीवन की और शर्ते कवि को भी उसी प्रकार पूरी करनी होती है जैसे समाज के किसी अन्य व्यक्ति को। जीवन के इन अनुभवों और अनुभूतियों से वह अपने रचना कर्म के स्तर पर कितना जुडा होता है और कितना उनसे मुक्त होकर सृजनरत होता है, यह निश्चित शब्दों में बता पाना संभव नहीं है। ऐसे भी कवि हैं जो अपने रचनात्मक व्यक्तित्व को अपने सामान्य व्यक्तित्व से काफी मुक्त कर सके है। ऐसा लगता है कि जब वे सृजन की भूमि पर अवस्थित होते हैं तो अपनी चेतना को एक नये लोक में संक्रमित होकर वे रचते हैं। परन्तु जितना ऐसा लगता है उतना वे अलग होते नहीं। कहीं न कहीं उनका अपना जीवनानुभव उसमें भी छन–छनकर, विशिष्ट बिम्बों और प्रतीकों में ध्वनित होता रहता है।

कवि की अभिव्यक्ति का एक धरातल ऐसा भी है जहां वह सीधे अपने प्रेम को, अपने संघर्ष को अपनी पीड़ा को अपने संकल्प को अपनी रचना में व्यंजित करता है। वह कोई आवरण या बहाना स्वीकार नहीं करता। कवि की आत्माभिव्यक्ति की यह बेचैनी छायावादी कविता से ही साफ दिखाई पड़ने लगती है। इस ग्रंथ में कवि की वैयक्तिकता की एक स्पष्ट पहचान उसकी ऐसी आत्म–परक रचनाओं के माध्यम से की गई हैं।

वैयक्तिकता और व्यक्तिवादिता में भेद किया गया है । वैयक्तिकता कवि की अपनी छवि को चमकाने की प्रक्रिया का अंग नहीं है न वह मात्र अकेलेपन, अज़नबीपन अथवा अपने घोघे में बंद कीड़े का आध्माग्रह ही है। वह तो वह सौरभ है जो प्रत्येक पुष्प को एक दूसरे से अलग करता है। कवि अपनी अनुभूति को ही रूपांतरित करता हैं अपने माध्मय से ही वाह्य को भी व्यंजित करता है। अपनी अनुभूति धारा के प्रति असमर्पित रहते हुए वह कवि का सच्चा कर्म कर ही नहीं सकता। प्रत्येक कवि अपने संस्कार अपनी प्रतिभा और परिवेश से अपने संयोग की पृष्ठभूमि के आधार पर अपनी एक स्वतंत्र रचना–दृष्टि विकसित करता हैं।

कवि की वैयक्तिकता को रेखांकित करने वाले तत्वों का मूल्यांकन करने पर जिसमें काव्य सौन्दर्य, बिम्ब–विधान या भाषिक संरचना प्रमुख है। ध्यान केन्द्रित करने पर कवि के आत्मत्व के अंर्तसंबध अनेक कोणों से उजागर हो जाते है। इस प्रक्रिया में कवि से कवि तक और युग से युग तक की छायाएं बदलती जाती हैं। असल में वैयक्तिक बोध के स्तर पर कवि की रचनात्मकता के समक्ष सबसे तीखी चुनौती लोक एवं व्यक्ति की चेतना के बीच का अन्तः संबंध होता है। कवि अथवा साहित्यकार की रचना उसके वैयक्तिक चिन्तन, अनुभूति एवं संवेदनाओं का ही व्यक्त रूप होती है। इस दृष्टि से ऐसे साहित्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती, जिसमे उसके रचनाकार का व्यक्तिगत पूर्ण रूप के ओत–प्रोत न हो।

फिर भी हिन्दी काव्य की लम्बी परम्परा में वैयक्तिकता के अनेक स्तर और स्वरूप रहे है। कभी–कभी इतिहास के ऐसे कालखण्डों में कविता धारा बही है, जब कवि की अपनी अनुभूति अपनी वैयक्तिक भावनाएं गौण हो जाती है और वह किसी राजपुरुष, किसी नायक, किसी दैवी व्यक्तित्व का यशोगान करना ही अपने काव्य की चरम उपलब्धि मानने को विवश हो जाता रहा है।

वैयक्तिकता के अतिशय आग्रह के कारण नयी कविता के कवि, कविता को आत्माभिव्यक्ति का साधन मानते हैं इसलिए उनकी अनुभूति के केन्द्र में उनका व्यक्तित्व होता है और अभिव्यक्ति के स्तर पर बार–बार कवि अपने 'मैं' को महत्व देते है। यद्यपि इस अहंवाद का इतना विकृत और भयावह रूप आया कि कविता 'स्व' के व्यामोह रूपी दलदल मे फसी दिखी । नयी कविता के कवि का 'मैं' बार–बार अनेक रूपों में लगभग हर कविता में सामने आता है। कविता में मैं की भरमार की यह स्थिति केवल व्यक्तिवादी कवियों के यहां की नहीं है, प्रगतिशील काव्यधारा के कवियो की कविताओं में भी है, लेकिन दोनो मे अंतर है। जहॉं नयी कविता की वैयक्तिक चेतना कूढमगज वैयक्तिक भवनााओं को उजागर करने मे रही वहीं समकालीन लेखन का 'मैं' समाजीकरण की सापेक्षता मे अपने बढाव को देखता है। नयी कविता मे ''मैं'' की भरमार को कुछ उदाहरणों से समझा जा सकता है।

मैं अहं का मेघ हूं[१]

''मैं प्रस्तुत हूं

इन कई दिनों के चिन्तन और संघर्ष के बाद वह क्षण जो अब आ पाया है।''[२]

''इस अधोमुखी घाटी में पड़ा हुआ,

निस्सहायं

---

१. नरेश मेहता, दूसरा सप्तक–पृ० १११

२. कीर्ति चौधरी, तीसरा सप्तक–पृ० ४७

मैं एक कुतुबनुमा हूं"[1]

"इन सबको दो मेरा वह स्नेह,

जिससे मैं वंचित हूं

केवल मुर्दा"[2]

"मैं समाज तो नहीं, न मै कुल

जीवन,

कण समूह में हूं मैं केवल

एक कण:"[3]

"मैं कनकटा हूं हेठा हूं

शेब्रलेट–डांज के नीचे मैं लेटा हूं

तेलिया–लिबास में पुरजे सुधारता हूं

तुम्हारी आज्ञाएं ढोता हूं"[4]

नयी कविता में "मैं" की अधिकता के ये थोडे से उदाहरण है। अगर कोई प्रयत्न करे तो ऐसे असंख्य उदाहरण नयी कविता से खोज सकता है। ऊपर के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि नयी कविता में "मैं" अनेक रूपों में उपस्थित है। व्यक्तिवादी भावधारा के कवियों का "मैं" बाकी दुनियां से अलग रहने में ही अपनी सत्ता की सार्थकता और सुरक्षा समझता है।यहां "मैं" अपने को 'अहं का बोध' मानता है। (नरेश मेहता) वह क्षण मे जीता हैं (कीर्ति चौधरी) वह अपने को नया आधुनिक कवि समझता है और काव्य तत्व की खोज में लीन रहता है।

व्यक्तिवादी धारा के कवियों के विपरीत प्रगतिशील धारा के कवियों में भी "मैं" उपस्थित है। लेकिन वह सारे जीवन जगत से कटा हुआ निष्सहाय , अकेला और आत्मलीन नहीं है। कहीं वह विनय पूर्वक अपने को कण समूह में से एक कण मानते हैं। यहां कवि का "मैं" समूह से अपनी सम्बद्धता प्रकट करता है और इतिहास की जीवन्त गति की एक इकाई के रूप अपनी सार्थकता समझता है। मुक्तिबोध की कविता में भी "मै" बार–बार आता है लेकिन हर बार वह खुद को व्यापक जन समुदाय से किसी न किसी रूप में जोड़ने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है।

---

१. मलयज–नयी कविता, अंक–४–पृ० ६०
२. लक्ष्मीकांत वर्मा–नयी कविता, अंक–पृ० ६२
३. शमशेर– कुछ कविताएं–पृ० १७
४. मुक्ति बोध–चांद का मुंह टेढ़ा हैं–पृ० १०६

"इन कवियों का रचना संसार वैयक्तिकता तथा सामाजिकता की समन्वित मंजूषा है। लेखक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से समाज को साहित्य का रूप प्रदान करता है। साहित्य रचना की भावाकुलता में सर्जक अक्सर सब कुछ भूल जाता है। उसके भीतर प्रसव वेदना की तरह केवल एक ही अनुभूति उमड़ती रहती है, कि अपने को यथासम्भव पूरा का पूरा अभिव्यक्त कर दे। रचना के समय वह केवल इतना ही सोचता है कि भीतर जो कुछ उमड़ रहा है, वह सब का सब बाहर आ जाये।"[1]

नयी कविता में 'मैं' की इस भरमार से छायावादी कविता में 'मैं' की स्थिति की तुलना की जा सकती है। इस तुलना का एक कारण यह भी है कि छायावादी कवि भी कविता को स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति मानते थे और अपने व्यक्तित्व की महत्ता के प्रति सजग थे। द्विवेदी युग की कविता की निराकार या अमूर्त सामूहिकता की तुलना में छायावाद का 'मैं' अधिक मूर्त जीवन्त सामाजिक और मानवीय दिखाई देता है।

विचार करने की बात यह है कि इस 'मैं' शैली का मूल स्रोत क्या है? इस स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति मनुष्य या दीन–दुखियों की वेदनाकी आत्मीय अनुभूति हैं। यह आत्मीय अनुभूति कवि को जनता से जोड़ती है। जनता की जीवन दशा से कवि सच्ची सहानुभूति ही जनता की सद्चित वेदना की स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति के लिए कवि को प्रेरित करती है। छायावादी कविता मे कवि की सहानुभूति के विस्तार से उसकी स्वानुभूति का भी विस्तार होता है और उसका 'मैं' भी अधिक व्यापक होता है।

वैयक्तिक अवधारणा के इस फलक पर ही आत्मान्वेषण की प्रवृत्ति होती है। यद्यपि नयी कविता में आत्मान्षण के नाम पर अहं की स्वीकृत, अहं की अभिव्यक्ति का आग्रह और अहं की आस्था की वस्तु के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ। लेकिन आत्मान्वेषण के गहरे अमूर्त फुहार से भरी दुनिया मे आगे जो प्रगतिशील काव्य–रूप में आत्मसघर्ष थी, से अलग वैयक्तिक मनोभावो का ऐसा परिदृश्य प्रस्तुत किया गया जिसमे कविता एक सार्थक संवाद स्थापित करने में समर्थ हुयी। प्रगतिशील भावधारा के कवि वैयक्तिकता को महत्व देते हुए भी उनकी काव्यानुभूति केवल आत्मान्वेषण तक ही सीमित नहीं कही बल्कि उसमें आत्मसंघर्ष गहनता से अनुस्यूत है। उसका आत्म संघर्ष अपनी चेतना से बाह्य जगत के संबंध का संघर्ष है। अपने व्यक्तित्व की खोज में प्रगतिशील कवि समाज सापेक्ष है, समाज निरपेक्ष नहीं। वह अपने आत्म संघर्ष में भी बराबर व्यापक जीवन जगत से जुड़ा रहता है। कदाचित् इसी संघर्ष को मुक्तिबोध ने कलाकार का सच्चा संघर्ष माना है। उस संघर्ष में समाज की उत्पीडनकारी शक्तियों से संघर्ष भी शामिल हैं।

आत्मसंघर्ष का सच्चा रूप हमें मुक्तिबोध की कविताओं में मिलता है । अंधेरे में कविता में जो 'पह' और 'मैं' के बीच का संघर्ष है वह मुक्तिबोध का आत्मसंघर्ष ही है। उनकी कविताओं में जो तनाव और द्वंद्व है,

---

१. डा० नामवर सिंह–इतिहास और आलोचना–पृ० २२

वह भी आत्मसंघर्ष का परिणाम है। मुक्तिबोध की कवितायें एक संघर्षशील कवि की कवितायें हैं । उनका संघर्ष आत्माभिमुख होने के लिए नहीं, आत्मविस्तार पाने के लिए हैं । उनके संघर्ष में निरंतर ही उनके सच्चे मित्र शामिल होते हैं । मुक्तिबोध के आत्म संघर्ष में समाज के व्यापकतर छोरों का छूने की कोशिश है। उनकी रचनाओं में अपनी चेतना के तंग दायरे से निकालकर संघर्षशील जनता से एकता स्थापित करने वाले व्यक्ति के आत्मसंघर्ष की जटिल प्रक्रिया की प्रमुखशाली अभिव्यक्ति है। और सिर्फ यह मुक्तिबोध तक ही सीमित नहीं, बल्कि मानवीयता को अपना एकीभूत आदर्श मानने वाली समकालीन कवि कावक्तिक बोध निश्चित रूप से वृहत आवेगों से संयुक्त है। स्पष्ट है भावाग्रह तथा सम्प्रेषणीयता के स्तर पर वर्तमान दौर की कविता पाठक से आत्मसती कारण पर जोर देती है।

स्पष्ट है कि भावग्रहण तथा सम्प्रेषणीयता के स्तर पर वर्तनान दौर की कविता पाठक से स्वयं के आत्मसातीकरण पर जोर देती है और काव्यान्वति के साथ–साथ अर्थ के स्तर पर समन्विति पर। वह मनुष्य को एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगी नजरिए से देखती है।

****

अध्याय ६—खण्ड ख
शमशेर की वैयक्तिक संवेदना :

शमशेर की कवितायें विषय केन्द्रित कवितायें नहीं, संवेदना केन्द्रित कवितायें है। वे स्मृति के अनुभव से अपनी कविता रचते हैं। उनकी कविता मे अनुभव सीधे नहीं आते, बल्कि अनुभव की स्मृति स्वयं एक अनुभव हो जाती है। उनकी स्मृतियों में ढेर सारे दृश्य हैं और कविता इन सबके बीच उस रिश्ते की तलाश है, जो इन सबको अलग—अलग नही रहने देता बल्कि इसे एक "विजुवल" में बदल देता है। यह चित्रकला की तकनीक है—शमशेर बडे चित्रकार भी तो थे। यही कारण है कि उनकी कवितायें किसी मामूली से लगने वाले दृश्य को भी इस तरह से खोल देती हैं कि हम चकित हो उठते हैं—*गायें मैली, सफेद, कालीभूरी, पत्थर ढुलके पड़े। पेड़ स्थित नीख दो पहाड़ियां धूम विनिर्मित पावर्न*[1]

यहां शब्द हैं, शब्द में चित्र और है देखने वो की आंख, जो हमें भी दृश्य दिखाती है। उनकी कविता संवेदना के उस अदृश्य तारों को पकड़ती हैं, जिनके अर्थ और आशय धीरे—धीरे खुलकर हमें आवृत्त कर लेते है। उनके लय की भगिमा, सवेदना की तीव्रता, रंगों की गहराई और ख्यालों की लकीरें मिल कर जिस कविता का निर्माण करती हैं, उसमें कविता के न सिर्फ वाह्य बल्कि आत्मपक्ष का भी चित्रण हो जाता है।

उनकी कविता वैयक्तिक अनुभूतियों को बेहद सघन तरीके से प्रस्तुत करती है। उनकी कविताओं से गुजरना एक अनुभव होता हैं। कवि जैसे अपने मन को उडेल देना चाहता है। जो कुछ भी सामने आता हैं, वह हृदय की गहन आस्था और निष्कलुषता से पोषित, एक विशुद्ध आवेग धर्मिता में तमाम चीजों को अपने साथ बहाये ले जाना चाहता है। आस्था सब कुछ को समेट लेना चाहती है। प्रसन्नता और कृतज्ञता तमाम—तमाम चीजों में एक कौतुक एक विस्मय को खोज निकालाना चाहती है। जो वस्तु हृदय से बाहर है। वह हृदय में आना और उससे एकाकार होना व दूसरी जगह किसी दूसरी किसी चीज़ से जुड़ जाना चाहती है। *तुम वह हो। आज मेरे लिए तुम इसकी हद हो। उस बात की हद हो जो मेरे लिए हो—तुम वह मेरी हद हो तुम, तुम मेरे लिए मेरी हद हो, मेरी हद जो तुम मेरे लिए..............*[2]

यह अकारण नहीं है कि इन कविताओं में चलने, दौडने, उड़ने, बहने की क्रियाओं के असंख्य संदर्भ हैं। यह रचना दृष्टि अधिक से अधिक वस्तुओं को परस्पर "इटिग्रेट" करती है। और समग्र दृश को एक अटूट और अखण्ड इकाई के रूप में प्रस्तुत करना चाहती है।

---

१. प्रतिनिधि कवितायें—पृ० ३६
२. प्रतिनिधि कवितायें—पृ० ७८

"अंग्रेजी समीक्षा में कहीं प्रसंग आता है कि कलाओं का चरम साध्य संगीत की स्थिति को उपलब्ध कर लेना है, यानी रचना में वस्तु और 'रूप' एक दूसरे मे विलीन हो जायें। शमशेर की कविता मे सगीत की मनः स्थिति बाबर चलती रहती है। एक ओर चित्रकला की मूर्तता उभरती रहती है और फिर वह संगीत की अमूर्तन में डूब जाती है। चित्रकला, संगीत और कविता धुलमिल कर उनके यहं रचना संभव करते हैं। भाषा में बोलचाल के गद्य का लहजा और लय में संगीत का चरम अमूर्तन इन दो परस्पर प्रतिरोधी मनः स्थितियों को उनकी कला साधती है।"[1]

कविता आंख मूंदकर छूमंतर हो जाने का हृदय नहीं है, वह तो कवि के अपने जीवन दर्शन और स्थापनाओं की अभिव्यक्ति है। कविता, संसार का कल्पित सृजन नहीं, बल्कि वास्तविक संसार को रचने की दिशा में उठाये सार्थक कदम की प्रतिध्वनि है। इसीलिए शमशेर कविता और उसके साहित्य को बहुत ही सजगता, व्यक्तिगत जीवन की सुगढ़ सुन्दरता और अपार निष्ठा के रूप में लेते है। यही कारण है कि पृथ्वी और उसकी वस्तुओं को देखने की अनवरत अकुलाहट भीतर से उमड़ता उल्लास, आस–पास के बेशुमार बिम्ब और दृश्य, अर्मूत से मूर्त की ओर ले जाने वाली तडप, ये सब कुछ उनकी कविता में आता है। ये उनके वैयक्तिक अनुभव हैं – लेकिन हैं बहुत मानवीय। एक ईमानदारी है, जो शमशेर के रचना संसार में प्रकट होती है। वह उनका पारदर्शी तेवर है जहां सहज दिखने वाली अनुभूतियों मे खास निर्वैयक्तिता है। जितने कोणों से देखें, यह पारदर्शी क्रिया रचनात्मकता की समीपता और दूरी को यक सां प्रस्तुत करती चलती है। शमशेर में एक जबरदस्त 'मूड' है; जिसके दर्जनों 'शेड्स' हैं।

" शमशेर साक्षत् कवि है: निजी भाषा, निजी मुहावरे, निजी प्रतीक और निजी बिम्ब खोजते पाते हुए। अनुभव मे डूबे और दूसरों पर अनुभव के ही मानों में व्यक्त होते हुए। वैयक्तिक अनुभूतियों को भाषा रूपी सामाजिक माध्यम में ढालने पर झिझकते से, और अनुभूतियों की प्रामणिकता अक्षुण्ण रखने को तत्पर।"[2]

शमशेर की दुनियां बहुत बड़ी है। एक बार में आप वहां नहीं पहुंच सकते। असल में इसके लिए कई पाठक जन्म लेने की आवश्यकता है। शमशेर के कई रंग हैं, कई कोंण। यह जानना काफी उत्तेजक होगा कि शमशेर कैसे किसी पदार्थ, दृश्य या घटना को पूर्ण कविता में बदल डालते हैं। इस अन्विति को पाने के लिए कवि में प्रबल व्यवस्था और अराजकता दोनों ही होनी चाहिए। साथ ही झंझापूर्ण संवेदना, एक उद्दामता–जो अपने पर कवि को, कविता के अलावा किसी और चीज के लिए नहीं छोड़ती। वास्तव में वे एक विलक्षण रचना–प्रक्रिया के कवि है। इसलिए उनकी रचना–प्रक्रिया का शास्त्र समझने वालों के लिए वे बहुत उर्वर

---

१. डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी–हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास–पृ० २४३
२. अजित कुमार–कविता का जीवित संसार–पृ० १११

प्रदेश है। यह एक ऐसी रचना–प्रक्रिया है जो कवि के भीतर–बाहर, निकट और दूर, नियंत्रण और अनियंत्रण दोनों में एक साथ – पर काफी कुछ अदृश्य तरीके से घटित होती है। इस रचना प्रक्रिया को समझना तभी हो सकता है, जब हम उनकी कविताओ को उसी संवेदना से पढें। उनकी आत्म परकता इसमें कहीं आड़े आती जरूर है और वह जटिल से दिखायी पडते हैं, पर कलात्मक अभिव्यक्ति मे जटिलता तो बहुत स्वाभाविक है। कला सहज हो सकती है पर इस हाहाकारी ब्रह्मांड में जब कुछ भी सहज नहीं तो कला भी सहज नहीं हो सकती। शमशेर यदि कठिन हैं तो वह इस कला को कलात्मकता तक ले जाकर ही कठिन है। शमशेर के यहां कवितायें हैं जिनमें विषय नहीं, विषयवस्तु है। इन कविताओं में अर्थों का एक असंगठित संसार है। *हार–हार समझा मैं तुमको अपने पार। हंसी बन खिली सांझ बुझने को ही।*"[1] कवि शब्दों–वाक्यों के अर्थ–विशेष को लेकर चितित नजर नही आता। एक भाषा उसके विन्यास से पाठकों की मुठभेड है। जहां शिल्प ही वस्तु है। इसलिए शमशेर की कवितायें अतर्मुखी है, लेकिन अपने सत्य को परिभाषित करती हुयी। इसलिए शमशेर के यहां, 'शब्द' शब्द मात्र न होकर सम्पूर्ण चरित्र है। (भूमिक दूसरा सप्तक) शमशेर के लिए भी कविता अंततः शब्द है; पर शब्द जो अन्ततः मानवीय स्थिति में है। वह जो लिखते हैं, रचित करते है – वह अनुभव में तात्कालिक, स्वभाव मे तत्वदर्शी, कथ्य में सबकी आवाज लिए हुए, विन्यास में नाटकीय चौकन्नापन और असर मे धर्म सरीखी है। इसलिए यहा आत्म खोज है, मोह भंग, अस्तित्व की उपस्थिति है, प्रेम है और प्रेमान्तरण है, स्मृतियां, अवसाद, निराशा है, अमूर्तता और सुर्यिलिमिस्टिक चित्रण का एक संसार है जो अपने अर्थो में एक यात्रा के लिए निमंत्रित करता है। एक अप्रस्तुत विचलन का शिल्प और भाषा, जिसमें नेपथ्य के स्वर हैं। कई कविताओं मे पूर्व कथन हैं। ये कवितायें नये युग धर्म की अग्र प्रस्तुति हैं। "कविता में शब्दों का ऐसा संयोजन और यह वैभव कालिदास के बाद शमशेर के ही कविता में संभव हो पाया है। शब्द रंग भी है, रेख भी और सुर भी। शब्द में निहित इन संभावनाओं की तलाश जैसी शमशेर में है, अन्यत्र विरल है।"[2] ऐसी भव्य कवितायें शमशेर के अलावां किसी और ने साधी याद नहीं पडता।

शमशेर ने एक विशेष सघनता को अपनी कविताओं में स्थापित किया है। वह शब्दों की असीम सम्भावनाओं को पूरी आसानी से सामने लाते हैं। शमशेर जब मनुष्य, धरती व प्रेम के तत्व–बोध को कविता में बदलते हैं तो कहीं भी लापरवाही नजर नही आती। वहां केवल अनुशासनात्मक सगठन है। कविता में अनुशासन के विन्यास के साथ शमशेर का सच अचानक प्रवेश नहीं करता और न काव्यात्मक अधिकार रेंगते–रेंगते घुसता है। कवि एक लम्बी मुठभेड़ के बाद सब कुछ अर्जित कर लेता है, तो कागज पर उतारता है, यद्यपि उसे न कर पाने की आतुरता भी वहां काफी समय तक ठक–ठक करती है। "शमशेर के यहां

---

१. प्रतिनिधि कविताएं–पृ० २८
२. नामवर सिंह–प्रतिनिधि कवितायें–भूमिका–पृ० ७

अतिकथन बहुत कम हैं और वे मुख्यतः अल्पकथन के ही कवि हैं। "हिन्दी में इस शताब्दी में कहे और अनकहे के बीच कोई और कवि उतना नहीं ठिठका है जितना शमशेर । इतनी अर्थगर्भी निरखता भी शायद ही किसी और कवि के शब्दो के बीच हो, जितनी उनके यहां । इस नीरवता व कई बार अधूरे कथन या अर्धकथन का शमशेर की ऐंन्दिकता से भी गहरा सम्बन्ध है। प्रेम हो या प्राकृतिक दृश्य, शमशेर की भाषा उसका ऐन्द्रिय अधिग्रहण उसके बुनियादी रहस्य को भेदकर नहीं, बल्कि उसे चरितार्थ कर, करती हैं। वे उद्‌घाटन के नहीं, अर्ध उन्मीलन के कवि हैं। कविता में, जैसे कि जीवन में भी, एन्द्रिकता समूची स्पष्टता से सम्भव नहीं है। उसे अनिवार्यतः स्पष्ट और अस्पष्ट का झिलमिल सा स्पेस चाहिये। शमशेर की कविता यह स्पेस अंत तक बनाये और बचाए रख सकी।"[1] शमशेर की विवेकवान गंभीरता कविता को कविता बनाये रखती है। वे जीवनानुभव के माध्यम से इतिहास की समझ विकसित करने में हमारी सहायता करते है। इसलिए शब्दों के सार्थक हस्तक्षेप को स्वीकार करते है।

शमशेर के यहां भाषा की रोमानियत है। वह इसे छिपाते भी नहीं हैं, लेकिन जो महत्वपूर्ण है– वह यह कि इस रोमानियत को वह आदमी की नियति से जोड़ते हैं।" चित्रकारी के रंगों में बन स्वयं फैल–फैल मैं गया हूं, कहां–कहां! "

मैं हूं अब, वह था कल.........

होगी कल –यह दुनिया

मेरे जीवन में।

आओ–ले जाओ

मुझसे मेरा

प्रणय का धन

सर्वःवह है सब तुम्हारी–

तुम–

वह 'तुम' हो।[2]

शमशेर की कविता में सुन्दरता शुशबू और गरमाहट के यही ठोस सन्दर्भ है। आंख, कान, नाक, त्वचा आदि संवेदन स्त्रोतों का भरा–पूरा इस्तेमाल हमें उनके यहां मिलता है। मिथक, दर्शन आदि में उन्हें जाने की जरूरत नही हुई, क्योंकि वह कविता को कविता के मूल स्त्रोतों से और मानवीय माधुर्य छवियों को अपनी ज्ञानात्मक संवेदना युक्त भाषा के माध्यम से सामने लाते हैं। शमशेर की भाषा अन्य कवियों से भिन्न,

---

१. अशोक बाजपेयी–कविता का गल्प–पृ० ६३–६४

२. डा. जगदीश गुप्त–कवितान्तर–पृ० २७

खूबसूरती से सक्रिय है। एक ही वस्तु पर, वह चीजों को एक चित्रकार की निगाह से देखते हैं, संगीत पारखी के कान से सुनते हैं और भाषा के साथ अपने जीवंत रिश्ते को प्रमाणित करते हैं।

उनकी वैयक्तिक अनुभूतियो को उनके बिम्ब–विधान से बिलगाया नही जा सकता। शमशेर और बिम्बों का रिश्ता गहरा और पुराना है। वे अक्सर कविता को बिम्बों में ही पूरा कर देते हैं। " जिसमे कहीं कहीं प्रसाद से अधिक सूक्ष्म विधान और अज्ञेय से अधिक मितकथन देखा जा सकता है। प्रकृति और मानवीय अनुभव की अंर्तप्रक्रिया उसका मूल स्वर है जिसे वे अपने बहुत स्पष्ट, और कुछ कलात्मक रीति से अस्पष्ट बिम्बों के सहारे परिचालित करते हैं।"[1] वस्तुतः शमशेर मे बिंब से कविता नहीं बनती, वरन बिंब और कविता एकाकार हो जाते हैं–

एक नीला आइना

बेठोस–सी यह चांदनी

और अंदर चल रह हूं मैं

उसी के महातक के मौन में।

मौत में इतिहास था

कनकिन जीवित, एक, बस।

और कविता का अंत होता है–

रह गया सा एक सीधा बिब

चल रहा है जो

शांत इंगित सा

न जने किधर।

यहां काव्य अनुभव की शुरुआत और परिणति बिंब में ही होती हैं। दोनोंमें अंतर यह है कि शुरू का बिंब व्यायाखययित हैं जबकि अंत में एक अज्ञात–अनाम बिंब का अनुभव मात्र शेष रह गया है। इसी प्रकार–

अब गिरा वह अटका हुआ आंसू

सांध्य तारक सा

अतल में।

(एक पीली शाम)

"ऐसा नही कि नये बिम्ब, साधित व्यवस्था के परिणाम हैं बल्कि एक ही मूल बिम्ब को एक सर्जनात्मक अर्थलय की व्यवस्था, में सूक्ष्म व गहन ऐन्द्रीय प्रतिबिम्बों या अनुबिम्बों में पुनरूपलब्ध करने से है।

---

१. डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी–काव्यभाषा पर तीन निबंध–पृ० १२६ --

सामने की कोई भी साधारण–सी चीज उठाकर शमशेर उस पर कविता करने लगते हैं। सबसे पहले उस चीज का अक्स उभरता है। एक बिम्ब, जिसमें वह वस्तु अपनी निजी सत्ता व परिवेश के साथ गतिशील या सक्रिय रूप में मौजूद होती है। अब आगे कवि उस वस्तु का चरित्र उरेहता और आविष्कृत करता है, जिसमें उसका सौन्दर्य, उसका मानवीय स्वरूप उभर उठता है। इस बिम्ब विधान की प्रक्रिया से बार–बार गुजर कर स्वभावतः वह वस्तु प्रतीक मे बदल जाती है। यह प्रतीक प्रक्रिया अनायास इस विस्मय से भर देती है कि वह वस्तु किसी बदलाव से गुजरकर नहीं, बल्कि स्वभावतः प्रतीक थी।"[1] दूसरे शब्दों में शमशेर अपने प्रतीक गढ़ते नहीं, सुपरिचित जीवन जगत से उठाते हैं।

शमशेर की सजग ऐन्द्रिक संवेदना केवल बिम्ब नहीं रचती, वह बिम्ब में विचार और नया आवेग भी रख जाती है। कुछ एक अत्यत परिचित अनुभव शमशेर के यहां कब अनोखा चमत्कार लगने लगेगा, कहना कठिन है। परिचित दुनिया (जैसे ऋतुओ के अनुभव ,सुख–दुख, संघर्ष यातना) में झांकने के लिए भी एक उद्‌दाम उत्सुकता शमशेर में बनी रहती है। एक चाक्षुष संवेदन की पकड के साथ, साथ ही वहां और कुछ भी है, जो शमशेर की कविता को आदिम और समकालीन अनुभवों का ताप देता है। जाहिर है कि वह और भी कुछ केवल क्रांतिकारी संदेश नहीं है; यद्यपि वह भी है।

"शमशेर की दुनियां में घुलनशीलता है या फिर परस्परता। कोई भी एक चीज, एक चीज नहीं है। जो कुछ भी है, समिश्रित है, घुलती हुई या घुली हुई सी। या फिर परस्पर संक्रामक, परस्पर संक्रांत परस्पर संक्रमणशील। उनके शब्द, केवल शब्द नही, चित्र हैं, पत्र हैं, इमारत हैं, मूर्ति हैं, नाटक, नृत्यभंगिमा, रिपोतार्ज हैं, संगीत की सी स्वर लिपियां हैं, मेहराबें हैं (गुंबद नही), वर्तमान को प्रागैतिहासिक युग तक और प्रागैतिहासिक को भविष्य तक वह दिगन्त देते हैं और काल को अविभाज्य करके दिक् को काल में घुला देते हैं। वे बोधों के पार तक ही राहें नापते हैं, जहां शब्द और भाषा, चित्र और मूर्तियां, छंद और अछंद, सब नृत्यमान रह जाते हैं।"[2] केवल आत्मलीनता, निरावृत्त तल्लीनता, अद्वैत शम, जिसे यह शेलकर ही सिद्ध कर पाते हैं । आधुनिक हिन्दी में कोई और नहीं (कम से कम कवि तो कोई नहीं)।

"दरअसल शमशेर की दुनिया में कोई फांक नहीं है, दरार नहीं है, वह गहरी और अथाह है, इसलिए वह इकहरी नहीं, श्लिष्ट, तहदार, तरल, तीव्र, गति में स्थिर जैसी है। शमशेर की दुनिया अचेतन, उपचेतन को खोलती, भाषाओं के पार चली जाती है।"[3] ऐसा कवि दूसरा इस सदी में हुआ है, ऐसा जान नही पड़ता। नींद और थकान के बीच जन्म लेती यह दुनियां "आदमी की अमरात" है, दैहिक स्तर पर शायद " नर्वस

---

१. डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी–काव्यभाषा पर तीन निबंध–पृ० १२६
२. श्रीराम वर्मा–पूर्वग्रह अंक ८३ नवं–दिस. १६८७–पृ० ६
३. वही

ब्रेकडाउन हो। सरबस देने, देते रहने में यह होना ही हैं। यह सर्वस्व दान मूल्यों के लिए है। वे ही शख्स के आईनें हैं, जिसके लिए वे शहीद तक हो जाना चाहते हैं, क्योंकि आइने ही जिन्दगी हैं (आइनों तुम मुझे मार डालो, आईनो तु मेरी जिन्दगी हों'') पहली पंक्ति मात्र पर ध्यान दें तो मृत्यु, संत्रास, पलायनवाद यानी अस्तितत्ववाद और रोमांटिसिज्म हाथ लगेगा लेकिन साथ में दूसरी पंक्ति पर ध्यान दें, तब सामने गांधी खड़े मिलेगें।

भाषा पर इतना बोझ किसी ने नहीं डाला, जितना शमशेर ने । अकेले शमशेर पहले कवि हैं, जिन्होंने ऐसे असाध्य को साध्य बनाया ।यह उनकी मौलिकता है। उनके गद्य और काव्य, दोनों में बेहतर लय है और व न कही टूटती हैं, न बिखरती हैं, उसमें विरामो, कोष्ठकों, टाइप के रूपों, बीच में खाली जगहों, उल्टे पुल्टे या एक ही शब्द के दो टूटे अर्थवान टुकडों की क्षतिपूर्ति करती हैं।

''शमशेर की दुनिया मे एक अनुभूति कुण्ड है, जिससे जो शब्दायमान होता हैं, वह एक वाष्पमय धुआंधार रच देता है। ''ऐसे क्षणों में समूर्तन की सहस्त्र धाराएं या पारदर्शी अतल अगाध '' न जाने कहां,'' न जाने किधर'' उडा ले जाता हैं , संमूर्तन अन्ततः अमूर्तन का सोपान·हो जाता है और शब्द की परिपकृत दिशा निरवधि में खींच ले जाती हैं यह रचना एक विराट ''मै'' की सृष्टि में है, जो '' आकाश के मस्तिष्क'' में है, आकाश जो स्वयं समुद्र है और बादल नौकाए। यह ''मै'' कभी–कभी ठीक से पकड में नहीं आता, यद्यपि इसका अव्याख्येय बोध हो जाता है।''[1] इस संबंध में डा. रंजना अरगडे का कथन है........''शमशेर की कविताओं में विम्ब उनकी कविता के अर्थ विकास में योग देते है। और इसीलिए उनके विम्ब कई बार वर्गीकरण की सीमा को लांघ जाते हैं। क्योंकि शमशेर की रचना–प्रक्रिया जटिल है और अभिव्यक्ति संकेतात्मक, इसीलिए उनके बिम्ब अधिकतर संकुल होते हैं। वे ऐन्द्रिय और अतीन्द्रिय दोनों अनुभूतियों, को अपनी रचनाओं में, बिम्बों के द्वारा प्रस्तुत करते हैं।''[2] बिम्बों का जो ससार शमशेर की रचनाओं में प्रकट हुआ है। उनके रचना–संसार का सौन्दर्य व्यक्त होता है।''उनके रचना संसार में शाम, समुद्र, दिवस, सूर्य, आकाश, क्षितिज, नदी धूप, लहरें, किरणों, बादल इत्यादि बिम्बात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं।'' (वही)

उनकी कविता में अनेक रंग हैं। ''वैसे तो उनकी सारी रंग सृष्टि हल्के रंगों की है, पर एक सावंलापन और गहरापन सतत् रहता है। हल्की रेखाओं और रंगों से वे ऐसा प्रभाव उत्पन्न करते हैं कि पाठक के मन में उसकी एक छाप अंकित हो जाती है।''[3] इसीलिए शमशेर ऐन्द्रिय अहसास के कवि हैं। ऐसी ऐन्द्रियता शमशेर की लगभग चारित्रिक विशेषता है ; लगभग अमूर्त लगते दृश्यालेख को अपनी संवेदना के

---

१. श्री राम वर्मा–गो नहीं वह मै–पूर्वग्रह नवं. दिस. १९८७–पृ० ६
२. डा. रंजना अरगडे–कवियों का कवि शमशेर–पृ० ४७
३. डा. रंजना अरगडे–कवियों का कवि शमशेर–पृ० ४७

सहज ताप से मूर्त करना, अनोखा संयम और मितव्ययिता के साथ अपने आस–पास के प्रति गहन संवदेनशीलता उनकी कविता की सहज विशिष्टताएं हैं। जो दीखता या महसूस होता है, उसे भाषा मे सहेजना और दिखा पाना कठिन काम है, हालांकि यह कविता का एक बुनियादी काम ही है। और ऐसी कविताओं की इन दिनों भरमार है। जो बिम्बों और रूपकों के ढेर के बावजूद हमें कुछ साफ–साफ दिखा नहीं पाती। "ऐसे में शमशेर की कवितायें पढना कई मानों में दृष्टिवती रचनायें पढना है। वह कविता को, जैसी उनकी स्वाभाविक दृष्टि वापस देना है । भाषा शमशेर के यहां 'बोलती' उतना नहीं है जितनी 'देखती' है और उसके काव्य प्रभाव में हम भी अपने देखने की शक्ति को अधिक एकाग्र और सक्रिय कर पाते हैं।"[1] शमशेर की खूबी यह है कि उन्होंने हिन्दी और उर्दू की काव्य परंपराओं को मिलाकर एक ऐसा लहजा तैयार किया है, जो केवल उनका है। उस लहजे में हिन्दी का संस्कार और उर्दू की अदा है। उसका बहुत ही सधा हुआ इस्तेमाल हमें उनकी कविताओं में मिलता है। मजे की बात यह है कि एक लहजा होते हुए भी हमें "उनकी कविताओं में काव्य भाषा के कई स्तर मिलते हैं। उदाहरण के लिए वे यह भी लिखते हैं कि *'शब्द नीलगूं'* और यह भी कि *उसमें चमक न थी अभी।* एक इसकी *नीलाहट सी लिए हुए। जैसे कोई आइना हो महज।* यहां एक ही भाषा के दो स्तर शमशेर ने कायम किये हैं। दूसरी ओर उनका यह भाषा प्रयोग है, *"न जाने किसने मुझे अतुलित छवि के भयानक अतल से निकाला.......... फिर थरथराता रहा जैसे बेंत। नेत्र काय..............*।" इन उद्दहरणों में अतुलित छवि की यह शब्द योजना ध्यातव्य है। 'अतुलित' और काय दोनों ही हिंदी कविता में प्रयुक्त पुराने शब्द हैं, जो कि शमशेर के हिन्दी संस्कार का परिचय देते हैं। लेकिन जो उनके लहजे में मिलकर अर्थ की नयी चमक और और ताजगी से भर उठे हैं।"[2]

---

१. अशोक बाजपेयी–कुछ पूर्वग्रह–पृ० २१
२. नंद किशोर नवल–कविता का आठवां दशक–पृ० ३३

अध्याय ६—खण्ड ग
नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना :

नागार्जुन कर मूल स्वभाव रागधर्मी है। कोई भी वाद या विचार तब तक उनके काव्य का अंग नही बन सकता जब तक कि वे रागात्मक धरातल पर उससे एकाकार न हो जायें। राग की यही प्रखरता उनके काव्य को अधिक रूचिकर और प्रभावकारी बनाती है। छायावादियों में राग की यह प्रखरता सबसे अधिक निराला मे देखी जा सकती है। बाद के नये कवियों मे इसका इस्तेमाल प्रतीकों और बिम्बों के संदर्भ मे किया है। नागार्जुन की रागमयता की तीव्रता का बोध काव्य के संदर्भ मे सर्वाधिक है, यद्यपि वे प्रकृति और श्रमिक—जनता वाले काव्य के सदर्भ मे उतने ही समृद्ध दिखाई देते हैं—सवाल यह है कि छायावादी आकुलता और प्रगतिवादी भावावेग मे अन्तर क्या है ? क्या दोनो ही समान स्तरीय है ? कहना होगा कि छायावादी आवेगों में सृजनधर्मी व्यक्तित्व का संतरण है तो प्रगतिवादी आवेगो मे आधारभूत वैचारिक अंकुश काम कर रहे हैं। यही कारण है कि समकालीनता के लिहाज से प्रगतिवादी आवेग अधिक स्वस्थ और स्वीकार्य लग रहा है। छायावादी आवेगो मे सौन्दर्यपरकता जिन आधारों पर प्रदर्शित की गयी है, वे सवेदन—आधार अत्यन्त विशिष्ट और असाधारण हैं। जबकि प्रगतिशीलों की राग भावना सामान्य और साधारण संवेदनों की अभिव्यक्ति करता है। स्पष्ट ही दोनो ही सौन्दर्य—दृष्टि का बारीक भेद इसमें काम कर रहा है। छायावाद परिष्कृत, पवित्र, मधुर दृष्टि को अंगीकार करता है। कह सकते हैं छायावादी सौन्दर्य अधिक सांस्कृतिक है, जबकि प्रगतिवादी सौन्दर्य मे अनगढता, लोक सामान्यता और यथार्थोन्मुखता है। ' खुरदुरे पैर ' कविता की प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार है—

'खूब गये

दूधिया निगाहों में

फटी बिवाइयों वाले खुरदुरे पैर

धँस गये

कुसुम—कोमल मन मे गुट्ठल धट्ठों वाले कुलिस—कठोर पैर'

दूधिया निगाहों के साथ ' खूब ' (खुभना) क्रिया का जो प्रयोग किया है, कवि के सारे व्यवहार को साफ कर देता है। ' दूधिया निगाहों ' की बिरादरी मे ' खुरदुरे पैरों ' का खुभना केवल नागार्जुन ही देख एवं सह सकते हैं। इसलिये एक बार पुलकित है अंग—अंग मालिश फिजूल है' जैसी पंक्ति को गुनगुनाते हुये जब नागार्जुन ने शमशेर से पूछा कि, 'बताओ यह पंक्ति किसकी है ?' तब शमशेर ने पूरे विश्वास और निश्चय के साथ कहा था—'तुम्हारे अलावा किसी दूसरे की नहीं हो सकती । ऐसी शब्द—योजना कोई दूसरा करता ही

नही।' नागार्जुन के सौन्दर्य बोध को समझने के लिए यह उदाहरण एक परम दृष्टांत है। क्लासिक और रोमांटिक सौन्दर्य परम्परा के काल्पनिक आदर्शवाद ठहर पाता है। जरूरत पडने पर वे दोनों का ही सर्वोत्तम अपने साथ घसीट लाते है। 'बादल को घिरते देखा है','कालिदास', सिन्दूर तिलकित भाल' और ढेर सारे ऋतु गीत उनके परम्परा–विजय के प्रमाण हैं। परम्परा का सार्थक और जीवंत उपयोग करने में वे अतुलनीय हैं। क्या मिथ, क्या भाषा, और लय, वे सर्वत्र बेरोकटोक निःसंकोच और निर्भय होकर जाते हैं और हर उत्तराधिकारी की भांति उस उजड़े और निष्प्राण को काटकर अलग कर देने के बाद अपने काव्य–मार्ग पर धड़ल्ले से हो लेते हैं। ऐसा सौन्दर्य –समारोह ही नागार्जुन की पहचान है। पर कभी–कभी वे 'यह तवम थीं' , जैसी कविताए भी लिखते हैं जिसमें प्रगतिवादी रोमांस की झलक देखी जा सक्ती है।'

क्लासिक कवि नागार्जुन जब 'आंखिन देखा' अनुभव बखानते हैं तो वे पूरा चित्र पाठक के सामने आ जाता है। बाल्मीकि, व्यास, तुलसीदास, कबीरदास, निराला और मुक्तिबोध इसी नाते क्लासिक कवि हैं। वह 'दो शिखरों' के अन्तराल वाले जंगल का पूरा चित्र पाठक को दिखाकर कहीं यात्री के साथ जंगल में धँसते हैं और कहीं प्रणियों का करूण क्रंदन सुनकर ठिठक कर उसकी पूरी कथा कहने बैठ जाते हैं।

मैंने देखा' नागार्जुन की कविता ऐसी ही क्लासिक स्थापत्य है। *मैनें देखा.../शिखरों पर/दस दस त्रिकूट हैं/ यहॉ वहॉ पर चित्रकूट है/ दायें–बायें तलहटियों तक फैले इनके जटा–जूट हैं/ सूखें झरनों के निशान है /तीन पथों मे बहने वाली/ गंगा के महिमा बखान है/ दस झोपड़ियॉ दो मकान है/ इनकी आभा दमक रही है/ इनका चूना चमक रहा है।'*

कविता के जो कथानक का कौशल है, वह पहले की पंक्तियों को ध्यान में रखने पर बाद में उससे नया अर्थ भर उठता है। दो शिखरों के अंतराल वाला जंगल, सामंती व्यवस्था का जंगल है और उसमें 'लगी आग' तबाही और बेरोजगारी का महाजनी संकट हैं। ग्रामांचल से भागकर किसान के लडके मैदान में काम तलाशने गये हैं। वह किसान–पुत्र हैं, इस लिए महाजनी युग की 'डॅाट–डपट सहते हैं, दफ्तर में भी चुप रहते हैं।' विद्रोह का दबा हुआ यही असंतोष नागार्जुन की क्लासिक कविता का आधुनिक जनवादी कविता बनाता है। "वस्तुतः नागार्जुन की जीवन दृष्टि क्लासिक और रामाण्टिक के बीच बनती और संवरती है। जीवन के स्वस्थ और गतिशील पक्ष उसे युगीन और अर्थगर्भ बनाने में मदद करते हैं। इसलिए उसे हम परिवर्तनकारी यथार्थपरक जीवंत दृष्टि से सम्पन्न सौन्दर्य कह सकते है जिसमें समकालीन जीवन की विडम्बनाओं की कटु आलोचना और भावी समाज के आदर्शों और वर्तमान संघर्षो का आग्रह साथ–साथ विद्यमान हैं। अपने उपन्यासों में वे सामंतवाद के मृतप्राय अवशेषों, आधुनिक समय की राजनीतिक बदमाशियों तथा श्रमिक जनता के संघर्षो का सुनियोजित चित्रण करते हैं । सामंतवाद के कुछ मूल्य ऐसे भी हैं जिन्हें हमारी सभ्यता भी शिरोधार्य कर सकती हैं, नयी राजनीतिक प्रणाली के कुछ अकुंर ऐसे भी हैं जिनसे नया समाज तबाह हो

जायेगा।"[1] इसी श्रृंखला में वे गाँवों के भाई–चारे और परिचय की रक्षा करना चाहते हैं और महानगरी सभ्यता मे उगते–पनपते अजनबीपन का विरोध भी करते हैं छद्म बुद्धिजीविता, अलगाववाद और स्वार्थपरकता इसी महानगरीयता के अभिशाप हैं। अपनी एक कविता घिन तो नही आती है ?' में वे नगर में रहने वाले पॉश लोगों से पूँछते हैं–

सच–सच बतलाओ

दूध सा धुला सादा लिबास है तुम्हारा

निकले हो शायद चौरंगी की हवा खाने

बैठना था पंखे के नीचे, अगले डिब्बे में

ये तो बस इसी तरह

लगायेंगे ठहाके, सुरती फांकेंगे

भरे मुँह बातें करेंगे अपने देश–कोस की

सच–सच बतलाओ

अखरती तो नही इनकी सोहबत ?

जी तो नही कुढता है ?

घिन तो नही आती है ?

कुली मजदूरों की यह दुनिया जो सोते वक्त सपने में भी धरती की धड़कन सुनती रहती है, उसी शहर कलकत्ते की है जिसे लक्ष्य कर कवि ने *'उन्नत प्रदर्शन'* *' पैसा चहक रहा है', 'काली माई', 'धकचो खोका ओइ जे गांधी महत्ता', 'विज्ञापन सुन्दरी'* , *'चौराहे के उस नुक्कड पर'* , *'प्लीज एक्सक्यूज मी'* , *'करने आये हैं चहल कदमी'* और *'बोला ढाकुरिया का पानी'* जैसी कविताये लिखी हैं। पटना, कलकत्ता, दिल्ली और इलाहाबाद का नागार्जुन के जीवन मे कितना महत्व है, इसे उनकी कविताओं को देखकर आसानी से समझा जा सकता है। औरों के लिये कलकत्ता भव्य और दिव्य हो सकता है लेकिन नागार्जुन के लिये कलकत्ता या तो पूँजीवादी सत्ता की परम अश्लीलता है या फ़िर श्रमिक आबादी की सीलनपूर्ण कोठरी का हिस्सा, जिसका निवास महानगर के बाहर के हिस्से में है। नेह–छोह, परिचय और आत्मीयता की गाँठे वह इन्ही महानगरों के बीच मेहनतकश मजदूरों के मध्य आर्थिक विपन्नताओं से सूझते मज़दूरों के बीच खोलते हैं। जिन मूल्यों की तलाश उन्हे है वे चौरंगी और पार्क सर्कस के झड़े–पूँछे आलीशान भवनों मे नही बेलियाघाट, मानिकतल्ला , की खोलबाडियों में है। सभ्यता के बाहरी रंगरोगन और चाकचिक्क से विमुग्ध होकर समाज की नंगी हकीकतों

---

१. "विजय बहादुर सिंह – नागार्जुन और उनका रचना संसार–पृ० ७४

को भूल जाने वाली कविताई उनके पास नही है। अतः उद्योगों का समर्थन करते हुये भी वे महानगरीयता के आतंक और उसमे खोते जाने वाले आत्मीय प्रसंगो के लिए निरन्तर चिंतित रहने वाले रचनाकार है । इसीलिए उन्हें पढ़ते हुये हम अपनी सभ्यता की विडम्बनाओं से गुजरने को मजबूर हैं । चीजों, रिश्तों, और घटनाओं के रूपों की शिनाख्त की तमाम कोशिशों नें नागार्जुन की कविता में गहरी राजनीतिक समझ को पैदा किया है। यह राजनीतिक समझ कविता के रेशे–रेशे में गूथी हुयी है और कविता के पूरे नजरिये से छलकती है।उनकी कविता अपने इर्द–गिर्द की दुनिया और उसके साथ आदमी रिश्तों को पहचान कर व्यक्त करता है, लेकिन कलात्मक रुप से निजी और सार्वजनिक जीवन के बीच यानि कवि के व्यक्तिगत अनुभवों और संवेदनाओं और बाहर की दुनिया के विराट जटिल यथार्थ के बीच जो संबंध है और जो कई बार टकराते भी हैं उन्हें समझकर व्यक्त करना नागार्जुन की कविता का एक खास उद्देश्य है । इसीलिए वे आज के सच के गूगेंपन को समझते हैं:–

सत्य को लकवा मार गया है

वह लम्बें काठ की तरह

पड़ा रहता है सारा दिन, सारी रात

वह फटी–फटी आखों से

टुकुर–टुकुर ताकता रहता है सारा दिन, सारी रात –[1]

लेकिन सच से ऑख मिलाते हुये नागार्जुन जीवन की रुपात्मकताओं से विमुख नहीं हैं; और क्यों हो? जब उनकी दृष्टि हर समय, हर जगह जीवन को तलाशती ही रहती है तो उसमें जीवन्तता का अभाव नहीं हो सकता। एक संश्लिष्ट दृश्यावली लगातार ऑखो के सामने रहती है। उनके टटके हुये दृश्यबन्धों को देखकर यह आसानी से समझा जा सकता है। इन दृश्यों मे रस्म अदायगी नही है और वैयक्तिक संवेदना को व्यक्त करते हुये भी–'वे अपने रचनाकार की समूची ऊर्जा के साथ हमसे मुखातिब होते हैं। यह कवितायें जनकवि नागार्जुन की निश्छल आत्मीयता तथा स्नेह से सिक्त रचनायें हैं अनुभूति और विचार के गहरे ताजमेल मे लिखी कवितायें हैं, दक निहायत आत्मसम्मानित कवि की निष्छल अभिव्यक्तियां हैं, और ऐसों का ही संबोध्य हैं जिनसे सही मायनों मे कवि ने कुछ बहुत बहुमूल्य पाया है और संजोया है।ये उन मूल्यों और निष्ठाओं के प्रति समर्पित कवितायें हैं जिन्हे नागार्जुन के आदर और स्नेह के पात्र इन व्यक्तियों ने जिया है। इनमें रवि बाबू है, कालिदास है, महात्मा गॉधी हैं, भारतेन्दु और निराला हैं, केदार नाथ अग्रवाल हैं, और बहुत ढेर सारे लोग– वे सारे लोग जिनके साथ नागार्जुन गलबहियॉ कर सकते थे। वे सभी उनकी वैयक्तिक संवेदना के गृहीता

---

१. नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें–२, पृ०–२१५

हैं।–'कहने का मतलब यह है कि नागार्जुन की से कवितायें बड़े सात्विक मनोभावों में जन्मी कवितायें हैं। इन कविताओं गे कवि की मनः रिथति, अनेक तेवरों गें अपने को अभिव्यक्त करती है, जिन्हे इनकी भाषा तथा शैलीगत भंगिमाओं में लक्षित किया जा सकता है। केदार, नागार्जुन के आत्मीय हैं और उनपर लिखी गयी उनकी कविता अनेक अर्थो मे एक विशिष्ट कविता है। "अपने समानधर्मा, समवयस्क, समकालीन रचनाकार के प्रति ऐसी निश्छल हार्दिकता कम ही दिखायी देगी। केदार पर लिखते हुये नागार्जुन जैसे स्वयं केदारमय हो गये हैं और बिना किसी अतिरंजना के उन्होने बुन्देलखण्ड की धरती के इस कवि को उस धरती के सारे ऐतिहासिक और भौगोलिक वैशिष्ट्य के साथ उसके अर्न्तवाह्य की समूची वास्तविकता में बड़े मनोयोग से प्रस्तुत किया है। कविता लम्बी है, परन्तु अपनी आन्तरिक लय में अटूट और एकतान। नागार्जुन की कल्पना, यथार्थ का उनका पर्यवेक्षण, अनुभूति और विचार की समरसता को सही फलश्रुति तक पहुँचाने वाली उनकी रचना प्रक्रिया और समूची भास्वरता तथा काव्यात्मक वैशिष्ट्य के साथ प्रस्तुत कर देने वाली उनकी चित्रात्मक भाषा और शैली कितनी प्रभावी है इसका उदाहरण उनकी यह कविता है–*केन–कूल की काली मिट्टी वह भी तुम हो...........*।"[1] कहना नही होगा कि नागार्जुन की कविता मे गहरी संवेदना निहित है इसीलिये वह सहज कविता है। यह सहजता बाहरी जीवन के अभिव्यक्ति के साथ–साथ ही उन कविताओं में भी नजर आती है जहाँ कवि बिल्कुल निजी प्रसंग उठाता है–

साध्य नभ में पश्चिमांत समान

लालिमा का जब अरूण आख्यान

सुना करता मै सुमुखि उस काल

याद आता है तुम्हारा सिन्दूर

तिलकित भाल।[2]

इतनी मौलिक, इतनी रसप्रवण, इतनी रागरंजित, रसार्द , शालीन गरिमा और उदात्तता से युक्त नागार्जुन की ये पंक्तियाँ गार्हास्थिक प्रेम की अद्भुत अभिव्यक्ति है। सच तो यह है कि प्रणयानुभूतियों को व्यंजित करने वाली यह शीर्ष स्थानीय कविता है। इसमें प्रिया के स्मृति के समानान्तर ही नागार्जुन का कवि मिथिलांचल की सुखद मादक स्मृतियों में डूब जाता है । आम, लीचियॉ, धान के खेत, कमल, कुमुदिनी, तालमखाना उसकी आँखों में तैर जाती हैं। नागार्जुन का विरह मात्र विरह नहीं है उसमें करूणा का गहरा पुट है। इस प्रकार– *तुम नहीं हो पास मैं तो तरसता हूं*

---

१. डा० शिवकुमार मिश्र–भूमिका– नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें–२, पृ०–१६
२. चुनी हुयी रचनायें–पृ०–३०

प्यार के दो बोल सुनने के लिए

एक ही दस अगुंलिया नही हैं कामी कदाचित

रेशमी परितृप्तियों का जाल बुनने के लिए ।.....

और जब कवि रेशमी परितृप्तियों का जाल बुन लेता है तब जी भर कर गंध रूप रस और स्पर्श का भोग मी कर लेता है। इसी क्रम में कवि की उस मनोदशा को मी विस्मृत नहीं किया जा सकता है जिसके बशीभूत होकर वह सहज अनुराग और सौन्दर्यानुभूति से भरकर प्रभात बेला में अपने पास ही लेटी प्रिया को जगाता हुआ बिहाग गीत गाने का अनुरोध करता है–

पास ही सोई पडी श्लथ कुंतला

प्रेयसी की थप–थपायी पीठ

जग गई तो दिखाकर तारे बचे दो–चार

कहा मैंने पकड उसका हाथ

दो घड़ी का हमारा इनका रहा है साथ

हो रहे विदा गा दो सुमुख एक विहाग।.....

यह अनुराग है जिसके प्रारभ विकास और परिणति समी स्थितियों एक सम है

जो उदात्तता की भूमि पर, सामाजिकता के परिप्रेक्ष्य, में जीवनगत अनुभूतियों का बहुत अनुभूतमय चित्रण है। स्पष्ट है कि यह सब कुछ नागार्जुन में एक बडं मानवीय आशय के साथ, बडे विस्तार और गहराई के साथ आया है । यह सच है कि परकिया प्रेम काल्पनिक प्रेम तथा प्रेम के प्रचलित समारोहों का आयोजन करने का अवकाश जरूर उन्हें नहीं रहा परन्तु दाम्पत्य प्रेम को जिन थोडी सी कविताओं को उन्होंने अभिव्यक्त दी, वे न केवल उनके हृदय के राग को, बल्कि सात्विक निष्ठा को उनके छलकते, छल–छलाते प्यार को व्यंजित करता है। इन कविताओं में एक खास किस्म का जो रूमानी भाव है, वह वायवीय रोमांस से पैदा नहीं होता बल्कि हमारी ही दुनियॉ के ठोस संदर्भो से निर्देशित होता है । इस रूप में नागार्जुन की कविता बहुत विश्वसनीय कविता है। वह आदमी में विश्वास बनाये रखने का कारण बनने वाली कविता है। यह संभावनाओं के प्रति सचेत रहने वाली और इस रूप नें हमें सचेत करनी वाली कविता है। लेकिन इस प्रकार का सरलीकरण उनकी कविताओं में किसी रूपवाद की सृष्टि नहीं करता, बल्कि जीवंतता, अवसाद में उल्लास और अंधेरे में प्रकाश के बेशुमार चित्रों की कविता है। इस प्रकार यह सामान्य की विशिष्ट कविता है। जिसने अपनी चारों ओर की दुनियॉ के आपसी रिश्तों को जानने वाली, समझने वाली कविता है। नागार्जुन की सबसे बड़ी विशेषता उनकी कविता में पारदर्शी तत्वों की प्रमुखता है। उनकी *अकाल और उसके बाद, नीम टहनियां, बहुत दिनों के बाद, अन्न पचीसी के दोहे* आदि समी कवितायें साफ–साफ बयान करती हैं। "कवि

अपने आस–पास के जीवन और उसकी संवेदना के साथ बहुत करीब से जुडा हुआ है। दूसरे इन कविताओं में शायद ही कोई स्थल हो, जहां स्पष्टता का अभाव हो। इसलिए कहने की आवश्यकता नहीं है कि नागार्जुन इसी विशेषता के चलते अपने समकालीन कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय और जन जीवन के निकट हैं।"[1]

यही कारण है कि इन कविताओ में जो कुछ भी वर्णित किया गया। वह बहुत ताजा और मार्मिक साथ ही उद्‌बोधनशील लेकिन लुभावनी कविताछवियो को हमारे सामने लाता है। इन लुभावनी कविताछवियों में प्रकृति का अंकन भी है। जो नागार्जुन की वैयक्तिक संवेदना और उनके निजी मनोभावों को बखूबी प्रेषित करता है। इन छवियों में रमने वाला कवि कभी *बादल को घिरते देखता है* कभी बसंत की अगवानी में नीम की दो टहनियों को हिलते देखता है। उसे काली सप्तमी में चाद और शरद पूर्णिमा के चांद में अद्‌भुत दृश्य बंध पाता है। और कभी पहाड़ो की विशालता पर वह मुग्ध होता है। लगता यूं है जैसे कवि के भीतर का कलाकार पूरी तरह सजग है। तभी कभी–कभी ही सही अपनी उद्‌बुदध चेतना को पीछे ढकेल कर अपनी कलम तूलिका से वाह्य प्रकति की टटकी छवियों को उतारने के लिए आतुर दिखता है।–

दूर कहीं अमरायी में कोयल बोली परत लगीं चढने झींगुर की सहनाई पर

वृद्ध वनस्पतियों की ठूंठी शाखाओं में पोर–पोर टहनी का लगा धहकने

टेसू निकले मुकुले के गुच्छे गदराये अलसी के नीचे फूलों का नभ मुस्काया।

धूप के सौन्दर्य को भी नागार्जुन ने आत्मीयता से देखा है। उसमें उसे स्निग्ध कपूर गंध मिश्रित ताजगी और उल्लास का सम्बल पाया। अपनी यायावरी के चलते नागार्जुन जर्बदस्त भ्रमण शील रहती रहे। उनके चित्रों में प्रकृति के इतने भिन्न रूपों की जो कमनीय छवि हमें लगातार मिलती है वह इसी कारण से है। बादलो की तरह भ्रमण शील नागार्जुन बादलों पर बहुत आशक्त हैं–

"झुक आये कजरारे बादल

कूक उठे मोर

टर्राये मेढ़क

पहुंच कर धीरज के छोर पर

दम साध लिये धरती ने"[2]

यहां सिर्फ धरती ही दमसाधकर नहीं, बल्कि स्वयं नागार्जुन भी इन कजरारे बादलों को दमसाधकर देख रहे हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से वर्षामंगल कविता अत्यंत महत्वपूर्ण बन पडी है जिसमें कवि ने वर्षा की समस्त विशेषताओं को इस तरह निरूपित किया है जैसे कि वह अभी होने ही वाली है। *युगधारा* में कवि

---

१. रामनिहाल गुंजन–नागार्जुन रचना संसार –नई कहानी अंक १० जुलाई १६८८–पृ० २१७

२. नागार्जुन चुनी हुयी रचनायें दो–पृ० १२४

ने बादल को घिरते देखा और यहां वही कवि शिशु घनों को हिरण की तरह आकाश में चौकड़ी भरते चित्रित कर रहा है। भस्मांकुर खण्ड काव्य में जो प्रसंग वर्णित है, उसमें प्रकृति का योगदान न केवल विशिष्ट है अपितु अविस्मरणीय है। बसत के वैभव के अनगिनित मादक चित्र इस कवि की रागात्मक चेतना को प्रमाणित करते हैं। कवि ने शिव और पार्वती के भावी मिलन और उनके प्रेम के बड़े मनोवैज्ञानिक शैली में अभिव्यक्त किया है। इस मिलन की सांकेतिक व्यंजना प्रकृति के उपादानों द्वारा करायी गयी है–

शाखायें हो उठी खूब छतनार

रोक ना पाई आलिंगन की चाह

लतिकाओं ने पकड़ी सुख की राह

दीर्घ प्रलंबित थाम लिये भुजदंड

यहां प्रकृति के वर्णन को प्रेम के साथ सम्बद्ध किया गया है। निश्चित रूप से इस पूरी प्रकिया में नागार्जुन का कवि, संवेदना की मानवीय तह तक अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आश्रय लेते हुए जाता है। यह जीवन की रागधर्मी भंगिमा, कविता के सौष्ठव को न सिर्फ बरकरार रखती है, बल्कि नागार्जुन की कविता पर अत्यधिक तात्कालीन होने का आरोप लगाने वालों के लिए भी यह एक उदाहरण है। तात्कालिकता का जो आवेग राजनैतिक कविताओं में देखने को मिलता है, रागात्मक बोध की कविताओं में यह तात्कालिकता जैसे कहीं परिदृश्य से गायब हो जाती हैं, और एक शुद्ध मानवीय–आवेग जिसके पोर–पोर में संवेदनात्मक घनत्व का लाघव अनुस्यूत दिखाई देने लगता है । यह कविता के शुद्ध रूप को उसकी कलात्मक भंगिमा को बचाये रखने के नागार्जुन के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिये। असल में जो कवि जितना ज्यादा राजनीतिक रूप से प्रबुद्ध होगा, मानवीय रागात्मक की मात्रा उसमें उतनी ही ज्यादा होगी । निश्चततः रचना का ऐश्वर्य वहां विद्यमान होगा और एक विशिष्ट किस्म की सर्जनात्मक अनुभूति वहां होगी । यह जीवन के कर्म और अनुभव की भाषा का काव्यात्मक रूपांतरण है । " समकालीन कविता में चीजों को बचा लेने की मंशा बार–बार दोहरायी गयी है। आज की विशेषतः नवें दशक की–कविता का यह सर्व प्रियम् प्रत्यय रहा है । ये सारे कवि जीवन की अच्छी–अच्छी और जरुरी चीजों को बचा लेने की चिंता में गहरे उद्विग्न हैं।"[1]

उद्विग्नता के इस दौर में आज के कवियों को बाबा नागार्जुन से प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिये । जिनके यहां मनुष्य होने के मूलभूत गुणों को न सिर्फ बचाये रखने के लिए पूरा सलीका है, बल्कि वहां पर किस तरह से इसे सहेजा जाये यह भी बताया गया है । स्पष्ट है कि मानवीय राग विराग की चिंतायें भी वहां हैं । कवि

---

१ शम्भू गुप्त – वर्तमान साहित्य जुलाई २००१–पृ० १७

के अंदर एक दृढ विश्वास है और यह इसलिए है कि उसमें एक ऐसी सामाजिक जन आस्था है कि वह निरंतर अपने को उस विशाल समूह उसके मनोविज्ञान उसके क्रियाकलाप सभी से संबंध बनाकर रखते हैं । यही कारण है कि नागार्जुन की कविता भाव बोध के विशाल फलक और विस्तृत परिधि को छूती है ।

बाबा में कोई दुराव छिपाव नहीं है– शुद्ध पारदर्शी आत्मा हैं। जैसे हैं वैसे हैं। ठेठ हैं तो हैं। जिन मनुष्यों से ऊंची नाक, उजले कपडे वाले घिन करते हैं बाबा उन्हें गले लगाते हैं। जिनके गले में माला डाली जाती है, उन्हे बाबा सेतुवा पिसान ले के खेद लेते हैं । बाबा को कोई रोक नहीं सकता। न शिल्प का टंटा न सौंदर्य बोध के शास्त्र। बाबा किसी हदबंदी चकबंदी नाकाबदी को नही मानते। निराला के टक्कर का वैविध्य है। इसीलिये उनकी कविता मे पाये जाने वाले सभी बोध रूपांतरित होते हैं। बाबा वर्गीय बुद्धिजीवी हैं। सांस्कृतिक मार्च करते हुये डेढ हड्डी के अलख जगाते जीव। नागार्जुन में संवेदना का दो टूकपन है और इस समझदारी का वर्गीय आधार नागार्जुन उस संवेदना को राजनैतिक बौद्धिक रणनीति का अग्रदूत भी बना लेते हैं। और इसलिये बाबा राजनीति के रंगे सियारो को दौडा–दौडा कर गरियाते हैं। उन्होने एक सतत् संवाद, एक मुसल्सल रिश्ता भारतीय जनता के साथ चलाया और बनाये रखा। मीर के शब्दों मे कहा जाये तो–पर मुझे गुफ्त गूं अवामे से है। निराला की भी गुफ्त गूं अवामे से है। मीर ने ही दिल की खराबी का ताआलुक दिल्ली की खराबी से जोडा था। जाहिर है एक क्षयिष्णु राजसत्ता से ही जनता के दरिद्रीकरण की प्रक्रिया उपजती है। नागार्जुन की कविता की जड़ें भारतीय मनुष्य की विपत्तियों और उनके लड़ने की युयुत्सा मे हैं। इसीलिये उनकी कविता बेजोड़ है। उन्हाने भारतीय जनता की आकांक्षा और प्रतिरोध, उद्विग्नता और स्वप्न के बारे में एक सतत् सजगकता बनाये रखी हैं। इसीलिये कि उन्होने अपने समय को और भारतीय सम्पूर्णता का राजनीतिक पदावली मे दर्ज किया है। उन्होने इस जनता के साथ एक अपनापे का व्यवहार रखा है। वे उसके साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलने वाले साथी है। भारतीय यथार्थ के तनाव को एक तनावहीन और प्रायः एक लिरिकल उत्तेजना के साथ व्यक्त किया। इसलिये कि उन्होने कविता के आचरण और कवि के आचरण मे किसी राजनीति या सांस्कृतिक फांक का निषेध किया है। "उन्होने कवि की सार्थक भूमिका की चुनौती हमारे सामने रखी है। इसीलिये कि धुरीहीन, राजनीति दारिद्रय, अपसंस्कृति की घोर संक्रात्मकता और सामाजिक दृष्टि से क्षयुष्णु और पतनशील समय में उन्होने सबसे कमजोर और सबसे ज्यादा शोषित की चिंता और उसमें उसकी विदग्ध उपस्थिति को केन्द्रीय महत्ता दी है। अभिजात्य को उन्होने एक समर्थ्य फिर भी ठेठ किसानी अंगूठा दिखाया है। इसीलिये कि उन्होने किसी भी कामवादी तटस्थता का निषेध किया है। इसलिये कि बाबा नागार्जुन ने वर्षों की भयावह उपेक्षा के बावजूद अभिजात्य अचेतन और अमूर्तता के बरक्स वस्तुवादी सोच की अलख जगाये रखी है।"[1] इसीलिये हिन्दी की वस्तुवादी रचना धर्मिता के और यदि कविता की कोई दूसरी परम्परा है। तो वह उसके प्राण स्रोत हैं।

---

१. देवी प्रसाद मिश्र–जन प्रसंग–सितम्बर १६८६–पृ० ६५

अध्याय ६ खण्ड घ
त्रिलोचन की वैयक्तिक संवेदना

समकालीन कविता के व्यापक परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर एक तथ्य यह उजागर होता है कि आज की रचनाशीलता में विचार संवेदना के भिन्न आयाम प्राप्त होते हैं, जो यथार्थ के वाह्य और आंतरिक पक्षों के सापेक्ष द्वंद्व को रेखांकित करते हैं। इनमें राजनीति, इतिहास, समाज आदि के आशय, अपनी अर्थवत्ता प्रकट कर रहे हैं, तो दूसरी ओर प्रेम, प्रकृति, पारिवारिक बिंब आदि रूपाकार, यथार्थ के आंतरिक पक्ष को सवेदना के धरातल पर प्रकट कर रहे हैं। संवेदना के इस जैविक रूप में विचार और बोध के *" अन्डर करेन्ट्स"* प्रवाहित होते हैं। इस दृष्टि से त्रिलोचन एक ऐसे कवि हैं, जो *"जनपद"* और जन के कवि होते हुए भी उनमें, संवेदना का वह रूप भी प्राप्त होता है, जो प्रेम, प्रकृति तथा संवेदना के भिन्न सघन और तरल रूपो को *"अर्थ"* देता है, और जो उनकी काव्य संवदेना का एक अभिन्न अग है ।

त्रिलोचन के काव्य मूल्यांकन में इस तथ्य को स्वीकार करना जरूरी है कि उनकी कविता में जहां बाह्य पदार्थ अपनी पूरी शिद्दत से आता है, वहीं उनकी काव्य सरचना में यथार्थ का आंतरिक पक्ष भिन्न रग रूपो मे आता हुआ हमारे मर्म को स्पर्श करता है। वस्तुतः त्रिलोचन की संवेदना *" सभी कुछ "* को समेटने का प्रयत्न करती है, जो यथार्थ को संवेदित कर सके। त्रिलोचन की एक कविता *" क्या–क्या नहीं चाहिए"* मे कवि अपने व्यापक 'तुम' को सम्बोधित करता हुआ कहता है– *'और यह जान सको, तुमने एक जीवित हृदय का स्पर्श किया है।* ऐसे हृदय का, जो देशकाल के प्रभाव से प्रभावित है और *' मेरे हृदय को जान लो, प्यार , घृणा उदासीनता, सहानुभूति, मुझे क्या–क्या नहीं चाहिए।'* (अरधान से) कहकर अपनी सहज सवेदना का संप्रेषण करता है। इसके आंतरिक यथार्थ में प्यार, घृणा, सहानुभूति, प्रकृति, बिंब आदि की ऐसी भंगिमायें हैं , जो हमारे अंतस को झकझोरती ही नहीं हैं, हमारी अंतश्चेतना को उद्वेलित भी करती हैं। इसी प्रकार त्रिलोचन 'पास' नामक कविता में जो कहते हैं , वह संक्षिप्त होते हुये भी , अव्याख्येय सा लगता है और इसके सौन्दर्य के सिर्फ महसूस किया जा सकता है–

" और थोड़ा, और आओ पास,
मत कहो, अपना कठिन इतिहास।
मत सुनो अनुरोध बस चुप रहो,
कहेंगे सब कुछ तुम्हारे श्वांस।।

यहां कठिन इतिहास का न कहना, और दूसरे स्तर पर "सब कुछ तुम्हारे श्वासों का कहना" में जीवन की 'हल्की' त्रासद दशा का जो संकेत हैं, वह एक सूक्ष्म संवेदना का ही रूप है। यही कारण है कि

त्रिलोचन के संवेदना के चित्र, एक दृश्य–चित्र में तब्दील हो गीतिमयता की सीमा तक पहुंच जाते हैं। यह गीतिमयता, लय का एम प्रवाहमय रूप है, जो हमें उनके 'गद्यकाव्य' में भी प्राप्त होता है। एक स्थान पर कवि कहता है– *"गीतमयी हो तुम, मैने यह गाते–गाते जान लिया"............। तुमको पथ पर पाते–पाते रह जाता हूं और अधूरी समराधना। प्राणों की पीड़ा बन कर नरीव आंखों से बहने लगती है, तब मंजुल मूर्ति तुम्हारी और निखर उठती है।*[1] यहां भी मंजुल का संस्पर्श किसी गहरी पीड़ा या संवेदना से है। यह एक आंतरिक सत्य का रूप है, जो हमें त्रिलोचन की सृजन प्रक्रिया से प्राप्त होता है।

त्रिलोचन की यह पीडा और संवेदना मात्र व्यक्तिगत नहीं है, वे अपनी वैयक्तिकता को 'परिवेश' में बिछा ही नहीं देते हैं, बल्कि उसमें 'समो' जाने की दशा तक आ जाते हैं और यह तभी होता है, जब कवि की पीडा हद तक बढ जाती है कि –

" और जब भी पीडा
बढ़ जाती है बेहिसाब,
तब, जाने, अनजाने लोगों के
जाता हूं, उनका जाता, हंसता, हंसाता हू। "[2]

यह " हो जाना ही" जीवन का वह रूप है, जो उसे अर्थ देता है और कवि के अनुसार वह जीवन जो हमें मिला है, उसका मोल–तोल "अकेले कहा नहीं जाता।" दुख–सुख एक भी । अकेले सहा नही जाता।" (धरती) एक समय कविता में फैशन के रूप में एकाकीपन और अजनबीयत की ढेर सारी चर्चायें हवा में तारीं थीं । लेकिन त्रिलोचन के यहां एकान्त व्यक्तिवादिता का तिरोभाव है, और व्यक्ति की सार्थकता अकेले में नहीं, अनेक की सापेक्षता में है। तभी तो वह कहते हैं–

" मैं एकाकीपन से ऊब गया था,
ऊब गया था, ऊब गया था, आखिर भागा
अगले क्षण जीवन सागर में डूबगया था[3]

यहाँ जीवन का सत्य संवेदना के स्तर पर अर्थ प्राप्त करता है। त्रिलोचन की कविताओं में यह सहअस्तित्व या सहकारिता का प्रेरक तत्व है–

कवि मानता है कि, अहम् और 'इदम्' की एकता का सत्य,
जो पा लेता है, वह अकेलापन नहीं अनुभव करता:

---

१. त्रिलोचन–उस जनपद का कवि हूं
२. त्रिलोचन–अरधान
३. त्रिलोचन–दिगन्त

सूरज एकाकी है, लेकिन जब आता है

पृथ्वी का कण–कण तब नया गान गाता है।" [१]

जो जीवन–सागर से अलग रहेगा, सत्य से अलग रहेगा, वह अकेला रहेगा ही। त्रिलोचन जैसा कवि तो जीवन से इतना जुड़ा है कि, वह कह सकता है–

"अपनी मुक्ति कामना लेकर लड़ने वाली

जनता के पैरों की आवाजों मे मेरा

हृदय धड़कता है।" [२]

कवि की भावना विकसित होकर इतनी उदात्त हो जाती है कि, वह विश्व मानवता से मिल जाती है।

" किसी देश में मानवता को मुक्ति यदि मिली

तो मैने जीवन पाया, जी की कली खली"। [३] "अपने समय के आदमी की अलग–अलग हार त्रिलोचन को परेशान करती है, क्यो कि इस सच्चाई को जानते हैं कि दरअसल अलग–अलग होना ही हार है। अपनी अनेक कविताओं में वे अनुभव के इस नये और जटिल स्तर को जैसी सीधी और अचूक अभिव्यक्ति देते हैं, वैसी पंक्तियां केवल निराला के अन्तिम दिनों की कविताओं में मिल सकती हैं।" [४] त्रिलोचन की कविता से सहृदयता रखने के बावजूद कुछ आलोचक यह तय कर पाने में असुविधा महसूस करते हैं कि त्रिलोचन अपने समय, समाज और सच्चाईयों के कवि हैं। उन्हें उनकी कविता की देशीगंध परेशान करती है। त्रिलोचन को इसकी परवाह नहीं है। वे अपनी धुन में मग्न, ठीक ही कहते है–

" बिस्तर है न चारपाई है।

जिंदगी हमने खूब पायी है।

ठोक दे दर–बदर की थी, हम थे,

कम नही हमने मुंह की खाई है।"

यह जान निकालने वाली सादगी, सच्चाई और सहजता है। यह त्रिलोचन की कविता को ऐसी बुलंदी देती है, जहां पर शिल्प के चमत्कार पर मुग्ध होने वाले की पूरी जमात ही बग़ले झांकने लगती है। यहां कवि की वैयक्तिक ईमानदारी में सर्व सामान्य की जिंदगी देखी जा सकती है। उसके दुख से दो चार हुआ जा सकता है, और उसकी उम्मीदों भरी दृढता के आगे लज्जित हुआ जा सकता है। उनका काव्य संसार उस

---

१. त्रिलोचन–दिगन्त
२. त्रिलोचन–दिगन्त
३. त्रिलोचन–दिगन्त
४. केदार नाथ सिंह–ताप के ताये हुये त्रिलोचन मेरे समय के शब्द पृ० ६५

झुग्गी झोपडी का संसार है, जहां मानवता के आंसू टपकते रहते हैं। अपने को वह इस समाज, इस संसार से अलग नही कर पाता। " कितनी भी धूप चढ जाय, मौसम आग उगलने लगे, दैन्य और विवशता के कंचुक फट जाय, पायजामा कुर्ता चिथडे–चिथडे हो उठें– दिलवाले सहृदय रचनाकार का दिल राग से कैसे रहित हो सकता है। वही तो रचनाकार का मेरुदण्ड है। परिस्थितियों के बदलने से उसी के विभिन्न रूप मनोजगत पर उभरते है। यह राग है, ऊर्जा है, जो दिलदार मानव के जीवन की जडता को तोडती है– और इस निस्तरंग पाषाडी क्रीडा को समाप्त कर देती है। "[1]

त्रिलोचन ने अपनी कविता के माध्यम से समाज और जीवन को जाना है । कवि यदि अपने समय–समाज से सीधा साक्षात्कार नहीं करता तो उसके सर्जन के समक्ष कई प्रकार के प्रश्नचिन्ह लग जाते हैं। कवि में यह अहसास जितना गहरा होगा, उसकी कविता उतनी ही विश्वसनीय और प्रामाणिक होगी । त्रिलोचन का एक प्रस्थान बिन्दु वह है, जहां वे अपने निजी सुख–दुख से संघर्ष कर आगे निकलते हैं। कोई व्यथा उनका मार्ग अवरुद्ध नही कर पाती। यही रचना की जय यात्रा है–कवि को साधारण भावुकता से बहुत ऊपर उठाती हुयी । "इसी आत्मनिषेध के बल पर त्रिलोचन रचना के दूसरे, तीसरे, चौथे वृत्त में प्रवेश करते हैं, जहां वैयक्तिक अनुभव समाजिक अनुभूतियों से जुडकर एक नया रचना रूपान्तरण प्राप्त करते हैं।[2] स्वयं को केन्द्र में रखकर उनकी कई कवितायें हैं। कई बार आत्म स्वीकृति तक की। *अपराधी पाकर अपने को आज अकेले उस अपने से पूछ रहा हूं, तू क्या करने। निकला और किया क्या। तुझ को किस किस डर ने / कहां–कहां कब कब बांधा यह जी में ले ले।*[3] पर इस स्वीकृति से आगे बढने का साहस कवि की ऊर्जा मे निहित है। यह एक प्रकार से उसका अंतः संघर्ष है, जिसमे उसका कवि , वृहत्तर मानवीयता से परिचालित है और इस रूप में स्वयं का विपक्षी होता है–

नहीं चाहिये, नहीं चाहिये मुझे सहारा/मेरे हाथों में पैरों मे इतना बल है।

स्वयं खोज लूंगा किस किस डाली में फल हैं / उसे बांट दूंग, जो लंगा भूखा, हारा।

दुर्बल दिखाई देगा।[4].

इसीलिए वे नागार्जुन के जनवादी व्यक्तित्व को सलाम करते हैं –*नागार्जुन क्या है, अभाव है: जमकर लड़ना/विषम परिस्थितियों से उसने सीख लिया है। लिया जगत से कुछ तो उससे अधिक दिया है।*

---

१. डा. राममूर्ति त्रिपाठी, कविवर त्रिलोचन–सृजन पथ–पृ० २८

२. प्रेम शंकर–बोलती बतियाती कवितायें–साक्षात्कार –जनवरी मार्च १६८७ पृ० ११४–११५

३. त्रिलोचन–फूल नाम है एक

४. त्रिलोचन–फूल नाम है एक

पथ कंटकाकीर्ण था पर कांटो का गडना । उसके रोक न सका, युद्ध में डटकर अडना। और उलझना जान चुका है यही किया है।[1]

त्रिलोचन की कविता में ऐसा कोई चरित्र नहीं जो न आया हो। ऐसे चरित्र जो ठेठ औसत भारतीय के चेहरे के प्रतिबिंब है, ऐसे तमाम चरित्र जिसके माध्यम से समूचे भारतीय परिवेश और समाज की उपस्थिति न बनती हो। ऐसा करके असल मे वे अपनी नैतिक प्रतिबद्धता सिद्ध करते है। ऐसा ही एक चरित्र है चम्पा का जो काले अक्षरों को चीन्हती नहीं है लेकिन जो मनुष्य है–अपने सुख–दुख से लडती। और इसकी आकांक्षा, कि वह अपने पति को अपने साथ रखेगी और उसे कलकत्ते कभी न जाने देगी। त्रिलोचन की यह कविता अस्ल में, इसलिए बहुत महत्वपूर्ण बन पड़ी है कि क्यों कि इसमें जहां मनुष्य के रागबोध को समझने की कोशिश की गयी है, वहीं इस रागबोध पर पड़े आर्थिक दुश्चिंताओं की जकड़न को भी यह सामने लाती है। चम्पा की छोटी इच्छा है–एक भोली इच्छा। "निर्मल और पारदर्शी। बिल्लौरी कांच की तरह। और इसे काली चट्टान से टकराते ही किरच–किरच होकर बिखर जाना है। कल्कत्ते की इस चट्टान के पीछे छिपा है चम्पा का यथार्थ। ठोस और करुण। पति को तो जाना ही होगा। वह चला जायेगा। कलकत्ता उसे खींचकर ले जायेगा। कलकत्ते मे चटकल है । रिक्शा है। इस चट्टान को तोडने के लिए बज्र की जरूरत होगी। वाचाल चम्पा के हृदय से एक उच्छवास निकलती है *"कलकत्ते पर बजर गिरे।"* इस उच्छवास के आगे लिखी पढ़ी जा सकने वाली भाषा अपर्याप्त हो जाती है।"[2] यह त्रिलोचन हैं, जो चम्पा की अश्रु सिंचित हास पुलकित जिंदगी को रचते हैं। एक डाक्यूमेण्टरी फिल्म की तरह। "पहली पंक्ति के धुंधलके मे खडी एक अस्पष्ट सी आकृति, पंक्ति दर पंक्ति चपल चम्पा की चतुराई क्रमशः स्पष्ट होती, एवं मानवीय मांसल उपस्थिति में बदलती है। अश्रुसंचित हास पुलकित उसका चेहरा क्लोजअप में आते ही एक श्राप उचरता है। और 'कट' । त्रिलोचन कहते है।– *जिंदगी का मोल मौन से चलता कहां, भाषा और केवल भाषा ही मौन को तोड़ती है। वही जीवन हैं भाषा में फिर वह प्राप्त क्यों न हो।*"[3]

असल में त्रिलोचन के लिए कविता किसी ऐसी आदत की तरह नहीं रही है। जिसे वह वृथा ढोते रहे – और न ही उसके नाम पर व्यापार करें। त्रिलोचन कविता को जीने वाले कवि रहे हैं। उनके जीवन के अनुभव, कविता में ठीक उसकी तरह उभरते हैं , जिस तरह उनकी स्वाभाविक बोलचाल में । हिन्दी कविता में जीवन और रचना के अनुभवों संघर्षो और संवेदनाओं की एकता को प्रस्तुत करने वाले ऐसे ईमानदार कवि बिरले ही हैं। इस स्तर पर आधुनिक हिन्दी कविता में त्रिलोचन, निराला और मुक्तिबोध की परम्परा के कवि हैं। अर्थात

---

१. त्रिलोचन फूल नाम है एक
२. राजेन्द्र शर्मा–शताब्दी कविता साहित्य विशेषांक–वर्तमान साहित्य पेज १२४–१३०
३. राजेन्द्र शर्मा–शताब्दी कविता साहित्य विशेषांक–वर्तमान साहित्य पेज १३०–१३१

उनकी ही संवेदना निष्ठा और ईमानदारी की परम्परा के कवि। *'वही त्रिलोचन है' वह जिनके तन पर गंदे कपड़े हैं* " कहने वाला, अपनी दीनता में भी आत्म गौरव का मान कराने वाला, यह कवि झूठे अहंबोध को आश्रय नहीं देता और न ही ऐसे आशावाद की घोषणा करता है ; जिसमें अचानक बुलंद हो जाने की कोई तरकीब निहित हो, बल्कि त्रिलोचन हमारे जीवन की विरूपताओं का प्रत्यक्ष कर, सामान्य मनुष्य की तस्वीर प्रस्तुत करते हैं। इस प्रतीक्षा के साथ कि वह भी सामान्य ही है। इसलिए उनके रागबोध बड़े समुदाय के रागबोध से साझेदारी रखते हैं इसीलिए वह बहुत आधुनिक भी हैं। इतने कि जितने दीखते नही। "आधुनिक हैं इसलिए कि परम्परा से विछिन्न नहीं हैं, और आधुनिक हैं इसलिए कि वर्तमान जीवन संदर्भ और उससे उत्पन्न भविष्योन्मुख काव्य चेतना से सम्बद्ध हैं। "[1] " वे ऐसे सच्चे कवियों में हैं, जिनके द्वारा अंकित साधारण वस्तुयें भी मन को लीन करने वाली होती हैं।[2]

त्रिलोचन के जीवन व्यापार मे जाहिर है, जिसमें प्रकृति भी सम्मिलित हैं, के चित्र हैं। छोटे, संश्लिष्ट लेकिन जीवनदायक चित्र। त्रिलोचन का स्वाधीन, स्वच्छंद मन प्रकृति के रूपकारों में खूब रमा है। लेकिन प्रकृति चित्रण की बनी बनायी लीक पर वह कम ही चलते दिखायी देते हैं। "इस रूप में त्रिलोचन की कविता में छायावादी शैली का नकार तो है ही, बच्चन, नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों की रोमानी शैली का भी निषेध हैं खेतिहर निजीविषा प्रकृति से सीधा साक्षात्कार, सहजता और मानवीय सरोकार उनकी कविताओं में बारम्बार रेखाकित होता है। उनकी काव्यात्मकता अपनी सादगी और पारदर्शिता में असाधारण और अद्वितीय है। यहां फार्म, फ्रेम की तरह, तस्वीर को अर्थात कटेट को चमका देता है, स्वयं नहीं चमकता। फिशर की पारदर्शी क्रिस्टल वाली अवधारणा की कसौटी पर उनकी कला खरी उतरती है।" [3]

धूप सुन्दर धूप में जगरूप सुन्दर (धरती)

ढग गया दिन–धूप·शीतल हो गयी (धरती)

हंस के समान दिन उड़कर चला गया

अभी उड़कर चला गाय (धरती)

दिवस की ज्योति हुयी सरसों के फूल सी (धरती)

पवन। शाम बीतने पर। बंसवारी में

छिप कर आता है

रुक–रुक बांसुरी बजाता है।

---

१. खगेन्द्र ठाकुर–कविता का वर्तमानः पृ० १२१

२. परमानंद श्रीवास्तव–शब्द और मनुष्य पृ० १०४

३. राजकुमार सैनी – सापेक्ष –पृ० २०४

तारे चुप–चाप देखा करते है। पृथ्वी को।

राहें उदास हैं, देखती हैं। आकाश को। (ताप के ताये हुए दिन)

केवल रिमझिम का संकेत सुन पड़ा था बूंदों की छनकारें। ओलतियों की टप–टप –टपकारें। पानी का कल कल करते। बहते ही जाना । (ताप के ताप हुए)

इस प्रकार कवि प्रकृति से सीधे साक्षात्कार करता है। उसके और प्रकृति के बीच कोई छाया अथवा रहस्य नहीं रहता, कोई संकेत मुखर नहीं होता। "निसर्ग से यह सीधा साक्षात्कार है। प्रकृति के बहाने प्रकृति का ही चित्रण है, चित्रण कलात्मक है लेकिन कला मुखर नहीं होती। विनीत और संयत होकर लगभग अनुपस्थित हो। कवि जैसे प्रकृति पर रचनाकार छायावादियों अथवा बाद के कायावादियों की तरह अपनी मानसिकता आरोपित नहीं करता।"[1]

अपने सॉनेटों की तरह ही अपने गीतों में भी त्रिलोचन प्रकृति के रासरंग का पूरी सघनता के साथ चित्रण करते है। अपने गीतों में प्रकृति से त्रिलोचन के रिश्ते दो प्रकार के दिखायी देते हैं–परम्परागत उपादान जैसे ऊषा, निशा इत्यादि के माध्यम से (जिसमें) वे स्वाधीनता पराधीनता से जुड़े अनेक संदर्भों को उजागर करते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के विविध ऐंद्रिय बोध जगाने वाले दृश्यों को दर्ज करते हैं। "इसी ऐन्द्रिय बोधात्मक कविता–मनोवृत्ति के तहत त्रिलोचन का कवि सपने देखता है। सपने में उन्हे खुले आकाश में अपनी गीतमयी चांद सी दिख पड़ती है। उनकी कविता में विह्वल समुद्र का उत्तरंग गायन सुनने वो सुन सकते है। उनके हृदय सिंधु की गहराई तुलसी की कम जायसी की अधिक याद दिलाती है।"[2] '*जब से देखा तुम्हे तुम्ही को पाना चाहा। जीवन का क्रम अकस्मात् कुछ और हो गया।*' क्यों न होता? उस रहस्य दर्शिनी की आंखों की भाषा में आकर्षण ही ऐसा था। त्रिलोचन महसूस करते है। मानो–

" देखा नीले नभ मे तो, तुम वहां खड़ी हो,
नीरव सस्मित, सरिता की लहरों पर देखा
लहराती हो, क्रीड़ करती हो शशि लेखा
जैसे फूलों पर हंसती हो, वहीं पड़ी हो।
चंचल मन हो गया अचंचल पास तुम्हारे
ज्यों दीपक निष्कम्प सहन आरती उतारे।"

---

१. राजकुमार सैनी – सापेक्ष –पृ० २०६
२. डा. रेवती रमण – कविता में समकाल पृ० १२०

गीतिमयी निवेदित त्रिलोचन की कविता–स्मृति मे स्वच्छंद, सरस, अपने सारे जातीय उपकरण को प्रस्तुत करती, उत्सुक, उदग्र है। कवि की चेतना सक्रिय हैं–संवादरत। गीतिमयी से संवादातुर कवि मन वैसा ही हो जाता है–गीतमय । उस मनोदशा के भीतर *'गर्मी के मैदानों में पूर्वा लहरा उठती है। बादलों से आकाश भर गया है।* *'सूखे ढेलों में छिपी गमक फैली, रिमझिम धुने केवल सुन पड़ती थीं'* और *'यह भी कि झुलसी बेलों में हुलसी हरियाली , फूलों के झोंप दल बांध भेज गध सदेश लिखे कौंची–कौंची पर। उर में गूंजे कोयल और पपीहों के स्वर।'*

" त्रिलोचन की प्रेमानुभूति के अंतरंग में प्रकृति का धीर पद संचरण कविता प्रेमियों को गहरी आश्वस्ति देता है। गीतमयी की निकटता कवि को आत्म विस्मरण का सुख देती है। उसकी स्मृति में उसकी हंसी जब जब खिल उठती है तब तब त्रिलोचन की कविता स्वतः स्फूर्त लगती है। उसका यह रूप कवि की स्मृति की लहरो में मिलकर कविता को निसर्ग का पर्याय बना देता हैं। गीतमयी से कवि की देह–दूरी कविता का सर्वांगीण शरीर बन जाती है उससे दूर जाकर वह उसकी सारी मुद्राओं गतिविधियों को समझ सके हैं।"[१]

वे बातें, हंसना

उठना चलना और बैठना

कहीं अकेले धंसना चिंताओं की गहराई में

बैठकर चिट्ठी लिखना

छूट न जाय कहीं कुछ, रखना ध्यान बराबर"

डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि आदिम कबीलाई समाज के टूटने तथा श्रम विभाजन लागू होने पर 'स्त्री–पुरुष मे छोटे बडे का भेद उत्पन्न होता है। स्त्रिया घर का कार्य करतीं हैं पुरुष बाहर का काम करता है। सम्पत्ति का स्वामी पुरुष होता है। वह युद्ध करता है, शस्त्र रचता है, व्यापार करता है, स्वाभावतः उसके काम के आगे स्त्री का घरेलू काम छोटा लगता है। शूद्रों में जहां स्त्री, पुरुष के साथ काम करती है, वहॉ वह द्विजवर्ण की देवियों की तुलना में अधिक समर्थ होती हैं। "कहना न होगा कि स्त्री पर उसके अनचाहे ही थोपी गई दासता की बेड़ियों से उसे मुक्त कराने के लिए क्रांतिशील कवियों ने दो तरीके अख्तियार किए। पहला सामाजिक जीवन में अपने साथ उन्हें सहभागी बनाने को प्रेरित किया, और दूसरा सामाजिक विषमताओं का अंत करके समता पर आधारित नये समाज की रचना का आदर्श अपनाया।" [२]

---

१. डा. रेवती रमण – कविता में समकाल पृ० १२०

२. डा. रविकांत – पल प्रतिपल वर्ष १०, संयुक्त जु.दिसम्बर ६६ पृ० ३७–३८

सामाजिक जीवन में स्त्री पुरुष द्वारा परस्पर एक दूसरे को अपने संघर्ष में सहभागी बनाने की कामना को व्यक्त करते हुए त्रिलोचन लिखते है।–

बांह गहे कोई /अपरिचय के/सागर

दृष्टि को पकड़कर /कुछ बात कहे कोई।

लहरें ये /लहरें वे नमें ठहराव कहां

पल/दो पल/ लहरों में साथ रहे कोई

यहां महत्वपूर्ण यह है कि वे अपनी सम्पन्न स्मृति से छनी हुयी इन गूंजों का केवल गहन सांकेतिक इस्तेमाल करते हैं। वे अपने पाठकों के मस्तिष्क पर कोई अतिरिक्त बोझ नहीं डालते। कहीं कहीं उनमें एक अद्भुत तिलमिला देने वाली सादगी मिलती है। बहुत कुछ भक्तों जैसी। जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है। वस्तुतः अपरिचय की यह यातना नयी है, और त्रिलोचन के भावबोध को, भक्त कवियों के भाव बोध से, अलग करती है। साथ ही इसमें जो अकेलापन है वह आधुनिकतावादी व्यक्तियों के अकेलेपन से एकदम भिन्न है क्योकि वह अपरिचय के सागर के प्रति एक गहरी मानवीय ऊष्मा से भरा हुआ है। हालांकि कवि का जीवन–संघर्ष अत्यंत गहरा है जिसमे बारम्बार उसे पराजय की पीडा झेलनी पडी है–

ठोकरें दर–ब–दर की थीं हम थे,

कम नहीं हमने मुंह की खाई है।[1]

पर ऐसे में प्रेम पाकर उसकी जीवनी शक्ति बढ जाती है और वह जीवन–संग्राम से मुंह फेरने के बजाय नई ऊर्जा से परिपूर्ण होकर कर्म–क्षेत्र में प्रवृत्त होता है– *" मुझे जगत जीवन का प्रेमी बना रहा है प्यारा तुम्हारा।"* जयशंकर प्रसाद ने प्रेम के सदर्भ में लिखा है कि वह पाने के बजाय देने की चीज है– " पागल रे ! वह मिलता है कब/उसको तो देते हैं सब। " त्रिलोचन की कविता में भी ऐसे उदात्त स्वर सुनाई पड़ते हैं–

" स्नेह मेरे पास है, लो स्नेह मुझसे लो

चल अंधेरे में न जीवन दीप ठुकराओ

सांस के संचित फलों को यों न बिखराओ

मेघमाला विश्व है लो राग को मुझसे लो।[2]

---

१. त्रिलोचन – गुलाब और बुलबुल
२. त्रिलोचन – सबका अपना आकाश

किन्तु यहां ध्यान रखना जरूरी है कि प्रसाद के 'प्यार' के मुकाबले जीवन के उत्थान–पतन को सहज रूप में झेलने को तत्पर जुझारू समुदाय को त्रिलोचन के कवि द्वारा दिया जाने वाला यह 'स्नेह' तथा 'राग' अपनी प्रकृति की अर्थध्वनि, उसके अपने विशिष्ट संदर्भों के कारण परम्परागत रूप मे नही रह गई है , और इसका कारण कवि की प्रगतिशील जीवन दृष्टि है। त्रिलोचन के पास विपरीत स्थितियों में भी इस "राग तत्व" से जुडाव का कारण उनकी आंतरिक दृढ़ता है, जो अतिरिक्त ऊर्जा से संवलित है–

" मुझको तो मुस्कान तुम्हारी जिला रही है।
जहां कहीं भी और जब कहीं जाता हूं,
वहीं स्निग्ध मुस्कान आंख आगे पाता हूं
मर्त्य लोक में भ्रांत देखकर पिला रही हैं
मुझे सुधा का सार फूल नाम है एक ।[1]

त्रिलोचन की आत्मपरक कविताओं में उनका व्यक्त इतिहास है। कवि के रूप मे उनके निर्माण की प्रक्रिया है। व्यवस्था के प्रलोभन और आघात हैं। कवि के रूप में उनका अडिग विश्वास और संघर्ष है, व्यवस्था और उसके तंत्र के चरित्र का उद्घाटन है, समकालीन काव्य परिदृश्य की विसगतिया हैं ,चालू मुहावरे के विरुद्ध उनके ओजस्वी वक्तव्य हैं, कविता के बारे में उनकी अवधारणायें है, उनका सौदर्य बोध है, और लोक से उनकी सर्जना का संबंध, व्यक्त हुआ हैं । अपनी इन्ही विशिष्टताओं के चलते केदारनाथ सिंह का कहना है कि "त्रिलोचन के यहा आत्मपरक कविताओं की संख्या बहुत अधिक है। अपने बारे में हिन्दी के शायद ही किसी कवि ने इतने रगों की आत्मपरक कवितायें लिखी हों। पर त्रिलोचन की आत्मपरक कविताये किसी स्तर पर आत्मग्रस्त कविताये नहीं है और यह उनकी गहरी यथार्थ दृष्टि और कलात्मक क्षमता का सबसे बडा प्रमाण है।"[2]

त्रिलोचन की इन कविताओं से यह प्रमाणित होता है कि देशकाल सापेक्ष जीवन जीता हुआ कवि अपनी स्वायत्ता चेतना का प्रयोग करता है। एक ओर कवि स्वयं को अपने काल की विकसित चेतना से जोड़ता है, साथ ही दूसरी ओर अपनी स्वायत्ता भी बनाये रखता है। यह कवि की स्वायत्त सापेक्षता है। कविता के रूप में हम उनकी चेतना और संवेदना से पुर्नसाक्षात्कार करते हैं और वह पुनः समूह का अंग बन जाती है। समूह की इकाई होते हुए भी, कवि का उससे अद्भुत संबंध है । ग्रहण और प्रतिदान की यह प्रक्रिया कला–सृजन का नैरन्तर्य क्रम है। त्रिलोचन उसी के कवि हैं।

---

१. त्रिलोचन – सबका अपना आकाश
२. केदारनाथ सिंह –त्रिलोचन भूमिका प्रतिनिधि कवितायें

अध्याय ६ खण्ड ङ०
शमशेर नागार्जुन एवं त्रिलोचन के वैयक्तिक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन

नयी कवितावादियों की युयत्सा भरी कविताओं के बरक्स नागार्जुन की कविता में जिन स्मृति बिम्बों की रचना की गई है उनमें है घर आंगन मे व्यस्त बाल–बच्चों के घिरी या चूल्हे के आग दिपते चेहरे से दीप्त प्रिया। यह स्मृति बिम्ब, कोई स्थूल नैतिकतावादी टिप्पणी न करते हुए भी इसमें जीवन की रंगधर्मी संवेदना को देखा जा सकता है। नागार्जुन के स्मृति बिम्बो से एक ऐसे पारिवारिक और सामाजिक मनुष्य का मानस संसार उभरता है जो अपने प्रेम को पूरे मानवीय परिवेश और परिवार के सन्दर्भ में अभिव्यक्ति दे रहा है। —— "प्रेम का प्रसंग भावुकता और भावानात्मक आवेग का होता है लेकिन स्मृति के अंतराल से जो निखार और प्रशांति नागार्जुन की प्रेम और प्रणय की कविताओं में आयी है, वह उन्हें भावुकता और कोरे भावोच्छ्वास से मुक्त करती है। उनके प्रेम प्रणय चित्रों में कही भी सामाजिक शील का इन्कार नहीं है और वह सहज पारिवारिक प्रेम के प्रगाढ रस से सिक्त है। 'सिन्दूर तिलकिति भाल' इसकी मिसाल है।............... प्रेम के समावेशी चरित्र का यह आख्यान है। यह प्रेम जिन्दगी की अनिवार्य, प्रकृत और प्रेरम अनुभूति के रूप में चित्रित है न कि काम केन्द्रित व्यक्तिवादी मानसिकता से।"[1]

यही वजह है कि यह प्रेम सरसता का एक ऐसा प्रसंग रचता है जो जितना मानवीय है उतना ही मार्मिक भी।..............यह प्रेम सौन्दर्य और सरसता के सारे सन्दर्भो के व्यतीत हो जाने पर भी स्मृति क्षणो को रागात्मकता से सिक्त पाता है। इसलिए कि यह प्रेम सारी जिन्दगी के सुख दुख की सहचरी के मीठे बोल और तरल स्पर्श से धुला है। उन्मुक्त, अनासक्त और प्रशांत भाव से प्रणय श्रृंगार को सवारने में नागार्जुन निराला की ही तरह उदात्त हैं।....... विषय वस्तु में अद्‌भुत भावात्मक एकीकरण के कारण उनकी कविताओं में गीति तत्व अनिवार्य रूप से पाया जाता है। गीतात्मक रचनाओं में कवि खुद ही थीम लेता है। नागार्जुन की वैचारिक संवेदना वाली कविताओं की तरह उनकी ये सफल कविताएं है। *बहुत दिनों के बाद* एक आत्मनिष्ठ कविता है। इन कविताओं और अन्य दूसरी कविताओं की सारी खूबसूरती ही इस गीताात्मतकता के चलते हैं। 'अकाल और उसके बाद' को उदाहरण के लिए लिया जा सकता है..........

" कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्कीरही उदास
कई दिनों तक कानी कुतियां सोयी उनके साथ"

---

१. धनंजय वर्मा– प्रेम और प्रकृति प्रगतिशील काव्य की वृहत्रयी नागार्जुन, केदार , शमशेर–वसुधा अंक ६ पृष्ठ २५।

संवेदनशील पाठक के लिए यह देखना कतई मुश्किल नहीं होगा कि कवि का 'मै' ऊपरी तौर पर गैरहाजिर होते हुए भी पक्ति–पंक्ति में इन्वालव है। ऐसा इन्वाल्मेण्ट जो नागार्जुन में हद से ज्यादा है, जहां रचनाओ को एक आत्मीय विश्वसनीयता देता है।

नागार्जुन की कविताओं मे व्याप्त ऊष्मा भी इसी इन्वाल्वमेण्ट के चलते है। चाहे रिक्शा खींचते पैरों की कटी बिवाईयां याद आये (खुरदुरे पैर) या मल्लाहों के बच्चों की तरह नंगे बदन गंगा के किनारों पर घूमने की इच्छा जागे *(गीले पांक की दुनिया गयी है छोड़)* या फिर नयी–नयी सृष्टि रचने को तत्पर करोडों हांथों–पावो के इशारो के सामने खुद के अलस–अकमी पड़े रहने की बात पर क्षोभ हो, सभी जगह एक हाड–मांस का इन्सान, अपन सजल आंखों से पाठक को ताकता मिलेगा। यहां कवि की उपस्थिति आज इसलिए और भी सुखद लगती है क्योंकि निजी कविता के संवेदनपरकता मे यह पूरे भावमयता के साथ विद्यमान है। संवदेनशीलता की हद यह कि, किसी चीज या घटना या व्यक्ति की उन्हे लगातार परवाह है। इसलिए यह हमेशा लगता है कि जैसे वे कविता को वैचारिक धरातल देने के साथ सवेदनात्मक धरातल भी दे रहे है। यही कारण है कि अपनी गहरी विचार दृष्टि से पाठक–श्रोता को विचलित करने वाली तमाम कविताएं नागार्जुन ने लिखी हैं।

क्रांतिकारी कवि के भीतर प्रेमोवेग भी कम नही होता, संभवतः क्रातिकारी कवि ही बेहतर प्रेम कविताएं लिख सकते है। नाजिम हिकमत, पाब्लो नेरुदा, मायस्कोवास्की इसके स्पष्ट उदाहरण है। क्रांति और प्रेम एक–दूसरे के विरुद्ध नहीं पूरक हैं। उनकी प्रेम कविताएं सिन्दूर तिलकित भाल पढते हुए सहसा विश्वास नहीं हो पाता कि एक क्रांतिधर्मी कवि के भीतर सवेदना का प्रबल वेग है। उनकी इस प्रकार की कविताएं यह घोषित करती है कि नागार्जुन के भीतर प्रेमाकुलता है , उनके भीतर छिपा हुआ शिशु है, जिसकी अबोधता विरल है। प्रेम और सौन्दर्य का सघन भाव नागार्जुन ने संस्कृत साहित्य और उसके वांग्ड.मय की अपनी विशद परम्परा के रूप में हमारे सामने आती है। बादल, पहाड, वर्षा, शाल और चीड के विशाल वन को तत्कालीन कवियों ने काव्य विषय बनाया है। इन सदर्भों को *"बादल की घिरते देखा है" " बर्फ पडी है" " शालवनों के निविड़ टापू में "* जैसे कवितायें देखी जा सकती है।

एक कवि ने सामने रचना के कथ्य, सामाजिक सरोकारों, जनता के उत्पीडन छंद आदि की आंतरिक और वाह्य चुनौतियां होती है। इसे उन्होंने स्वीकार किया। उन्होंने वह चुनौती स्वीकार की कि जहां लालित्य और प्रकृति तथा प्रलोभनों का घटाटोप हो वहां सामाजिक यथार्थ को कैसे उठाया जाय। सत्ता तंत्र के प्रति आलोचनात्मक रुख कैसे अपनाया जाये, इन चुनौतियों को सिर्फ नागार्जुन ने ही नही त्रिलोचन ने भी स्वीकार किया। एक रचनाकार की गरिमा के साथ उन्होंने अपना रचना संसार फैलाया। इसीलिए दिखाई यह देता है कि उनके काव्य में कहीं दीनता और हीनता का आभास नहीं है। वह कई जगह विनम्र हुए है, पर दीन–हीन

नहीं । पूरी ठसक धाकडपन और लाउड होकर वह अपनी बात कहते है। आज भी उनके शरीर पर वही मोटा कुर्ता है तथा लोगों से मिलने जुलने में कहीं खुलापन आडम्बर और दिखावा का कहीं बोध नहीं है छद्म जीवन दर्शन उनका नहीं है। उन्होने इस चुनौती को स्वीकार किया कि साधारण जीवन जीकर साधारण लोगों के बीच रहकर आम आदमी की कमजोरियों के साथ, उन्हें देखते–परखते हुए समाज के उत्पीड़ित व परेशान लोगों की बातें कितने सशक्त ढंग से कही जा सकती है। उनकी रचना का बहुत बडा हिस्सा किसानों, खेत मजदूरो किसान आंदोलनों के साथ रहते हुए रचा गया है। इसीलिए प्रकृति से लेकर आदमी तक की विभिन्न स्थितियों व विडम्बनाओं तक की सच्चाई उनके काव्य–संसार में है।

शमशेर की कविता मनुष्य को अभिषिक्त करने वाली, अपने अधिकारों का बोध कराने वाली, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व का शाश्वत पाठ पढाने वाली जीवन्त प्रकृति उन्हे युद्धोत्साह से भर देती है। वह केवल जुमलेबाजी की प्रेरणा नहीं होती । शमशेर ने ऐसी बहुत अधिक कविताएं नहीं लिखी हैं। मौजूदा व्यवस्था में यह सहज सम्भव भी नहीं था, किन्तु जितनी वे लिख सके, उसमें बसन्त की अगवानी और हरे–हरे नये–नये पात से उनकी आंतरिक सलग्नता है, जो असल मे उनके मनुष्यताबोध का ही परिचायक है।

वस्तुतः शमशेर की कविता व्यक्ति , समाज, राजनीति और सभ्यता के आम–फहम मुद्दों और उनके सरलीकृत निष्कर्षों की कविता नही है। वह हर क्षण, हर पल नये सिरे से देखी जा रही दुनिया और उसके बदलते हुये गतिशील यथार्थ को जी रही कविता है। इस मे वह क्षण महत्वपूर्ण है जिस मे कविता रची जा रही हे। यह देशकाल के बहुपरतीय दावों के बीच जीने के पल तलाशती हुयी कविता है। उम्मीदों से भरी, इन में कहीं–कहीं गहरी निराशायें नाउम्मीदियॉ भी है। मगर इन निराशाओं और नाउम्मीदियों की पहचान भी कहीं न कहीं जीने की शर्तों से जुडी चीज है और इसलिये तमाम दबावों के बावजूद कविता को शब्दों मे बचाये रखने की कोशिश वहॉ लगातार है।

शमशेर ने अपनी कविता का रास्ता खुद चुना और उसे चापलूसी की गिरफ्त से हमेशा बचाये रखा, फिर चाहे वह अकविता हो, या नकली क्रांतिकारिता। बहुसंख्यक कवियों के हवाले से कहा जा सकता है कि जो इन प्रवृत्तियों के शिकार रहे और अन्त तक उनसे पूरी तरह उबर नही सके ,ऐसे मे अपने को बचाये रखना और एकदम निजी रास्ते से कविता को खोजना निःसंदेह उन्हे उललेखनीय बनाता है। नयी कविता के दौर में भी जब सारे कवि सामूहिक मुहावरे में लिखते हुये कविता का नाश करने मे जुटे थे, तब भी शमशेर एक ऐसी भाषा और मुहावरे की खोज मे संलग्न थे जो उनका अपना हो। एकदम अलग,एकदम चटख।

त्रिलोचन जी ने कविता, उसकी भाषा, जीवन मनुष्य, मानवीय पुरुषार्थ, जनतांत्रिक दायित्व और साहस इन सबको एक साथ मिलाकर जिस तरह कबूल किया है वह प्रगतिशील कवि से ही सम्भव है। क्योंकि यह प्रगतिशील कवि ही है, जो इन सबको समाज की ऐतिहासिक प्रक्रिया में देखता है। त्रिलोचन जी देश के

आधुनिक इतिहास के ऐसे दौर में कविता के साथ हुए, जब देश को आजाद हुए अभी कुछ ही साल हुए थे। लम्बे स्वाधीनता संघर्ष के फलस्वरूप स्वतंत्र हुए देश का मनुष्य औपनिवेशिक अतीत के दाग को धोकर अपनी पूरी रचनात्मक को उन्मुक्त कर अपनी कल्पना के भविष्य का निर्माण करने के लिए व्यग्र था। लेकिन इस आजाद हुये देश के सपने भी बहुत जल्द टूटे। देखे हुये स्वप्न छिन्न–भिन्न हो गये।जिस प्रकार के जीवन को चाहा गया था वह व्यवस्था के पैरोकारों के हांथों की कठपुतली हो चला। ऐसे अनाचारी समाज मे जीवन का यथार्थ बहुत बदरंग या यूँ कहे रंगहीन हो चला था। सामाजिक विषमता की बढती हुयी खांई ने आम आदमी को भयावह अंधेरे मे डाल दिया। त्रिलोचन इसी आम आदमी को अपनी कविता का मुख्य पात्र बनाते हैं। इसीलिये त्रिलोचन हिन्दी कविता को विकसित करते हैं इसलिए कि ठोस किन्तु द्वदात्मक और गतिशील यथार्थ से भोथरे हो गये एकाकी जीवन से उनका गहरा प्रेम था और वही उनकी कविता का कारण बना।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रसमीमांसा में प्रसंग वश कहा है कि रूप परिचय के बिना प्रेम कैसा। त्रिलोचन ने इसे सार्थक करते हुए मनुष्य जीवन को उसकी मामूली से मामूली क्रिया को बडी आत्मीयता से देखा है। अपनी तमाम ज्ञानेन्द्रियो की समग्र क्षमता से उसे देखते हैं। लेकिन बड़ी बात यह है कि मामूली जीवन को या जीवन की मामूली घटना को भी वे ऊंची कविता का दर्जा दे देते हैं। त्रिलोचन जी बड़ी सहजता और कुशलता से जीवन प्रसंगों को कविता में रूपांतरित कर देते हैं। इस प्रकार उनकी फुटकर कविताओं में भी एक प्रकार की प्रबंधात्मकता हैं। यह प्रबंधात्कता घटनाओं के प्रवाह से नहीं, बल्कि एक जीवन–प्रसग को समग्रता प्रदान करने से बनती है।

त्रिलोचन का जीवन बेहद संघर्षमय था। स्पष्ट है कि उनके पास आपबीती ही इतनी है कि वही सब कह लिया जाए तो कहने को 'अपर्याप्त' है। हां, यह इतना है कि इस सामग्री को तब तक काव्य की सामग्री नही बनने देते जब तक उनका सामाजिकीकरण न हो जाय। जिस प्रकार और लोग 'ज्ञान' को 'संवेदांत्मक' बनाकर ही काव्य का उपजीव्य बनने देते हैं उसी प्रकार त्रिलोचन जी व्यक्ति वेदना को भी तटस्थ रहकर व्यक्तिगत भूमि से ऊपर उठकर व्यक्त करने में संकोच नहीं बरतते।

"भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देखा था
जिसको समझा था है तो है यह फौलादी

त्रिलोचन ने हिन्दी कविता में विशिष्ट पहचान बना कर कविता की समृद्ध किया है। उनमें नागार्जुन की सहजता और शमशेर की जटिलता (दुरुहता नहीं) का समाधार दिखायी पड़ता है। स्वातंत्रोत्तर भारत के गहराते जटिल होते और पकते हुए सामाजिक यथार्थ की प्रक्रिया की सूक्ष्म पकड़ ने शोर शराबे से मुक्त, कवि की भाषा को यह विशेषता दी है। त्रिलोचन की काव्य भाषा हिन्दी कविता की भाषा के पकने का एक समर्थ सबूत है।

अध्याय ७

शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं का सौन्दर्यात्मक परिप्रेक्ष्य

क : सौन्दर्य

ख : शमशेर की सौन्दर्य दृष्टि

ग : नागार्जुन की सौन्दर्य दृष्टि

घ : त्रिलोचन की सौन्दर्य दृष्टि

ङ : शमशेर, नागार्जुन और त्रिलोचन की सौन्दर्यात्मक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन

अध्याय ७ खण्ड क
सौन्दर्य

सौन्दर्य ऐसा विषय है, जिसे महसूस करना जितना आसान है, परिभाषित करना उतना ही कठिन। शास्त्र के लिये आवश्यक यह है कि उसका विमोचन विश्लेषण बुद्धि और तर्क के आधार पर किया जा सके; किन्तु सौन्दर्य की अनुभूति का सम्पूर्ण विश्लेषण केवल तर्क बुद्धि के सहारे करना बहुत संभव नही है। मुक्तिबोध के अनुसार तो सौन्दर्यशास्त्र एक विचित्र शास्त्र है—यह एक मूल्य शास्त्र है, आदर्श शास्त्र है।

सौन्दर्य की अनुभूति रचनाकार के मानस को उद्‌बोधित करती है किन्तु प्रथम अनुभूति की छाया से लेकर पूर्ण अन्विति तक कृति में ढलने के बीच, रचना के कई स्तर होते है। यह अत्यन्त जटिल उलझी हुई प्रक्रिया है, जिसके विश्लेषण से रचना का रहस्य प्रकट होता हुआ, सौन्दर्यबोध काव्य में ढल जाता है । कवि या कलाकार अपनी अपूर्व प्रज्ञा और रचना विधायनी कल्पना के बल पर यह कार्य कर पाना है।

सौन्दर्यानुभूति और सृजन प्रक्रिया परस्परावलम्बी है। सौन्दर्य की वास्तविक अनुभूति तो रचना सृजन प्रक्रिया के क्षणों में ही होती है। सौंदर्यानुभूति 'घटना' है। यह घटित होती है। इस घटना के आयाम ही सृजन प्रक्रिया के पडाव हैं। कवि की चेतना ही इसकी रंग भूमि है। संवदेनाएं, आवेग,अनुभूतियां, उत्कट क्षणों में चेतना को दीप्त कर देती है; और फिर अवचेतन मन में पलकर, जीवानाुभवो से पोषित होकर बिम्बों, रूप को शब्दों मे ढालकर रचना मे परिणत हो जाती है। कलाकार के व्यक्तित्व का अवचेतन अंश से लेकर जाग्रत कल्पना और उसकी चेतना का सम्पूर्ण आधार इसमें भागीदार होते है। इस प्रक्रिया के अनेक स्तर, अनेक परतें होती है, जिसका सम्यक् विश्लेषण 'मुक्तिबोध एक साहित्यिक की डायरी' तथा 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध' मे करते है।

रचनाकार संवेदन शील और रचनात्मक कल्पना से सम्पन्न होने के कारण अपने परिवेश प्रकृति और सुन्दर पदार्थो के प्रति अधिक सचेत होता हैं। यही प्रभाव मूर्त बिम्बों के रूप में संगठित हो जाते है। यही बिम्ब, संवेग, सवेदनाएं, प्रभाव रचना के उपादान है। उन्हीं के माध्यम से सुन्दर की अनुभूति रचनाकार 'रूप' में ढाल देता है। इन प्रभावों, संवेगों, संवेदनाओं से मिलकर गाढी अनुभूति निर्मित होती है। इसका आस्वादन पहले कवि करता है। अपनी अनुभूति के प्रेषण के लिये वह दूसरे स्थूल उपादानों को ढूंढता है। इसमें उन भावचित्रों का ही अभियोजन होता है, इसके माध्यम से सौन्दर्य—बोध काव्य में ढलता है। जगत का सौन्दर्य कला में ढलकर परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन का उल्लेख आचार्यो ने रसास्वादन के समय प्रमाता की चेतना के गुणात्मक परिवर्तन, उसके व्यक्तित्व की सीमाओं के विघटन, स्व के विस्तार, सत्योद्रेक तन्मयता और

मुक्ति के द्वारा किया जाता है। फलतः बिंब, प्रतीक, रूपक, शब्द–चयन, रीति, शैली आदि रचना के माध्यमों से उद्भासित होता है।

"सौंदर्य सिर्फ प्रकृति में ही नहीं होता, वह मानव जीवन में भी होता है। प्रकृति और मानव के प्रत्येक स्तर का सौन्दर्य, सौंदर्य–शास्त्र का विवेचन होता है। वस्तुतः सौन्दर्य अपने आप मे मानवीय चेतना का विस्तार है। यह सत्यं–शिवम्–सुन्दरम् के रूप मे संस्कृति के द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार संस्कृति सौन्दर्यबोध के विकसित होने की चेष्ठा है।"[1] सौन्दर्य सिर्फ इन्द्रिय बोधात्मक ही नहीं होता बल्कि उसकी सूक्ष्म सत्ता मनुष्य की भावनाओं और विचारो तक में विराजमान होती है। इस प्रकार सौन्दर्य, प्रकृति और मनुष्य की चेतना में वस्तुगत रूप से विद्यमान रहता है। सौन्दर्य का स्वभाव ही वस्तुनिष्ठ होता है क्यो कि सुन्दर शब्द का प्रयोग विशेषण के रूप में होता है। जिसका विशेष्य कोई न कोई वस्तु अवश्य होती है। सौन्दर्य का आस्वाद्य मनुष्य की अनुभूति से जुडा है। आस्वाद्य का अर्थ ही है कि सौन्दर्य पूर्ण वस्तु। चूंकि यह वस्तु से संबंधित है या उससे निःसृत होता है, इसलिये उस वस्तु के गुण के प्रभाव की अनुभूति वास्तव में वस्तु के प्रभाव की अनुभूति होती है। इसी को सौन्दर्यात्मक अथवा एस्थेटिक एक्सपीरियन्स कहा जाता है। सौन्दर्य जुड नहीं होता, बल्कि यह नित नवीन (तिले तिले नूतन होय) है। अतः इसके बारे में अन्तिम शब्द कह देना आसान नहीं है। सौन्दर्य का सम्बन्ध वस्तु और दृष्टि (विषय) दोनों से प्रत्यक्षतः जुड़ा होता है। अतः विषयी के संस्कार , स्वभाव आदि को सौन्दर्यानुभूति से काटकर नहीं देखा जा सकता है। इसी तरह विषयी की अनुभूतियों को पूरी तरह निरपेक्ष भी नहीं बतलाया जा सकता है।

वस्तुतः नए सौन्दर्य शास्त्र का उद्देश्य तो अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध उसके संघर्ष को और कुरूपता के विरुद्ध उसके स्वतंत्र सौन्दर्य –सृजन को प्रोत्साहित करना तथा नये समाज के निर्माण में उसकी सक्रियता में योगदान करना है। कविता अथवा कला , जो अपने सौन्दर्यबोध को आयासहीन बिम्बों के रूप मे मूर्त करती है तथा जो भावात्मक ही नहीं वैचारिक शिक्षण का प्रभावी माध्यम भी है , उसका भी उद्देश्य यही है। क्या यही कारण नहीं है कि अन्याय, अमंगल और कुरूपता के विरुद्ध संघर्ष करने वाले काव्य–नायक इसीलिये मोहित और प्रेरित करते है। इसे ही हम साहित्य या कला का नैतिक दायित्व मानते है। इसका संबंध हमारी सौंदर्यानुभूति से है। " जीवन का समग्र विकास ही सौन्दर्य है। यह सौन्दर्य वस्तुतः एक सृजन व्यापार है। इस सृजन की क्षमता मनुष्य मे अर्न्तनिहित है। वह इस सौन्दर्य–सृजन की क्षमता का कारण मनुष्य है। इस सृजन व्यापार का अर्थ है, बन्धनों से विद्रोह। इस प्रकार सौन्दर्य विद्रोह है–मानव मुक्ति का प्रयास

---

१. जय शंकर प्रसाद–काव्य कला तथा अन्य निबन्ध पृ०–५

है।"[1] इसी दृष्टि से प्रसिद्ध लेखक बेलिंस्की सुन्दरता को नैतिकता की सगी बहन कहता है। भारतीय सौन्दर्य–शास्त्रियो ने भी नैतिक जीवन मूल्यो के परिप्रेक्ष्य में ही सौन्दर्य को परिभाषित किया है–

" अनौचित्याद् ऋते नान्यत् रस–भंगस्य कारणम्" – क्षेमेन्द्र

इसी आधार पर आचार्य शुक्ल ने भी इसे 'लोकमंगल' से जोडा और 'कर्म सौन्दर्य' तथा 'गत्यात्मक सौन्दर्य' की सार्थक स्थापना की। प्रेम, हर्ष, कामना, उत्साह जैसे अनेक मानवीय अनुभव भी प्रभु वर्ग के हितों के अनुरूप अनेक व्यापार की वस्तु रहे है और है। अतः यह वर्ग अपनी लिप्सा के अनुरूप एक खास तर्ज की सौन्दर्याभिरुचि का निर्माण कर लेता है ; और उसे सारे भावक समाज पर आरोपित कर, कलाकृतियों का संदर्भ और परिप्रेक्ष्य ही बदल देता हैं । फलतः हमारी मन की प्रामाणिक सौन्दर्य चेतना कुंठित हो जाती हैं । मुक्तिबोध सर्वहारा से जुड़े होने तथा एक स्वस्थ मानवीय दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण इस विपर्यय को पहचानते है।

आज व्यापक मानव समाज में पाये जाने वाले भयानक संघर्ष की पहचान के लिये नये सौंदर्य शास्त्र की मांग जोर पकड़ रही है। नयी कविता के स्ववादी लेखकों ने अपने सौन्दर्यशास्त्र को गढ़ते हुये आलोचनाओ का जवाब देने अथवा उनकी कृति आलोचकों के बेसिक फाल्ट या ओरिजिनल सिन ढूंढने में ही विसर्जित होती गयी। आखिर आलोचना की जरूरत से उसके मुकरते चले जाने के पीछे कौन से राज है ? दरअसल यह स्ववादी कविता अपने गुणात्मक कला प्रभावों की क्रांतिकारी दृष्टि तभी पा सकती थी, जब वह जडता और गतिरोधों को तोड़ने मे नयी सौन्दर्य दृष्टि का सहारा लेती। उन्हे बार–बार अपनी बात स्थपित करने के लिये तमाम तरीकों में इसलिये प्रगल्भ होना पडा क्योकि उनकी दृष्टि में सौन्दर्य का, अछूते मानवीय सौन्दर्य को देखने की परिकल्पना ही नही थी।

सौन्दर्य मूलतः ऐन्द्रियता का विज्ञान है। इसका उद्देश्य भी स्वतंत्रता तथा सुख–भोग है। यह भी मूलवृत्ति तथा नैतिकता का समन्वय करता है। वस्तुतः सौन्दर्य अपने आप में मानवीय चेतना विस्तार है। यह सत्यं–शिवं–सुन्दरम् के रूप में संस्कृति द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार संस्कृति बोध के विकसित होने की चेष्टा है। सौन्दर्यबोध एक संश्लिष्ट इकाई है। सौन्दर्य प्रकृति में है, मनुष्य के मन में भी उसकी अनुभूति व्यक्तिगत होती है, समाजगत भी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सौन्दर्य को सौन्दर्य न कहकर लालित्य कहना चाहते हैं तथा मानव रचित सौन्दर्य को विशेष महत्व देते है। लालित्य वह इसलिए है कि , मनुष्य में लालित्य है। सौन्दर्य के संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की अवधारणा मानववादी है। इनकी

---

१. डा० नामवर सिंह–दूसरी परम्परा की खोज–पृ० ६६–६७

सौंदर्यदृष्टि मूलतः मानव केन्द्रित है। क्यों कि सौन्दर्य का स्रष्टा मनुष्य है, बल्कि यह भी कि सौन्दर्य की सृष्टि करने के कारण मनुष्य है।

सौन्दर्य बोध की चिन्तन प्रक्रिया वैज्ञानितकता के प्रभाव, औद्योगीकरण तथा आर्थिक पक्ष की प्रधानता के कारण एक नया रूप ग्रहण करता है, और इस अंकन का आधार भौतिकवादी हो जाता है। मानवीय एव इसी दुनिया के सौन्दर्य का अंकन समकालीन कवि का प्रतिपाद्य है। दिव्य और अलौकिक सौन्दर्य का अंकन आज का कवि, साहित्यकार अपनी सीमा रेखा में नहीं लेना चाहता। वह इस दिव्यता या अलौकिकता को मानवीय धरातल पर लाता है तथा इसे यथार्थता का रूप देता है। काडवेल सौन्दर्य को एक सामाजिक भाव मानते हैं और उसकी परिभाषा देते हुए कहते है– कि जो कुछ असुन्दर है उससे भिन्न जो कुछ है उसे सुन्दर कहा जा सकता है। असुन्दर ही सुन्दर हो नियत करता है और उसे एक निश्चित सीमा में बांधता है........ सुन्दर का विरोधी , असुन्दर नहीं, वरन कुरूप हैं । मार्क्सवादी विचारक इस मत पर एकमत हैं कि सौन्दर्य की स्थिति व्यक्ति के मन में न होकर वस्तु में होती हैं । सुन्दर वस्तु की पृथक सौन्दर्य सत्ता नहीं है। आज के रचनाकारों की सौन्दर्य चेतना वस्तुपरक होती है। इसमें मानवीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य विशेषकर लोक सौन्दर्य व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति है।

साहित्य में बौद्धिकता का प्राधान्य हुआ, लेकिन भावना का अभाव नहीं हुआ, प्रत्युत उसका प्रभाव अपेक्षाकृत व्यापक हो गया। तर्क और भावना का संघर्ष आधुनिक काव्य व साहित्य की मूल चेतना है। साहित्य और जीवन का संबंध घना है। जीवन में एक ओर व्यक्ति है, दूसरी ओर समाज । जीवन की सामूहिक चेतना से आधुनिक साहित्य व काव्य प्रभावित है। यही कारण है कि आज साहित्यकार सामूहिक अचेतन को अपनी अभिव्यंजना का आधार बनाता है। इस तरह आज साहित्य जगत में सौन्दर्यांकंन की दो दिशाएं हो चही हैं – १– उपयोगितावाद– इसके अतर्गत कोई रूप योजना प्रयोग अथवा अलंकार एक सीमा तक सुन्दर लगता है जिस सीमा तक वह उपयोगी है। वस्तु की उपयोगिता ही आज के सौन्दर्य की मूल चेतना है। २– दूसरी दिशा उपयोगितावाद की विपरीत दिशा में एक नवरहस्यवादी चेतना का उन्मेष भी है, जो सामयिक परिवेश में रहस्यवादी चिन्तन को प्रस्तुत करती है। आज हम किसी ऐसे सौन्दर्य बोध को स्वीकार नहीं करते जिसका प्रभाव नितांत वैयक्तिक अथवा असामाजिक हो। कलात्मक सौन्दर्य–चेतना सांस्कृतिक मूल्यों की तरह, जीवन की , देश काल की बदलती हुई परिस्थितियों के संतुलन के व्यापक प्रतिमान के रूप में विकसित होती हैं। वस्तुतः कवि अन्तः और बाह्य व्यक्ति और समाज के समुचित सामंजस्य के साथ जीवन को ऐसी सम्पूर्णता के साथ आत्मसात् करता है कि वह अपनी देशकालगत सीमाओं के बावजूद भी संवदेशीय एवं सर्वकालिक बन जाता है। " किसी वस्तु या दृश्य या भाव से मनुष्य जब एकाक़ार हो जाता है तब सौन्दर्य बोध होता है। सब्ज़ेक्ट और आब्जेक्ट से तादात्म्य कर लेता है तब

सौन्दर्य भावना उद्‌वुद्ध होती है । सौन्दर्य प्राकृतिक तत्वो में स्थित न होकर मनुष्य के अन्तः जगत् में है अर्थात् मनुष्य की अन्तवृत्ति को प्रकृति के साथ जोड दिया जाता है जब वह सुन्दर हो जाता हैं । इस प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य भी आत्मगत एवं वस्तुगत का समन्वित रूप है। सोन्दर्य एक वस्तु का बिम्ब है जो सौन्दर्यानुभूति का निश्चय करता है और बदले में, सौन्दर्य, वस्तु के बिम्ब के निर्माण में प्रभाव भी डालता है। इसलिए सौन्दर्यानुभूति सौन्दर्य को भी प्रभावित करती है। यह एक अन्योन्याश्रित रिश्ता हैं । इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति सीधे ढंग से सौन्दर्य तत्व के ऐतिहासिक विकास को भी प्रभावित करती है। आज कलात्मक सौन्दर्य के सृजन द्वारा लोक जीवन या यथार्थता मे ही सौन्दर्य का संवर्द्धन संभव है।

****

अध्याय ७ खण्ड ख
शमशेर की सौन्दर्य दृष्टि

शमशेर के यहां चारुता है; वे कलाओ, परम्पराओं और सूचनाओं के दोहन से अनुभूति की निजता में जो रचते हैं, वह जटिल भी है, और सुन्दर भी ; एक ऐसी आत्मस्थ कला अनुभूति, जिसमें हम आत्मस्थता मे भी सम्पूर्णता का अनुभव करते हैं। उनकी संवेदनाये धीमें आवेग और अनुशासन में सधी जटिल एवं एक साथ बहुस्तरीय या सम्मिश्र हैं, इसलिए उनके संवेदना गर्भ तक पहुंचना अबूझ और ससूझ भी मालूम पडता है, जिसे किसी आलोचना के किसी पूर्व निर्धारित मानदंड अथवा शास्त्र से समझना–समझाना असम्भव रहता है, जो हर क्षण पहले से अधिक सजग भाव प्रवण और उदार सहृदयता की मांग करती है। "जिसका प्रत्येक शब्द पहले के प्रत्येक शब्द से नया है किन्तु पहले का शब्द किसी भी रूप मे जिससे पुराना नही पडता हैं।"[1]

उनकी विचार सक्रियता और मानवीय चेतना सर्जन सक्रिय होती है, और पूरे सौंदर्यात्मक स्व मे प्रकट होती है। यहां विभिन्न भाव–संवेदना की प्रतिच्छायायें हैं। ध्वनियों के कोलाहल हैं तो शिलीभूत सन्नाटा है, कायातीत और रूपाकारातीत की अभिव्यक्ति है तो ठोस चट्टानी यथार्थ प्रत्यय भी। तर्क से यथार्थ की कई स्थितिया और इन्द्रियों की सम्वेत संवेदना के मिश्रित बोध से उनकी कविता उपजती है। भीतर से भरा कवि शब्दो मे जटिल है, इसलिये अभिव्यक्ति में भी, क्योकि अन्ततः वह जटिल रचना–संसार का कवि है। उनमें यहां शब्द और अर्थ लोकोत्तर से हो गये लगते हैं । फलतः अभिधावादियों को उनका काव्य बहुधा जटिल अस्पष्ट और लोक विरोधी जान पड़ता हैं। शमशेर में वस्तुतः रोमाटिक विदग्धता है जो उनके शब्दार्थो को, काव्यार्थो से सम्पन्न करती रहती है । गहरी जीवन लालसा बराबर उनकी कविताओं के प्रति हमें उत्सुक बनाती है, इसलिए " मनुष्य ने जो कुछ सबसे सुन्दर, सबसे कोमल, सबसे उदात्त और सबसे मानवीय है, शमशेर की कविताओं में हमें प्रभूत मात्रा में वह सब मिलता है। उनको कविता जीवन राग के राग की कविता है।"[2] सच तो यह है कि शमशेर की विचारधारात्मक प्रतिबद्वता घोषित रूप में मार्क्सवादी दर्शन के प्रति रही होने बावजूद उनमें किसी किस्म की विद्रोहात्मकता या तोड–फोड़ ना होकर –'प्रेम' रहा। वह दुनिया को समझते हैं इसलिए दुनिया के काव्य पाठ से, बदलते दिक्काल से, तकनीकी हस्तक्षेप, कोलाज से, यथार्थ की नई तटस्थ गहरी पकड़ से, जटिलतम संवेदना से, सर्वव्यापी प्रेम के द्वारा, मनुष्य बनाये रखने की सपनीली

---

१. विजय बहादुर सिंह–रोमांटिक विदग्धता के कवि शमशेर–कल के लिये–मार्च १९९४–पृ० ३५

२. डा० शिवकुमार मिश्र–कसौटी–५–सं०– नंद किशोर नवल–पृ० १५३

कोशिश मे कविता को इरा रूप गे ढालते है। शगशेर के यहां विवशता है— सौंदर्य की विवशता। ऐसी विवशता है, जिरारो उनकी एक कविता हगारा परिचय इरा तरह कराती है—

यह विवशता

कभी बनती चांद

कभी काला ताड

कभी खूनी सडक

कभी बनती भीत, बांध

कभी बिजल की कड़क, जो

जो क्षण— प्रतिक्षण चूमती— सी पहाड़।

यह विवशता

बना देती सरल जीवन को

खून की आंधी।"

आकस्मिक नही कि फ्रांस के क्रांतिकारी कवि लुई अरांगा पर शमशेर ने जो लेख लिखा है, उसका सबसे पहला वाक्य यह है —"*अरांगा मे सबसे प्यारी चीज शायद एल्सा के प्रति उसका प्यार है, जो उसकी कितनी ही कविताओं मे फूट—फूट कर छलकता है।*"एल्सा आरागा की बीवी थी। लेकिन आरांगा के बारे में शमशेर यह भी दर्ज करना कतई नहीं भूलतें कि 'फ्रांस के जर्रे—जर्रे से उसको इश्क है।" प्रेम के इन दोनो पक्षों को अरांगा अपने कविता मे कैसे साधते है, यह भी शमशेर से ही सुनिये— शायद एल्सा से कम तो वह फ्रांस को प्यार नहीं करता क्योकि वह समूचे फ्रांस को —फ्रांस की नई इन्कलाबी खूबसूरत पौध को—अपनी एल्सा के भीतर देखता है।' यह एल्सा भाव, जिसे शमशेर अरांगा के कवि व्यक्तित्व की धुरी बता रहे हैं, भारतीय कवियों में सिर्फ शमशेर ही इसे लक्षित कर सके क्योंकि इसे 'एल्सा—भाव' का एक भारतीय रंग भी है, जिसमें खुद शमशेर रंगे हुए है। शमशेर की कविताओं में किसी एल्सा की मूर्त सत्ता भले ही न मिले , एल्सा—भाव उनकी कविता में बराबर मूर्त होता रहता है।"[1] स्पष्ट है शमशेर की कविता में मुख्य धुरी सौंदर्य है— कविता का सौंदर्य, जीवन का सौंदर्य यहां तक कि संघर्ष भी वहां इसी स्पृहा से परिचलित होते हैं। "संघर्ष का यह रूप जिस चुनौती को स्वीकार करने से पाया जाता है, वह निरे बाहर से पेश की गई चुनौती नही है। वह कवि शमशेर के तईं एक बहुत ही आंतरिक चुनौती है जिसे स्वीकार किये बिना 'मनुष्य होना' ही

---

१. नामवर सिंह—यह विवशता—प्रतिनिधि कवितायें—पृ० ५६

सम्भव नहीं है, फिर भला 'कवि' कैसे सम्भव हो सकता है।"[1] "इसीलिए शमशेर को अभीष्ट है वह कला जो मनुष्य की आत्मा का संघर्ष बनती है। सघर्ष का यह रूप जिस चुनौती को स्वीकार करने से पाया जाता है, वह निरे बाहर से पेश की गई चुनौती नहीं है। वह कवि शमशेर के तईं एक बहुत ही आंतरिक चुनौती है जिसे स्वीकार किये बिना 'मनुष्य होना' ही सम्भव नहीं फिर भला 'कवि होना' कैसे सम्भव हो सकता है।"[2]

'कला सबसे बड़ा संघर्ष बन जाती है

मनुष्य की आतमा का

प्रेम का कंबल कितना विशाल हो जाता है

आकाश जितना

और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौन्दर्य हो जाते है।

मनुष्य की आत्मा में। (कला)

कलाओं की अंतनिर्भता ही नही, समानधर्मिता के समावेशी रचनात्मक चरित्र का जितना समृद्ध संसार शमशेर के यहां है, उतना पूरे आधुनिक काव्य इतिहास में कहीं नहीं। उनके जोड़ का समावेशी रचना चरित्र हिन्दी में यदि कहीं मिलता है तो सिर्फ सूर में। .... इसकी वजह वह सौन्दर्य दृष्टि है, जो हर चीज में एक अंतः सौन्दर्य देख लेती है। शमशेर कहते हैं सौन्दर्य की पूरी एक संरचना..... दृश्य जगत –पहले मेरी नजर में आता है......। उनकी सौन्दर्य दृष्टि को आप आत्मपरक या वस्तुपरकता के खानों मे नहीं बांट सकते और यह कि आत्म और वस्तु की अंतरक्रिया से ही उसकी उपलब्धि होती है। दूसरा सप्तक के वक्तव्य में शमशेर ने कहा था, " सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पलछिन होता रहता है। अब हम पर है कि हमने अपने सामने और चारो ओर की इस अनन्त और अपार बेला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।"[3]

आप चाहे तो इस वक्तब्य के अवतार, अपार लीला अन्दर घुलाने को वैष्णव शब्दावली मानकर इसकी आत्मपरक सौन्दर्य शास्त्रवादी ही नहीं, रहस्वादी व्याख्या भी कर सकते हैं और यह किया भी गया है शमशेर को विशुद्ध कवि घोषित और सिद्ध करने के लिए, लेकिन ऐसा आप तभी कर सकते हैं जब वाह्य जीवन जगत मे पलछिन रूप लेते सौन्दर्य के अन्दर घुलने की अभ्यांतरीकृत प्रक्रिया को नजरान्दाज कर दें।... शमशेर में अति यथार्थवादी रूपाकारों की मौजूदगी है।....... लेकिन इन रूपाकारों में शमशेर की समावेशी प्रयोजनवती कल्पना शक्ति की सक्रिय भूमिका का अनदेखा नहीं किया जा सकता।"[4]

---

१. डा० राजेन्द्र कुमार–शमशेर बनाम प्रगतिवाद–कल के लिये–मार्च १९६४–पृ० ३८

२. डा० राजेन्द्र कुमार–शमशेर बनाम प्रगतिवाद–कल के लिये–मार्च १९६४–पृ० ३८

३. शमशेर–दूसरा सप्तक–पृ० ८०

४. धनंजय वर्मा–प्रेम और प्रकृति : प्रगतिशील काव्य की वृहत्त्रयी : नागार्जुन केदार शमशेर–वसुधा–अंक ६–पृ० २९

उनमें यथार्थवादी रूपाकार भी आन्द्र ब्रेतां या साल्वाडोर की मुक्ति की बजाय लुई अरांगा, पाल एलुआ से अधिक मिलते हैं। वहां यथार्थ से कल्पना की मुक्ति नहीं, स्वप्न के अर्धचेतन जगत का मुक्त साहचर्यवादी बिम्ब विधान या असम्बद्ध भाव बिम्बों का विन्यास वहा नहीं है। दरअसल वह यथार्थ के प्रतीत और आभासित विन्यास के पीछे छिपे वास्तव के साक्षात्कार का ही प्रयत्न है। डा० राम विलास शर्मा ने सही कहा है कि "शमशेर सुर्रियलिस्ट... अतियथार्थवादी......नहीं एक रियलिस्ट.... यथार्थवादी कलाकार हैं।"......यथार्थवाद की कलात्मक सभावनाओं का इससे अधिक दोहन करने वाला, उसे इतनी ऊंची कलात्मकता तक उठाने वाला और कोई कलाकार समकालीन परिदृश्य में मौजूद नही है। शमशेर के लिये यथार्थ वह सब कुछ है, बकौल उनके जो "मनुष्य के जीवन में घटित और अनुभूत होता है। मनुष्य के स्वप्न, योजनाएं, उसके समस्त कार्यकलाप, संघर्ष, आंदोलन, क्रान्तियां, उसका व्यक्तिगत और सामूहिक यथार्थ है।" इस यथार्थ में से निकलकर ही वे अपने सौन्दर्यविधा का निर्माण करते है। संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओ के प्रति इतनी जागरूकता, आंख, कान, नाक, स्पर्श की इतनी उत्तेजित तत्परता अन्यत्र दुर्लभ है। सवाल दरअसल इस सघन ऐन्द्रियता के काव्य निर्वाह का है, और इस लिहाज से शमशेर मे रूमानी सघन ऐन्द्रियता के साथ जो क्लासिकी सयंम है, वह निराला के टक्कर का है। जूही की कली और और न पलटना इधर को साथ–साथ इस प्रसग में देखा जा सकता है। ...... शमशेर मूलत. रूमानी कवि है। स्वयं वे और उनकी कवितायें इसका ऐलान करती है। लेकिन यह रोमान जिस संसार मे आंख खोलता है, उसकी हकीकत यह है :

एक रोमान

जो कही नहीं है मगर जो मैं

हूँ हूँ

एक गूंज ऊबड खाबड़

लगातार

ऑख जो कि अंसुआ

आई हो बहुत ही करीब बहुत

ही करीब (एक नीला दरिया बरस रहा है/चुका भी हूँ नहीं मैं)

एक गैर–रूमानी दुनिया के बीच यह स्वअर्जित हठी रोमान है–

डबडबाई आंखों में सितारों भरे आसमान को पा लेने की चाह

जैसा, लेकिन जिसे वास्तविकता में पा सकना मानो मौत की

प्रतीक्षा करना है फिर भी कवि है, जो इसे किसी भी कीमत पर

इंतिहाई हद तक, पाना चाहता है

मुझको प्यास के पहाड़ पर लिटा दो जहॉ मैं

एक झरने की तरह तड़प रहा हूँ मुझको

सूरज की किरणों में जलने दो–

ताकि उसकी ऑंच और लपट में तुम

फॉवारे की तरह नाचों[1]

" सचमुच अपने जीवन में शमशेर प्यास के पहाड़ों पर, झरने पर रहे, खुद सूरज की किरणों जैसी आग में जलते हुये उसकी लपट से फॉवारो को रंगारंग करते रहे। जबकि कटु क्रूर जीवन से तो निराशा, कुण्ठा, अकेलेपन या अनास्था के स्वर उठते है। यह रोमान कहॉ से आ गया। यह लबालब प्रेन, यह वीणा की झनकार से बना हुआ सौन्दर्य जहॉ पृथ्वी सांस लेती है।"[2]

कत्थई गुलाब

दबाये हुए है

नर्म नर्म

केसरिया सांवापन मानो

शाम की

अंगूरी रेशम की जगह

कोमल

कोहरिल

बिजलियॉ सी

लहराये हुए है

आकाशीय

गंगा की

झिलमिली ओढ़े

तुम्हारे

तन का छंद

गतिस्पर्श

---

१. शमशेर–टूटी हुई बिखरी हुई/कुछ और कवितायें

२. प्रभाकर श्रोत्रिय–अतल में अटका हुआ आंसू–साक्षात्कार, जून १९६७–पृ० ४२

अति अति अति नवीन आशाओ भरा

तुम्हारा/बंद बंद[1]

शमशेर की कविताओं का मुख्य स्वर प्रत्येक स्थिति, मनोदशा और दृश्य में सौन्दर्य की आभा खोजना है और इसी आभा को वे सौन्दर्यातमक रूपाकारों और विम्बो के द्वारा व्यंजित करते है। भाषा का विशेष प्रयोग, शब्दों का सार्थक चयन, सपनो के मध्य एक विम्बगत संगत और अर्थो की ताल और प्रगाढ़ ध्वनियां इन सबसे पाठकों को ऐसा लग सकता है कि कवि की सौदर्य चेतना 'आत्मगत' है पर यह 'आत्म चेतना' वाह्य चेतना का नकार नही है , वरन् उसकी वाह्य चेतना का एकीभूत संस्कार है। यह वाह्य और अन्तर का भेद इतना सूक्ष्म है कि शमशेर की कविताओं को बगैर इसे ध्यान में रखे , उनका सार्थक आस्वादन और मूल्यांकन नहीं हो सकता है। इसके बावजूद यह भी सत्य है कि शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट 'जटिल' एवं जैविक है और यदि अजीत कुमार के शब्दों में कहे तो "इस जटिलता के कारण भाषा और बिंब के स्तर पर कई कविताओ को पढकर अर्थ स्पष्ट न होने पर झुझलाहट उत्पन्न होती है।"[2] लेकिन शमशेर इसीलिए विशिष्ट हैं और इसी से उनके प्रेरणा स्रोत भी विशिष्ट है। शायद इसका कारण शमशेर का वह सृजन बोध है जो अनुभव में है। फलतः यह जटिल सवेदी कवि वाक् से दर्शन की प्रेरणा देने और पाने में मौत की हद तक मित रहना चाहता है। इसी स्तर पर शमशेर भाषा को दृश्य और दृष्टि की प्रेरणा बताते हैं।

सूना सूना पथ है, उदास झरना

एक धुंधली बादल– रेखा पर टिका हुआ

आसमान

जहां वह काली युवती

हंसी भी।

"आरंभ में कुछ ही शब्दों में बिना किसी उपमा के कवि एक परिचित से दृश्य चित्र को बना देता है। यकाएक उसके तुरन्त बाद एक शब्द की तीसरी पंक्ति 'आसमान' में वह एक छोटे सीमित दृश्य को विशाल फलक दे देता है और एक ऐसे तनाव को जन्म देता है जो भाषा और बिंब दोनों में बंटा दीखता है। शब्दों की बनावट उजागर हो जाती है और उत्सुकता जागृत। तभी कवि हमें अपने विश्वास में लेकर बताता है।–
जहां वह काली युवती.................

'वह' शब्द के प्रयोग से लगता है कि जैसे कवि और हम पहले से पूर्व कथा को जानते है और बीच से ही कथा में हम उसके साथ हो लेते है। यहां पर एक विशिष्ट व्यौरा काली का देकर जैसे तैयार जमीन

---

१. शमशेर –कत्थई गुलाब/इतने पास अपने
२. अजित कुमार–कविता का जीवित संसार–पृ० ११०

पर एक डिजाइन काढ दिया जाता है। इतनी सब स्थित भूमिका बना लेने के बाद पूरे दृश्यबंध ने 'हंसी थी' कहकर जीवन डालता है। चांद उगाता है। हम अपनी यादों की रील को चलाकर शीघ्र ही पाते है कि ऐसे ढांचे की याद हमारे पास भी है, या नहीं है तो ऐसा स्वप्न तो देखा ही हैं, और यथार्थ और सपने में अतर ही कितना है। हो न हो वह कवि का सपना ही हो, फिर से पढकर देखो। वर्णन तो बिल्कुल अपने सा ही है। यह यथार्थ अपने और सपने के बीच सापेक्षता इसलिए आ सकी क्यों कि इस कविता मे अमूर्तन का बहुत सशक्त उपयोग किया गया है।"[1]

शमशेर की कविता मे प्रेम के लौकिक और मानवीय संदर्भ खासतौर पर प्रभावित करते है; उनके प्रेम वर्णन में समूचा सामाजिक और प्राकृतिक परिवेश गुंथा हुआ मिलता है, पर आम भावना या माग की निश्चित पकड और विकृत मानस से अक्सर ऊपर उठा हुआ यह प्रेम मनुष्यता को जगाने वाला होता है, सुलाने वाला नहीं। 'प्रेम' शीर्षक कविता मे शमशेर लिखते है–

"नींद नहीं तुम। नींद से हालांकि छा जाते हो
मेरे अवयव–अवयव पर। तुम चेतन उम्मीद
सपनों में जागते हो। स्वप्न नहीं तुम
काम–वासना में तुम प्यारे प्रेम। काम –वासना नहीं
तुम इस मायाविनी रजनी के । ज्योतित इसके मधुर
अस्थिर समय के तुम स्थिर सौंदर्य
आदि पुरातन तुम मे
मेरे पुलकित प्राण
अभिनव अभिनव से। "[2]

शमशेर की कविता मे प्रेमकी प्रतिष्ठा नये रूप में हुई है। उन्होंने प्रेम का मूल्य कम से कम मनुष्य का आधा जीवन माना है। यह उनके आधे जीवन का पर्याय है। प्रेम का आलम्बन शमशेर की कविता में अक्सर सुन्दर होता है। असल मे शमशेर हिन्दी में अपने ढंग से अकेले वर्तनामुक्त प्रेम के कवि हैं। विजय देव नारायण साही ने शमशेर के बारे में कहा था कि हिन्दी में आज तक विशुद्ध सौन्दर्य का कवि यदि कोई हुआ है तो वह शमशेर है। "पर साही का यह निष्कर्ष एक तरह का सरलीकरण है कि शमशेर ने किसी विषय पर कवितायें नहीं लिखी हैं या एक ही कविता बार–बार लिखी है और वह एक विषय, सौंदर्य है। सच्चाई यह है

---

१. विपिन कुमार अग्रवाल–अमूर्तन के पक्ष में–तीसरा साक्ष्य, सम्पादक–अशोक बाजपेयी–पृ० २७–२८
२. शमशेर–उदिता–पृ० ४४

कि शमशेर के लिए प्रेम या सौंदर्य के सच्चे अनुभव में आदमी का भविष्य छिपा है और इसके लिए अध्यात्म का कोई घटाक्षेप जरूरी नही है। सौन्दर्य की 'अनंत झिलगिलाहट' से भी निरे अध्यात्म का भ्रम नहीं होना चाहिए। उदात्त के लिए आदमी इसी लौकिक मानवीय अनुभव के दायरे में ही है।"[1]

शमशेर के निजी, बहुत निजी अनुभवों के बिम्ब सुसंगत रूपाकार में ढले हुए हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। *बदन के माध्यम से बात करती प्रिया। बदन जो कांसे का, चिकना सा और हवा मे हिलता हुआ।* यह हिलना ऐसा जैसे कायनत हिल रही हो। आंखे जैसे गन्दुमी गुलाब की पंखुडिया खुली हुई सी। बदन जो जहा एक ओर सुडौल दूसरी ओर आवशार (जल प्रपात) सा। 'प्रकृति–रूप' कविता मे अबशार को स्थिर कहा गया है। प्रेम जो अपनी अभिव्यक्ति में भी गूंगा बन जाता है। प्रेम की आदिमता– जैसे नया अर्थ प्राप्त करती है। शमशेर रूपाकारो से ही नही, रूपाकारो मे से छनकर आती हुई अनुभूति मे भी अपना निजीपन प्रकाशित करते है :–

मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के मुख में
आनन्द का स्थायी ग्रास हूं
मूक।

यहां शारीरिकता, अनुभवों में गहरे अनुभव की तरह अर्थ और दीप्ति प्राप्त करती है जहॉ स्थिर और गतिमान के अनुभव एक दूसरे में संक्रमति होते हैं।

यह पूरा
कोमल कासे में ढला
गोलाइयों का आइना मेरे सीने से कसकर भी
आजाद है
जैसे किसी खुले बाग में
सुबह की सादा
भीनी–भीनी हवा..................
जंघाएं – दो ठोस दरिया। ठैरे हुए–से।

मनौवैज्ञानिक तथा भाषात्मक यथार्थ के आगे इन अनुभवों को इसी जीवन–दृष्टि के अनुसार देखना जरूरी है, जो असम्बद्ध अनुभव रूपों और प्रतीतियों को अंतर्गठित करने में सक्षम है। लेकिन ऐसे अनुभव श्रंगारी उत्तेजक (erotic) जान नही पड़ेंगे। दूसरे स्तर पर शमशेर के अनुभवों की स्वायत्तता इतनी प्रकट और महत्वपूर्ण है कि उसे अन्तर्गठित करने वाली जीवन–दृष्टि का भी सामान्यीकरण कठिन है। अनुभव–रूपों

---

१ परनानंद श्रीवास्तव–शमशेर की कविता किस अर्थ में आजादी की खोज है–कल के लिए, मार्च १९६४–पृ० ३३

की संक्षिप्तता , कसाव, लालित्य ,दृढता, तीखापन यदि यह शिल्पदक्षता का ही परिणाम है तो उस पर भी शमशेर के ब्यक्तित्व की अद्वितीय छाप है। अर्थ की एकदेशीयता को विचलित करने वाला क्रीडा–भाव भी इस व्यक्तित्व की पहचान है।

दरअसल शमशेर काव्यवस्तु का 'पर्सेप्शन' ही बिम्ब में करते हैं, इसका अर्थ यह नही कि शमशेर मूर्त भाषा मे सोच और कह सकते ही नही । उनकी कई सशक्त कवितायें सर्जनात्मक सपाट बयानी की कवितायें हैं, लेकिन उनके बिंबों की खूबी यह है वे धारणा या वाक्य के जरिये कवि मानस में स्वायत्त हुए बिना विचारबोध के आग्रह को मूर्त करने के लिए नहीं गढ़े गये है। वे स्वतः स्फूर्त हैं ; इन बिंबों को संप्रेष्य वस्तु और संप्रेषक बिंब के सुविधाजनक युग्म में तोड़ना कविता के असर को खत्म करता है। फिर इन बिंबों के लिए केवल अपरिहार्य शब्दों का प्रयोग करने वाला शमशेरीय अंदाज़, जिससे कविता मे जो असर पैदा होता है उसे सिर्फ अनुभूत किया जा सकता है। ताज्जुब नहीं कि शमशेर की कविता पाठक से धैर्य की, बल्कि मलयज के शब्दों में कहे तो "एक तरह के आदरभाव की मांग करती है।" "सौन्दर्य के प्रति शमशेर की दृष्टि ऐसी है जिसमें किसी तरह की स्थूलता के लिए सम्भावना नहीं रह जाती है। वे सौन्दर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रूप को पकडना चाहते है और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर प्रभाव को कविता में अंकित करना चाहते है।"[1]

सौन्दर्य जो त्वचा में नहीं
थिरकते रक्त में नहीं
मस्तिष्क में
नहीं कही इनके पार
बरसता है अणु–अणु पल–पल में
बदन में, दृष्टि में–
शब्द में और उसके पार से
कहीं शब्द के अर्थ में
दुःख–सा–मौन–सा,
अपरिमित सुख की चेतना में,
मथता है,
मथता है,

---

१. नयी कविता, अंक–७–पृ० १३७

शुद्ध अनुभूति के स्तर पर सौन्दर्य को स्वीकार करने के कारण वे शरीर और इन्द्रियबोध से आगे बढकर संवेदना और चेतना के स्तर पर सोन्दर्य के प्रभाव को महसूस करते हैं। शमशेर की सौन्दर्य संवेदना स्थूल के सूक्ष्म को अधिक महत्व देती है, इसलिए उनके यहां नारी सौन्दर्य के चित्रण में भी उस प्रकार की स्थूलता और मांसलता नहीं मिलती, जैसी कि प्रयोगवाद और नयी कविता के अनेक दूसरे कवियों में मिलती है। शमशेर की सौन्दर्य संवेदना अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती आदि से एकदम अलग किस्म की है। स्थूलता को कम महत्व देने के कारण ही प्रेम के संयोग चित्रण में भी, संभोग के चित्रण से बचते है। प्रेम के संदर्भ में वे शारीरिक एकता के बदले मानसिक और आत्मिक एकता की अधिकाधिक अभिव्यक्ति करते हैं। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उन्होंने सौन्दर्य को मूर्त रूप में व्यक्त नहीं किया है। सौन्दर्य के सूक्ष्म और अमूर्त रूप को मूर्त और बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करना ही शमशेर की कविता की श्रेष्ठता का प्रमुख कारण है। यही शमशेर की कला की विशिष्टता भी प्रकट होती है। शमशेर अपनी भावनाओं और संवेदनाओं का विस्तार करते हुए जीवन जगत के सौन्दर्य को, उसकी अनुभूति को, अपनी कविता में व्यक्त करते है। शमशेर कवि कर्म की सार्थकता की एक अनिवार्य शर्त यह मानते हैं कि कवि अपने सामने और चारों ओर की अनंत और अपार सौन्दर्य लीला का कितना अधिक से अधिक बोध प्राप्त करता है और उसे अपनी रचना मे व्यक्त करता है। उन्होंने जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति को कला साधना का अनिवार्य गुण माना है।

शमशेर की कविता एक परिपूर्ण राग है– अत्यन्त कोमल और पेचीदा , जिसमें शब्द–शब्द मानो शमशेर की हार्दिकता का स्पर्श पाकर , किसी अलौकिक रेशम पर फिसलती रंग ध्वनित मणि हो जाता है।

आकाशीय,

गंगा की

झिलमिली ओढे

तुम्हारे

तन का छंद

गतस्पर्श

अति अति अति नवीन आशाओं

भरा

तुम्हारा

इस कविता की अंतिम पंक्तियां है–*ओ प्रेम की असंभव तरलते/सदैव सदैव* ! "इस कविता में शमशेर की तल्लीनता तन के छंद के सम्पूर्ण सौंदर्य की एक असंभव सी आभा बिखेरकर भी जहाँ पहुंचती है, वह है

प्रेम की असंभव सरलता। सरलता जैसे रूढार्थ पद को शमशेर अपनी अगाधता से छूकर एक पल में भर देते है। और वह अपने नख शिख में दिप–दिप मानवीय चेतना के गुह्यतम चक्रों को भेदकर निकलती कविता का आभामय रूप धर लेता है।"[1]

यह सारा आयोजन मानो इसलिए है कि शमशेर जानते हैं कि प्रेम जैसे अत्यंत संवेदित भाव को पाठक के मन में कितनी सावधानी और कोमलता से प्रविष्ट कराना है। वस्तुतः शमशेर में प्रेम की जो कल्पना है, स्मृतियों का जो द्वंद्व है वह उनके राग तत्व को अपरूप नहीं होने देता, बल्कि वे स्मृति को इस तरह आंकते हैं कि उसकी पृष्ठभूमि मे निहित रूप वैभव और कांति का आभास पाया जा सके। दृश्य के पीछे छिपा अदृश्य उनकी स्मृतियों को और अधिक सघन करता है।

स्पष्ट है प्रेम के इस अद्‌भुत कलाकार की सौंदर्यात्मक चेतना और दृष्टि बेहद गहन मानवीय संवेदना से संयुक्त है। यह कविता अपने पाठको को भाव विभोर ही नहीं करती , बल्कि भाव सस्कार भी प्रदान करती है।

---

१. मालचन्द तिवाडी हंस–२० जुलाई १९९३

****

अध्याय ७—खण्ड ग
नागार्जुन की सौन्दर्य दृष्टि :

वस्तु की दृष्टि से नागार्जुन का काव्य सर्वथा मौलिक और अद्वितीय है ; क्योकि ये कवितायें जहां बेहद सामाजिक हैं, वहीं इनमे स्पृहणीय आत्मीयता भी है। इन कविताओं को पढते हुए नागार्जुन का काव्य—संसार मनुष्य के हृदय की विश्व व्यापी पहचान कराता है—हमसे एक रिश्ता बनाता हुआ , कविता के विरुद्ध होती स्थितियों के प्रति सावधान करता हुआ , चट्टान होती मानवीय नियति में मानवीय मूल्यों को झरने के पानी की सी प्रतिष्ठा करता हुआ सा। सामाजिक प्रतिबद्धता के सरोकारों के साथ ही , उनके काव्य संसार में कुछ प्रेम और मार्मिक अनुभवों की स्मृतियों की अभिव्यक्ति का संसार है, जिसमें कवि अपनी भाषा मे खोलकर, देना चाहता है। समस्त निराशाओं के बीच रागदीप्ति से युक्त, इन कविताओ मे हमारी जिजीविषा को बनाये रखने की अजब ऊर्जा है। कवि की संवेदना बहुत कुछ वैयक्तिकता पर आश्रित है; पर अकुंठ सामाजिक प्रतिबव्द्धता के साथ—साथ ही इन कविताओं में समाज, संस्कृति और मनुष्यता के लिए चिंता का भी भाव है। अपने समय और अपने आस—पास के जीवन की सहज अनुभूतियो के सहारे बौद्धिकता और आधुनिकता के सकटों से जूझते हुए, उनके काव्य संसार मे प्रकृति , प्रेम और संवेदनशील रागात्मक जीवन का महालोक है। वह अनेक अनुभवों से संयुक्त है—

" यह तो वो नहीं है!
क्या मैं रोज यहीं बैठता था?
क्या नाशपाती का वही पेड है यह?
.......क्या हम इसी की छांह में
विगत ग्रीष्म के
मध्यान्ह गुजारते थे—
.......बाबा, अब आप
यहीं तो बैठोगे!
यहीं तो लौटेंगे!
पापा जब नहीं होंगे
तब मैं ही आपका साथ दूंगा।[1]

---

१. प्रतिनिधि कवितायें—पृ० ८६—८७

स्पष्ट है कि इन कविताओं में मनुष्य के कोमल संस्कारों को सिर्फ बनाये रखने की ही अदम्य लालसा नही , प्रत्युत यह जीवन को फिर से पाने जैसा है। ऐसी पंक्तियां जहां जीवन है– उनकी संवेदनाएं कवि के गहरे ऐंद्रिय बोध के साथ ही इस बात को सिद्ध करती हैं कि कवि की जीवन के प्रति मजबूत आस्था है। यह आस्था ही उसे जैसे सब कुछ का निषेध करने की दृष्टिहीनता से बचा लेती है। इस आस्था की चमक को केन्द्र में रखकर ही हम कवि के क्षोभ, बेचैनी या आक्रोश वाले भावों की ईमानदारी को समझ सकते हैं।

जीवन से प्यार करने वाला ही जीवन में व्याप्त सौंदर्य को परख सकता है। यह सौंदर्य हर जगह हर तरफ फैला है। नागार्जुन इसीलिए इस चारों ओर परिव्याप्त सौंदर्य के किसी भी कोने को अपने से ओझल नही होने देते, होने देना भी नही चाहते और इसी कारण से जब उनकी कवितायें सौंदर्य के इस परिवृत्त को उघाडती हैं , तो अनायास ही ऐसा सब कुछ सामने आ जाता है जो बेहद मोहक, होता है। यही वह पृष्ठ भूमि है जिसमें वह सभी अपनों को याद करते हैं। उन सबके प्रति वह बार–बार नेह से प्रस्तुत होते हैं। यही पृष्ठ भूमि है, जिसमे नागार्जुन अपने सहवर्ती *'तन मन के सजग चितेरे'* (१६५६) केदारनाथ अग्रवाल को पहचानते हैं, उन पर मुग्ध होते हैं और उनसे अपनी मित्रता के लिए स्वयं को 'बडभागी' मानते हैं। औरं 'तुम किशोर, तुम तरुण..........(१६५६) को सम्बोधित कर युवजन का आह्वान् करते है। "दरअसल नागार्जुन का मूल स्वभाव रागधर्मी है। फलतः रचनाशीलता का यह जनबद्ध चरित्र , विशुद्ध रागात्मक सवेदन की निजी जीवन प्रसगों में भी उभरा है। मानव सबंधों को आधार बनाकर रची गयी, इस प्रकार की कवितायें इतनी तरल, अनुभूति प्रवण एवं मर्मस्पर्शी है कि रोजमर्रा की जरूरतों को पाटने वाली मशीन बनी हमारी संवेदनाविहीन जिंदगी की टेक बन सकती है।"[1] इन कविताओं में रागात्मक संवेदना व्यापक, मानवीय तथा सामाजिक सरोकारों के तहत बडे विस्तार एवं गहराई के साथ चित्रित हैं ; और इनकी आत्मीयता में अंचल विशेष के संस्कार ही नहीं, उसकी सूचना में देश, देश की धरती तथा उस पर रहने वाला मनुष्य . सब कुछ सिमट आया है। *'सिंदूर तिलकित भाल'* इसी तरह की अप्रतिम कविता है।

"सांध्य नभ में परिश्मांत समान
लालिमा का जद अरुण आख्यान
सुन कान्ता में सुमुखी उस काल
याद आता है तुम्हारा सिन्दूर
तिलकित भाल !"

---

१. श्री नारायण समीर–चुनौती का कविकर्म और कविकर्म की चुनौती–पल प्रतिपल–पृ० २०४

यह दाम्पत्य प्रेम भी परिणय सूत्र में बंधे विवाहित जोड़ों का नहीं , बल्कि वृद्धावस्था का घनीभूत और सहज रूप से प्रगाढ़ हुआ दाम्पत्य प्रेम है। इनमें बड़े सार्थक बिम्बों के माध्यम से , जीवन के आवसानावस्था में पहुंचे दंपति के रागअनुराग की संजीवनी शक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है।

प्रेम एक आदिम, अनादि मनोवृत्ति है ; जो मनोवैज्ञानिक और सामूहिक दोनों स्तरों पर गतिशील रहती है। यही कारण है कि प्रेम वैयक्तिक भी है और निर्येयक्तिक भी है। जब प्रेम वैयक्तिक मनोभाव से ऊपर उठकर व्यापक मानवीय संदर्भो से जुड़ जाता है, तब प्रेम का एक विश्वजनीन रूप मुखर होता है। प्रेम के इस विश्वजनीन रूप का विस्तार हमें जाति, राष्ट्र और मानव प्रेम के संदर्भ में प्राप्त होता है। इस अर्थ में नागार्जुन का प्रेम व्यापक मानवीय संदर्भ को अर्थ प्रदान करता है जो शोषित, दलित और व्यापक मानवता से संबंधित है। उसका वह रूप मुखर होता है , जो वैयक्तिक राग–विरागों से ऊपर उठ जाता है। दूसरी ओर, नागार्जुन की रचनात्मकता में प्रेम का वैयक्तिक रूप भी प्राप्त होता है जिसमें कठोरता और संवेदना का घोल कहीं अधिक तो कहीं कम प्राप्त होता है। यहां पर 'मैं' और 'तुम' का ही संबंध है , जो रहस्यात्मक और अतीन्द्रिय नहीं है, वरन् उसका संबंध यथार्थ संवेदना से गहरा जुड़ाव रखता है। इस यथार्थ संवदेना में परम्परा का आग्रह तो है ,पर सिर्फ एक 'प्रतीक' के रूप में, क्योंकि कवि जहां एक ओर कालिदास का स्मरण करता है (प्रकृति संदर्भ और प्रेम संदर्भ) तो दूसरी ओर, वह विद्यापति को भी पूरी शिद्त के साथ स्मरण करता है। इस प्रकार वह मध्यकालीन प्रेम के मानवीय संदर्भ को , आधुनिक अर्थ प्रदान करता हैं। हमारी संस्कृति और परम्परा में राधा एक उदात्त प्रेम प्रतीक है और नागार्जुन उस उदात्ता को इस प्रकार स्वीकार करते है–

दूरागत वंशी ध्वनि में सुन

श्री राधा का नाम,

हाथ जोड़कर विद्यापति को,

मैने किया प्रणाम![1]

इन महत्वपूर्ण पंक्तियों को यहां पर देने का आशय यही है कि कवि 'विद्यापति' और 'राधा' को आदर्श प्रेमं –प्रतीक के रूप में लेता है , जिसमें हमारी जातीय परम्परा का वह रूप प्राप्त होता है , जो श्रृंगार और प्रेम को एक मानवीय संदर्भ देता है। उसे अलौकिकता के पास से 'कुछ' मुक्त करता है। नागार्जुन की उपर्युक्त पंक्तियों को यदि इस व्यापक संदर्भ में लिया जाय, तो कवि की प्रेम दृष्टि का एक व्यापक , एवं आधुनिक संदर्भ प्राप्त होता है।

---

१. नागार्जुन–हजार–हजार बाहों वाली–पृ० ६६

कवि की प्रेम –दृष्टि में एक निष्कपट एवं निच्छल रूप प्राप्त होता है , जो आत्म समर्पण और निवेदन की मनोभूमि को स्पष्ट करता है। कवि ने 'मैं' ,'तुम' के सम्बध द्वारा इन मनोभूमि को सार्थकता प्रदान की है। यहां पर 'तुम' एक प्रतीक है जो प्रिय की भावना को व्यक्त करता है; उसमें अलौकिकता का संस्पर्श नहीं है , जो हमें महादेवी में प्राप्त होताा है। यह 'तुम' यथार्थ की कठोर भूमि पर आश्रित है, उसमें मांसलता के दर्शन तो होते हैं,पर वह पारम्परिक रूप में नही है । कवि ने एक पाषाणी मूर्ति को निर्मित किया है और वह प्रिय से यह निवेदन करता है कि वह उस पाषाणी को छूकर उसमें प्राण एवं वाणी का संचार कर दे और कवि की यह इच्छा है कि, उसने भावों को सीमित कर जो गीत रचना की है, यदि 'तुम' इसे थोड़ा भी गा दो तो उसका रोम रोम कृतज्ञ हो उठेगा–

भावों को सीमित कर मैने

कड़ी जोड ली, गीत बनाया

रोम रोम होंगे मृतज्ञ ये

यदि तुमने थोडा भी गाया।

इस याचक के चिता चैत्य पर

आओ शीतल हाथ फेर दो

चरण कमल की ये पखड़ियां

मै लाया हूं, तुम बिखेर दो[1]

कवि का यह याचक–रूप हमें आत्म–निवेदन की उस तल्लीनता का परिचय देता है, जो भक्ति भावना के अंतर्गत भक्त–कवियों में प्राप्त होती है। लेकिन यहां पर संवेग और अनुभूति की जो प्रगाढ़ता प्राप्त होती है, उसका स्वरूप भक्ति–संवेदना से अलग है। यहा पर 'तुम' आलौकिक सत्ता का प्रतीक नहीं, वह 'मैं' की सापेक्षता में एक समान धरातल की मांग करता है। यह अवश्य है कि उपर्युक्त पंक्तियों में 'दैन्य' का हल्का संस्पर्श है, जो समान धरातल की जैविकता को कुछ तोड़ता जरूर है।

कवि के प्रेम–भाव में यह आत्मसमर्पण और दैन्य का भाव उसकी रचनात्मकता को एक ऐसी गंभीरता देता है, जो प्रेम के भिन्न स्तरीय संबंधों (मां, बहन, बेटी आदि) को अपने 'प्रिय' पर 'उड़ेलने' को प्रस्तुत है। यहां पर एक ओर भाई, बहन और मीत के प्यार और ममता का एक स्वतंत्र रूप होते हुए भी, सापेक्षता की स्थिति में 'तुम' में अर्न्तलय हो जाने की प्रक्रिया, प्रेम के सार्वभौमिक रूप को अत्यंत सधे हुए शब्दों के संयोगात्मक अर्थ द्वारा व्यक्त करते हैं :–

---

१. नागार्जुन–पुरानी जूतियों का कोरस–पृ० ११०

आओ, प्रिय आओ

वहुत दिन हो गए

आज फिर साथ–साथ बैठें

भाई का प्यार

बहन की ममता

मीत के नेह –छोह

आओ, सब कुछ तुम्ही पर उडेल दूं।[1]

प्रेम–सबध के विविध स्तरों के उपुर्यक्त उदाहरणों में रोमांटिक बोध का नया रूप है क्यों कि कवि चाहे किसी भी विचारधारा का पक्षधर क्यों न हो, वह किसी न किसी स्तर पर परिवर्तित रोमांटिक भाव से टकराता अवश्य है, जो युगीन सवेदना को रूपायित कर सके । रोमांटिक बोध का एक अन्य रूप जो हमें नागार्जुन के काव्य मे प्राप्त होता है, उसमें अभिजात् वर्ग की गंध नहीं है, क्यो कि पिता–पुत्री के संबंध को कवि एक निम्नवर्ग के ट्रक –ड्राइवर के प्रसंग से उठाता है, जहां पर गियर के सामने चार गुलाबी रंग की चूड़ियां टंगी है जो ड्राइवर की छोटी बच्ची जिद के कारण वहां पर है ; जो पिता को उस छोटी बच्ची की याद दिलाती रहती है। यही नहीं यह पूरा सवेदनापूर्ण प्रसंग कवि के पिता होने की अनुभूति को भी जगा देता है , और जिसका माध्यम है *"नन्ही कलाईयों की गुलाबी चूड़ियां।"* ट्रक ड्राइवर का यह कथन लें–

लाख कहता हूं, नहीं मानती मुनियां

टांगे हुए है कई दिनों से

अपनी अमानत

यहां अब्बा की नजरों के सामने

और ड्राइवर ने एक नजर मुझे देखा

और मैने एक नजर उसे देखा

छलक रहा था दूधिया वात्सल्य बड़ी–बड़ी आंखों से

इसके बाद, स्वयं कवि का निम्न कथन पूरे प्रसंग को एक मार्मिक संवेदना से भर देता है, जहाँ दो पिताओं का राग–संवेदना भरा वात्सल्य नन्हीं, गुलाबी चूडियों में अन्तर्लय हो जाता है–

और मैने झुक कर कहा

हां भाई मैं भी पिता हूं

---

१. नागार्जुन–सतरंगे पंखोंवाली–पृ० ९७

वो तो बस यूं ही पूछ लिया आपसे

वर्ना ये किसकों नहीं भाएंगी?

नन्हीं कलाईयों की गुलाबी चूड़ियां।[1]

प्रेम के उपर्युक्त रूप के अतिरिक्त नागार्जुन की कुछ कविताएं ऐसी है जहां प्रेम का खुरदुरा रूप, आज की विडम्बना पूर्ण स्थितियों से प्रभावित होकर, रूक्ष और कठोर रूपाकारों के द्वारा संकेतित होता है। ये उदाहरण नितांत नए प्रकार का सौन्दर्य बोध उत्पन्न करते हैं, जो मोहक, सरस और कोमल रूपाकारों के नितांत विपरीत है। यहां कुरूप या वीभत्स का रचनात्मक संदर्भ है जो कुरूप को भी सुंदर बना देता है। जहां भी सृजनात्मकता है, वहां 'सौन्दर्य' का कोई न कोई रूप अवश्य प्राप्त होगा और इस सौन्दर्य को समझने के लिए पारम्परिक सौंदर्य की भावना को नये संदर्भ में देखना होगा। यही कारण है कि आज की कविता में'सौन्दर्य दृष्टि' अभिजात्य न होकर जनवादी है। वही स्थिति प्रेम–प्रसंग की भी है , क्योंकि यहां पर पूरा परिदृश्य ही बदल जाता है। इस बदले हुए परिदृश्य में नागार्जुन की कुछ कविताएं ही रखी जा सकती है, जहां विडम्बना का स्पर्श किसी न किसी रूप में प्राप्त होता हैं । ऐसा एक उदाहरण वह है जहां किसी के हथेली स्पर्श से रीढ की हड्डी तन गयी–

झुकी पीठ को मिला

किसी हथेली का स्पर्श

तन गयी रीढ

कौंधी कहीं चितवन

रंग गए कहीं किसी के होठ

निगहों के जरिये जादू घुसा अंदर

तन गयी रीढ़।[2]

दूसरी ओर 'तुम' एक ऐसी *'जोति की फांक'* है जो *हृदय के तिमिर को* 'चाक' कर गयी (वही, पृष्ठ २०) यही नहीं *दंतुरित मुस्कान* का प्रभाव भी देंखे–

तुम्हारी यह दंतुरित मुस्कान

मृतक में भी डाल देगी जान

धूल–धूसर तुम्हारी यह गात

---

१. नागार्जुन–प्यासी पथराई आंखें पृ० २६–२७

२. नागार्जुन–सतरंगे पंखोंवाली–पृ० १६

छोड़कर तालाब,

मेरी झोपडी में खिल रहे जलजात !

यहा पर *"धूप धूसर गात"* और *'झोपड़ी मे खिलते जलजात'* में एक ऐसा दृश्य है, जो सौंदर्य के अभिजात रूप के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। इसे समझने के लिये सौन्दर्य के खुरदुरे एवं रूक्ष रूप को समझना जरूरी है, जो भिन्न प्रकार के भावबोध की मांग करता है। इस प्रकार के सौदर्य बोध का एक सुंदर उदाहरण 'सौन्दर्य प्रतियोगिता' कविता है। इस कविता मे व्यंग्य का संस्पर्श इतना मारक है कि पूरी कविता सौन्दर्य के नितात नए 'प्रतिमानों' की ओर संकेत करती है । इसमं 'गगा की मछली' और 'यमुना की मछली' के बीच यह प्रतिद्वन्द्विता है कि दोनो में कौन अधिक सुंदर है। इस समस्या का वे स्वयं निपटारा नहीं कर पाती हैं , अंततः वे यह निश्चय करती है कि निर्णय हेतु 'कछुए' के पास चली जाएँ । अस्तु, वे दोनों कछुए के पास जाती है तब कछुए का निम्न कथन दोनो मछलियों के सौन्दर्य से एक अन्य प्रकार के सौन्दर्य की बात करता है, जो उसका अपना सौन्दर्य है–

तुम भी सुंदर गंगा की मछली

जमुना की मछली तुम भी सुदर हो

किन्तु बनस्पत तुम दोनों के

मैं अधिक सुंदर हूं

बिल्लौरी कांच सी कांति वाली यह मेरी गर्द

बरगद सी छतनार ऐसी पीठ

नन्हें मसूर से ऐसे ये नेत्र[2]

नागार्जुन की उपर्युक्त कविताएं , जो संख्या में कम अवश्य हैं लेकिन समग्र रूप में ये कविताएं प्रेम और सौन्दर्य –दृष्टि के विविध रूपों का संकेत करती हैं, जिसमं एक ओर तो विद्यापति और कालिदास के प्रेम–सौन्दर्य की याद है, जो उन्हें परम्परा के आधुनिक रूप की ओर ले जाता है; तो दूसरी ओर वे प्रेम के नितांत नए संदर्भ की उद्भावना करते हैं जो अभिजात्य मनोभाव को नकारता है , और उसके जनवादी और खुरदुरे रूप के प्रति अधिक आकृष्ट होता है । अतः नागार्जुन की प्रेम सौन्दर्य , परम्परा और आधुनिकता के द्वंद्व को स्वीकार करती हुई, परन्तु उन दोनो के मध्य 'संवाद' एवं संतुलन चाहती हुयी कविता है।

---

1. नागार्जुन–सतरंगे पंखोंवाली–पृ० ५०
2. नागार्जुन–सतरंगे पंखोंवाली–पृ० ४२

नागार्जुन की कविता इस रूप में एक नए सौन्दर्य आस्वादका कारण बनती है, जहाँ सौन्दर्य श्रम से निखरता है।

" छूती है निगाहो को

कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान

बेतरतीब मूंछों की थिरकन"

"शमशेर की नाजुक ख्याली से मिलती जुलती नागार्जुन की यह नाजुक बयानी है– कत्थई दांतों की मोटी मुस्कान बेतरतीब मूंछों की थिरकन– लेकिन एकदम भिन्न सन्दर्भ में, एक भिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिए। शमशेर की तरह नागार्जुन ने भी पूरी तस्वीर न देकर आंशिक बिंम्ब से काम लिया है लेकिन आधा व्यंग्य तो कुली मजदूरों के लिए उस शैली के इस्तेमाल करने में है जो शमशेर के यहां आमतौर से रमणीय अंगो के उतार चढ़ाव के लिये सुरक्षित रहती है।"[1]

शहर की सजी धजी महिलाओं को देखकर नागार्जुन फिर उसी देहाती ढंग से खूब हसते है। कलकत्ता के सडकों का चक्कर लगाती हुयी विज्ञापन सुन्दरी सत्रह सौ के विज्ञापन बटोर लेती है। नागार्जुन बडे प्यार से उसे प्रोत्साहन देते है–

रमा लो मांग में सिन्दूरी छलना..................

फिर देरी, विज्ञापन लेने निकलना.................

तुम्हारी चाची को यह गुर कहां था मालूम।

एक भद्र महिला सबेरे उठकर किसी को गालियां देना शुरू करती है। नागार्जुन दूर खडे असंपृक्त से उसकी गालियां सुनते हैं और उसक कमल की पंखडियों जैसे ओठ का बार–बार हिलना भी प्रेम से देखते रंहते है।

होंठ हिले

हिलते रहे

देर तक हिलते ही रह गये

उस पार–

मोतिया दंतपक्तियों के अंदर

कांपती रही क्षोभ के मारे जीभ

निकल आयी बासी भाप ताजा सौरभ के बदले

---

१ डा० रामविलास शर्मा–नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्य कथा–परिषद पत्रिका, वर्ष ३८, अंक १–४

अर्ध स्फूर्त कमल की पंखडियों को,

क्या हो गया था,

जाने निकलते रहे बाहर

एक के बाद एक

काले–काले भौरे

गालियां आक्रोश, अभिशाप

होंठ हिले और हिलते रहे। "नागार्जुन यह क्रिया देखकर वैसे ही प्रसन्न होते है। जैसे पंत के हिलाते अधर प्रवाल को सोच सोंच कर निराला हंसते थे। कमल की पंखुडियों से काले भौरों का निकलना रीतिवादी सौन्दर्य बोध का सबूत देता है, लेकिन रीझने के बजाय नागार्जुन उस पर हंसते हैं। और कमल ही अर्ध स्फुट नहीं है, नागार्जुन भी अर्ध स्फुट बिम्बों से अपनी कला संवारते है। अर्ध स्फुट बिंब, वैसे ही अर्ध स्फुट काम। लिखा थोडा, जानना बहुत वाली साकेतिक शैली।"[1]

" *तन गयी रीढ, पीठ पर हथेली का स्पर्श तन गयी रीढ।*

" *कंधों के पीछे किसी की सांसों की उष्णता का अहसास, तन गयी रीढ़* ! इस तरह चितवन के कौंधने पर, खिल खिलाहट के गूंजने पर, अलकों से तैलाक्त परिमल का झोंका आने पर हर बार रीढ तन जाती है। लेकिन तनने पर , उसके पुरुषार्थ की प्रशंसा करने के बदले नागार्जुन हसते है–चुपचाप।

यह बात नहीं कि काली घटायें और पुरवाई नागार्जुन के हृदय को नीरस ही छोड जाती हो। पुजारिन भाभी अपने रसिया देवर को छेडती है और देवर को हंसी भी आती है , लेकिन तन गयी रीढ और अर्ध स्फुट कमल वाली कविताओंकी हंसी से यह जरा दूसरे ढंग की हंसी है। श्रृंगार रस मे नागार्जुन की यह कविता अद्वितीय है।

झुक आये कजरारे बादल
कूक उठे मोर
दर्शाये मेढ़क
पहुंच कर धीरज के छोर पर
दम साध लिये धरती ने..........
बिजली की मूठ से खुजलाकर पीठ
पुजारिन भाभी बोली
आंधी आयेगी
बादलों को कहां से कहां उठा ले जायेगी
तुम्हारे तो मजे ही मजे रहेंगे

---

१. डा० रामविलास शर्मा–नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्य कथा–परिषद पत्रिका, वर्ष ३८, अंक १–४

धार के उस पार
झूसी की तरह
रेती पर मारोगे टहलान
फड़कते रहेंगे ओंठ
चमकती रहेंगी आंखें
हल्की फुहियों से भीगता रहेगा बदन
छेड़ती रहेगी छिनाल पुरवइया
इकलौती बिटिया वलो अधेड़ बाप की भांति
झुका रहेगा तुम पर बदल
तुम्हारे तो भाई मजे ही मजे रहेंगे
ओ मेरे रसिया देवर
और मुझे आ गयी हंसी
कूक उठे मोर
और मेरा रोम हो गया कंरकित
टर्राये मेढ़क
और मेरा दिल धडकने लगा जोरों से
हो उठी तीव्र झींगरों की रीं रीं रीं............
और मैं लगा गया गोता गहराई के अंदर
झुक आये कजरारे मेघ
और अधिक
और अधिक

"यह हंसी दूसरे ढंग की है, रोआं रोआं हो उठा कंपित और दिल धडकने लगा। लेकिन जब पहुंचकर धीरज के छोर पर धरती ने दम साध लिया है। इस मार्मिक अनुभूति और उसकी सफल अभिव्यक्ति की जितनी दाद दी जाये, कम है। थोडी है।तब मनुष्य की क्या विसात। पुजारिन भाभी वैसे ही रहेंगे जैसे होंठ हिले, हिलते रहे देर तक हिलते ही रहे गये। बिजली की मूठ से पीठ खुजलाना क्या किसी नायिका ने केशवदास से ऐसा संकेत किया होगा। और इकलौती बिटिया वाले अधेड बाप जैसा बादल एक दम आधुनिकता बोध वाला उपमान। मोर फूंके और रोआं कंटकित हो उठा, मेढक टर्टाये और दिल धड़कने लगा। जैसे प्रेम की अति रम्यता में पहले लोगों को मूर्छा आ जाती थी, वैसे ही भाव के साथ यहां यह दिल धड़कने का हाब। और अंत में मैं लगा गया गोता गहराई के अंदर। पूर्ण आत्म समर्पण के क्षण में विराट की अनुभूति। धार के उस पार न जाकर मझधार में मानों दम साधकर डुबकी लगाई हो।"[1] उनकी एक कविता है–

सामने फैला पड़ा है शतरंज का संसार
स्वप्न में भी मै न इसको मानता निस्सार

---

१. डा० रामविलास शर्मा–नयी कविता के संदर्भ में नागार्जुन की काव्य कथा–परिषद पत्रिका, वर्ष ३८, अंक १–४

इसी में अंत इसी में निर्माण

यही हां ना किन्तु परन्तु [1]

' अंत–निर्माण, हां–ना, किन्तु–परन्तु ' ये सभी शब्द घटनात्मक संसार के अर्थ प्रदान करते हैं। इसी संसार मे भूख गरीबी और शोषण का अमानवीय नृत्य चल रहा है–इससे पहले संघर्ष करना, मानवीय अस्मिता की रक्षा करना है ; क्योकि इस अमानवीय रूप के रहते 'आत्मा' ' ईश्वर' जैसे संप्रत्ययों की बात करना, एक तरह का 'ब्यंग्य' ही है। इसी से कवि पहले उदरपूर्ति की बात करता है, फिर ठोस या पोल ' आत्मज्ञान' की।

पहले उदारपूर्ति तो हो ले

फिर देखा जायेगा

ठोस या पोल.................. जैसी भी होगी

पकड़ मे आयेगी

ना ता जायेगी कहाँ.............आत्माज्ञानी ? [2]

अनुभववाद की यह मॉग है कि वह इस अमानवीय पक्ष को जीवन यथार्थ का ऐ अंग ही स्वीकार न करे, वरन् उससे संघर्ष करे । शोषण और दमन एक ऐसा कटु तिक्त वास्तव है जिसका गहरा संबध मानव के 'मानवीय' पक्ष से है। नागार्जुन की जनवादी संघर्षशील चेतना ने इस दृष्टि से कर्म अभिनुख रचनाकार है। शब्द और कर्म का एक सुन्दर समाहार नागार्जुन का व्यक्तित्व है, और उनकी यायावारी प्रकृति इसमें सहायक रही है। ऐसी समाजोन्मुख सृजनशीलता मे 'अतिकल्पना' का अभाव रहता है , और यथार्थ सापेक्ष कल्पना का संयमित रूप गतिशील रहता है।अनुभववाद का यह रूप सभी संवेदनाओं और संवेगो को स्थान देता है, जो बर्कले और ह्यूम जैसे आदर्शवादी अनुभववादियो मे प्राप्त होता है। नागार्जुन (तथा अन्य कवियों में भी) अनुभव मात्र ऐन्द्रिय नही है, वरन् यह मानवीय संवेदनाओं, संवेगो अभिवृत्तियों का जैविक रूप है। उसके अनुभववाद मे शोषित–पीडित का प्रकृति , नारी और ब्रम्हाण्ड का जो रूप प्राप्त होता है, वह उनके अनुभववाद को 'स्थूल' अनुभववाद के बाहर ले जाता है।

नागार्जुन के अनुभववाद मे दो तत्व प्रमुख हैं–एक विवेक और दूसरी चेतना । वे अपनी एक कविता मे अति भौतिकवाद से बचने के लिये ' विवेक ' और ' मन ' मे कुंठित न होने की बात करते हैं और इस भयावह स्थिति के प्रति वे चिंतित हैं–

भौतिक भोगपत्र सुलभ हो भूरि–भूरि..................

---

१. हजार–हजार बाँहो वाली–पृ० १६

२. हजार–हजार बाँहो वाली–पृ० १६

विवेक हो कुंठित.................................

मन हो तिमिरावृत्त

भीतर की ऑखे निपट निमीलित

यह कैसे होगा

क्यों कर होगा ![1]

वे ऐसे मन और बुद्धि को नकारते हैं *"जो जरा जरा सी बातों से घबरा जाये, प्रतिशोध न ले सके , क्षमा ही क्षमा करता चला जाए"*[2] इस नकारात्मक नपुंसक स्थिति को चेतना की क्रियात्मकता और संघर्ष शीलता से तोडा जा सकता है। यदि व्यक्ति की चेतना (समूह की भी) ऐसा नही कर सकी तो वह एक ' झाग ' के अतिरिक्त कुछ भी नही है –

गंध चेतस ठस है तुम्हारी '

रस बोध पुग है

श्रुति–कुहर हो गये रबर की तरह

ऐसे मे क्या हो आप

झाग ही झाग तो है ?[3]

नागार्जुन का काव्य , चेतना के इसी क्रियात्मक रूप का व्यक्त करता है, जो एकपक्षीय न होकर अनेकपक्षीय है । उनकी संवेदना , सोच और अभिवृत्तियां इस क्रियात्मक चेतना को व्यक्त करती है। वे यदि अतीत की ओर जाते हैं, तो उसलिये नहीं, कि वे अतीत को (इतिहास, मिथक, आद्यरूप) अपने समय की संघर्ष–चेतना का वाहक बनाते हैं। वे अतीत को ऑख मूंदकर स्वीकार नही करते हैं, बल्कि उसमें जो ठस , अर्थहीन है, उसके प्रति वे एक खरी आलोचनात्मक दृष्टि रखते हैं। इस पूरी स्थिति को उन्होने 'मलूकदास' के बिम्ब द्वारा संकेतिक किया है, जो समष्टि से निरपेक्ष और युग के तनाव से उदासीन है। अर्थात वह परोक्षतः क्रियाहीनता का पक्षधर है एवं परिवर्तन का विरोधी । कर्म करने का क्या औचित्य जबकि सबके दाता राम हैं। कर्महीनता और भाग्यवाद के इस रूप का प्रतीक है 'मलूकदास' जिसके प्रति नागार्जुन की उक्ति, उस सारे क्रियाविरोधी , भाग्यवादी मानसिकता के प्रति प्रश्नचिन्ह लगाती है ,जो मानव की संघर्ष ऊर्जा को कुंठित करती है –

सब कहीं खीच है

---

१. सतरंगे पंखो वाली–पृ० १५

२. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या–पृ० ३२

३. ऐसे भी हम क्या, ऐसे भी तुम क्या–पृ० ५०

सब कहीं तनाव
बीचो बीच खडा है
यह अपढ़ ठेठ बाबा मूलकदास
समष्टि से निरपेक्ष
युग से उदास [1]

इस प्रकार नागार्जुन का अनुभववाद निष्क्रिय न होकर सक्रिय है, वह चेतना के द्वन्द को स्वीकार करता है और इस द्वन्द में जीवन स्थितियों के संघर्ष और स्वरूप के प्रति जागरूक ही नही है वरन् उन स्थितियो को ' अन्नब्रह्म ' से जोडता है। कवि की एक ऐसी ही कविता है ' अन्न पच्चीसी जो ब्रह्म को अन्न के साथ जोडकर (उपनिषद की अन्नब्रह्म की धारण का आधार है) अन्न को एक व्यापक संदर्भ प्रदान करती है। जो जीवन का एक अभिन्न अग ही नही है, वरन् यह समस्त सृष्टि का भौतिक तत्व है जो ऊर्जा का वाहक है। यह 'अन्नब्रह्मा' को चिन्तन की क्रियाशीलता से है और इसी के साथ वह चिंतन को नयी भंगिमा भी देता है। *नयी ऋचा, नव मंत्र रचेगी अन्नब्रह्म की माया ।*

चिंतन को नव इंगित देगी , अन्नब्रह्म की माया।। [2]

यही अन्न आम आदमी का ब्रह्म है । पेट की भूख ब्रह्म से भी बडी है । यह एक ऐसा यथार्थ है जो भूखा व्यक्ति और समूह ही अनुभव कर सकता है । इसी अन्न – ब्रह्म को कवि अन्य 'ब्रह्म' से ऊचा मानता है क्योंकि इसी ब्रह्म के द्वारा हम अन्य ब्रह्म की बात कर सकते है ।

अन्नब्रह्म ही ब्रह्म है , बाकी ब्रह्म पिशाच ।

औघड मैथिल नाब जी, अर्जुन यही उचाव ।। [3]

इस प्रकार नागार्जुन का अनुभववाद, यथार्थवादी होते हुये भी मानसिक स्थितियों को नकारता नहीं है और चेतना की द्वन्दात्मकता को, मानवीय और सामाजिक स्तर पर स्वीकार करता है । यही कारण है कि वह सौन्दर्य की नयी अवधारणा से संवलित है। वह परम्परा और अतीत को उस चेतना के रूप में स्वीकार करता है और वहॉ से उन्हीं सौन्दर्यवादी मापदण्डो, मिथकों और आद्यरूपों को उठाता है, जो संघर्षशील चेतना को गति दे सके । वह भौतिकता को मानव सापेक्ष अर्थ प्रदान करता है । इस प्रकार नागार्जुन की सौन्दर्य दृष्टि एकदम नये प्रकार के सौन्दर्य शास्त्र का निर्माण करती है।

जहॉ रागात्मक संवेदना व्यापक मानवीय तथा सामाजिक सरोकारों के तहत बड़े विस्तार एवं गहराई के साथ चित्रित है। अपनी आत्मीय व्यंजना में जीवन का प्रत्येक स्पंदन, हर धड़कन मानो यहाँ साँस पाती है।

---

१. ऐसे भी हम क्या–पृ० ५०
२. पुरानी जूतियो का कोरस – पृ० ५६
३. पुरानी जूतियो का कोरस – पृ० ५६

****

अध्याय ७—खण्ड घ
त्रिलोचन की सौन्दर्य दृष्टि :

त्रिलोचन मूलतः जीवन की स्थिर शांत स्थितियों के कवि हैं। "बहुत तीव्र गति के बीच भी जो धुरी के पास की स्थिरता होती है, वे स्वभाव से उसी स्थिरता के कवि हैं।"[1] अनेक विकट स्थितियां हैं, भावों और विचारों के परस्पर घात–प्रतिघात हैं, लेकिन सब कुछ बहुत स्थिर चित्त से, निपुण संयम से उनकी कविताओं में अंकित है–"*प्रखर वेग के पार अडिग जीवन ने पायी। सोची हुई सिद्धि जीवन की*"।[2] यहां जीवन की सोची हुई सिद्धि है, प्रखर वेग के पार, जो मन को और शब्दों को साध कर प्राप्त की गयी है। अपने मुखडे से आपको टेरती या आकर्षित करती हुयी नही, बल्कि कागज पर जीवन की शिनाख्त की तरह पसरी ये कवितायें पहले साक्षात्कार में एकदम सीधी–सादी अटपटी सी लग सकती हैं। उनमें न उदात्त का आग्रह है , न उस पैनेपन की तलाश जो अपनी मंशा को नोक पर लाकर कविता के अर्थ को एकाएक खोल देती है और कविता के बाकी कलेवर को पृष्ठभूमि में तब्दील कर देती हैं। यहां कविता एक अखण्डित अनुभव है– जीवन की तर्ज और तौरतरीकों की अपरिहार्य साक्षी। कविता की बुनावट और गठन, उसकी वस्तु और कथन, रोजमर्रापन के इतना निकट है कि सबसे पहले तो वह उन पुरानी, लीक–पिटी, अति–परिचित जीवन छवियों में से सार्थक कथन का काम ले सकने के कलाविहीन कौशल की आस्वादक तैयारी को तत्पर दिखती हैं। फिर निहायत अंतर्निहित किस्म की विदग्धता की अचूक धार को भीतर छिपाये स्पष्ट भोलेपन से अपनी बात कहती जाती हैं। अपनी बात, हम सबकी बात, गांव, घर, जेंवार, खेत – खलिहान और इन सबके भीतर छिपे सौंदर्य की बात। जीवन को उद्घाटित करतीं, दोस्तों की तरह बातें करतीं इन कविताओं का अपने से अलगाया नहीं जा सकता। वह एक पूरा बिछावन है, ताने–बाने की तरह गझिन। "शायद यही स्थिरता, यही 'त्वराहीनता' कुछ लोगों को अकाव्यात्मक लगती है, क्योंकि त्रिलोचन स्थितियों और भावों के संयोजन से लेकर शब्दों के चुनाव तक इसी स्थिपता के साथ काम करते जाते हैं। कहीं कोई तात्कालिक व्यग्रता नहीं, कहीं कुछ भी आकस्मिक नहीं। जो है, वह पूरा सोचा–विचारा। संभवतः इसी कारण उनका सबसे प्रिय काव्य–रूप सॉनेट रहा है। जहां नियत घेरा तो है ही, विराम का भी यथेष्ट अवसर है और जटिलतम स्थितियों स्रवित कर एकत्र कर देने का सुयोग भी।"[3] त्रिलोचन को शब्द सिद्धि है। जाहिर है वह शब्दों के सौंदर्य को जानने वालों या यूँ कहें उसके सम्पूर्ण अर्थ का दोहन करने वाले कवियों में हैं। उदाहरण हैं अरघान की कवितायें। त्रिलोचन लिखते हैं–"डालियों के बढ़े हुए कूचों में। यहां 'डाली' और 'कूचा' का संयोग पूरी कविता को नया बना देता

---

१. अरुण कमल–सापेक्ष–त्रिलोचन अंक पृ० ५३६

२. त्रिलोचन–उस जनपद का कवि हूँ–पृ० ३७

३. अरुण कमल–सापेक्ष पृ० ५३६"

है। वातावरण कविता में शाम का चित्रण है। यहां भी कुछ पारंपरिक उत्पादन है, जैसे 'सांझ गुलाबी', हवा की छेडछाड आदि। लेकिन कई नये और ताजे वर्णन हैं और–

"धूमाच्छादित हैं वृक्ष वे,

टहनी टहनी डाली थाम के

धुँआ और ऊपर चढता है।"

यह शाम का बिल्कुल नया रूप है। बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण। धूमाच्छादित जैसा शब्द पारम्परिक है, लेकिन जो निरीक्षण है *टहनी–टहनी, डाली–डाली थाम के धुँआ के ऊपर चढने का,* वह त्रिलोचन का बिल्कुल अपना है। *ऑधी में* भी ऐसी कविता है, जहॉ उनकी शब्दावली कमोबेश पारम्परिक है, लेकिन उसमें भी कुछ जीवन्त चित्र हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस कविता के सर्वाधिक सशक्त अंश वे हैं, जहॉ त्रिलोचन बिल्कुल पास के और अपेक्षाकृत स्थिरता के बिन्दु देते हैं– *"डरे चौपाये भी चकित नयनों से निरखते .....थानों से लगकर कंपे।"*

इसके बाद ऑधी की गतिशीलता चित्रित करते हैं। लेकिन वहॉ कविता शिथिल सी हो जाती है। वह प्रभाव नहीं रहता जितना 'डरे चौपाए'........से उभरता है। यह केवल त्रिलोचन के स्वभाव को व्यक्त करता है कि त्रिलोचन मूलतः स्थिरता के कवि हैं। उनकी यह स्थितप्रज्ञ स्थिरता ही दृश्य में चित्र देखती है, चित्र में सौन्दर्य, सौन्दर्य में मनुष्य । इसलिए उनकी कवितायें जीवन्त और लकदक हैं। निस्सदेह इन कविताओं में एक ऐसा समाकालीन का अनुभव स्पन्दन है, बिम्बो का ऐसा कोलाज हैं जिसमें हमारी अपनी जिंदगी जगह–जगह से झांक रही है। इसमें दुनिया जहान की सारी विसंगतियॉ तो हैं किन्तु 'बेहतर दुनिया के निर्माण मे अपने हिस्से की एक ईंट लगाने की भरपूर इच्छा और कोशिश भी है। निंदा, विगर्हणा और पराजय–बोध के बीच एक ऐसा काब्य–बोध है, जो हमारे जीवन बोध को अधिक जीवंत और उत्तरदायी बनाता है। एक ऐसी भाषा जो नीरस और उबाऊ भाषायी इलाको को पार कर, हमें शब्दों के ध्वनि–संगीत की ओर ले जाती है। समय के चेहरे पर असमय उभर आयी झुर्रियों के लिए शर्मिदां पूरा काल–खण्ड यदि यथार्थ का एक चेहरा है, तो अपनी गरीबी और फाकामस्ती में आजाद, अपनी झोपडी अपने आंगन में आजाद, एक आबादी और भी है जिसकी जिंदगी की शर्ते उसकी मेहनत से तैयार की गयी हैं। यह मेहनत खून और पसीने की मिली जुली सुन्दरता है, जो अगली सुबह के सपनों को निरंतर बुनती रहती है। त्रिलोचन इसी सौंदर्य के निरीक्षक हैं। स्पष्ट है उनका मानवीय बोध , उनके सौंदर्य की रचना करता है। त्रिलोचन में एक रागात्मकता है, जो शब्द में लय की तरह, उनकी निगाहों की छंदो में बाकायदा मौजूद है। इन्हीं निगाहों से वह पृथ्वी को, उस पर होने वाली ढेर सारी हलचलों को देखते हैं–

"बहुत दिन बाद कोयल पास आकर आज बोली है,

पवन ने आ के धीरे से कली की गॉठ खोली है।

बहुत दिन बाद कोयल पास आकर बोली है,

पवन ने आ के धीरे से कली की गांठ खोली है।

लगी है कैरियॉ आमों में महुओं ने लिए कूचे

गुलाबों ने कहा हँस के हवा से बोली, होली है।"[1]

यहॉ प्रकृति के बसंत आगमन पर होली खेलने का दृश्य, उनकी प्रकृति और मनुष्य के रागात्मक बोध की उपस्थिति रचना के लिए इतना जरूरी मानता है कि–

अगर चॉद मर जाता

झर जाते तारे सब

क्या करते कविगण तब!

सोंचते सौंदर्य नया?

देखते क्या दुनिया को

रहते क्या, रहते हैं,

जैसे मनुष्य सब

क्या करते कविगण तब ?[2]

ध्यान दें, तो ये वो चीजें हैं जिनका ताल्लुक हमारे होने से (बीइंग) है। ये हमारी बुनियादी प्रवृत्तियों की नियामक शक्तियॉ हैं– हमारी भौतिक और मानसिक सृष्टियों की उत्प्रेरक शक्तियॉ। इस परिप्रेक्ष्य में देखें तो त्रिलोचन की कविता में ये तमाम चीजें एक लीलामय भूमि पर दिखायी देती हैं। वे जितनी सहज हैं उतने ही हमारे अनुभव का हिस्सा बनती हैं :–

---

१. गुलाब और बुलबुल–पृ० ८८

२. त्रिलोचन–तुम्हे सौंपता हॅ–पृ० २

"बढ रही क्षण–क्षण शिखायें

चमकते अब पेड पल्लव

उठ पडा देखो विहग–रव

गये सोते जाग

बादलों में लग गयी है आग दिन की"[1]

लेकिन प्रकृति के इस लीला व्यपार को देखते हुए भी , वह मनुष्य के बोध से असंपृक्त नहीं हैं। पत्ते केवल पतझर के आने पर ही नहीं झरा करते बल्कि वहाँ जीवन का रस भी सूख जाता है–

इसलिए –

छाती पर चढ़ा हुआ अंधकार का पहाड़ उतर गया

और यह प्रभात हुआ

कंचन बरसाता हुआ सुन्दर प्रभात हुआ

प्रकृति को, सृष्टि के इस विराट और भारी अवयव को इतने लाघवपूर्वक रूप में देखना हिंदी कविता में अन्यत्र (धरती–पृष्ठ–६४) दुर्लभ है । प्रकृति के इस विराट अनुभव को वस्तुतः जीवन रस से स्पन्दित एवं सौंदर्यपूर्ण रूप देना सचमुच अद्‌भुत है इसीलिए मुक्तिबोध कहते हैं– जीवन के इस पराजयहीन अनुरागपूर्ण, आसक्तिपूर्ण, तेजोपूरित भाग के प्रतीक–प्रभाव का कवि के मन से अंगागी सम्बन्ध है, और प्रकृति के उल्लास–चित्रों के प्रति प्राकृतिक मोह।"[2]

यथा–

"लहर–लहर परिचय–परागपूर्ण

दृश्य–दृश्य अनुरंजित ज्योति–चूर्ण"

और– धूप सुन्दर

धूप में जगरूप सुन्दर

सहज–सुन्दर।"

समूची प्रकृति, पूरी पृथ्वी त्रिलोचन की कविता में ऐसी ही आत्मीय सौंदर्य और स्पन्दन से भरी हुयी है। वे अपनी इन कविताओं के इस विधेयात्मक उद्यम से हमें याद दिलाते हैं कि यह प्रकृति महज हमारे उपयोग के लिए रची गयी एक पण्यवस्तु (कमॉडिटी) नहीं है। हमारे मनमाने व्यवहार के लिए उपलब्ध एक जड पदार्थ नहीं, बल्कि इससे आगे बढ़कर उसमें वह जीवन और सौन्दर्य है, जो हमारी अवधारणाओं और अनुभवों का स्त्रोत है–

"चमचमाती

चांदनी की रात

शांत बिल्कुल शॉत

चर अचर सब

मौन कितनी रात

स्तब्ध नीरव रात"[1]

या – *आज का यह तिमिर करता शान्ति दान*

समझने मानव लगा है शक्ति–ज्ञान

स्वत्व, जीवन प्रगति, सामंजस्य, मान

हो चला संघर्ष इससे जगत्

का अधिवास !

त्रिलोचन की कविता में एक सहज आकर्षण है। एक लावण्य है। गद्य को एक सृजनात्मक काव्यभाषा में रच देने की एक जनजात शक्ति जैसे इस कवि के पास है। स्मृतियॉं उनके यहॉं खदबदाती रहती हैं। वे कई बार कविता की निर्मिति में , वस्तु और इससे मनुष्य के सम्बन्धों, रागात्मकता और इससे जुड़ी स्मृतियों को ऐसे ले आते हैं जैसे वह अभी की बात हो। इस क्रम में ऐसी–ऐसी वस्तुयें और शब्द आते हैं जो हमारे बीच रहे भी हों, तो उनके अर्थवान् स्वरूप से हम अवगत नहीं रहे। हम चकित होते हैं, कि हमने इन वस्तुओं और

---

१. त्रिलोचन–धरती पृ० ८७

शब्दों की तरफ ध्यान क्यों नहीं दिया ? जबकि कवि के लिए वे सब उनकी जातीय स्मृति के सहज अंग हैं। श्रीकांत वर्मा के 'मगध' और त्रिलोचन के काव्यसंग्रह 'शब्द' पर एक साथ विचार करते हुये उदयन बाजपेयी कहते हैं–" ऐतिहासिक समय की गहरी चेतना इन दोनों संग्रहों में स्पष्ट देखी जा सकती है लेकिन तब भी ये आक्टेवियो पाज के शब्दों में कहे तो 'प्रति–इतिहास' का सृजन करती हैं। जब इतिहास की स्वयं की स्मृति जन्म ले लेती है , जो मनुष्य से निरपेक्ष दिन रात अपनी काया फैलाती जाती है , तब कविता प्रति–स्मृति रचती है। प्रति–इतिहास, प्रति स्मृति। इसी अर्थ में ये कवितायें कविता की मर्यादा का वहन करती कवितायें हैं।"[1] यहॉ स्मृति तत्व को महत्वपूर्ण मानते हुए भी उदयन श्रीकान्तवर्मा के साथ त्रिलोचन की कविता को मनुष्य से निरपेक्ष मानते हैं– गो कि उनके द्वारा त्रिलोचन की कविता को महत्वपूर्ण माना गया है–से सहमत नहीं हुआ जा सकता। श्रीकांत वर्मा के बारे में, असल में यह सच हो सकता है कि जहॉ प्रति स्मृति के जरिये वह प्रतिइतिहास को सामने लाते हैं, लेकिन त्रिलोचन की स्मृति को उसी कवायद में अपने साथ रखना स्वयं आलोचक की दृष्टि पर प्रश्न चिन्ह लगाता है। क्योंकि त्रिलोचन की कविता मनुष्य से निरपेक्ष नहीं है। वह उनके साथ उठने–बैठने वाली, साथ साथ चलकर, साथ देने वाली कविता है। यह ऐतिहासिक जातीय स्मृति की कवितायें हैं, लेकिन ये अतीत ग्रस्त कवितायें नहीं हैं। यह उनके अनुभवों की कवितायें हैं। अनुभव का यह संसाार घर का, परिवार और यार दोस्तों का सहज संसार है। इस सहजता की कविता में इस तरह का देसीपन है, जिसमें मर्म के साझेदारी की पूरी गुजांइश है। जहॉ छांन्ह उठाने की सहभागिता है, थून लगाकर घर बनाने की सदिच्छायें हैं, फरका थाम कर जहॉ मदद करने की अटूट कोशिशें हैं–

"अपने अपन फरका सम्हरई छान्हि
हाथे–हाथे जाई ठेकाने बान्हि।" (अमोला)

ऐसी सहवर्ती क्रियाओं को प्रश्रय देने वाली कविता जीवन से दूर होकर, मनुष्य से निरपेस रहकर, रह ही नहीं सकती। लोक जिसका मुख्य स्वर हो, पृथ्वी जिसका आंगन–वह कविता जीवन से स्पन्दित तो रहेगी ही। युग के कुछ अति प्रचलित मुहावरों, कवि–मुद्रा की एकरूपताओं और तथाकथित सामाजिक चिन्ताओं की एकरस व्याप्ति के चलते आज कविता लिखना जितना आसान हो गया है, कवि–कार्य उतना ही मुश्किल होता जा रहा है। भावों को भाषा मे, शब्दों की व्यवस्था मात्र दे देना–यही कवि कर्म नहीं है। कवि कर्म को सच्ची सार्थकता तभी प्राप्त होती है, जब वह मनुष्य की सम्वेदनाओं को कुन्द करने वाली स्थितियों की भयावहता को

---

१. उदयन बाजपेयी–संभव है कल मैं देखा जाऊँ काशी में और जरूसलम में–पूर्वग्रह–अंग–७३–७४ मार्च जून १९८६

एक कवि अपनी चेतना में पूरी ईमानदारी से महसूस करे और भाषा में शब्दों को ऐसी शिराओं की तरह स्पंदित होने दे जिनमें उसकी रचनात्मक बेचैनी रक्त की तरह प्रवाहित होने का प्रमाण दे सके।"[1] कहना न होगा त्रिलोचन कविता के सरोकारों से पूर्णतः परिचित हैं और इस रूप मे कविता में शब्दों के प्रयोग के प्रति बेहद सचेष्ट भी। इसीलिए उनकी कविता दुनिया में अपने लिए भी जगह बनाती है और जीवन के लिए भी।

त्रिलोचन की कविता में सुख के ढेर सारे क्षण हैं। ये सुख के क्षण उनके लोक ससक्ति में, उनके प्रियजनों के संग ढूंढा जा सकता है। त्रिलोचन की कविता में जितने प्रियजन सुलभ हैं, उतने किसी अन्य समकालीन कवि में न होंगे। शमशेर में भी ऐसी ही प्रवृत्ति है किन्तु वहॉ व्यक्ति–चित्र अधिक हैं। इसके विपरीत त्रिलोचन ने सम्बन्धों को केन्द्र में रखा है। यह मैत्री की प्रतिष्ठा है। ये गली–मुहल्ले–गॉव घर, जेंवार, परिवार, परिजन और मित्रों के समूह हैं। कहीं कहीं ये पात्र प्रतिनिधि चरित्र हैं, तो कहीं इनकी कोई विशेष पहचान नहीं। लेकिन इनके पात्रों की जहॉ कोई पहचान नहीं उनकी व्याप्ति हर जगह है, हर गॉव देस में। ये दुनिया में दुख की तरह फैले हैं। इसीलिए उनके पात्र उत्तर भारत के हर गॉव, हर देहात में मिल जायेगें और इसी के साथ मिलेगी उनकी हरकतें। पृथ्वी के एक कोने पर अनाम रहते हुए भी ढेर सारी क्रियायें करते ये लोग, असल में, दुनिया की असल आबादी के प्रतिनिधि हैं। इस असल आबादी के तमाम संघर्षों, उसकी मस्ती को उकेरती त्रिलोचन की कविता तमाम आत्मीयता के जीवन–लय से नम है। यही कारण है कि त्रिलोचन की कविता का कोई कोना जीवन के यथार्थ आलम्बन और अनुभावन व्यापार से रहित नहीं है। कविता का प्रतिसंसार सच्चे अर्थो में जीवन व्यापार का पुनसृर्जन है। यहॉ कविता का अर्थ है–निकट से देखें आदमी की तस्वीर। त्रिलोचन इस तस्वीर की तामीर करते हैं। उनका मानना है कि जब तक हम उस समाज की बोली को नहीं समझ सकते, उसके सौंदर्य से अभिभूत नहीं हो सकते तब तक वैसी संवेदनायें नहीं दे सकते । *"कोई समझ न पाये अगर तुम्हारी बोली*

तो इस बोली का मतलब क्या, मौन भला है,"[2]

त्रिलोचन का यह वस्तुबोध जिस सामाजिक संकट की पीडा का सकेत करता है, वही उन्हें क्षण प्रतिक्षण बदलने वाली दुनिया के अनुसार कविता के बदलने का संकेत भी देता रहता है। वह मानवीय इतिहास को निर्मित करने वाले, सच्चे हाथों से परिचित हैं। इसीलिए खुरदुरे हाथों की संस्कृति में त्रिलोचन वर्तमान प्रदूषण और प्रकृति के प्रति व्यभिचार से मानवता के सर्वनाश से बचने का विकल्प भी ढूंढते हैं।—

---

१. राजेन्द्र कुमार–कविता में कविता से बाहर आने की जरूरत –उन्नयन–११–पृ० ३६

२. त्रिलोचन–अनकहनी भी कुछ कहनी है

"जब तुम किसी बड़े या छाटे कारखाने में

कभी काम करते हो किसी पद पर

तब मैं तुम्हारे इस काम का महत्व खूब जानता हूँ।

और यह भी जानता हूँ– मानव सभ्यता

तुम्हारे ही खुरदुरे हाथो में नया रूप पाती है।"[1]

यह कविता कवि के इतिहास बोध और मानव जाति के कल्याणकारी भविष्य की कल्पना के लोक से सम्बद्ध है। "उनकी 'नगई महरा' में खुरदुरे हाथों की समझ और संस्कृति का स्वरूप है, जो वर्तमान संदर्भ में कविता की अंतर्वस्तु के बदलाव का ही नही, अनुभव संदर्भ के दबाव का भी प्रमाण है। 'नगई महरा' त्रिलोचन के गॉव कटघरा चिरानी पट्टी का भगत ही नहीं है, बल्कि एक अभ्यिंजित व्यक्तित्व है, जिसमें जीवन के उस स्वरूप का वर्णन है जहॉ परिवार के भीतर झांकता हुआ वर्गभेद नहीं दिखाई पडता। भ्रमनिष्ठा और आस्था व्यक्ति की विवशता का प्रमाण हो सकती है बाहर से चेतना के विलय का संकेत भी कर सकती है परन्तु वह एक भिन्न प्रकार की सामाजिकता का भी कारण होती है।"[2] 'नगई महरा' में निश्चय ही वर्णनात्मक है परन्तु यह वर्णन कई प्रकार के मानवीय सम्बन्ध और मानसिक गॉठो का सकेत करता है। नगई का यह कथन, कविता और यथार्थ दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है।–

"नगई ने हाथ चलाते हुये फिर कहा

दुनिया है, दुनिया का ज्ञान है,आदमी है

आदमी को क्या क्या नहीं जानना है

देखते सुनते और करते ज्ञान होता है

अपनी जब होती है समझ नई होती है।

समझ ही आदमी को आदमी से जोड़ती है।"[3]

---

१. ताप के ताये हुये दिन–मैं तुम'–पृ० ६०

२. डा० सत्यप्रकाश मिश्र–पहल–१५, त्रिलोचन की देशी कवितायें–पृ० १२

३. त्रिलोचन–ताप के ताए हुए दिन–पृ० ७३

कर्म, ज्ञान और समझ का जो रिश्ता त्रिलोचन 'नगई' के माध्यम से सामने लाते हैं। अपने पूरे कवि कर्म में त्रिलोचन उसे कहीं भूलते नहीं हैं। इसीलिए अपनी संवेदना की धरोहर वहाँ से उठाते हैं जहाँ श्रम से लथपथ चेहरे और कीचड–कालिख से सने हाथ हैं। वह मिट्टी को इसीलिए गौरवान्वित करते हैं, क्योंकि वह सामान्य जन को गौरवान्वित करना चाहते हैं। मिट्टी से प्यार सामान्य जिंदगी से प्यार है। प्रस्तुत संसार से प्यार इसीलिए उसके सौंदर्य को सांस खींच कर वह उसे अपने अन्दर तक लेते हैं। इसीलिए त्रिलोचन की कविता पाठक को किसी तीसरे संसार की ओर नहीं ले जाती। उसमें अषाढ की उमडी घटायें हैं, तपन, बौछारें हैं, खेत खलिहान , चैतिया प्रभात और भिनसार की गन्ध है तो फागुन की पूर्णिमा और लू के थपेड़े हैं। जर्जर शरीर, गड्ढों में धंसी आँखें , मिटटी के कच्चे घर, मुंडेर, टूटी छाजन, अंगना डेहरी सब कुछ है। निथरा, निथरा सा , टटका टटका सा/इस संसार का पूरा रूपाकर्षण–अपने रंगों और ध्वनियों सहित पूरे दृश्यखण्ड के साथ उपस्थित है। और कवि की स्थिति इसे भर–भर आँख देखने में है। जीवन का यह सम्पूर्ण दृश्यालेख है। यही कारण है कि "लोक कविता की पाठ शैलियों से , कम से कम हिन्दी कविता को बहुत कुछ सीखना है। अगर उसे अपनी एकरसता और एकायमिता को तोड़ता है तो लोक कविता की पाठ शैलियों तक हमें जाना होगा।"[१] त्रिलोचन अपने लोकात्मक अनुभवों द्वारा जिस विशाल कविता फलक का निर्माण करते हैं–कह सकते हैं– वह इस संदर्भ में हिन्दी कविता के काव्य–गुरू, काव्य–शिक्षक हो सकते हैं। त्रिलोचन की तमाम कविताओं में ' मैं 'की उपस्थिति एक दिलचस्प नजारा प्रस्तुत करती है।

वही त्रिलोचन है, वह–जिसके तन पर गंदे

कपडे हैं.........................[२]

\+ + +

चीर भरा पाजामा, लट लट कर गलने से

छेदों वाला कुर्ता ....[३]

\+ + +

भीख मांगते उसी त्रिलोचन को देख कल

---

१. भागवत रावत–कविता का दूसरा पाठ–पृ० ६८

२. त्रिलोचन–उस जनपद का कवि हूँ

३. त्रिलोचन–उस जनपद का कवि हूँ

कवि स्वयं केंद्र में खड़ा होकर कथन के सारे बोझ को अपना ही जीवन–परिवेश बनाकर अपने पर भुगतने दे रहा है। यह भागीदारी एक तरफ तो उस श्रेष्ठता भाव को ध्वस्त करती है, जो कवि और कविता को किसी दूसरे संसार की चीज बताता है, दूसरे अपने पर हंस सकने की आलोचनात्मक परिपक्वता कवि में दिखायी देने लगती है। उपहास द्वारा जीवन स्थितियों पर ऐसी निष्करूण, ऐसी भेदक चोट पड़ती है, कि प्रभाव को महसूस तो किया जा सकता है, पर व्याख्यायित नहीं किया जा सकता। यह बात रोचक है कि इन कविताओं का आस्वादन कविता द्वारा बनायी गयी मनोभूमि और प्रत्याशा से मुक्त होकर ही किया जा सकता है। काव्य के स्तर पर भी यह सब उन सवालों के लिए ललकारती है , जो पुराने और नये काव्यमूल्यों के प्रस्थान बिन्दु रहे हैं। लेकिन यहीं से–इसी वैयक्तिक मनोभूमि से, वह वैयक्तिक–सौंदर्य की प्रतिपरकता का आहरण भी करता है। असल में प्रकृति के बाद त्रिलोचन संसार के रूप और सौंदर्य का निष्पादन अपने प्रेम निरूपण के माध्यम से करते हैं। वस्तुत. यह उस इस प्रकृति का ही अंतर्वर्ती छोर है; जहाँ प्रेम है, प्रेम का आलंबन है और है अत्यन्त आवेगमयी , सौंदर्यवान स्वतः जीवन्त राग बोध। लेकिन ध्यातव्य रहे कि अधिकांश कविताओं में प्रेयसी को आलंबन बनाते हुए भी , यहाँ देह पर निर्भर श्रृंगारिकता नहीं है। इसके बरक्स वह खुद को चरितार्थ करने के लिए, नितान्त अप्रत्याशित और अपारम्परिक आलम्बन को खोजते हैं, कुछ इस तरह कि हम अनुभव करते हैं, मानो इन आलम्बनो का इस दृष्टि के साथ एक अनन्य, अनिवार्य और एकान्तिक रिश्ता था। कवि की आंखे इस रूप को देखती हैं , और वे नयन हैं–

"न कही ले जायें या न ले जायें नयन हैं

किया करेंगें अपने संग्रह की रखवाली

रूप रूप से, आयेगी डोरो में लाली

नव आवि कृत राग की, सहज चयन हैं

विविध विषय के/विविध ग्रहों के भिन्न अयन हैं

बहु वर्णो से भरी सौरमण्डल की प्याली"[1]

त्रिलोचन सरीखे कवि की एक खास बात यह भी है कि उन्हें सबसे अधिक अपनी आंखों पर भरोसा है। इन आंखों ने वैविध्य देखा है, जीवन का विस्तार भी। उन्होने सीमा देखी है, और सभी को देखने की ललक से भर उठे हैं। इस समूची प्रक्रिया में 'देखना' अपूर्व हैं। त्रिलोचन लिखते है–

---

१. त्रिलोचन–फूल नाम है एक–पृ० ७१

"तुमको देखा, आज डीठ डहडही हो गयी,

मन का सारा शून्य आप ही आप भर गया,

लहरों का उन्माद तीर को पार कर गया,

पुर गई दरार।"

गीतमयी थी वह जिसे कवि ने एक घटना की तरह देखा। देखकर उसकी शुष्कता तिरोहित हो गयी, *उगे फूल ही फूल, तप्त संसार तर गया। यह उल्लित प्रवाह अगोचर काल डर गया।* परिवर्तन का चक्र थमा। गीतमयी को देखकर त्रिलोचन में जीवन–राग का उदय हुआ।ऐसा राग जिसमें अखिल विश्व मुखरित हो उठा। "त्रिलोचन की सौंदर्य दृष्टि सब कुछ स्वीकारती है, पर खुले हर प्रकार की कुंठाओं का निषेध करती हुयी इसीलिए यहाँ आत्म स्वीकृति का खुला उपयोग है।"[1]

यह पानी का रंग है मेरा, जिसे बनाते

मैंने इन आँखों का पानी चुका दिया है

रस भरने को रस जीवन का सुखा दिया है

गीत तुम्हारे आये मैंने गाते–गाने

भावों की अनंत यात्रा पर आते आते/श्रद्धा से भरकर यानी सिर झुका दिया है

त्रिलोचन की कविता में प्रेयसी की उपस्थिति, अनुभव और विचार के स्तर पर बहुत ही व्यंजक उपस्थिति है। स्त्री के साथ के ये अनुभव भी, लोक–मन और प्रकृति की भाषा को, आत्मसजगता की भाषा से जोडते हैं। दरअसल इस जीवन को एक निरंतर एकसेपन में देखा ही नहीं जा सकता। क्योंकि एक दूसरे को काटते, एक दूसरे से बारम्बार जुड़ते अनुभव का अटूट सिलसिला यहाँ चला करता है–

आज मैं कहीं और तुम कहीं लाचारी है

मिले कि बिछुड़े।

बिछुड़न में फिर मिलने की

---

१. प्रेम शंकर–साक्षात्कार, जनवरी मार्च १९८७ पृ० ११६

इच्छा जगती रही और मन इतना टेकी

रहा कि तडपा किया

.........कौन विवेकी

मेरा मर्म छू सकेगा, पावस का केकी

आज सुनाता है, वर्ष का आभारी है।''[1]

यों तो इस तरह की पंक्तियो में, भी पुरूष के साथ की दैहिकता का मुहावरा, भाषा के उसी देसीपन द्वारा निर्धारित सांकेतिकता की ही याद दिलाता है। लेकिन अनुभव के स्तर पर उस साथ की खालिस अंतरगंता, इसे एक तरह की निजी कविता बनाती है। यह प्रेमानुभव की दैहिकता का संयमित उत्सवीकरण है। कहीं कहीं स्त्री की इतनी मुखर और एकाग्र उपस्थिति है, कि सौंदर्य, अनबोले सौंदर्य का धारासार स्वयमेव बहता है— ''शुभे तुम्हारी छवि अपने हर्लट पर आंकी

है मैने, अविराम ध्यान से उसे संवारा।''[2]

या फिर — *आंख तक कर*

फिरी थक कर

डाल का फल

गिरा पक कर[3]

लय की मादकता, पदावली की कोमलता और भाव की मधुरता के द्वारा त्रिलोचन अपनी प्रेमानुभूति को बिना किसी अलंकरण के बेहद सादगी से यहां व्यक्त करते हैं। प्रतीक्षा की अवधि को निरूपित करने के लिए, आंख के तकते–तकते फिर जाने की क्रिया को, डाल पर लगे फल को पक कर गिर जाने से जोडने के फलस्वरूप, इस गीत में एक अनुपम सौंदर्य की सृष्टि हो गयी गयी है। यह अनुभव प्रेयसी के साथ रहने की कल्पना का वह छोर है, जहां उसकी अनुपस्थिति मात्र से संवेदना पथरा गयी। यह हादसे का अनुभव है,

---

१. त्रिलोचन–फूल नाम है एक–पृ० ३२

२. त्रिलोचन–फूल नाम है एक–पृ० ४७

३. त्रिलोचन–सबका अपना आकाश

जिसे ठोस मानवीय संदर्भों में ही पहचाना जा सकता है। यह रूप के प्रति कवि का उद्दाम है, जिसमें मांसलता और दिव्यता के बीच एक संतुलनकारी सान्निध्य है। दरअसल, यह सौंदर्य, यह रूप विधान, यह श्रंगारिकता त्रिलोचन की कविता में एक दृष्टि (विजन) की भाति व्याप्त है, जहाँ प्रेयसी, उसकी उपस्थिति, आलंबन होते हुए भी, जीवन के संदर्भ नदारद नहीं हैं।

त्रिलोचन के यहाँ यथार्थ के विविध रूप हैं। स्पष्ट है, इसमें कुछ चित्र बदरंग हैं, कुछ गाढे और कुछ हल्के। लेकिन ये सभी जीवन की व्याख्या हैं। इस दौरान कविता के उपसंहार में जो कुछ बच जाता है उसमें स्वस्ति और जीवन का सौंदर्य ही है। लोकभाषा, लोक संवेदना के बहुलांश वाली त्रिलोचन की कवितायें, अपने अलग मुहावरों के साथ आती हैं, जो हमारे समय को समृद्ध ही करता है। स्वस्ति और सौंदर्य से वंचित इस समय को, वह इसकी निर्धनता दूर करने वाली कवितायें हैं। लेकिन ये आनन्दवादी कवितायें नहीं हैं। क्योंकि आनन्दवाद की परिणति उपभोक्तावाद में होती है। इस दृष्टि से देखें तो त्रिलोचन की कवितायें इस धारणा का अतिक्रमण कर , जीवन के बेहतर विकल्पों को प्रदान करने वाली कविता है।

त्रिलोचन की सौंदर्यपरक कविताये, मनुष्य को उसके अकेलेपन से बाहर लाती हैं। और इस रूप में वह उस का आत्मविस्तार, परिष्कार और आत्म–प्रच्छालन करती हैं। मर्मस्पर्शी तरलता से युक्त ये हमारे छोटे–छोटे सुखों की भागीदार हैं। दृश्यात्मकता इतनी सरल है कि पाठक कहीं उलझता नहीं। अभिधा की क्षमता का विस्तार करती ये कवितायें, बोली और भाषा के अंतरंग संचरण से विकसित भाषा की विरल संरचना है। वर्णन का सुख इसका लक्षण है, और स्थानीयता के भीतर वैश्विक संयोग इस कविता पर विश्वास करने का कारण।

****

अध्याय ७—खण्ड ङ

शमशेर, नागार्जुन एवं त्रिलोचन के सौन्दर्यात्मक संवेदना का तुलनात्मक अध्ययन :

नागार्जुन संस्कृत की क्लासिकी धारा से प्रभावित रहे हैं। फलतः वह जनता के कवि होते हुए भी लोकमन और लोक संवेदना की तरफ उनका अनोखा आकर्षण रहा और उन्होंने लोकमंच पर अनोखी लोकप्रियता अर्जित की। उनका कवित्व जन से जुडा हुआ, प्रगतिशील चेतना का वाहक तो रहा ही साथ ही रागात्मक—सवेदना की कमी भी उसमें नहीं रही। लेकिन नागार्जुन केवल उन्हीं रचनाओं के लेखक नहीं हैं जिन्हें लेकर उनके कवि—व्यक्तित्व का एक माहौल बनाया गया है। सच यह है कि उन की बहिर्मुख आलोचना ज्यादा हुयी है। और किसी गहरी आभ्यांतरिक दृष्टि से उन्हें पहचानने की कोशिश न के बराबर की गयी है जबकि वे गहन संवेदना और व्यापक आयामों के कवि भी हैं। प्रेम, वियोग, प्रकृति, सौंदर्य और अनेक कोमल—कठोर प्रसंगों, भावों और उदात्तताओं से नागार्जुन का काव्य और रचना—जगत सराबोर है। बाहर रहने वाला कवि बार—बार अंदर की ओर मुडता है। जिसमे उनके जीवन के ढेर सारे प्रसंग है। पत्नी घर—द्वार ,गॉव, बादल, फूल ,बच्चे सभी कुछ । यहॉ उनकी उन कविताओं का सहज स्मरण आता है जहॉ वह आत्म भर्त्सना के बहाने अपनी पत्नी के प्रति जिस मार्मिक प्रेम की व्यंजना करते हैं, वहॉ भी वह स्त्री के प्रति अपने उदात्त दृष्टिकोण को नही भूलते हैं। वहॉ एक स्त्री की सम्पूर्ण गरिमा और कर्तव्यनिष्ठा का ही स्तवन है। प्रकृति को लेकर उन्होने अक्सर वर्षा पर कवितायें की हैं क्योंकि बरसात ग्रामीण जनता की जीवन—आशा है। शायद इसीलिए कालिदास का मेघदूत उनके मन में बेहद रमा हुआ है। वह एक प्रेयसी से विछोह की यातना ही नहीं, जन—जीवन का व्यापक सर्वेक्षण और उसकी अंतरगता का काव्य भी है। खेती—किसानी से जुड़े कवि का मेघ से जुडना भी स्वाभाविक है और वियोगी कवि का मेघदूत से।

असल में मेघदूत की कविताओं में जीवन की ऊष्मा है जो उनकी कविताओं में प्राण भरती है उनकी आस्था और उनका विश्वास। उनकी कवितायें मोहभंग और आक्रोश की भी हों, तो क्या हुआ? उनका विश्वास नहीं डगमगाता, वे निराशा से खीझ नहीं जाते। इसीलिए उनकी रचना—शक्ति बहुआयामी और उनका रचना—शिल्प वैविध्यपूर्ण है। संप्रेषण उनके लिए विद्वद्चर्चा का विषय नहीं है, उनकी कविता का व्यवहार—धर्म है। गीत हो या मुक्त छंद दोनों के मूल स्वरूप को धक्का पहुंचाये बिना वे सरल और सहज भाषा में अपनी बात बड़े प्रभावशाली ढंग से कह लेते हैं। दुरूहता, अर्थ—वैविध्य, सूक्ष्मतम अर्थ—प्रसार, अंतरतम के उलझाव को अभिव्यक्त करने वाले रूपक और प्रतीक—रचना में कविताओं में सायास कहीं नहीं दिखाई देती। फिर भी उनका खिलन्दड मन जनता के बीच प्रचलित शब्दों और लयों की पकड़ से कविता में नित नया आवेग और अर्थ भरता रहता है। तुक के मेल, शब्दों की द्विरुक्ति, बातों की अथवा वाक्यांशों की दुहराहट, लोकगीतों

अथवा सिने–गीतों की प्रचलित कुछ ऐसे कौशल और लटके हैं जिनके सहारे नागार्जुन कविता की रूपता में भी रंजकता , अर्थगर्भता और बिम्बात्मक की योजना कर लेते हैं । भदेस उनके लिए वर्जित नहीं है, बल्कि सशक्त अभिव्यक्ति और अनुभूति के लिए बडा प्रबल माध्यम है। तभी वह सुअर में भी सौदर्य देख सके। प्रकृति के चितेरे के रूप में भी नागार्जुन की एक विशिष्ट भूमिका रही है। पहली भूमिका मे उनकी भाषा जितनी ही प्रखर और धारदार होती है, वहीं दूसरी भूमिका में उतनी ही तरल। प्रकृति में समीप्य में नागार्जुन बडे सौम्य, भवनात्मक और मृदु हो उठते है। झीलों में स्वर्ण कमल की अविकसित कलियों के खिलने को खिलखिलाने से जोडकर, नागार्जुन सहसा सारे वातावरण को उल्लास और रूप तरंग से आंदोलित कर देते हैं। सफेद बादल दृष्टि में आते ही, कवि कालिदास और उनके ' मेघदूत' की स्मृति उन्हें बादलों के प्रति रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हो जाती है। चूंकि संस्कृत की शास्त्रीय धारा से नागार्जुन की पूरी काव्य–चेतना विकसित हुई है, अतः पुरातन का परावर्तन, मिथको का पुनः प्रस्तुतीकरण नागार्जुन के कविताओं की प्रथम दृष्टि के आह्वान बन गये है। श्रृंगारिक अनुभूतियां यद्यपि उनके स्वरचित काव्य में गौण रूप से उभरी हैं, पर नागार्जुन का मन सौंदर्यानुभूति के उस सागर से हमेशा आप्लवित रहा है, जिससे संस्कृत के महाकवि कालिदास, विद्यापति, या राधाकृष्ण श्रृंगार संस्कारी कवि जयदेव काव्य–सृजन के लिए उत्प्रेरित होते रहे हैं। संभवतः नागार्जुन ने मुक्त छंद को 'मेघदूत' के अनुवाद के लिए सर्वथा उपयुक्त माना और इसे भारतीय मन की यूटेपिया कहा और माना कि कालिदास को मानवीय हृदय की भारी पहचान थी। इसी के साथ नागार्जुन का विद्यापति के गीतों के प्रति भारी आकर्षण है। स्पष्ट है कि नागार्जुन रागात्मक भावधारा को, अपनी कविता में पर्याप्त स्थान देते हैं। नागार्जुन ने वाल्मीकि , कालिदास, जयदेव, रवीन्द्रनाथ को पढा है। उनका विद्यापति के लोकपक्षीय सौन्दर्य, और श्रृंगार चेतना से सम्बन्ध है। ये सब मिलकर ही उनकी सौन्दर्यचेतना सौन्दर्याभिरूचि को धार देते हैं। लेकिन ओढी हुई विचारधारा और मृत परम्परा से उनका कोई सरोकार नही है। जो कुछ है, एक बने–बनाये संस्कार को तोड़कर सर्वहारा संस्कृति को प्राणवान करने के महान उद्देश्य से चालित है। नागार्जुन चाहे जहॉ बसे हों, जन–जन के सजग चितेरे के रूप में वे अपने देश और मातृभूमि को कभी एक क्षण के लिए भी नही भुला पाते। मिथिला की धरती, वहॉ के प्राकृतिक उद्यान, आम, कटहल, लीचियों के बाग, मछलियों से भरा पोखर, धान से भरा बखार उन्हें याद ही आते है।

याद आता है मुझे अपना वह तरउनी ग्राम

याद आतीं लीचियों व आम

याद आते मुझे मिथिला के रूचिर भूभाग

याद आते धान

याद आते कमल कुमुदनी और ताल मखान

याद आते शस्य श्यामल जनपदो के रूप गुण अनुसार नहीं रखे गये वे नाम

याद आते वेणुवन में नीलिमा के निलय अति अभिरूम"[1]

उनके काव्य में जीवनके यथार्थ का सौन्दर्य लहराता है। उनके बारे में सहज ही कहा जा सकता है कि वह एक अद्‌भुत सौन्दर्य–चेतना के कवि है। यह सौन्दर्य वह, खेत–खलिहानों से लेकर, ग्रामीण जन व समाजों से ग्रहण करते हैं। उनका एक जीवन्त रिश्ता, ग्रामीण परिवेश से जुड़ा हुआ है। आहलाद और सौन्दर्य का विरल संगुम्फन उनके काव्य में है। यह सौन्दर्य उनकी अनेक राजनीतिक कविताओं मे दिखाई देता है, और हमे चकित कर देता है। काव्य सौन्दर्य और उपमा की जटिल सौन्दर्य उनके कविताओं का एक अलग गुण है। "अकाल और उसके बाद" कविता अगर अविस्मरणीय है तो इसका कारण यही है कि उसमे जीवन की एक रोमांचकारी सुंदरता है, सत्य है। *सिंदूर तिलकित भाल, वह दंतरित मुस्कान, ऋतु संधि, तन गई रीढ , वह तुम थी, एक मित्र को पत्र* आदि सैकडों कविताऍं हैं, जिननं नागार्जुन सौन्दर्य के विविध रूप को चित्रित करने वाले, एक सशक्त कवि के रूप में सामने आते हैं। दिलचस्प तब होता है कि जब राजनीतिक कविताओं मे भी वे काव्य–सौन्दर्य की अविस्मरणीय झांकी प्रस्तुत कर देते है। जैसे' नवादा' कविता के दूसरे हिस्से की पंक्तियॉं–*"पिच रोड पर। धूरूर दाग लहू के देखे। बेदम बूढ़े हाथी की खुरदारी पीठ पर। मरूल गया हो कोई ज्यों सूखा –सूखा सिन्दूर।* नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना बिल्कुल यथार्थ पर खडी , उसी के अनुभवों से आप्लवित सौंदर्य चेतना है, उसमें वायनीयता की कही कोई गुंजाइस नहीं। नागार्जुन की सौन्दर्य चेतना बिल्कुल उन यथार्थवादी रचनाकारों की सैन्दर्य चेतना से मेल खाती है जो किसी न किसी रूप मे क्रांति की उपज होते है। अतः नागार्जुन अपने समय को लाघते हुए बहुत –बहुत आगे बढ़ जाते है। अपनी सौन्दर्य–चेतना में जिस क्रांतिकारी या युवा पीढ़ी के साथ वह दोस्ताना निभाते, उन्हें अपनी अगली पीढ़ी मानते हुए यहॉं नये का स्वागत करते है। लेकिन जो स्वागत कर्ता है, वह बहुत आधुनिक है। वह इसलिये स्वागत कर सका है क्योंकि यहॉं भी वह बेहतर भविष्य मे सौन्दर्यपूर्ण सृष्टि को परंपरा को आगे बढ़ाना चाहता है। *"आजा। जल्दी आजा। बुझने को है यह "......*

शमशेर के कवि –मूल में जो प्रेम है वही विराट होकर मनुष्य की आत्मा का बहुविध सौन्दर्य बना है,

---

१. शिवकुमार मिश्र–चुनी हुई रचनाऍं –खण्ड २–पृ० ३०

जिसकी जद में दुनिया की सारी हलचलें, अनुभूतियॉं, संघर्ष आ जाते हैं। क्योंकि सौन्दर्य, सुन्दर ही नहीं है, सुन्दर की अनवरत तलाश है जिसमें असुन्दर भी मिलता है– इसीलिए शमशेर के संवेदन केन्द्र पर ही नहीं, उसके विकास क्रम, प्रयोजन और परिणति पर भी गौर करना जरूरी है। बिना इसके उनके विचार और काव्य; समय और काव्य ; जीवनानुभव और काव्य में दरारें ही दरारें देखी जाती रहेगीं। उदाहरण के लिए अक्सर कहा जाता रहा है कि शमशेर बात तो प्रगतिशीलता की करते हैं और कविताऍं रोमानी लिखते है–यानि वे कविताऍं जो उनकी श्रेष्ठ और गहरी कविताऍं हैं। विसंगति देखिए कि पहले तो इन्हें अलग –अलग किया गया, और फिर उन पर अलग–अलग होने का आरोप लगाते हुए उनमें फॉक देखी गयी ; जबकि स्वयं कवि को हमेशा ही इस पर हैरत होती रही कि : *शतरंज का एक खाना है*

जिसमें तुम मुझे उठाकर रखते हो। (मेरे समय को)[1]

लेकिन शमशेर है कि शतरंज का मोहरा बनने को तैयार नहीं। न खुद । न उनका कवि ! सौन्दर्य और प्रेम शमशेर के लिए सम्पूर्ण जीवन है, जहॉं वे अपने की पूरी तरह समर्पित करते और सुरक्षित महसूस करते हैं; क्योकि *"वहीं से निकलते हैं जीवन के सारे रस–राग–प्रयोजन"*।

तूने मुझे दूरियों से बढकर

एक अहर्निश गोद बना कर

लपेट लिया है। (सौन्दर्य)[2]

सौन्दर्य की कितनी विराट, कितनी अद्वितीय अनुभूति शमशेर के रचना संसार में है, उसकी यह एक झलक है। जो सौन्दर्य–स्मृति को सारे उपादानों के साथ सामने लाती हैं–

सूना–सूना पथ है, उदास झरना

एक –बादल–रेखा पर टिका हुआ आसमान

जहॉं वह काली युवती हॅसी थी।

शमशेर अनुभूति की एक गर्मी, राग की एक अन्तरलय पाठक में जगा देते हैं। उनकी भाषा में हरकत है।

---

१. शमशेर–इतने पास अपने

२. शमशेर–इतने पास अपने

पाठकों में भी हरकत पैदा करने वाली। प्रेम का हर स्पन्दन और धडकन इन कविताओं में देखी और सुनी जा सकती है। उनकी भाषा में सांस्कृतिक पवित्रता के बजाय, राग की सादगी और पावनता है। शमशेर में वर्णन इशारे मे बदल गये हैं। उनकी भाषा लथपथ नहीं करती, गन्ध की तरह, राग की तरह भीतर तक छू लेती है। दो–एक कविताओं कों छोड़कर शमशेर के काव्य में मांसलता कहीं नहीं है; केवल सम्वेदन है–सूक्ष्म लेकिन अधिक जीवन–हलचल लिए हुए। निर्वैयक्तिकता का मतलब शमशेर के यहां व्यक्तित्व की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि उसका कविता में विलीनीकरण है।

अनुभूति के क्षण का, देश और काल दोनों में विस्तार है, यह जितना 'जहान' को समेटे है, उतना ही 'इतिहास' को । इस सन्दर्भ में शमशेर की यह व्याख्या अच्छी तरह समझी जा सकती है– " सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल –छिन होता रहता है। अब यह हम पर है, खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला की कितना अपने अन्दर घुला सकते है।"स्वयं शमशेर के लिए सुंदरता का अवतार के अंतर्गत उन की अपनी कविताएं स्वभवतः न आती होंगी, पर हमारे लिए वे इस व्याख्या का सजीव उदाहरण हो जाती हैं। इन पंक्तियों में एक ओर आस्था का परंपरित रूप है ('अवतार'–'लीला') और दूसरी ओर आधुनिक यथार्थ का सापेक्ष स्वभाव। इस दृष्टि से काल के लघुतम खंड (पल) में देश का संपूर्ण विस्तार (जहान) समाया हुआ है। काल में देश का संपूर्ण काल प्रवाह को समझााने के लिए ही कवि बार–बार जल और आकाश में पैठता है। देश या कि मिट्टी की स्थिति उसी में समाई हुई है। यहॉं अपने आप स्पष्ट हो जाता है कि कवि के लिए वर्णन देश का होता है, और अनुभव काल का। देश काल में बद्ध, भाषा बिम्ब के सहारे काव्यभाषा में रूपान्तरित होकर अंततः अर्थ–प्रक्रिया की कडी बन जाती है, जिसका अंकन कवि ने यो किया है–

रह गया सा एक सीधा विंब

चल रहा है जो

शांत इंगित सा

न जाने किधर

"एक गतिशील विम्ब में संपूर्ण अर्थ और अनुभव क्रियाशील हो गया है। विम्ब कैसे अर्थ के कई स्तरों को अपने में समाए रहता है और उनकी क्रिया–प्रतिक्रया में परस्पर गतिशील रह कर अनुभव को अंतहीन बना देता है। फिर एक व्यक्तित्व से दूसरे व्यक्तित्व में संक्रमित करता हुआ उसे देश काल से परे विस्तृत कर देता है– सूर्य, सागर मेध के उन प्रकृति–तत्वों की तरह से जो ऋग्वेद के कवि से लेकर शमशेर तक सभी उन्मुख

संवेदनशील कवियों के लिए अक्षय प्रेरणा–स्रोत रहे हैं– और एक व्यक्ति के अनुभव को जातीय–अंतर्जातीय अनुभूति में रूपान्तरित करता है। रचना की यह जीवन्त प्रक्रिया शमशेर में धीरे–धीरे खुलती है, जिसे उन्होंने अपने ढंग से 'सुंदरता का अवतार' कहा है।"[1] शमशेर के यहाँ कविता का नूर ही उसका पर्दा बन जाता है। सरलता ही गूढ़ता का रूप ले लेती है। अपने आशय को पारदर्शी बनाने की चिन्ता ही उन्हें उन अथाह गहराईयों में पहुंचा देती है जहाँ तक उतरने का अक्सर लोग साहस नहीं जुटा पाते और इसलिए सरल भी गूढ बन जाता है :

सरल से भी गूढ़, गूढ तर

तत्व निकलेगें

अमित विषमय

जब मथेगा प्रेम सागर

हृदय।

त्रिलोचन अपने इन्द्रिय बोध के शब्दों का खूबसूरत जामा पहनाते हैं किन्तु शब्दों का यह खूबसूरत जामा जागतिक सच्चाई की शर्त के आड़े नही आता बल्कि शब्द और गहरा और विस्तृत अर्थ ग्रहण कर लेता है। त्रिलोचन अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति के लिये अपने परिचित लोक से जाने पहचाने शब्दों का चयन प्रायः करते हैं किन्तु वे भाषा के संकट से अपरिचित नही हैं।इन्द्रिय बोध को ठीक–ठीक ग्रहण करने के बाद भी अनुत्तरित प्रश्नों से ज्यादा असम्बद्ध उत्तर भाषा की शक्ल बदल देते हैं–" *जाने हुये शब्द ही मै प्राय. चुन्ता हूँ अपने अन्तर्गत अर्थो मे अभिप्रेत ध्वनि वर्णतरंगो मे लहराती है, कानों की संवेदना विदित है , मुख को पर सुनता हूँ* " साधको को भाषा की चिन्ता केवल भाषा की चिन्ता नही है क्योंकि यह चिन्ता हमे वहाँ ले जाकर खड़ा कर देती है जहाँ मनुष्य अपने जीवन के अनेकानेक प्रश्नों को लेकर या तो शब्दहीन खडा है अथवा उसे अपने ही शब्द अपरिचित और अप्रासंगिक लगते हैं। वास्तव मे शब्द और भाषा की चिन्ता, संस्कृति की चिन्ता है जो सामाजिक , आर्थिक , राजनीतिक प्रश्न से दूर कहीं जाकर जुड़ ही जाती है।

मनुष्य जीवन को उकेरने वाले त्रिलोचन के भाव संसार के मनुष्यों मे वर्णजाति, कद–काठी , शक्लो–सूरत आदि मे भेद होते हुये भी ; ये भेद बेमानी है। क्योंकि जीवन रस प्राप्त करने का साधन सबका एक ही है–" *गर्म–गर्म वह रोटी जो मुँह मे जीवन बनती है, भई रहा क्या अन्तर उसमे ।"त्रिलोचन के "*

---

१. डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी–आधुनिक कविता यात्रा–पृ० १९५

मानव छौने " वाली दुनिया मे सबकी चिन्ता एक है और सबकी परेशानी एक सी ।मनुष्य जीवन की तलाश मे भटकते हुये त्रिलोचन पाते हैं कि मनुष्य का जीवन लगातार आघातों–प्रतिघातो को सहते सहते जैसे–तैसे ही सही, बढ़ता ही जा रहा है, इसलिये जय पराजय की गणना बेमानी हैं । मनुष्य प्रतिरोध के बावजूद " *जीवन के नये अंकुर* " अंकुरित करता हुआ ऑधी तूफान को भी अन्ततः अपने सुख के साधन बना लेता है।

त्रिलोचन इसीलिये जीवन–सौन्दर्य के रेखाचित्र को निर्मित करने वाले कवि हैं। जीवन के सभी पक्षों को यथार्थ की सभी दृष्टियों से ही देखते हुये त्रिलोचन उसको उसकी समग्रता मे ग्रहण करते हैं।यह जीवन से प्रीति करने वाला कवि ही कर सकता है, प्रीति करने वाला ही सौन्दर्य की उपास्थना कर सकता है। शब्दों के सौन्दर्य को जानने वाले त्रिलोचन इसलिये जीवन के सौन्दर्य को पहचानते हैं।उनके यहॉ जीवन का रोमांस नही है अपितु अनुभूत्यात्मक स्तर पर अपने मे जज्ब कर लेने का माद्‌दा है। उनके यहाँ शब्द की सरलता का सौन्दर्य जीवन की सरलता के सौन्दर्य से ही निकलता है। उनकी कविता के अनेक स्तर है, वे एक साथ कई विषयों पर कविता लिखते हैं, उन्होंने सामाजिक चेतता को केन्द्र में रखकर कविताए लिखने के साथ प्रेम कविताएं भी लिखी है। वामपंथी चेतना के रचनाकारों के यहां प्रेम एक अछूत विषय है। प्रेम पर कविता लिखने का मतलब प्रगतिशीलता से वचित हो जाना है–ऐसा क्रांतिकारी कवि सोचते है और उनके यहां जीवन की धडकन नहीं सुनाई देती। जाहिर है ऐसे कवि के पास समग्र दृष्टि नहीं रह जाती। त्रिलोचन ने प्रेम जैसे विषय पर सफलता पूर्वक कविताएं लिखी है।

उनकी प्रेम कविता पढते हुए कविता के संगठन और सम्प्रेषण को देखा जा सकता है। कविता लिखते समय वे तल्लीन हो जाते हैं और कविता को शब्दों के ताने–बाने से बुनते है। उनकी प्रेम कविताएं प्रभावशाली हैं क्योकि उसके केन्द्र में मनुष्य और उसकी जिजीविषा है। संवेदनशीलता के बिना, एक गहरे लगाव के बिना किसी भी कवि के लिए अच्छी कविता लिख पाना लगभग असम्भव कार्य है। त्रिलोचन अपनी पीढी के एक अत्यंत समर्थ कवि इसीलिए हैं कि उनमे कवि की सवेंदनशीलता और कलाकार का यह संतुलित काव्यानुशासन मौजूद है। चीजों का छोटे–छोटे और सामान्य से लगने वाले दृश्य चित्रों का उनका निरीक्षण जितना बारीक है, उतना ही उसमें अर्थ भरना भी वह जानते हैं। चीजों में और सम्बंधों की दुनिया में अनेक गहरे काव्यात्मक लगाव के कारण ही यह सम्भव हो पाया है।

त्रिलोचन की कविताओं में उस चेतना को लक्षित किया जा सकता है जो उनकी कविताओं को एक आत्मपरकता प्रदान करती है। यह चेतना त्रिलोचन की कविता में दिखाई देती हैं। उनका विश्वास है कि तलवार में लोहार की आत्मा निवास करती है। 'दंतकथा' वे जानते हैं, और लोक गाथा मे उनका विश्वास है। अपने इन्ही विश्वासों के कारण त्रिलोचन उन कविताओं की रचना कर सके है जिन्हें दूर से पहिचाना जा सकता है।

त्रिलोचन की कविताओं में व्यक्तिगत और सार्वजनिक, सूक्ष्म और स्थूल, शांत और हिंसा के बीच आवाजाही और तनाव और द्वंद्वात्मक लगातार देखी जा सकती है।

आदमी से इस तरह का रिश्ता रखते हुए भी उनकी कविताएं मात्र मानव केन्द्रित नहीं है। दरअसल मानव और प्रकृति के बीच संबंध को उसके विभिन्न आयामों में जितना उन्होंने देखा, वे हिन्दी के किसी भी समकालीन कवि ने शायद ही देखा हो। आदमी की उपस्थिति के बिना प्रकृति एक बेजान और नैतिक मूल्यों से रहित वस्तु है। आदमी का मस्तिष्क ही वृहत्तर प्रकृति के विकास का वह हिस्सा है, जो प्रकृति को विकास देता हैं । त्रिलोचन की कविताओं में कहीं भी प्रकृति चित्रण, केवल प्रकृति चित्रण की अय्याशी के लिये नहीं है बल्कि प्रकृति उनके यहां हमेशा आदमी की विभिन्न भावनाओं और परिस्थितियों के जरिये देखी गयी चीज हैं। प्रकृति उनके लिए मानव से पलायन नहीं हैं बल्कि परस्पर संतुलन और मित्रता की खोज हैं । आदमी के दिमाग में और समाज में जब तक मानव द्रोही तत्व रहेगे, तब तक प्रकृतिद्रोह एक विभिषिका बना रहेगा। शायद मानव की समाप्ति का कारण भी बनेगा । त्रिलोचन की कविताएं इसलिए मनुष्यताबोध की गहरी आस्था और अदम्य प्रतिबद्धता की कविताएं हैं जहां जीवन के निखालिस सौंदर्य को न सिर्फ देखा गया है बल्कि उस सौन्दर्य को जीवन मे कैसे उतारा जाय, इसे भी बताया गया है।

****

अध्याय ८

काव्य-भाषा के संदर्भ

अध्याय – ८
काव्य–भाषा के संदर्भ :

कविता के साथ भाषा का गहरा, अनिवार्य और अविच्छेद्‌य संबंध है। बल्कि यह कहा जाना चाहिये कि वह भाषा की एक विधि विशेष है। जीवन की भट्‌टी में ढलकर ही जीवंत काव्य भाषा जन्म लेती है। कबीर, तुलसी, निराला, त्रिलोचन, केदार, नागार्जुन, मुक्तिबोध जैसे कवियों ने अपने–अपने रचना संसार के माध्यम से इस तथ्य को पुष्ट और प्रमाणित किया है। जीवन के सुख–दुख, राग विराग और संघर्ष को वहां आत्मीय और विश्वसनीय वाणी मिली है। एक अच्छी कविता की पहचान केवल उसकी वस्तु से नहीं अपितु उसकी भाषा–सामर्थ्य से आंकी जाती है। भाषा में कविता उसी प्रकार बीजभूत होती है जिस प्रकार फूल में फल अन्तर्निहित होते है। कविता में भाषा अपनी अभिव्यंजना के चरमोत्कर्ष पर होती है। प्राण वायु की मानिन्द।

ऐन्द्रिय जागरूकता एव संवेदनशीलता रचना धर्मिता की सर्व स्वीकृत प्रथम शर्त है। अपने देशकाल, समाज एवं परिवेश से अन्तः क्रिया करते हुए रचनाकार या कवि का ऐन्द्रिय बोध समृद्ध होता हैं। अपने जीवन यथार्थ से टकराते हुए उसे विभिन्न जीवन अनुभव प्राप्त होते है। ये जीवन अनुभव भाषा निरपेक्ष नहीं होते। हर मानव समाज के दृश्य अनुभूत एवं सृजित जगत की अपनी भाषा होती है। " शब्दों की यह रगड. कविता की रचना प्रकिया का केंद्रीय तत्व है और इसकी पहचान पाठक या कि समीक्षक को सही अर्थ दिशा में उन्मुख करती है, जहॉ अनुभव उसके लिये अनुभूति में रूपान्तरित होता हुआ कविता में देशकाल का अतिक्रमण करके अनुभूति और विचार का सन्श्लेष बन जाते हैं। कविता इस दृष्टि से भाषा की स्थिति नही भाषा की प्रक्रिया है।"[1]

यह भाषा एक सुदीर्घ सांस्कृतिक प्रक्रिया के अंतर्गत विकसित भी होती हैं जो अपने कथ्य को पूरी इयत्ता एवं जीवन्तता से उद्‌घाटित करती है। एक सजग रचनाकार अपने व्यापक जीवन यथार्थ से टकराते हुए, उसकी भाषा का भी साक्षात्कार करता है। अपनी शक्ति एवं सीमा के अनुरूप रचनाकार अपने यथार्थ जगत के अनुभवों के साथ–साथ उससे जुड़ी हुई इस भाषा अर्थात इसके रूप, नाम, क्रियाओं, ध्वनियों, लय आदि को भी आत्मसात करने का प्रयास करता है। कवि की संवेदनशीलता एवं कल्पना उसके इन अनुभवों को और अधिक गहन एवं व्यापक बनाती है। ये अनुभव कवि की जड़ीभूत रुचि को तोड़ते हैं। उसमें नवीन दृष्टि का विकास करते हैं। कवि अपने व्यापक जीवन अनुभव के सार को व्यक्त करन के लिए बेचैन हो

---

१. डा० राम स्वरूप चतुर्वेदी – सर्जन और भाषिक संरचना–पृ० २७

उठता हैं। कवि के मानस में अनुभव के भाव एवं भाव के अनुरूप भाषा का, शब्द की रचना का द्वंद्व निरन्तर राक्रिय रहता है। अपने यथार्थ जगत रो विकसित, अपनी रांवेदना के द्वारा कवि अपने भावों का ऐसा कलात्मक संमूर्तन करता है कि उसकी कविता में सशक्त भाव एव प्राणवान भाषा सहज ही निःसृत होने लगती है। यह भाषा ही कविता में कवित्व का निर्वाह करती हैं। कल्पना युक्त होते हुए भी यथार्थ से अविच्छिन्न होती है। यह व्यंजक होती है तथा अपने नवीन एवं गहन अर्थ की प्रतीकात्मक योजना करती हैं। उसके अर्थ मे गहराई, व्याप्ति एव वैविध्य आ जाता है। यह व्यापक जीवन बोध का विकास करती है तथा कथ्य से भी आगे जाकर सौन्दर्य, सृष्टि करती है। इस प्रकार सशक्त काव्य भाषा सामान्य होते हुए भी विशिष्ट एवं सर्जनात्मक हो जाती हैं । यह कविता या कवि का ही संस्कार नहीं करती अपितु अपने पाठक का भी संस्कार करती है। "काव्य भाषा सामान्य व्यवहार की भाषा से ही रची जाती है । फिर भी अपने स्वभाव में वह उससे अलग है। दरअसल काव्य भाषा मूर्त, अमूर्त और समूर्तन की आत्मीकृत प्रक्रिया की सघन यात्रा से परिपक्व होती है। अर्थात वाहय सत्ता के ऐन्द्रिक अनुभव का प्रथम सोपान जहां हर मूर्त सत्ता का भाव के रूप में अमूर्तन होता है। फिर मूर्त को अनेक और विविध, पूर्व में अर्जित भाव समूहों के साथ अमूर्तन में जीना, उसे अपने व्यक्तित्व में रच कर, उसे अपनी निजता में रंग कर, उसके रंगों की निजता बनाए रखना– एक प्रकार से वाह्य सत्ता को अपने व्यक्तित्व में रच कर भी, उसे व्यक्तित्व हीन न होने देना है। उसे तब तक रचना का स्वरूप नही मिलता जब तक प्रथम अनुभव भावबोध रचाव का रूप न धर ले। यह सारा क्रिया व्यापार मानव समूहों में रहकर भी बडा एकांतिक है। यह वही सोपान है जहां सत्ता का मौलिक रूप में गुणात्मक परिवर्तन होता है । उसके कथिक आयामों में ऐश्वर्यवान समृद्धि होती है।"[1]

यह सोपान समूर्तन का है। इस सोपान पर सामान्य भाषा अपने में आवेगमयी लाक्षणिकता और सृजनधर्मी बिबात्मकता को धारण कर, उन्हें पूरे स्वभाव में झेलना होता है। अंकुरण होने के पूर्व धरती तडकती है। अनुभव से जाना जाता है कि धरती का तडकना अंकुरण से पूर्व प्रकृति की सहज लाक्षणिकता है। इससे न केवल हम प्रकृति की रचना समझाते है वरन् उसके विकास की प्रक्रिया को भी जानते है। काव्यभाषा में इसी सहज लाक्षणिकता की महिमा छिपी रहती है। इसकी परिणति है अनेक भाव सहचर्यो को मन में जगाना, नई अर्थ संभावनाओं से विचलित होना। उसमें हमारी भाव भूमियां विस्तृत होती है। इसीलिए काव्यभाषा में अर्थ प्रसंगों की नई संभावनायें उद्दीप्त होती हैं। वह हमें शब्दार्थों से तृप्त नहीं करतीं बल्कि जीवन, प्रकृति और संसार के प्रति और अधिक जिज्ञासु और संवेदनशील बनाती हैं। हमारे पूर्व अनुभवों में कुछ नया जोड़त हुये उन्हें समृद्ध करती है। परिष्कृत भी। काव्य भाषा में एक ऐसी शक्ति का उदय होता है कि वह अपने दिक्काल

---

१. ओर – जु० सित० १६६१ सं० विजेन्द–पृ० ३

के तनावों को झेलकर उनसे कभी आक्रान्त नहीं होती। रचना प्रक्रिया के दौर में अर्जित जीवन और प्रकृति की विविध क्रिया भंगिमाओं को राहेज कर कवि अपनी संबद्धता का निर्वेद स्वर काव्य भाषा में भी बनाये रहता है। इसी शक्ति से वह भाव और विचार के तनाव को इस तरह साधता है कि शब्द में दोनों का रूप घुल मिलकर कविता के लिए अपरिहार्य भाषिक सत्ता का बोध होने लगे।

भाषा जीवन से उपजती है और कविता एवं जीवन के बीच सेतु का काम करती हैं। सेतु व्यक्ति प्रक्रिया के साथ–साथ एक सामाजिक प्रक्रिया भी है–निर्माण और व्यवहार दोनों में। कवि सेतु निर्माता है, जो व्यक्ति और समाज का जीवन से रिश्ता कायम करता है और सही और उचित रिश्ते की ओर से जाता हैं। इस क्रम में शब्द और यथार्थ में रिश्ते की परम्परा का विकास करने का काम कवि करता है। इस प्रक्रिया में कवि की भाषा, जीवन से उपजी होकर भी जीवन से अलग दिखती है, जो सुन्दरता की वाहक होती है, इसलिए उसे "काव्यभाषा" कहते है। "काव्य भाषा का गठन कई रूपों में होता है। उसके गठन के पीछे कविता की लम्बी श्रव्य एवं वाचिक परम्परा है, जिससे कविता में लय का निर्धारण होता रहा है। पुराना कवि लय का निर्धारण द्वंद्व से करता था और छंद के भीतर शब्दों के सटीक संयोजन एवं तालमेल से भी। आज का कवि 'छंद प्रवीण' नहीं है। अतः लय की समस्या आज कविता और काव्य भाषा की सबसे प्रमुख समस्या है। लयविहीन भाषा, कविता की भाषा न होकर गद्य की भाषा होती है। कविता और गद्य का फर्क, लय संयोजन का फर्क है।"[1]

आज के अधिकांश कवियों की भाषा, लयशून्य होने के कारण काव्य भाषा के स्तर तक नहीं पहुंच पाती। कविता की वाचिक और श्रव्य परम्परा के सिकुडते और मिटते ले जाने का संकट यही है कि कविता और गद्य का अंन्तर मिट चला है। इसीलिए कविता, सामाजिक स्मृति में तब्दील नहीं होती। वह अपने श्रोता और पाठक का निर्माण एक गम्भीर अर्थ और उसकी लयात्मकता के आधार पर करती है। इस बात को समझकर निराला ने कविता को उस रूढ और रीतिबद्ध छंद से मुक्ति दिलाई थी जो उसके आंतरिक और आत्मिक स्वरूप को विगाड़ देता था या घटिया बना देता था। उन्होंने लय को नहीं त्यागा था, उसे बरकरार रखा और जिन शब्दों का विधान किया था, उनसे कोई कृत्रिम लय भी निर्मित नहीं की थी वरन हिन्दी जाति के शब्दों के व्यापक लयात्मक प्रकृति का संयोजन उन्होंने अपनी काव्य भाषा के भीतर किया। जिसे नयी दिशा, अर्थगाम्भीर्य और जीवन संबंधों की पहचान का नया तर्क देते हुए नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि कवियों ने विकसित किया है।

---

१. डा० जीवन सिंह–ओर वही–पृ० ३२

जीवन के भावों की उत्पत्ति क्रियाशीलता से होती है। इसलिए रचना में क्रियाशील जीवन के चित्रण को ही सृजनशीलता का पर्याय माना गया है। दरअसल, काव्य में वास्तविक जीवन की चेष्टाओं और क्रियाओं का जितना विधान होगा, काव्यभाषा उतनी ही काव्यमय प्राणवान एवं सृजनशील होगीं।

अज्ञेय की काव्य भाषा कुलीनता का ऐसा आग्रह है कि वह अनुभव की आंच पर पिघल जाती है। शब्दाडम्बर वाला लालित्य और चमक–दमक तो वहां खूब है, पर जीवन से गहरा और व्यापक संदर्भों वाला सरोकार नहीं। वह पाठ्य परम्परा वाले कवि की भाषा है। हमारी वाचिक और पाठ्य परम्पराओं का भाषा संश्लेषण वहां नहीं है। वह जातीय जीवन से दुराव की भाषा है। अज्ञेय की भाषा में क्रिया–व्यापारों का भी घोर संकट दिखाई देता हैं । उनकी भाषा "काव्यात्मक भाषा" तो है, "काव्य भाषा" नहीं। मुक्ति बोध की काव्य भाषा के विवेचन के संदर्भ में डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि अंग्रेजी में कुछ कुआलोचकों ने कविताा की भाषा के लिए 'पोएटिक' और 'पोएटिकल' दो शब्दों का प्रयोग किया है। अनुकरणशील कवि प्रायः उस 'पोएटिकल' भाषा का प्रयोग करते हैं, जो परम्परा से काव्यात्मक भाषा के रूप में प्राप्त होती है । इसके विपरीत सृजनशील कवि परम्परागत "काव्यात्मक भाषा" के दायरे को तोडकर अपने नये तथ्य के अनुरूप "काव्य–भाषा" का निर्माण करता है, जो आरम्भ में खुरदुरी लगते हुए भी अपनी अर्थवक्ता में जानदार होती है। स्पष्ट है कि काव्यभाषा का सम्बन्ध सृजन से है, जबकि काव्यात्मक भाषा का सम्बन्ध अनुकरण से है। इस प्रतिमान से आज के अधिकांश कवियों की भाषा सृजनशील कवियों की काव्यभाषा से भिन्न अनुकरणीय कवियो की काव्यात्मक भाषा ही नजर आती है। जिन कविताओं में जीवन क्रियाओं का संकोच रहता है वहां कवि की भाषा सपाट और इकट्ठी रहती है। उनकी शब्दावली कुछ घिसे–पिटे बिम्बों प्रतीकों तक ही सीमित रहने को जैसे अभिशप्त हो।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जब कविता मे " गोचर रूपो के विधान" पर बल दिया था तो वे कविता में कही गयी बात के चित्र रूप में, उपस्थित होने पर बल दे रहे थे पर, उस साधारण कोटि की चित्रप्रियता का समर्थन नहीं कर रहे थे जो निराला को स्वछन्द काव्यभूमि में विचरण करने से रोकने वाली प्रवृत्ति है। कविता के संगीत को महत्व देते हुए शुक्ल जी ने कहा था नाद सौन्दर्य से कविता की आयु बढती है। पर साथ ही यह भी कि कविता में भाषा की सब शक्तियों से काम लेना पडता है। "सब शक्तियों" का यहां अधिक व्यापक अर्थ लेना चाहिए–शास्त्रीय ढंग से परिभाषित अभिधा लक्षणा व्यंजना तक इसे सीमित नहीं करना चाहिये।

निराला जब मुक्तछंद के कविता के लिये उपयोगी बता रहे थे तो कविता की मुक्ति को मनुष्य की मुक्ति के सामान्तर बता रहे थे। गद्य की ताकत लेकर कविता को प्रभावशाली बनाने का बहुत उल्लेखनीय प्रयत्न उनके यहां नहीं दिखाई देता है लेकिन जब वे मुक्त छंद की विशेषता बताते हुए पाठ की कला पर बल दे रहे थे तो आने वाली कविता को रास्ता दिखा रहे थे। त्रिलोचना जब काव्य–भाषा की नयी अर्थ

व्यंजकता के लिए पूरे–पूरे वाक्यों पर बल देते हैं तो वे गद्य और कविता की निकटता के सार्थक परिणामों के प्रति सचेत करते है। इसे वे हिन्दी की अपनी जातीय प्रकृति, खुले मैदानी गद्य की अंतर्निहित क्षमता से सम्बद्ध करके देखते है।

संध्या ने मेघों के कितने चित्र बनाये
हाथी, घोड़े,पेड, आदमी, जंगल, क्या–क्या
नही रच दिया और कभी रंगों से क्रीडा
की आकृतियां नही बनाई, कभी चलाये
झीने से बादल जिनमें चटकीली लाली
उभर उठी थी,"[1]

यहां यह स्पष्ट करना जरूरी है कि बिम्बविधान और सपाट बयानी को आमने–सामने रखकर और एक दूसरे को विलोम बनाकर हमारे यहां सरलीकृत नतीजे नहीं निकाले जा सकते है। असल में न बिम्बविधा को निरस्त किया जा सकता है न सपाटबयानी को तरजीह दी जा सकती है क्यों कि अच्छी कविता दोनों के घनिष्ठ लगाव से काव्यत्व अर्जित करती हैं। " इसके साथ ही यर्थाथ के नाम पर आज जो एक कठिन क्रूर और जटिल परिवेश मिला है भाषा की पकड में , अनुभव में उसे कैसे लाया जाया यह एक विकट प्रश्न है । कविता का काम यह है कि वह इस परिवेश की हाहाहुती में अपनें अनुभव को विला जानें से किसी तरह बचायें। इस काम को अन्जाम देने के लिये जरूरी हो जाता है कि कवि अपनी भाषा के साथ सलूक बदले।"[2]

त्रिलोचन जन आंदोलन के हिस्सेदार कवि नही है। नागार्जुन के कवि का कार्य क्षेत्र, राजनीति के तेज करना रहा है। त्रिलोचन की कविता यह काम बहुत कम करती है। दो बातें, त्रिलोचन की कविता को "सर्वश्रेष्ठ नायाब चीज" बनाती है– वह उस क्षेत्र का परिवेश, चरित्र, से संवाद। और दूसरा यथार्थ से सीधा साक्षात्कार जिसमें वह भाषा और शब्द के पुराने स्वरूप को नया बनाता चलता है। भाषाओं के अगम समुद्र में अवगाहन करते हुए वह उस जीवन में ही गहरे पैठते है। जीवन से अलग न भाषा है, न शब्द।

कबीर, तुलसीदास की तरह त्रिलोचन का भी बनारस–रचना क्षेत्र रहा है। "लडता हुआ" बनारस का समाज, उस समाज की नई आशा और अभिलाषा, यही उनके रचना क्षेत्र का नया सत्य है। त्रिलोचन की भाषा, व्यंजना और लक्षण से अधिक अभिधा की सादगी की भाषा है। वाल्मीकि और वेदव्यास ने अनुष्टुपछंद को जितना नया रूप दिया, त्रिलोचन ने सांनेट को उसी तरह अपने व्यक्तित्व में ढाल लिया। त्रिलोचन की

---

१. उस जनपद का कवि हूं–पृ० ५५
२. डा० राजेन्द्र कुमार–कसौटी ६–सं० नन्दकिशोर नवल–पृ० ६८

भाषा में शब्दो का 'स्थापत्य' मूर्तिकला का काम करता हैं। त्रिलोचन गुजरात पंजाब, राजस्थान, आगरा, बनारस, में जीवन भर शब्दों की तलाश में घूमते ही रहें। यह शब्द त्रिलोचन की कविता में आने पर 'स्थानीयता' की अपनी पहचान बनाता हुआ कविता मे एक नयी शक्ति और सामर्थ्य के साथ आता है। त्रिलोचन के जातीय कवि की प्रयोगशाला पूरा हिन्दी क्षेत्र है। वह हिन्दी पाठकों से बिना कोई दावा किए, अनवरत संवाद करते रहते हैं । यह है शब्दों की स्थापना का उनके कवि द्वारा एक पुरजोर प्रयास है जहां समाज का मौन टूटता है। शब्दों को नया संस्कार देना इसीलिए त्रिलोचन जैसे समर्थ कवि की ही शक्ति है।

नई कविता के उन कवियों मे शमशेर बहादुर सिंह सबसे महत्वपूर्ण हैं जिन्होनें कविता के विचार पक्ष के साथ उसके शिल्प को भी अत्यधिक गम्भीरता से स्वीकार करते हुए अपने कलाकार की सम्पूर्ण शक्ति के साथ उसमें बहुविध प्रयोग किये हैं। वस्तु–विचार भाव को एकमेल करके चलने वाली शमशेर की रचना प्रक्रिया शिल्प को भी प्रतिबंधहीन दृष्टि से स्वीकार करती है यानि शिल्प शमशेर के काव्य का वाहय पक्ष न होकर वह वहां वस्तु के अनुरूप ही प्रकट होता है।

शमशेर का काव्य शिल्प जिन तत्वों से निर्मित है, बकौल कवि उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है–निजी रुचि जो उन्हें प्रयोग वादी कवियों में सर्वाधिक प्रयोग शील अर्थात शिल्प के प्रति सबसे ज्यादा जागरूक (अज्ञेय से भी ज्यादा) सिद्ध करती है। इस रुचिगत निजता के कारण ही शमशेर एक साथ ही प्रतीकवादी, बिंबवादी, अतियथार्थवादी तथा अंतश्चेतना के मुक्त प्रवाह के प्रयोक्ता सभी कुछ है। "'शमशेर प्रतीकवादियो के अधिक निकट है'................ प्रतीकवादियों के समान ही वे विषय विषयी, अन्तबवार्ह्य का विभेद नहीं करते। शमशेर का काव्य शिल्प बहुत कुछ फ्रांस के प्रतीकवादियों के समान लगता है। शमशेर जब अपनी अस्पटता में दूसरे से विशिष्ट दिखायी देते है तब वस्तुतः वे प्रतीक शैली के विश्रंखल और ध्वन्यात्मक विम्बों का आश्रय ग्रहण करते है।" [१]

शमशेर की कविताओं को समझने के लिए विश्लेषण अपेक्षित हो सकता है, विशेषण नहीं। वे आदि से अंत तक कविताएं हैं और शमशेर कवि। निराला के प्रति कविता में जैसे शमशेर ने निराला के लिये महाकवि का प्रयोग किया है। वैसी ही निष्ठा स्वयं शमशेर के लिये 'कवि' संबोधन हो सकता है। जीवन के कटुतम संघर्षों को लेकर उन्हें कविता में एकदम तरल बना सकना, शमशेर के रचना व्यक्तित्व की पहचान है, और इस रचना क्षमता का बराबर प्रदर्शन कवि का चरित्र। तभी यह संभव हुआ है कि उन्होंने भ्रम और यथार्थ का अंतर मिटाकर एक ऐसा रचना लोक खड़ा किया है जिसे बोलियों में 'भरम' की संज्ञा दी गई है। जो जितना भ्रम है उतना ही यथार्थ भी। इसी संदर्भ में अपने और मुक्तिबोध के काव्य व्यक्तित्व के अंतर को स्पष्ट

---

१ – डा. रघुवंश

करते हुए शमशेर ने 'चांद का मुंह टेढा है' संकलन के आमुख में लिखा '' गजानन माधव मुक्तिबोध मुझे खास तौर से शायद इसलिए ज्यादा अपील करता है कि वह मझसे कितना भिन्न है। एबस्ट्रैक्ट नहीं, ठोस।''[1]

वस्तु और भावना के अनुरूप भाषा की खोज और प्रयोग करने में शमशेर अपने समानधर्माओं में परम विशिष्ट हैं और इसीलिए सम्भावतः उनकी काव्य भाषा का विन्यास भी इतना विलक्षण है कि रचनाभिप्राय प्रायः पाठक की पकड़ के बाहर रहता हैं। नामवर सिह के शब्दों शमशेर वाक्य नहीं, प्रायः शब्द लिखते हैं। वे ग्राफ पेपर पर जैसे बिन्दु निश्चित करते हैं, जिन्हें रेखाओं से मिलाने का काम पाठक करता है। जैसे *गाएं मैली सफेद काली भूरि/पत्थर लुढक पडे स्थित नीरव/ दो पहाड़ियां धूम विनिर्मित पावन* । इसका कारण सम्भवतः यह है कि शमशेर को शब्दों की फिजूलखर्ची नापसंद है।

भाषा को लेकर उनका निजी मत है कि "दो–चार अलग–अलग मिजाज की और उनकी अलग–अलग तरह की रंगीनियों और गहराइयो की जानकारी हमें जितनी ही ज्यादा होगी उतना ही हम फैले हुए जीवन और उसकी झलकाने वाली कला के अन्दर सौन्दर्य की पहचान और सौंदर्य की असली कविता की जानकारी बढा सकेंगे।''[2] शमशेर का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण यह है कि वह काव्य भाषा को मात्र एक काव्योपकरण के रूप में स्वीकार न कर, उसे जीवन और उसके सौन्दर्य की सही पहचान की सार्थक व्याख्या का माध्यम मानते हैं। और जहां तक शैली का प्रश्न है, अपनी कविता पर वे निराला और पंत की छायावादी शैली के अतिरिक्त उर्दू की लय और बेखास्तगी तथा स्वर्गीय विसराम, भिखारी ठाकुर और खेमसिंह नागर की लोकशैली का न्यूनाधिक प्रभाव भी स्वीकार करते है।

शमशेर बोलियों की शक्ति को पहचानते हैं। उनकी कविता में इनका असर कही कही आंचलिक हैं। उनकी कविता में इनका असर किन्ही आंचलिक शब्दों के प्रति मोह के रूप में नहीं आता, जैसा कि त्रिलोचन में आता है। शमशेर एक बोली पर त्रिलोचन के अधिकार और उनके अनूठे अर्थ देने वाले शब्दों के साहित्यिक प्रयोग के घोर प्रशंसक रहे है, पर साथ ही उनमें भाषा के लेकर एक सूक्ष्म विवेक निरन्तर चलता रहा हैं । जहां त्रिलोचन के लिए भाषा सब कुछ ,सब कुछ ,सब कुछ, हो जाती है और वह जो कुछ देखते है वह 'ध्वनि रूप' हो जाता है और अपनी सीमा में अधिकाधिक भाषाओं का 'ज्ञान' प्राप्त करते हुए वह 'भाषाओं के अगम समुद्रों का आवगाहन' करने लगते हैं, तो वहीं शमशेर यह तो मानते हैं कि *'शब्द का परिष्कार/स्वयं दिशा है। वही मेरी आत्मा हो, पर सिर्फ आधी दूर तक।* साहित्यिक भाषा में बोली की क्या भूमिका है। इसकी गहरी समझ उनमें है। इसमें किन्हीं आंचलिक शब्दों का होना कतई जरूरी नहीं यह तो दूरारुढ़ और भव्य शब्दों के

---

१. शमशेर–चांद का मुख टेंढा है – आमुख
२. शमशेर–दूसरा सप्तक

प्रयोग का ही एक रूप है, जिसमें संस्कृत शब्दों का स्थान बोली का शब्द ले लेता है। उन्हें देशज ही नहीं, ज्ञात भाषाओं में किसी भी ऐसे शब्द से परहेज नहीं जिससे कोई ऐसा आशय प्रकट होता हो जो किसी दूसरी तरह सम्भव न हो। जोलाई, अंगनारे, कर्नल, ऐब्सेट्रक्ट, स्टैचू, यूनियन, सिंफोनिक, ठैरे, आदि शब्द उनकी भाषा में इस तरह रचकर आते है कि वे भाषा का बेहद जरूरी हिस्सा मालूम होते हैं। इसका कारण यही है कि ये इतने विरल होकर आते है कि इनका बोझ महसूस नहीं होता।

खड़ी बोली तरसम शब्दों का ही नही तद्भव शब्दों के भी मानक रूपों का ही प्रयोग कविता में करती है। पूर्ववर्ती कवि तुक और मात्रा आदि के लिए उनमें कुछ तोड–मरोड कर लिया करते थे। उर्दू और बोलियां इस अधिकार का निःसंकोच प्रयोग करती हैं । उर्दू के तो शब्द भण्डार का ही एक हिस्सा ऐसा है जिसे आसमन/आसमां, जहर/ जद नसल/नस्ल, दो रूपों मे पढा जा सकता है, साथ ही अर्धस्वर या या हृस्व का प्रयोग दीर्घ स्वर के लिये (एक यह/इक वह/वो/वह) का प्रयोग करने की परम्परा वहां है। वह हिन्दी और अरबी दोनों के संबध कारकों का भी प्रयोग करती है (दिल का हाल/हाले–दिल)। इससे कविता में संगीतात्मकता और खानगी के लिए जो विकल्प मिलते हैं, उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। बोलियों में तो ध्वनि–नियमों का उपहास करते हुए एक ही शब्द के एक से अधिक उच्चारण सम्म्सव है। उनमे स्टेशन/टीशन/टेशन/इस्टेशन कुछ भी हो सकता है। जो लोग समझतें है कि ध्वनि परिवर्तन ऐतिहासिक विकास या भौगोलिक परिवर्तन के परिणाम हैं वे सम्भवतः इस समस्या को अधिक सरल बनाकर देखते है।

शमशेर के लिए इस तरह के विकल्प मध्यकालीन कवियों की तरह ही खुले रहे है। नाटकीय अर्थभंगी, तुक या वजन के लिए वे उन सभी का प्रयोग करते हैं और ये प्रयोग वह इस तरह करते हैं कि इनसे उनकी अर्थगर्भिता, नाटकीयता और प्रभाव बढ ज्राता है।

शमशेर की कविता अपनी साधारणता के कारण ही अनूठी उक्तियों से भरी हुई है। *एक –जनता का । दु:ख एक/ हवा में उड़ती पताकाएं अनेक। " बेकस की हंसी है मेरा जीना शमशेर, " " सोना ही –सा है, जागना भी मेरा"* । इन पंक्तियो की शक्ति है इनकी व्यंजना या ध्वनि जिसे काव्य की आत्मा कहा गया है पर यदि बोलियों की अच्छी समझ हो तो हम कहेंगे यह कवियों द्वारा आविष्कार की हुई चीज नहीं, अपितु बोलियों से ग्रहण की हुई विशेषता है, यही उनका प्राण है। यह हमें स्वीकार करना होगा कि हिन्दी की तुलना में उर्दू ने इसका अधिक प्रयोग किया है पर उस मात्रा में उसने भी नही किया है, जिसमें यह लोगों के व्यवहार में प्रयोग आता है। रीति और भक्ति काव्य में इसका खुलकर उपयोग हुआ है। हिन्दी कवियों में इसका उर्दू कवियों से भी अधिक बारीकी से, यद्यपि उतनी बहुलता से नहीं, जितनी बहुलता से शमशेर ने इसका प्रयोग किया है।

समकालीन हिन्दी कविता के प्रगतिशील कवियों ने सृजन प्रक्रिया के अंतर्गत क्रियाशील शब्दों को बखूबी साधा है। यही कारण है कि वे आज भी हिन्दी काव्य सृजन के केन्द्र में है। इस कविता में अनुभव की उपस्थिति में बहुसंख्यक समाज का वह ताप है जिनके सुखी और सम्पन्न होने का सपना नागार्जुन ने देखा, जिसे प्राप्त करने के लिए वह आजीवन वचनबद्ध रहे और जिसके लिए नागार्जुन और त्रिलोचन जैसे सृजन कर्मियों ने सिर्फ अपनी वाणी ही नहीं अपना हृदय भी इनके साथ एकाकार कर दिया। इन कवियों ने अपने परिवेश और प्रकृति से गहन रागात्मक संबंध स्थापित किया। फलतः कवियों की भाषा व्यापक और मार्मिक यथार्थ व्यक्त करती है। ये कवि स्वाभाविक एवं सहज भाषा में प्रकृति एवं जीवन यथार्थ के विविध चित्र प्रस्तुत करते हैं। स्पष्ट है, इन कवियों की भाषा संघर्ष एवं सृजन की भाषा है, जिजीविषा और आस्था की भाषा है–

बाढ़ में /आंखों के आंसू बहा करेंगे

किन्तु जल थिरने पर /कमल भी खिलेंगे। (त्रिलोचन)

या *बहुत दिनों के बाद/अबकी में जी भर छू पाया*

अपनी गंवई पगडंडी की चंदनपणी धूल/ बहुत दिनों के बाद/ (नागार्जुन,

नागार्जुन जिदगी भर जिस 'गंवई पगडंडी' पर चलते रहे क्यों कि उन्हें इसकी धूल इसकी पवित्रता मे अगाध और अखण्ड विश्वास था। यही अखण्ड विश्वास उनकी भाषा की निर्मिति में भी हैं। संस्कृत भाषा की लोकलुभावनी और शिष्ट संस्कारों को पढने और गहन अध्ययन के बाद भी, उनमें आम गंवई के लिए अगाध प्यार था जो उनकी भाषा मे भी उभरा।

शत शत निर्मर निर्झरणी कल

मुखरित देवदास कनन में

शोणित धवल भोज पत्रों से

छाई हुई कुरी के भीतर

मृगछालों पर पलथी मारे

मदिरारूण आंखों वाले उन उन्मद किन्नर–किन्नरियों का

मृदुल मनोरम अंगुलियों के

वंशी पर फिरते देखा"

दूसरी ओर वह –

" धूप में पसरकर लेटी है

अधेड़ मादा सूअर

यह भी तो यादरे हिन्द की बेटी है

भरे पूरे बारह थनों करती

यह भी लिखते हैं । यानी भाषा का एक पूरा परिदृश्य जहां सभी कुछ, सारे विषय, सारा रचनाकर्म सिमट आया है। इसीलिए वे अपनी अभिव्यक्ति को घोर अघोरी कहते हैं, जिसमें आर्शीवाद है तो अभिशाप और गाली भी। ठेंठ बोलियों के छिनाल, रखैल, चुडैल जैसे भदेस शब्द भी और शब्दो का सांस्कृतिक प्रयोग है तो ठेठ बोलियो के छिनाल, रखैल, चुडैल जैसे भदेस शब्द भी। इसलिए नागार्जुन में भाषा की कोई हदबंदी नहीं दिखायी जा सकती। सिर्फ उसकी चहलकदमी का जायजा लिया जा सकता है। वैदिक ऋचाओं से शुरू होकर लौकिक संस्कृत से होती हुयी उनकी कविता खडी बोली के ठाठ और हिन्दी प्रदेशों की गंवई अभिव्यक्तियों तक को समेटे हुए है। उनकी कविता अद्भुत संग्रहकारी है, जिसमें अंगरेजी , बंगला, मैथिली , अवधी, भोजपुरी का धडल्ले से उपयोग किया गया है। उनकी एक कविता है जिसकी शुरूआत ही बंगला की पंक्तियों से होती है ' *धाकचो खो फोन एइ जे गांधी महाता*। एक कविता का शीर्षक अंग्रेजी में है' *प्लीज एक्सक्यूज मी।* " अंग्रेजी और बगला के अलावा उनकी कविता में उर्दू शैली की झलक भी खूब मिलती है–

हमसफीर को सलाम, हमसफर को सलाम
सूबा–ए–बिहार के जौहर को सलाम।"

स्पष्ट भाषा के संदर्भ में नागार्जुन का दृष्टिकोण सर्वग्राही है। " केवल 'उदार' कहकर हम उसकी सही परिचय नहीं दे सकते। सच्चे जन कवि की यह पहली पहचान है कि वह भाषा के किस स्वरूप को ग्रहण करता है। क्या वह अपनी कविता को चंद बुद्धिजीवियों की रखैल के रूप में पाल पोस रहा है या उसकी संरचना लोकहित में कर रहा है। नागार्जुन का दृष्टिकोण लोकहितकारी है। तुलसीदास की तरह उनकी कविता में भी लोक के मंगल के ख्याल से लिखी गयी है, लोकमंगल के लिये नहीं, कि आप जनता के भविष्य के प्रति सिर्फ शुभकामनायें प्रकट करते रहें। लोकहित के लिए संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता के लिये निकट अखाडे में उतरना भी पडता है। सिर्फ जबान हिलाने से काम नहीं चलता। इसीलिए कविता यहां सिर्फ जबान नहीं हिलाती। वह ललकरती है और बाज की तरह अपने शिकार पर टूट भी पड़ती है। "[1]

नकली क्षोभ और रोष की दुनिया में वह ईमान और सच्वाई के बेमिसाल उदाहरण हैं। क्यों कि नागार्जुन जन जीवन से न केवल जुड़े हुए हैं, बल्कि इसके प्रति उनके मन में गहरी करुणा और स्नेह है। वे शब्द चुनते नहीं जनता की बोलचाल को कविता में सीधे उठा लाते है–

चंदू मैने सपा देखा, इम्तिहान में बैठे हो तुम
चंदू मैने सपना देखा, पुलिस मान में बैठे हो तुम

---

१ – विजय बहादुर सिंह – नागार्जुन का रचना संसार– पृष्ठ ६१

चंदू मैने सपना देख, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा

चंदू मैने सपना देखा, ममुआ से हूं पटना लौटा।"

काव्य–भाषा के इस अनेकरूपी संसार में– जहां व्याकरण और शास्त्र की मयार्दायें भी खूब हैं वहीं शब्द की अराजकता भी है। यहां शब्द जितने बहुरंगी हैं वाक्य उतने ही खुले–खुले । *धान फूटती किशोरियों की कोकिलकंठी तान / देखिये न, आखिर तक रोकती रही हैं। मगर इन पर तो भूत हो गया सवार। लेकर कर्ज, बनवाया है मकान।* कहीं वाक्य एकदम संक्षिप्त और सारगर्भित–

क्या खूब!

क्या खूब!

या

कर लाई सिक्योर विज्ञापन के आर्डर।

असल में नागार्जुन शब्दों और वाक्यों की सादगी किन्तु अर्थ की गम्भीरता और मार्मिकता के कवि है। उनके सीधे साधे पदों में भी कितनी वचन भंगिया और भाव गूढ़ता है, इसे उनके व्यंग्य काव्य को देख के ही पहचाना का सकता हैं। *सीधे सादे शब्द हैं भाव बड़े गूढ़* कहकर, नागाबाबा संतई वाले अंदाज में जिन निरन्त मूंढों को सचेत कर रहे हैं, वे बडे भोले–भाले किस्म के लोग हैं। कविता–वविता नही जानते। इसलिए 'कविताई' दिखाने की जरूरत आज उतनी नहीं है जितनी की लोककंठ के गूंगेपन को मुरता में परिणत करने की।"[1]

शब्दों की सादगी के नाम पर जो लोग विचारहीन मुद्रा में यहां आयेंगे उन्हें काफी अजनबीपन मिलेगा। क्यों कि यहां कागज भर नहीं गोदा जा रहा है, अनुभव की वह धरती गोंडी जा रही है, जो अब तक हिन्दी कविता में प्रवेश नहीं पा सकती थी। इसे वे लोग ही समझ पायेंगे जिनका लोक मन जिन्दा है। सिर्फ शास्त्रीयता के सहारे नागार्जुन को समझ पाना दुष्कर ही नहीं असम्भव भी है। सहज संप्रेषण उन्हीं के साथ जमेगा जो लोक अनुभव कोश के पन्ने उलट चुके हों या जिनकी चिन्ता लोक की रहनी सहनी से जुड़ी हुई है। जो सिर्फ कविता पढने के ख्याल से आयेगे वे यहां निराश ही होंगे।

नागार्जुन की काव्य भाषा के इस बीहड़ विशाल किन्तु जाने पहचाने जंगल में अद्‌भुत नाटकीयता, संगीतमयता, ध्वनि–रमणीयता और चित्रात्मकता है। काव्य भाषा की समस्त शक्तियां अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा के साथ यहां उपस्थित हैं। अक्सर आरोप लगाया जाता है कि नागार्जुन सारे प्रगतिशीलों में सबसे अधिक गद्यात्मक और लापरवाह हैं। किसी शब्द को कहीं भी फिट कर देते है। संयोग और निपुणता, योग्यता और

---

१. विजय बहादुर सिंह – नागर्जुन का रचना–संसार– पृष्ठ ६२

संगीत का ख्याल किये बिना ही वे भाषा के नमक, हींग को मिलाकर आटे की तरह गूथने लगते हैं। और यह सच भी है। पर यह पूछा ज सकता है कि भाषा का मुख्य प्रयोजन रूप की शेखी बघारना है या उसका धर्म है कवि के अन्तस्थ भावों का संप्रेषण । हमारे इसी युग के कवियों ने घोषणा की है कि पुराने प्रतीकों के देवता कूच कर चुके हैं । इसी युग का कवि सपाट बयानी पर उतर आया है। यह क्यों ? क्या यह युग की मांग नहीं है कि हम तथाकथित अभिजात निर्जीवता के छद्‌म संप्रेषणों से बचें और अपनी अभिव्यक्ति की मौलिक आविष्कृतियों की मार्यादाएं स्थापित करें। हमारी जिन्दगी में चीजें जितनी गड्डमड्ड है, उनका बयान भर करके संतुष्ट हो जाना आज का कवि कर्म नहीं है। उन्हें सिलसिला देना उनके पीछे छिपे हुए तर्कों की खोज करना भी आज के कवि का दायित्व है। नागार्जुन को पढते हुए यह अनुभव हमें बार–बार होता है कि हम अपने समय की कविताओं को अपनी ही भाषाओं में पढ रहे हैं। हमारे अनुभव अभी हमारी भाषा की पकड़ में है। इसके लिये किसी अनुदित जुबान की मुंह ताकने की जरूरत हमें नहीं है। परिवेश का सम्पूर्ण राजनीतिक चेहरा तो इसमें दीख ही सकता है। इस रोशनी में उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक मनौवैज्ञानिक, अर्थशास्त्रीय , नैतिक और आधिभौतिक छाप भी खोली जा सकती है।

समकालीन कविता के पूरे परिदृश्य में शमशेर नागार्जुन और त्रिलोचन की उपस्थिति बेहद उत्तेजना पूर्ण है। यह इसलिए है कि इसका बोध हमारे विचार को रचनात्मक संदर्भ देने में हुआ है। और साथ ही यथार्थ से सीधी टकराहट से उत्पन्न पीडा और आक्रोश को वे व्यक्त कहते हुये, जीवन को बेहद नजदीक से जाकर देखने का वो औजार वह मुहैया कराते हैं, जो बहुत मुक्किमल है। इसीलिए इनकी कविताओंमें यदि संवेदनात्मक मनोदशायें है तो वैचारिक द्वन्द्व भी अपनी पूरी शिद्दत से वहां है। यथार्थ एक ऐसा प्रत्यय है जो विविधआयामी है, जिसमे इतिहास, व्यवस्था तथा उसकी विसंगतियों की एक द्वन्द्वात्मक स्थिति रहती है। इन सभी के चित्र इन कवियो में प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है इनकी भाषा, इनकी संवेदनात्मक अवधारणाओं को प्रस्तुत करने में लगातार समर्थ हैं। यही कारण है कि लगाता बदलते परिवेश को साक्ष्य देती इन कविताओं की भाषा के तेवर भी अलग–अलग हैं। इनकी कविताओं की भिन्नता की तरह ही, इनकी भाषाओं का वैशिष्ट्य इनकी आइडेन्टीटी को चिन्हित करता है।

असल मे आज के समय में बदलाव की प्रक्रिया बड़ी तेजी के साथ घटित हो रही हैं। यह समय भारतीय जनता के लिए अत्यंत ही मुश्किलों और शासन वर्ग की क्रूरताओं से भरा है। हमारी मुश्किलें और भी इसलिए बढ गयी हैं क्यों कि इस दौर में जन जीवन से कटे मध्य वर्गीय बुद्धिजीवियों की एक ऐसी पीढी है जिनमें जन जीवन से जुड़ने की न तो ललक है और न ही आकांक्षा। उनमें भी कुछ के पास बनी बनायी उधार ली हुयी एक आस्था अगर है भी, तो इस आस्था के अनुरूप चलाये जाने वाले संघर्षों के खतरे से बचने की कोशिशें भी इनके पास हैं। यह निर्मम वास्तविकताओं से मुंह छुपाना भी कहा जायेगा। इन कवियों का रचना कर्म इसीलिए महत्वपूर्ण हैं कि वे इसकी तामीर पहले से कर रहे हैं – यह बताते हुये कि जीवन मे जीवन की सारी चीजें महत्वपूर्ण हैं; सांस की तरह – शायद संघर्ष भी। इसलिए लोहा लेने से पहले लोहा होना ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।

उपसंहार

उपसंहार

कविता अपनी समावेशिता से स्वतंत्रता को चरितार्थ करती है। कविता में दूसरों के लिए जगह है और वह सरलीकरण करने से इन्कार करती है। वह मनुष्य की स्थिति का सार संक्षेप करने से बचती है। बल्कि वह सारे अन्तर्विरोधों का बेहिचक सामना करती है। वह अपने बौद्धिक संयम से उनसे मुठभेड कर पाती है और अपनी सच्ची सघन गहराई में उनकी जटिलता का अन्वेषण करती है। "कविता की बुनियादी शालीनता यह है कि वह उन्हें मुक्त करती है जो ऐसी मुक्ति की आकांक्षा करते हैं। कवि होना ही स्वतंत्रता का अग्रदूत होना है: यह अपने को भाषा की मुक्तिदायी शक्ति से लैस करना है। कविता हमारे लिए एक स्पेस खोजती है, दीप्त और धडकता हुआ, स्वतंत्रता के लिए, समय और इतिहास के पार, पर स्वप्नलोक नहीं, हमारे पडोस में ही। स्पेस, हमारे बीचों–बीच, शोरोगुल और शिद्दत से भरी दुनिया में ही। कविता हमें पनुराश्वस्त करती है कि स्वतंत्रता संभव है, कि वह हमारे बस में है और कि विपरीत शक्तियाँ कितनी ही क्रूर और अपशकुनकारी क्यो न हों, स्वतंत्रता को नष्ट नहीं किया जा सकता।"[1]

कविता ने किसी भी युग में अपने को व्यक्तिगत यथार्थ तक बांधकर नहीं रखा, कलावाद और कठमुल्लापन से लोहा लेकर हर युग में इसने व्यक्ति से समाज और समाज से विश्व तक अपना सरोकार विस्तृत किया। व्यक्ति और विश्व के बीच अंतर्क्रिया के सबसे अधिक प्रभावी कला–माध्यम के रूप में वह आज से नहीं,अपने जन्म से जानी जाती है। यह अलग बात है कि जादू, धर्म, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के रास्तों से सामाज के ऐतिहासिक विकास के क्रम में कविता का विश्व से और विश्व का कविता से अंतक्रिया का स्वरूप हमेशा बदलता रहा है।

आज भी पहले की तरह दो ही मुख्य समस्याएं है– भूख और युद्ध। इनसे समकालीन विश्वदृष्टि की इस जटिलता की पृष्ठभूतिम में टकराना है कि भूख को विकास के तथा युद्ध को शांति के छद्म नारे दीर्घजीवी बना रहे हैं। जब तक दुनिया में भूख है, युद्ध भी रहेगा, क्योंकि यह एक ही अबौद्धिक्ता के दो चरम रूप हैं। दोनों कृत्रिम राजनैतिक रूप हैं। जितना यह सच है कि आठवे दशक में विकसित और तथकथित विकासशील देशों के बीच अंतर बढ़ा है– दुनिया के करीब एक अरब लोग गरीबी रेखा से नीचे हैं, उतना ही यह भी सच है कि भीषण संहारक हथियारों की दुकाने अब पहले से ज्यादा बडे स्तर पर चल रही हैं। इस तरह की आततायी और भयानक अमानवीय व्यवस्थाओं के प्रति ये कवि बहुत संवेदनशील हैं। इसीलिय नागार्जुन अपनी कविता बडी मछली .... छोटी मछली में इसे बड़े तीखेपन से उघाड़ते हैं। कवि के

---

१. अशोक वाजपेयी – पूर्वग्रह – अंक ८७, जुलाई अगस्त १९८८ – पृ० ५

लिए विश्वदृटि का अनुभव कविता के चरित्र के बाहर नहीं, इसके भीतर है। नागार्जुन ने वियतनाम गुरिल्लों की राजनैतिक लाइन से भावना ग्रहणकर कविता के चरित्र मे अपनी प्रतिरोध चेतना उपस्थिति की है, *"हजार हजार बांहों वाली"* की प्रथम कविता में ।यहां अत्याचार की सहनशीलता के मिथक टूटते हैं और प्रतिरोध की चेतना अपने ऐतिहासिक सार के साथ प्रकट होती है। इन कवियों की विश्वदृष्टि का मूल आधार *"दुनिया के मेहनतकश वर्गो के नेतृत्व में धरती पर इन्किलाब"* है। इसीलिय शमशेर ने *"सफेद अरोरा"* में अपनी विश्वदृष्टि का परवर्ती उदात्तीकरण इसी विंदु पर किया–

यह पावन धरती है

तमाम इमारतें इतिहास हैं

सांस–सा रोके हुए

यह रिमझिम एक खामोश

प्रार्थना है

यह धरती इन्कालाबियों की मां है

जो हमें प्यार से तक रही है

प्यार सजग और मौन

एक आशीर्वाद की तरह

इस प्रकार एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण के साथ इन कवियों ने एक वृहत्तर फलक पर कविता को देखा जहॉ सीमायें नहीं, मनुष्य महत्वपूर्ण है। लेकिन वे अपनी जडों से कटे हुये नहीं हैं। यही कारण है कि ये कवि अपने काव्य–संसार में व्यक्तिगत एवं सामाजिकता के बीच कोई विभाजन नहीं करते। कई बार ऐसा लगता है कि शमशेर का निजत्व उनके सामाजिक सरोकारो से ज्यादा बड़ा है। लेकिन होता यह है कि उनकी सौंदर्यानुभूति का उभार कॅास्मिक हो जाता है। दूसरी ओर जान पड़ता है कि नागार्जुन में निजत्व के लिये "स्पेस" नहीं, लेकिन ऐसा है नहीं । दामपत्य प्रेम में पगी, प्रकृति के दृश्यबधों को निहारती तमाम ऐसी भावपरक कवितायें हैं, जहां कवि की कामनाओं का भरापूरा संसार हैं। दरअसल वह लगातार अपनी विजययात्रा को भारतीय–मानस की यात्रा में बदलते रहते हैं। जो कुछ कवि का निजी अनुभव का मूल रिक्त था वह गहरी सामाजिक व्याप्ति हासिल कर लेता था।

शमशेर की कविताओं में एकांतभाव ज्यादा है। यहां यर्थाथ भी कला के सम्मोहन से नहीं बच पायी है। स्पष्ट है कि शमशेर के यहां सृजन का मूल उत्स सौंदर्य और प्रेम से ही उपजता है, जो उनके मानवीयता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का द्योतक है। शमशेर की कविताओं में प्रेम सौंदर्य और मानवीय समृद्धि के एक से बढ़कर दुर्लभ दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। यहां शब्द, अक्षर, भाषा – आस्था की एकत्र परिणति हुई है। उनकी

कविताओं का वातावरण और परिवेश कवि का अंतरंग और आत्मीय है किन्तु काव्यगत चिन्ता अनिवार्यतः और आत्यन्तिक रूप से मानवीय और विश्वजनीन है। शब्द संस्कार परिमार्जित है फलतः रंगारंग विविधता की रचनात्मक समृद्धि उनके यहां विद्यमान है । शब्द योजना का उनका ऐहिक ढंग है, जिसके अन्तर्गत उजाले की तरह शब्द सुबह–सुबह दरवाजे पर दस्तक का संदेह उत्पन्न करते हैं।

अपनी रूढिबद्धता के चलते ही शमशेर की कविताओं को लोगों ने खाँचाबद्ध करके देखने की कोशिश की है और रचना विधान के समग्र मून्यांकन के मूलभूत समालोचकीय आधार की अनदेखी की है। जहां तक उनकी आत्मपरक और प्रतिबद्ध रचनाओं के बीच एक सम्बन्ध या तनाव की खोज का सवाल है,उसकी तो शायद शुरूआत भी नहीं की गयी है। सौन्दर्य के पारखियों ने उनकी प्रतिबद्ध कविताओं को हाशिये पर मानकर कृपालु ढंग से उन्हें सिर्फ बरदाश्त किया और कांतिधर्मियों ने उनके सौन्दर्य को इताना संदिग्ध समझा कि उनकी खुल्मखुल्ला प्रतिबद्ध रचनाओं को भी स्वीकार करने में उन्हें खतरा नजर आया। शमशेर की,व्यापक अर्थो में सामाजिक,और संकुचित अर्थों में राजनीतिक कविताओं के बारे में मुक्तिबोध की यह टिप्पणी बिल्कुल सटीक है कि शमशेर जैसा अलग ढंग का कवि जब सामाजिक और विश्वबन्धुत्व की कवितायें लिखता है,तब उन कविताओं में भी इतना बेजोड हो जाता है,जितना प्रतिबद्धता के उस क्षेत्र में मूलरूप से काम करने वाले कवि नहीं हो सकते। इसीलिये वह शान्ति पर लिखी शमशेर की कविता को कालजयी कृति का दरजा दे देते हैं। शमशेर जैसे अलग मिजाज वाला कवि प्रतिबद्ध कविता को एक नये रूप में अन्जाम़ देता है । यह मानना, समाजोन्मुख कविता के नये सौन्दर्य शास्त्र को जांचने और व्याख्यायित करने चुनौतियों की ओर सिर्फ पहला कदम है। शमशेर ने किसी विषय पर कवितायें नहीं लिखी। उन्होंने कविता में सिर्फ कवितायें लिखी है। इसका गवाह सौन्दर्य के वे तत्व हैं जो पल छिन अवतार लेते हुये, इस पृथ्वी को बचाये हुए हैं।

शमशेर की कविता का सौन्दर्य पकड़ में आते जाते रह जाता है–यह कवि में होकर भी उससे परे है। भाषा में रचा होकर भी भाषा को मिटाता है। आलोचक के लिये वह पारे की बूंद सरीखा है– सामने झलकता हुआ भी,पकडते ही बिखर जाये, ऐसा । सच कहें तो पाठक का भी ध्यान कवि के प्रयास पर अधिक जाता है और कविता के सौन्दर्य पर कम। या कभी–कभी नहीं जा पाता। वह घबराकर पीछे लौट जाता है । कविता का सौन्दर्य, प्रयास की इस विभूति के नीचे दबा रह जाता है । सौन्दर्य के इस धूप छांही आभा से ही शमशेर का सौन्दर्य विनिर्मित होता है। स्पष्ट है उनके यहां अनुभूति मुख्य है। और उससे भी ज्यादा उसे व्यक्त करने की बेचैनी। त्रिलोचन औसत भारतीय आदमी के चितेरे हैं। वे मानव–अनुभूतियों की विशिष्टता के नहीं, मानव–अनुभूतियों की मार्मिकता के कवि हैं। वे अनुभूति की जटिलता को नहीं,उसकी सम्पन्नता को पकड़ते और अपनी कला में साधते हैं। वे मानव–मर्म के किसी नये स्तर का उदघाटन नहीं करते, वरन जीवन–जगत की आपाधापी में, जो सहज मानव–सत्य आंख की ओट हो गये है, उन्हें एक नयी और विश्वसनीय पहचान के

साथ हमारे सामने लाते हैं। उनकी काव्य अनुभूतियों सरल हैं (सपाट नही)। त्रिलोचन की कला सेल्फ–कांशस कला है। उससे संशय अथवा द्विविधा की दरार नहीं पडी है। वह जिस वस्तु को उठाती है, मुजस्सिम उठाती है। त्रिलोचन का काव्य–स्वर चेतना के अन्तर्विरोधों से कंपकंपाता हुआ निश्चय और अनिश्चय के बीच झूलता, डगमग स्वर नहीं है। रचनात्मक तनाव में इस काव्य स्वर के पीछे, कार्यरत सांस बहुत दूर तक खिची रह सकती है। उसके बीच मे ही टूट कर खंडित हो जाने का अंदेशा नही रहता । यह एक साथ कवि की स्नायुविक उर्जा और उसके काव्य–संयमों, दोनों को ही उजागर करता है। कवि का अपने ऊपर अद्‌भुत नियंत्रण है,उसकी रचनात्मक ऊर्जा अभिव्यक्ति के चौखटे को तोडकर,मुक्त नही बहने पाती । इसीलिये त्रिलोचन को पढते समय एक कसाव का अनुभव होता है। कहीं–कहीं यह कसाव बहुत अखरता भी है। त्रिलोचन का क्लासिक की हद तक छूने वाला काव्य–संयम अक्सर हमारा ध्यान उनकी संप्रेष्य अनुभूति से हटाकर, उनके शिल्प की तराश और चुस्ती पर ज्यादा केन्द्रित कर देता है। हम उनकी कविता के रूप–बंध की चातुरी पर मुग्ध होने लगती है। ऐसा शायद अनुभूति के ताप में कमी रह जाने–या अनूभूति को कम ताप वाले स्तर से उठाने–के कारण होता है। अनुभूति त्रिलोचन के यहां वैसे भी पिच पर नही होती । यह उनकी कविता की क्लासिक स्वभाव के विपरीत पडता है। त्रिलोचन अनुभूति का पका हुआ रूप रखते हैं, शान्त और ओजपूर्ण, जिसकी सह–अनुभूति, क्षुब्ध संवंगो के घात–प्रतिघात के स्तर पर नही, विवेक युक्त अन्तदृष्टि के स्तर पर की जा सकती है । त्रिलोचन की कविता इसीलिये एक सह्रदय एवं परिपक्व मानसिकता की मांग करती है। इस कविता को भागते हुये तीव्र ऐहसासों के क्षण में पकड पाना मुश्किल, बल्कि, दुस्साध्य है। इसे पकडने के लिये थोडा इतमेनान वाला भाव लाना होगा, जिसमें आप इसके अन्तरंग सौष्ठव का, उसकी बनावट की एक–एक सजीव पत्ती का, आनन्द ले सकें।

हिन्दी में शायद त्रिलोचन ही एक मात्र ऐसे कवि हैं, जिन्होने अपने को लोक–जीवन से पूरी तरह जोड लिया है,सौन्दर्य की एक अन्तःगरिमा के साथ। सृजन के एक आह्‌दकारी अनुभव के साथ, रचना को एक बराबर की साझेदारी के साथ। त्रिलोचन के लिये रचना किसी तनाव से मुक्त होने में नहीं, बल्कि, जीवन का कुछ खोजने, पाने और फिर उसे बांट देने में होती है। इसीलिये उनकी कविता की रचना–प्रक्रिया का कोई रहस्यमय पक्ष नहीं है । कविता त्रिलोचन के लिये एक ऐसा आइना है, जिसमें वे अपनी और दूसरों की अनुभूतियों के मर्म को, सजीव थिरकते हुये रूपों मे दिखा सकें । और उसमें उनकी कलाकारिता बस, इतना है कि, वह उस आइने पर जरा भी धूल धब्बा न पड़ने दे। उसे झकाझक साफ पारदर्शी रखें।

रूप के प्रति इतने सजग शायद शमशेर ही हैं जो उर्दू मिजाज के कवि है। उनमें सौन्दर्य का वस्तु सत्य नहीं, भाव सत्य है। शमशेर, त्रिलोचन और नागार्जुन की तरह बाहर के कवि नहीं है। नागार्जुन सबसे अलग जीवन के हर रंग के याथार्थ के रोमांटिक कवि हैं। उनके पास यदि व्यंग्य के नुकीले तीर हैं तो प्रेम के

कुसुम वाण भी। नागार्जुन की प्रेमानुभूति शमशेर से एकदम भिन्न है। शमशेर अपने भीतर प्रेम और सौन्दर्य की दिव्य झलक तलाशते है। उनकी कविता में यद्यपि नागार्जुन और त्रिलोचन की तरह किसान और मजदूर नहीं है–न ही उनकी भाषा है लेकिन इस व्यवस्था के प्रति एक विस्फ़ोटक तनाव है। यदि रूपक में कहूं तो नागार्जुन कल कल, छल छल बहती गंगा है तो शमशेर धीर ललित यमुना और त्रिलोचन अदृश्य सरस्वती के समान जीवनानुभूति की त्रिवेणी को पूर्ण करते है।

इन तीनों कवियों को वैचारिक संकल्पना मनुष्य कल्याण के वृहद बोध से संवलित है। नागार्जुन की राजनीति को देखने की प्रकिया की अगर जॉच की जाय तो साफ मालूम होता है कि उनकी व्यक्तिगत प्रतिकार की क्षमता एक बड़े प्रतिरोधात्मक आंदोलन की मेधा मे बदल जाती है। इन्दिरा गॉधी के साथ संवाद की सीमित प्रकृति अचानक एक बडे राजनीतिक फलक में बदल जाती है और वह उन्हें एक बडी राजनीतिक आततायी शक्ति के रूप में देख पाते हैं।

त्रिलोचन के यहॉ वैचारिकता के उन्मेष भी निजी स्तर पर व्यक्त हुये हैं। उनका अपने पडोस, गांव, देहात, मित्र, परिचित के साथ गहरा और व्यापक रिश्ता है। कई बार लगता है कि वह बहुत सीमित सम्बन्ध की परिधि मे ही है। लेकिन यदि उनकी कविताओं को ध्यान से देखा जाय तो ये कवितायें कई स्तर पर अनेक अर्थों को प्रस्तावित करती हैं। जो कुछ सीमित सम्बन्ध का काव्यात्मक विवरण था, वह एक बडी मनुष्यता की परानुभूति के प्रवक्ता के रूप मे सामने आती हैं। त्रिलोचन इतने सघन सम्बन्धों की कवितायें लिखते हैं कि कई बार ऐसा लगता है कि वह व्यक्ति बहुत जाना पहचाना सा है। उसे हमने कहीं देखा है। कुछ ऐसा ही स्वरूप नागार्जुन की कविताओं का भी हैं उनकी कवितायें दूर दूर तक फैले उत्तर भारतीय समाज के पता नहीं कहा कहॉ के चरित्रों के इर्द गिर्द बुनी गयी हैं। यह लोग उन्हें रास्ते में मिले हैं। नागार्जुन ने अपनी यायावरी के दौर में उन्हें देखा जाना है,उनसे बातचीत की है, उनके साथ सफर किया है या उनका आतिथ्य स्वीकार किया है। इस तरह से कोई एक आसंग या चरित्र नागार्जुन की अगाध मनुष्यता को पुर्नजाग्रत करता है। यह परानुभूति का बार–बार नवीकरण हैं। इसी तरह से शमशेर भी अपनी मनुष्यता को बार बार खोजते और पाते हैं। शमशेर के संदर्भ में मनुष्यता का पुनरावेषण का संदर्भ प्रेम से बिंधा हुआ हैं। वह आंतरिक दीप्ति को देखने के कायल हैं लेकिन उनके यहाँ आन्तरिकता में प्रवेश मनुष्य के बहुत संवेदनमय संसार की व्याप्ति का पुनराविष्कार बन जाता है। यानी जो कुछ व्यक्ति की स्वायत्त कामना से मूलतः निःसृत था, एक व्यापक सौन्दर्य का रूपक बन जाता है।

कहना चाहिये कि यह तीनों कवि एक बड़े विजन से संचालित हैं और इसीलिये उनकी एकांतिकता एक बेचैन परिवर्तनकामी रचनाकार की चिन्ता है। इसीलिये वहां निजत्व, लोक के साथ सम्पृक्त हो उठा है और लोक की विवृत्तियां और उसका प्रत्यय कवि के व्यक्तित्व को बहुआयामी बना देता है। यह एक वचन

और बहुवचन की अविभाज्यता है । इस बात को हिन्दी कविता के प्रेमी बहुत स्पष्ट रूप से जानते हैं कि तीनो कवियो ने अपनी कविता का वैचारिक आधार स्पष्ट रखा था और उन्हें अपनी वैचारिक प्रतिश्रुति को लेकर किसी तरह का कोई विभ्रम नही था। शमशेर में बहुत अमूर्त्तन है। उनकी कवितायें कई बार अस्पष्ट और चित्रकार शिल्प का समरूप जान पडती है। लेकिन शमशेर की मुख्य प्रतिज्ञा उस वामपंथी विचार के प्रति अडिग थी जिसने अग्रगामी परिवर्तनो के द्वारा दृष्टिकोणों को बदला । शमशेर की कविता वाम वाम वाम किसी को भले ही बहुत मुखर और नारेबाजी के करीब लगे लेकिन इस तरह वह अपनी अमूर्तता और कॉस्मिक विभ्रम की क्षति पूर्ति करना चाहते थे। शमशेर ने अज्ञेय का सम्मान किया लेकिन यह अपनी विचारधार से समझौता नहीं था, वरन किसी प्रतिभावान समकालीन से संवाद बनाये रखने की सहिष्णुता भर थी। नागार्जुन में यह सहिष्णुता नहीं रही । उन्होंने वैचारिक टकरावों के ध्रुवीकरण में अपनी उपस्थिति को कभी कयास का भोंपू नहीं बनने दिया। वह अपनी सहानुभूति में इतने स्पष्ट थे कि कई बार उससे अधिक मुखर होकर वह उसे अपनी कविता में परिवर्तित कर देते थे। नागार्जुन में कई बार विचलन भी दिखा लेकिन यह विचलन इसीलिये रहा क्योंकि वे अपनी पक्षधरतावादी भूमिका से समझौता नहीं कर सके । यही कारण है कि उन्होने अपने समानधर्माओं को भी गाली दी । वे अदम्य यायावर हैं। त्रिलोचन मे भी यायावरी है लेकिन इस यायावरी का उदेश्य एक के बाद दूसरा भूगोल देखना नहीं है । वह इस घुमक्कडी में लोकसत्ता ,लोकरग, लोकव्यवहार, लोकसंस्कृति, लोकभाषा, लोकानुभव से गहरा साक्षात्कार करते हैं। नागार्जुन और त्रिलोचन से ज्यादा कोई नहीं जानता कि "भाषा बहता नीर है"। वह नीर की तरह बहे और भाषा की तरह सर्वव्याप्त हुए। लोक के साथ उनकी यह संपृक्ति उनकी उर्जा का बढाव है। त्रिलोचन ने जब एक बार अवध के जनपदीय लोक राग को पहचाना तो जीवन भर उस आसक्ति से स्वयं को मुक्त करने का कोई कारण नहीं देखा । त्रिलोचन के यहाँ सॉनेटों में पूरे वाक्य हैं तो इसलिये कि वह बार बार जैसे पूरे जीवन को लिख देना चाहते हैं। त्रिलोचन के बारे में जो जानते हैं,उन्हें मालूम है कि इस अवधी बाबा ने शब्दों के उत्स के बारे मे यही आशंसा और अनुराग दिखाया । दरअसल, यह लोक तक पहुँचाने की बहुत आन्तरिक बौद्धिक और संवेदनात्मक कोशिश रही है।

इनके द्वारा जीवन, समाज, लोक, प्रकृति और वह सब कुछ जिससे जीवन निर्मित होता है, का यह उन्मेष और इसकी पुर्नव्याख्यायें एक प्राकृतिक और लगभग अपूर्व चेष्टायें थी। कहना चाहिये कि इन तीनों कवियों के अपने निजत्व के बावजूद, इन्होने सामाजिकता और लोकात्मकता के नये नये आयामों की तलाश की, जो उत्पीड़ित व्यवस्था में विश्वास के एक नये सूत्र से बँधा है।

नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर की कविताओं को यदि अभी और एकदम अभी लिखी जा रही कविताओं के परिप्रेक्ष्य में परखा जाय तो यह बात स्पष्टतः सामने आती है कि उसमें भाव भूमि एवं

संरचानात्मक दोनों स्तर पर एक क्रमवद्ध विकास हुआ है । सपष्टतः यह अपनी परम्परा से असीम संरचानात्मक संभावनाओं का दोहन हैं। अपने सवेदनों को चमकाने तराशने के बजाय उसे गहनतग और जीवन्त बनाने के लिये एक लगातार संघर्ष इस दौर के कवियों के भीतर यदि जारी है तो इसका कारण उस जीवंत बौद्धिक रचानात्मकता में विद्यमान है जो इन बुर्जुग कवियों के रूप में सामने आती हैं। हिन्दी की कविता में इस रूप में इन तीनों कवियों की जीवंत उपस्थिति कविता को बेहद ऊर्जाक्षम बनाती हैं। ,

इन तीनों कवियों की कविता इस माने में उल्लेखनीय है कि वह कविता के प्रचलित मुहावरों, भाषिक संरचना और स्थूल संवेदनाओं को तोडने वाली कविता है। आस पास का मनुष्य और परिवेश इन कवियों की कविताओं के केन्द्र में है। इस स्थानीय बोध के बावजूद उनकी सृजनात्मक चिंता क्षितिज के सभी छीरों तक जाती है। कविता में स्थानीयता न तो शब्दों से प्रकट की जा सकती है और न स्मृति रेखाओं से। कविता में स्थानीयता की सार्थक उपस्थिति का केवल एक ही कारण है–कवि की वह उर्जावान शक्ति जो इस जीवन में गहरे धँसकर ही प्राप्त हो सकती हैं। असल में केवल देशज शब्दों और लोक भाषा के इस्तेमाल या केवल परिवेश के बखान भर से ही कोई कविता स्थानीय नही बन जाती,प्रत्युत उसका निर्माण अनुभव ससार से उपजी संवेदनाओं के द्वारा ही होता है। शमशेर,नागार्जुन और त्रिलोचन की कविताओं में यह जीवनोन्मुखी सर्जनात्मक आंच है, जिसने मनुष्य के बोध को अपनी कविता में ढाला है।

इन कवियों का अपना एक निजी अनुभव संसार है, जिसके दायरे में वे अपने सच्चे अनुभवों के माध्यम से मनुष्य की सत्ता को,उसके बोध को,उसके अस्तित्व को पहचानने का प्रयास करते हैं। इसके लिये उनके पास अपने औजार है और निश्चिततः अपने पैमाने भी। इन कवियों को अपनी पृथ्वी को बचाये रखने की चिन्ता है,वे इस पर ढेर सारी क्रियायें करना चाहते हैं जैसे –प्यार। इसके लिये वह थोड़ी सी जगह चाहते है–हथेली भर जगह । वे पेडों के हरेपन को बचाये रखने के लिये परेशान है। इस हरेपन के द्वारा वे जीवन को बचाना चाहते हैं। सड़ी हुयी और गंधाती व्यवस्था के बीच में इनकी कविता मुलायम हवा के झोंकों की तरह हम तक आती हैं–प्राणवायु देने के लिये वह हौले से आती है,एक साथी की तरह। उनका दोस्तों की तरह आना और कंधें पर हाल–चाल लेते हुये हाथ रखकर बतियाना सचमुच प्रीतिपरक हैं। विनम्रता और निरभिमानता इस कविता की विशिष्टता है। वे सताये हुये और कमजोर मनुष्य की प्रवक्ता–कवितायें हैं। इन्हें मनुष्यों से प्रेम हे इसीलिये अपनी भावसंवेदना में ये बहुत प्रीतिपरक हैं। इसीलिये इनमें सौन्दर्य के ढेर सारे चित्र विद्यमान है। यह कला को उसकी वास्तविक सार्थकता तक पहुंचना है। कहा जा सकता है कि कला का भविष्य भी उसी के हाथ में सुरक्षित हैं । जीवन के और प्रश्नों की तरह, कला के प्रश्न भी वहीं सुलझने आते हैं ।

कविता अक्सर हमें अपने परिचित संसार में ही ले जाती है लेकिन नयी दृष्टि के साथ जो एक साथ यदि यथार्थ परक है तो भावबोध के स्तर पर बहुत संश्लिष्ट भी । वे हमारे जातीय स्मृतिबोध की कविताये है, जिनमें ऐतिहासिक दृष्टि की विरासत और जातीय परम्परा की समझ एक साथ विद्यमान है। यथार्थ की गहरी समझ होने के बावजूद यह निषेधवाद में विश्वास करने वाली कवितायें नही है। बल्कि जीवन में विश्वास दिलाने वाली कवितायें हैं।

****

कृतियाँ :

१.	दूसरा सप्तक (अन्य कवियों के साथ)	ज्ञानपीठ नयी दिल्ली, १९५२
२.	कुछ कवितायें	चयन [illegible] और प्रकाशक जगतशंखधर,कमच्छा, वाराणसी १९५२
३.	कुछ और कवितायें	राजकमल प्रकाशन, १९६१
४.	शमशेर बहादुर सिह की कवितायें	चयन, पहचान सीरीज, संख्या १, १९७२ सं० अशोक बाजपेयी
५.	चुका भी नही हूँ मै	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ,१९७५
६.	इतने पास अपने	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,१९८०
७.	उदिता	वाणी प्रकाशन, दिल्ली ,१९८०
८.	बात बोलेगी	सम्भावना प्रकाशन ,हापुड़, १९८१
९.	काल तुझसे होड है मेरी	सम्भावना प्रकाशन ,हापुड़, १९८८
१०.	प्रतिनिधि कविताएं	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,१९९०
११.	दोआब	सरस्वती प्रेस , इलाहाबाद, १९४८
१२.	धरती	नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद ,१९७७
१३.	गुलाब और बुलबुल	वाणी प्रकाशन, दिल्ली ,१९५६
१४.	दिगन्त	प्रकाशक जगत, शंखधर, १९५७
१५.	ताप के ताए हुये दिन	सम्भावना प्रकाशन ,हापुड़, १९८०
१६.	शब्द	वाणी प्रकाशन, दिल्ली ,१९८०
१७.	उस जनपद का कवि	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली ,१९८१
१८.	अरधान	यात्री प्रकाशन, दिल्ली ,१९८३
१९.	अनकहनी भी कुछ कहनी है	[illegible]कमल प्रकाशन,दिल्ली, १९८५
२०.	तुम्हे सौंपता हूँ	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९८५
२१.	फूल नाम है एक	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९८५
२२.	प्रतिनिधि कवितायें	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ,१९८५
२३.	सबका अपना आकाश	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८७
२४.	चैती	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८७
२५.	अमोला	वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८७

२६. खिचडी विप्लव देखा हमने — संभावना प्रकाशन, हापुड़, १९८०
२७. तालाब की मछलियॉं — अनामिका प्रकाशन, पटना, १९७५
२८. तुमने कहा था — वांणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८०
२९. पुरानी जूतियों का कोरस — वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८३
३०. भस्मांकुर — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९७१
३१. युगधारा — यात्री प्रकाशन, दिल्ली, १९५३
३२. हजार हजार बाहों वाली — राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९८१
३३. पत्रहीन नग्नगाछ — संभावना प्रकाशन, हापुड, १९९१
३४. गीत गोविन्द — वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९७९
३५. मेघदूत — वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९७९
३६. विद्यापति के गीत — वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९७९
३७. अन्नहीनं क्रियाहीनं — वाणी प्रकाशन, दिल्ली, १९८३
३८. आसमान में चन्दा तैरे — प्रस्ताव प्रकाशन, पटना, १९८२

पुस्तक –सूची :

१.	समकालीन कविता का यथार्थ	डा. परमानन्द श्रीवास्तव
	प्रथम संस्करण : १६८८	हिन्दी साहित्य संस्थान, हरियाणा
२.	कविता की लोक प्रकृति	डा. जीवन सिह
	प्रथम संस्करण : १६६८	अस्मिता प्रकाशन, इलाहाबाद
३.	त्रिलोचन	महावीर अग्रवाल
	प्रथम संस्करण : १६६८	श्री प्रकाशन,दुर्ग, (म.प्र.)
४.	साहित्य के समाज शास्त्र की भूमिका	मैनेजर पाण्डे
	प्रथम संस्करण : १६८६	
५.	कविता के संदर्भ	डा. राजाराम भादू
		राज पब्लिशिंग हाउस, पूर्व दिल्ली
६.	साहित्य और विचार धारा	ओम प्रकाश ग्रेवाल
	प्रथम संस्करण : १६६४	आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा
७.	कविता का अंतर–अनुशासनीय विवेचना	डा. वीरेन्द्र सिंह
	प्रथम संस्करण : १६६५	साहित्य रत्नालय, कानपुर
८.	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	विश्वनाथ त्रिपाठी
	प्रथम संस्करण : अप्रैल १६६६	
६.	मेरे समय के शब्द	केदार नाथ सिंह
	प्रथम संस्करण : १६६३	राधाकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म.प्र.)
१०.	शब्द और मनुष्य	परमानन्द श्रीवास्तव
	प्रथम संस्करण : १६८८	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
११.	नागार्जुन की कविता	अजय तिवारी
	प्रथम संस्करण : १६६०	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
१२.	रचना के सरोकार	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
	प्रथम संस्करण : १६८७	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
१३.	फिलहाल	अशोक बाजपेयी
	प्रथम संस्करण :१६७०	राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

१४. साठोत्तरी हिन्दी कविता में जनवादी चेतना — नरेन्द्र सिंह
प्रथम रांरकरण : १९९० — वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

१५. नव स्वछन्दतावाद — डॉ. अजब सिह
प्रथम संस्करण : १९८७ — वि.वि. प्रकाशन, वाराणसी

१६. तीसरा साक्ष्य — अशोक बाजपेयी
प्रथम संस्करण : १९८९ — सम्भावना प्रकाशन, हापुड

१७. कुछ पूर्वग्रह — अशोक बाजपेयी
द्वि. सं. १९८९ — राजकमल प्रकाश, नई दिल्ली

१८. कविता की संगत — विजय कुमार
प्रथम संस्करण : १९९५ — आधार प्रकाशन, हरियाणा

१९. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका — डॉ. मैनेजर पाण्डेय
प्रथम संस्करण : १९८९ — हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ

२०. नयी कविता की काव्यानुभूति — चन्द्रा सदायत
प्रथम संस्करण : अक्टूबर १९८६

२१. जनान्तिक — नेमिचन्द्र जैन
प्रथम संस्करण : १९८१ — सम्भावना प्रकाशन, हापुड

२२. साहित्यानुशीलनः विभिन्न दृष्टियां — डॉ. दयाशंकर शुक्ल
प्रथम संस्करण : १९८९ — लोक भारती प्रकाशन

२३. भाषा, और संवेदना — राम स्वरूप चतुर्वेदी
तृतीय संस्करण : १९८१ — लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

२४. नागार्जुन — सुरेश चन्द्र त्यागी
प्रथम संस्करण : १९८४ — अशिर प्रकाशन सहारनपुर

२५. समकालीन कविता की पहचान — वीरेन्द्र मोहन
प्रथम संस्करण : १९९१ — कश्य रूप के सहयोग से प्रकाशित, इलाहाबाद

२६. कविता में समकाल — डॉ. रेवतीरमण
प्रथम संस्करण : १९९९ — रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म.प्र.)

२७. त्रिलोचन : किंवदन्ती पुरुष — महावीर अग्रवाल
प्रथम संस्करण : १९९८ — श्री प्रकाशन, दुर्ग (म.प्र.)

२८.	आधुनिक हिन्दी कविता और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता	कमला प्रसाद
	प्रथम संस्करण : १६८६	साहित्यवाणी, इलाहाबाद
२६.	शब्द–संसार की यायावरी	नंद चुतर्वेदी
	प्रथम संस्करण : १६८५	पंचशील प्रकाशन, जयपुर
३०.	हिन्दी कविता का वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य	राम कमलराय
		लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
३१.	सर्जन और भाषिक संरचना	राम स्वरूप चतुर्वेदी
	प्रथम संस्करण : १६८०	लोक भारती प्रकाशन ,इलाहाबाद
३२.	अशुद्ध काव्य की संस्तुति में	डॉ. विजेन्द्र नारायण सिंह
	प्रथम संस्करण १६८४	परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद
३३.	शमशेर : कविता लोक	डॉ. जगदीश कुमार
	प्रथम संस्करण : १६८२	राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
३४.	नागार्जुन का रचना ससार	विजय बहादुर सिंह
	प्रथम संस्करण : १६८२	संभावना प्रकाशन, हापुड
३५.	आधुनिक कविता यात्रा	राम स्वरूप चतुर्वेदी
	प्रथम संस्करण : १६६८	लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद
३६.	कविता की मुक्ति	नंद किशोर नवल
३७.	कविता का जीवित संसार	अजित कुमार
३८.	कविता की तलाश	चंद्रकांत बांदिवेडकर
३६.	समकालीन हिन्दी कविता	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
	प्रथम संस्करण : १६८२	राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली
४०.	तार सप्तक के कवियों की समाज चेतना	डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
	प्रथम संस्करण : १६८७	वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
४१.	मिथक और आधुनिक कविता	शंभूनाथ
	प्रथम संस्करण : १६८५	नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,नई दिल्ली
४२.	कविता का अंत	सुधीर पचौरी
	प्रथम संस्करण : १६६०	प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

४३. जनकविता सम्पादक — विजय बहादुर सिंह
प्रथम संस्करण : १६८४ — राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

४४. कविता का जनपद सम्पादक — अशोक बाजपेयी
प्रथम संस्करण : १६६२ — प्रकाशक राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली

४५. हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि — राम मनोहर त्रिपाठी
प्रथम संस्करण : १६८६ — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली

४६. समकालीन कविता पर एक बहस — जगदीश नारायण श्रीवास्तव
प्रथम संस्करण . जून १६७८ — चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद

४७. शब्द और कर्म — मैनेजर पाण्डेय
प्रथम संस्करण : १६८१ — धरती प्रकाशन, बीकानेर

४८. कविता से साक्षात्कार — मलयज

४६. समकालीन कविता वैचारिक आयाम — डॉ. बलदेव वंशी
प्रथम संस्करण : १६७६ — संभावना प्रकाशन, हापुड

५० कवितान्तर — डॉ. जगदीश गुप्त
प्रथम संस्करण : १६६२ — ग्रन्थम प्रकाशन, कानपुर

५१. समकालीन कविता वैचारिक आयाम — डॉ. बलदेव वशी
प्रथम संस्करण . १६८६ — इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली

५२. देश के इस दौर में — डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी
प्रथम सस्करण : १६८६ — परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद

५३. विभ्रम और यथार्थ — कॉडवेल
प्रथम संस्करण : १६६ — राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

पत्रिकायें :

साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २०८	अप्रैल १९९७
पल प्रतिपल	देश निर्मोही	सयुक्तांक २७–२८	जनवरी, जून १९९४
आलोचना	नामवर सिंह	अंक ८२	जुलाई सितम्बर १९८७
पहल	ज्ञानरंजन, कमला प्रसाद	अंक १५	अक्टूबर १९८०
साक्षात्कार	पूर्णचन्द्ररथ	अंक १७४–१७५	जून–जुलाई १९९४
साक्षात्कार,	प्रभात त्रिपाठी	अंक १७६	अगस्त १९९९
साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २५१	नवम्बर २०००
पल प्रतिपल	देश निर्मोही	संयुक्तांक ३७–३८	जुलाई, दिसम्बर १९९६
आलोचना	नामवर सिंह	अंक ७८	जुलाई सितम्बर १९८६
पलप्रतिपल	देश निर्मोही	संयुक्तांक ५१–५२	मार्च, जून २०००
वसुधा	कमला प्रसाद	अंक ४०	जुलाई, नवम्बर १९९७
वसुधा	कमला प्रसाद	अंक ३२	जुलाई, नवम्बर १९९५
अभिप्राय	राजेन्द्र कुमार	अंक १४–१५	फरवरी १९८६
पहल	ज्ञानरंजन	अंक ६६	जुलाई, अगस्त २०००
पहल	ज्ञानरंजन/कमला प्रसाद	अंक ४४	मार्च, अप्रैल, मई १९८८
समकालीन भारतीय साहित्य	गिरधर राठी	अंक ५७	जुलाई, सितंबर १९९४
साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २३६	नवम्बर १९९९
पहल	ज्ञानरंजन/कमला प्रसाद,	३५	मई , जून, जुलाई, १९८८
अलाव	रामकुमार कृषक,	अंक ७	अगस्त १९९७
पल प्रतिपल	देश निर्मोही	संयुक्तांक ४७–४८	मार्च, जून १९८७
साक्षात्कार	सोमदत्त	६५–६७ संयुक्तांक	अक्टूबर, दिसम्बर १९८७
समकालीन भारतीय साहित्य	शानी	अंक १०	अक्टूबर, दिसम्बर १९८२
साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २१६	मार्च १९९८
कदम	चन्द्रदेवराय, जयप्रकाश, धूमकेतु,		अप्रैल, अक्टूबर १९९८

उद्‌भावना	सरवर हसन 'सरवर'	अंक ८	अप्रैल, जून १९८७
अभिप्राय	राजेन्द्र कुमार	अंक २०	जनवरी, फरवरी, मार्च १९९८
संवेद	किशन कालजयी	अंक ८	अप्रैल १९९८
कथ्यरूप	अनिल श्रीवास्तव	अंक ४	अक्टूबर, दिसम्बर १९८८
पल–प्रतिपल	देश निर्मोही	संयुक्तांक १८–१९	अक्टूबर, १९९१ मार्च १९९२
तद्‌भव	अखिलेश	अंक २,	सितम्बर १९९९
समकालीन भारतीय साहित्य	गिरधर राठी	अंक ६०	अप्रैल, जून १९९५
अभिप्राय/२	डॉ. राजेन्द्र कुमार		अप्रैल १९८२
नयापथ	चद्रबली सिंह	अंक ३	जनवरी, मार्च १९८७
समकालीन भारतीय साहित्य	शानी	अंक १३	जुलाई, सितम्बर १९८३
कथ्य–रूप	अनिल श्रीवास्तव	प्रवेशांक	
वातायन	हरीश भदानी		अक्टूबर, दिसम्बर १९९२
साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ८६–८८	जनवरी, मार्च १९८७ संयुक्तांक
अंतर्दृष्टि	विनोद दास	अंक १	जून १९८८
पहल	ज्ञानरंजन/कमला प्रसाद	१३	जनवरी १९७९
पहल	ज्ञानरंजन/कमला प्रसाद	२३	अगस्त १९८३
पहल	ज्ञानरंजन/कमला प्रसाद्र	३३	दिसम्बर,जनवरी १९८८
कथ्यरूप	अनिल श्रीवास्तव	अंक ५	जून १९८९
तद्‌भव	अखिलेश	अंक ३	अप्रैल २०००
साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ६६–६७	मई, जून १९८५
कथा	मार्कण्डेय	अंक १०	फरवरी २०००
नई कहानी	सतीश जमाली	अंक १०	जुलाई १९८८
उत्तर प्रदेश	लीलाधर जगूड़ी	अंक १	मई १९९८
हंस			जनवरी १९८७
आजकल			सितम्बर १९९३
जनप्रसंग			सितम्बर १९८९

साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ७४–७५	जनवरी, फरवरी १९८६
वर्तमान साहित्य	धनंजय	अंक १२	
पूर्वग्रह	अशोक बाजपेयी	अंक ८१–८२	जुलाई, अक्टूबर १९८७
अलाव	रामकुमार कृषक	अंक ६	फरवरी १९९५
जन संस्कृति	मैनेजर पाण्डेय	अंक १०	अप्रैल, जून १९८८
समकालीन भारतीय साहित्य	शानी	अंक २८	अप्रैल, जून १९८७
कलम मार्कण्डेय		अंक १३	
साक्षात्कार	आग्नेय		जून, २०००
सापेक्ष	महावीर अग्रवाल	अंक ३०	जनवरी, मार्च १९९४
आजकल	सुभाष सेतिया	अंक ६	जनवरी १९९६
कल के लिए	जयनारायण	अंक १३	जनवरी, मार्च १९९६
कबीर	भृगुनन्दन त्रिपाठी	अंक ४	नवम्बर १९८६
साक्षात्कार	आग्नेय		अप्रैल १९९८–२०००
वसुधा	धनंजय वर्मा	अंक ६	अप्रैल जून १९८६
वर्तमान साहित्य	विभूतिनारायण राय	अंक ५	मई १९९६
कथादेश	हरिनारायण	अंक ३–४	मई, जून १९९८
कसौटी	नन्दकिशोर नवल	अंक ५	
हंस	राजेन्द्र यादव	अंक ४	नवम्बर १९८८
उत्तरगाथा	सव्यसाची	अंक १२	जनवरी, फरवरी,मार्च १९८३
पुरुष	रवीन्द्र रविकर	अंक १६	सितम्बर १९९३
साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ९८–१००	जनवरी, मार्च १९८८
वसुधा	धनंजय वर्मा	अंक १३–१४	१९८८
पल प्रतिपल	देश निर्मोही	अंक २२	अक्टूबर, दिसम्बर १९९२
साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ७२–७३	नवम्बर, दिसम्बर १९९५
वर्तमान साहित्य	विभूतिनारायण राय	अंक ७–८	अप्रैल,मई संयुक्तांक १९९२
साक्षात्कार	आग्नेय	अंक २१०	जून १९९७

पूर्वग्रह	अशोक वाजपेयी	अंक ८४–८५–८६	जनवरी, जून १६८८
कसौटी	नन्द किशोर नवल	अंक ६	
हस	राजेन्द्र यादव	अंक ७	फरवरी २००१
अभिप्राय	राजेन्द्र कुमार	अंक २४–२५	नवम्बर २०००
पलप्रतिपल	देश निर्मोही	अंक १२	अक्टूबर, दिसम्बर १६६८
अंतर्दृष्टि	विनोद दास	अंक १	१६६८
प्रयोजन	वीरेन्द्र यादव और राकेश	अंक ३	जुलाई, सितम्बर १६८७
साक्षात्कार	सोमदत्त	अंक ६२–६४	जुलाई, सितम्बर १६८७
नया विकल्प	विजय बहादुर सिंह	अंक ७	१६८६
संवेदना	हरीशचन्द्र	अंक १	जनवरी १६६४
पूर्वग्रह	अशोक वाजपेयी	अंक ७५	जुलाई, अगस्त १६८६
कथा	मार्कण्डेय	अंक ६	जनवरी १६६६
वागर्थ	प्रभाकर श्रोत्रिय	अंक ३४	जनवरी १६६८
पूर्वग्रह	अशोक वाजपेयी	अंक ८३	नवम्बर, दिसम्बर १६८७
आलोचना	नामवर सिंह	अंक ५६–५७	जनवरी,मार्च, अप्रैल,जून १६८१
वर्तमान साहित्य	विभूतिनारायण राय	अंक १	अक्टूबर १६६०
कल के लिए	डॉ. जय नारायण	अंक ४–५	मार्च १६६४
वसुधा	कमला प्रसाद	अंक १	अक्टूबर १६६१
दस्तावेज	विश्वनाथ प्रसाद तिवारी	अक ४	जुलाई, सितम्बर १६६३
कथ्यरूप	अनिल श्रीवास्तव	अंक १०	जुलाई,सितम्बर १६६१
आलोचना	शिवदान सिंह चौहान	अंक २	जनवरी १६५२
वसुधा	हरिशंकर परसाई	अंक ५	जनवरी, मार्च १६८६
समकालीन भारतीय साहित्य	शानी	अंक ५२	अप्रैल, जून १६६३